

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

४५१६

क्रम संख्या

काल न०

वर्ष

३२ / देवपु

NANDISŪTRAM

by

SHRĪ DEVAVĀCAKA

with the VṚTTI by

SHRĪ HARIBHADRĀCĀRYA

and

DURGAPADAVYĀKHYĀ ON VṚTTI

By

SHRĪ ŚRĪCANDRĀCĀRYA

and

VIṢAMAPADAPARYĀYA ON VṚTTI

Edited by

MUNI SHRĪ PUNYAVIJAYAĪ

General Editors :

Dr. V. S. AGRAWĀLA

Pandit DALSUKH MĀLVANIĀ

PRAKRIT TEXT SOCIETY

VARANASI-5

AHMEDABAD-9

Published by
DALSUKH MALVANIA
Secretary,
PRAKRIT TEXT SOCIETY
VARANASI-5

Price Rs. 15/-

Available from :

- 1 MOTILAL BANARASIDASS, NEPALI KHAPRA, Post Box 75, VARANASI.
- 2 CHAUKHAMBHA VIDYABHAVAN, CHAWK, VARANASI
- 3 GURJAR GRANTHARATNA KARYALAYA, GANDHI ROAD, AHMEDABAD-1.
- 4 SARASWATI PUSTAK BHANDAR, RATANPOLE, HATHIKHANA, AHMEDABAD-1.
- 5 MUNSHI RAM MANOHARLAL, NAI SARAK, DELHI.

Printed by :-
JAYANTI DALAL
Vasant P. Press
Gheekanta, Ghelebbhai's Wadi,
AHMEDABAD-1.

श्रीदेववाचकविरचितं
नन्दिसूत्रम्

श्री-श्रीचन्द्राचार्यकृतदुर्गापद्याख्या-अज्ञातकर्तृकविषमपदपर्यायाभ्यां समलङ्कृतया
आचार्यश्रीहरिभद्रसूरिकृतया वृत्त्या सहितम्

संशोधकः सम्पादकश्च

मुनिपुण्यविजयः

जिनागमरहस्यवेदिजैनाचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिवर(प्रसिद्धनाम—आःभागमजीमहाराज)शिष्यरत्न—
प्राचीनजैनभाण्डागारोद्धारकप्रवर्तकश्रीमन्कान्तिविजयान्तेवासिनां
श्रीजैनआत्मानन्दग्रन्थमालासम्पादकानां मुनिप्रवरश्रीचतुरविजयानां विनेयः

प्रा कृत ग्रन्थ परि ष द्,

वाराणसी-५

अहमदाबाद-९,

प्रकाशक :-
बलराम माळवणिया
सेक्रेटरी, प्राइम टेकस्ट सोसायटी,
बारामची-५

मुद्रक :-
नरेशि बलराम
नरेशि प्रिन्टिंग प्रेस
बीकाटा, बेळगाईची बाडी
बदवदावाच-१

गंथसमप्पणं

सव्वणुसत्थःथपयासणत्थं भव्वाण जीवाण विबोहणत्थं ।
गंथा अणेगा रइया महग्घा जेहिं महत्था विविहा विमुद्धा ॥१॥
'भवविरहसूरि' इतिगुण्णाम जेसि जयमि सुपसिद्धं ।
जाइणिमहत्तराए धम्मसुयत्तं च जे पत्ता ॥२॥
अणुवकयपरोवकया अम्हारिसऽणेयजणगणम्मि जे ।
महमाहणाण महसमणवराणं पुज्जपायाणं ॥३॥
सिरिहरिभद्दायरियाणऽणुवमचरियाण महमईणं णं ।
ताणं ताणाणऽहयं तव्विरइयवित्तिसंजुयं एयं ॥४॥
पुण्णपवित्ते करकयकोसे अप्पेमि नंदिमुत्तं हं ।
भत्ति-बहुमाणगहिळो विणयणओ अप्पयं धन्नं ॥५॥
मन्नेमाणो वारं वारं सकयत्थयं च भावंतो ।
मुणिपुण्णविजयणामो णिग्गंथो चरणरयकप्पो ॥६॥ छहिं कुळयं ॥

ग्रन्थसमर्पण

भव्यजीवों के विबोध के लिए सर्वज्ञ के शास्त्रों के अर्थप्रकाशन के हेतु जिन्होंने विविध विशुद्ध और महार्थको प्रकट करनेवाले महामूल्यवान अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है, जिनका उपनाम 'भवविरहसूरि' जगत में सुप्रसिद्ध है और जो याकिनीमहत्तम के धर्मपुत्र थे, हमारे जैसे अनेक जनोंको जिन्होंने अनुपकृत होते हुए भी उपकार किया है, जो महात्राहण महाश्रमणश्रेष्ठ और पूज्यपाद है, ऐसे महामति अनुपमचारित्रधर श्रीहरिभद्राचार्य के पुण्यपवित्र करकमलकोषमें उन्हींकी बनाई वृत्ति के साथ यह नन्दिसूत्र को भक्ति और बहुमान से विवश अपने का धन्य मानता हुआ—पुनः पुनः अपने को कृतार्थ समझता हुआ मैं उनकी चरणरजके समान निम्नैश्वर्य मुनि पुण्यविजय समर्पित करता हूँ ।

प्रकाशकीय निवेदन

जैन आगम ग्रन्थों के प्रकाशनके लिए अब तक अनेक व्यक्ति और संस्थाएँ प्रयत्न किया है। ई. १८४८ में सर्व प्रथम रिचर्डसन ने कल्पसूत्रका अनुवाद प्रकाशित किया किन्तु वह क्षतिपूर्ण था। वस्तुतः बेबर ही सर्वप्रथम विद्वान माने जायेंगे जिन्होंने इस दिशामें नया प्रस्थान शुरू किया। उन्होंने ई. १८६५-६६ में भगवती सूत्रके कुछ अंशों का संपादन किया और उन पर टिप्पणीरूप अपना अध्ययन भी लिखा।

राय धनपतसिंह बहादुरने आगमोंका प्रकाशन १८७४ में शुरू किया और कई आगम प्रकाशित किये किन्तु उनका मूल्य हस्तप्रतों की मुद्रित आवृत्तिसे कुछ अधिक था। फिर भी—विद्वानों को दुर्लभ वस्तु सुलभ बनानेका श्रेय उन्हें है ही। जेकोबीका कल्पसूत्र (ई. १८७९), और आचारांग (ई. १८८२), ल्युमनका औपपातिक (ई. १८८३) और आवश्यक (ई. १८९७), स्टैन्थलका ज्ञाताधर्मकथा का कुछ अंश (ई. १८८१), हीर्नेरका उपासकदशा (ई. १८९०), शुक्तिगके आचारांग (ई. १९१०) इत्यादि ग्रन्थ आगमों के संपादनकी कला में आधुनिक विद्वानों को संमत ऐसी पद्धति को अपनाकर प्रकाशित हुए थे। फिर भी लाला सुखदेव सहायद्वारा ऋषि अमोलकरुत हिन्दी अनुवाद के साथ (ई. १९१४-२०) जो ३२ आगम प्रकाशित हुए तथा आगमोदय समिति द्वारा समग्र सटीक आगमों का ई. १९१५में जो मुद्रण प्रारंभ हुआ उनमें उस पद्धति की उपेक्षा ही हुई। आचार्य सागरानन्दपुरि द्वारा संग्रहित संस्करण शुद्धिको और मुद्रण को दृष्टिसे राय धनपतसिंहके संस्करणसे आगे बढ़ा हुआ है और विद्वानोंके लिये उपयोगी भी सिद्ध हुआ है। इस संस्करणके प्रकाशनके बाद जैनधर्म और दर्शनके अध्ययन और संशोधन में जो प्रगति हुई उसका श्रेय आचार्य सागरानन्दपुरिको है। किन्तु इतना होने पर भी आगमों को आधुनिक पद्धतिसे समीक्षित वाचना की आवश्यकता तो बनी ही रही थी। पाठनमें ई. १९४३ में आगम प्रकाशनके लिए जिनागम प्रकाशनी संसदकी स्थापना की गई किन्तु उससे अब तक कुछ भी प्रकाशन हुआ नहीं। पं. पा. मुनिश्री पुण्यविजयजी लगातार चालीससे भी अधिक वर्ष से इस प्रयत्नमें हैं कि आगमोंका सुसंगठित संस्करण प्रकाशित हो। उन्होंने इस दृष्टिसे प्राचीन प्रतों की शोध करके कई मूल आगमों और उनकी प्राकृत-संस्कृत टीकाओं के पाठ संशोधित किए हैं। इतना ही नहीं उन्होंने टीकाओं में या अन्य ग्रन्थों में आगमोंके जो अवनयन आये हैं उनका आधार लेकर भी पाठशुद्धिका प्रयत्न किया है। उनके इस प्रयत्नको ही मुख्यरूपसे नजर समझ रख कर स्वतंत्र भारतके प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसादने ई. १९५३ में प्राकृत ग्रन्थ परिषद्की स्थापना की। अबतक इस परिषद् के द्वारा प्राकृत भाषाके कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ सुसंपादित होकर प्रकाशित हुए हैं। तथा पं. हरगोविंददासका सुप्रसिद्ध पाइयसदमहृण्यश्री भी पुनः मुद्रित हुआ है। प्राकृत ग्रन्थपरिषद् के द्वारा सटीक आगमों का प्रकाशन होना है यह ज्ञानकर केन्द्र मूत्र आगमों के प्रकाशनके लिए बर्बर्क महावीर जैन विद्यालयने ई. १९६० में योजना बनाई और पं. मुनिश्री का सहकार मांगा जो सहर्ष दिया गया।

यह परम हर्षका विषय है कि प्राकृत ग्रन्थ परिषद् अब अपने मुख्य ध्येय के अनुसार आगमप्रकाशनके क्षेत्रमें भी प्रवेश कर रही है और समग्र आगमके मगधमूल तन्दोमूत्र आ० त्रिंदास महतर कृप चूर्ण और आचार्य हरिभद्रकृत वृत्ति आदिके साथ नवम और दशम ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित कर रही है। इसका श्रेय पं. पा. मुनिराज श्री पुण्यविजयजी को है जिन्होंने बड़े परिश्रम से इनका संपादन दीर्घकालीन अथवसायसे अनेक हस्तप्रतों और टीकाओंके आश्रयसे किया है। इसके लिए प्राकृत ग्रन्थ परिषद् और विद्वजगत उनका ऋणी रहेगा।

1945年12月15日

1945年12月15日	1945年12月15日	1945年12月15日
1945年12月15日	1945年12月15日	1945年12月15日
1945年12月15日	1945年12月15日	1945年12月15日
1945年12月15日	1945年12月15日	1945年12月15日
1945年12月15日	1945年12月15日	1945年12月15日

प्रस्तावना

आज विद्वानों के करकमलोंमें नन्दीसूत्र, उसकी हरिभद्रसृष्टिकृत वृत्ति, हरिभद्री वृत्तिकी चन्द्रकुलीन आचार्य श्री श्रीचन्द्रसृष्टिकृत दुर्गपदव्याख्या, जिसका अपरनाम टिप्पणक है, और हरिभद्रीवृत्तिके पर्याय. ये चार ग्रन्थ उपहन किये जाते हैं। इनका सशोधन मूल नन्दीसूत्रकी आठ प्रतियाँ, हरिभद्री वृत्तिकी चार प्रतियाँ, दुर्गपदव्याख्याका तीन प्रतियाँ और पर्याय या सक्षिप्त टिप्पणककी दो प्रतियाँ, इस प्रकार कुल सत्रह प्रतियोंके आधारसे किया गया है।

मूल नन्दीसूत्रकी आठ प्रतियोंका विस्तृत परिचय, इसी प्राकृत टेम्पट सोसायटी द्वारा प्रकाशित चूर्णसहित नन्दीसूत्रकी प्रस्तावनामें दिया गया है, इसको न दुहरा कर, विद्वानोंमें विज्ञप्ति है कि इस परिचयको चूर्णसहित नन्दीसूत्रकी प्रस्तावनासे ही देख ले। मूल नन्दीसूत्रके संख्याबन्ध पाठभेद आदिके विषयमें जो कुल वक्तव्य और ज्ञातव्य था वह उसमें ही दिया है। इस ग्रन्थमें सिर्फ हरिभद्रसूत्र महाराजने जिन पाठोंको लक्षित करके व्याख्या की है, वे पाठ सूत्रप्रतियोंमें मिले हों या न मिले हों, तथापि वृत्तिकारअभिमत सूत्रपाठ वृत्तिअनुसार मैने दिये हैं। इन सब बातोंका सूत्रन चूर्णसहित नन्दीसूत्र की पादटिप्पणीयोंमें स्थान स्थान पर किया है. चूर्ण, हरिभद्री वृत्ति और मलयगिरिवृत्तिमें पाठभेदोंके अलावा सूत्रोंकी और गाथाओंकी कमी-बेशी भी है, जिनका सूत्रन भी पाद टिप्पणीयोंमें किया है। अत एव सूत्रांक और सूत्रगत गाथायामें फरक जरूर ही है, इस बातको गीतार्थ मुनिगण और विद्वद्वर्ग ध्यानमें रखे। चूर्णके अनुसार सूत्रांक ११८ और सूत्रगत गाथायामें ८५ है, जब हरिभद्री वृत्ति अनुसार सूत्रांक १२० और सूत्रगत गाथायामें ८७ हुआ है। मूल नन्दीसूत्रकी बहुनसी प्राचीन प्रतियोंमें पाई जाती गुणयणुजलकडय० नगर रश् चक्र एउमे० वदामि अज्जरवम्० वदामि अज्जरविस्य० गोविदाणं पि णमे० ततो य भूयदिने० ये उह गाथायें चूर्णकार जिनदासगणि महत्तर, लघुवृत्तिकार आचार्य श्रीहरिभद्रसूत्रि और बृहद्वृत्तिकार श्रीमलयगिरि आचार्य, इन तीनों ही व्याख्याकारोंकी व्याख्यायें नहीं हैं। इन उह गाथाओं के अतिरिक्त जिनशासनकी स्तुतिरूप गेव्युड पहसासगयं० और नेरदय देव तिथंकर० ये दो गाथायें भी चूर्णमें नहीं हैं, जो हरिभद्रसूत्रि और मलयगिरिसूत्रिकी व्याख्यायें पाई जाती हैं। इन सबका चूर्णकी पादटिप्पणीयों में निर्देश किया गया है। सामान्यतया सूत्रपाठके मुद्रण-विषय में मेरा यह क्रम रहा है कि जो जो व्याख्या सम्पादित की जाय उसमें उस व्याख्याकारको अभिमत सूत्रपाठ दिये जायें। नन्दीचूर्ण और नन्दीहरिभद्री वृत्तिके साथ दिये सूत्रपाठोंमें विद्वद्वर्ग को इस कथनका साक्षात्कार होगा।

हरिभद्री वृत्तिकी प्रतियाँ

१. आ. प्रति—आगमोद्धारक पृथपाद श्रीसागरानन्दसूत्रिसम्पादित एवं संशोधित मुद्रित आवृत्ति। जिसका प्रकाशन वि. सं. १९०४ में श्रीकृष्णभद्रवजी केशरीभलजी शैताम्बर सरया—स्तलामकी ओरसे हुआ है।

२. दा. प्रति—पृथपाद आचार्य महाराज श्री विजयदानसूरीश्वरजी सशोधित। जो भाई श्री हीरालालके द्वारा वि. सं. १९०८ में प्रकाशित हुई है।

३. सं. प्रति—पाठण श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिरस्थित श्रीसर्वके ज्ञानभंडारकी कागज पर लिखित प्रति।

४. वा. प्रति—पाठण. श्रीहेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिरस्थित वाडीपार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडारकी कागज पर लिखित प्रति।

सं. और वा. ये दोनों प्रतियाँ विक्रमकी पंद्रहवीं शतीके चतुर्थ चरणमें लिखित प्रतीत होती हैं। इनके अतिरिक्त

और भी प्रतियाँ संशोधनके समय पासमें रखी गई थीं। किन्तु उनका उपयोग जहाँ आवश्यकता प्रतीत हुई वहाँ ही किया गया है।

श्रीचन्द्रीयदुर्गपदव्याख्या—टिप्पणक की प्रतियाँ

हारिभद्राहृतिसमेत नन्दीसूत्रके बादमें चन्द्रकुलीन आचार्य श्रीधनेश्वरसूरिके शिष्य श्री श्रीचन्द्रसूरिविरचित हारिभद्रा-हृतिका टिप्पणक छपा है, जिसका आचार्यने 'नन्दीटीकादुर्गपदव्याख्या' नाम दिया है। इसके संशोधनके लिये तीन प्रतियाँ एकत्र की गई हैं—

१. जे. प्रति—जेसलमेरके स्वरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनभद्रसूरिके ताडपत्रीय ज्ञानभंडारकी ताडपत्रीय प्रति, सूचिमें इस प्रतिका क्रमांक ७६ है। इस प्रतिके पत्र २२१ हैं। प्रति अति शुद्ध और उसमें कहीं कहीं किसी विद्वान् मुनिवरकी लिखी हुई महत्त्वकी टिप्पणीयाँ भी हैं। प्रतिके अंतमें इस प्रकार लेखककी पुष्पिका पाई जाती है—

॥ ग्रंथाम् ३३०० ॥ छ ॥ मंगलमस्तु ॥ छ ॥ संवत् १२२६ वर्षे द्वितीयश्रावण शुदि ३ सोमेऽपेह मंडलीवास्तव्य श्रीजाल्योधरगच्छे मोढवंशे श्रावक श्री सदेवसुतेन ले० पल्लणेन लिखिता । लिखापिता च श्रीगुणभद्रसूरिभिः ॥ छ ॥ मंगलमस्तु ॥ छ ॥

सकलभुवनप्रकाशनमानुश्रीहेमचन्द्रसुगुरुणांम् । स्थापयिताऽऽसीद् भाण्डागारिकसोमाकसुश्रावः ॥१॥

मरुदेवागर्भजया तत्सुतया सोमिकाहया क्रीत्वा । नन्द्यध्ययनमुविवरणटिप्पितपुस्तकमिदमुदारम् ॥२॥

मुनिबालचन्द्रशिष्यश्रीमद्गुणभद्रसूरिसुगुरुभ्यः । दत्तमुपलभ्य वर्षे फलममलं ज्ञानदानस्य ॥३॥

सं. १२१३ श्रीजिनपद्मसूरिकेगुरुत्वपदेशेन सा० केलिपुत्र सा० किरता सुभ्रावकेण सत्पुत्र सा० विजमल सा० कर्मसिंह पौत्र कीका सकलपरिवारेण सख्त्रा नन्दीटीका गृह्णीता । भगिनीनायकसुश्राविकाश्रेयोर्षम् । आचन्द्राकं नन्दतात् ॥ श्रीः ॥

दुर्गपदव्याख्याकी प्रतिके अन्तमें लिखित इस पुष्पिकासे ज्ञात होता है कि— यह प्रति गुणभद्र आचार्यने वि. सं. १२२६ में मंडलीवास्तव्य जाल्योधरगच्छीय मोढजातीय पल्लव नामक श्रावक लेखकके पास लिखाई थी। जिसको मंडारी सोमाककी धर्मपत्नी मरुदेवाकी पुत्री सोमानी स्त्रीद कर ('लेखनमूल्य दे कर) हेमचन्द्राचार्यके शिष्य बालचन्द्रमुनिके शिष्य गुणभद्रसूरिके उपहृत की थी।

बादमें अस्तव्यस्त हो जाने के कारण इस प्रतिको—वि. सं. १३१३ में श्रीजिनपद्मसूरिके उपदेशसे किरतानामक श्रावकने अपनी बहिन नायक सुश्राविकाके श्रेयोनिमित्त स्त्रीद की।

इस पुष्पिकामें निर्दिष्ट श्रीहेमचन्द्राचार्य, बालचन्द्रमुनिके गुरु होनेके कारण सम्भव है कि—ये चाणक्यराज कुमार-पालट्टपप्रतिबोधक हेमचन्द्राचार्य हों। पुष्पिकागत 'सकलभुवनप्रकाशनमानु' यह विशेषण भी इस अनुमानको पुष्ट करता है। इस पुष्पिकासे यह भी सूचित होता है कि—प्राचीनकालमें भी ज्ञानभंडारको पुस्तकें अस्तव्यस्त हो जाती थीं और इनको पुनः स्त्रीद भी कर ली जाती थीं।

इस प्रतिके आदिके दो पत्र प्राचीन कालसे ही गूँस हो गए हैं। यही कारण है कि—आज इस दुर्गपदव्याख्याकी जो प्राचीन अर्वाचीन हस्तप्रतियाँ देखनेमें आई हैं उन सभीमें इस व्याख्याका मंगलाचरण आदि प्रारम्भिक अंश प्राप्त नहीं है।

२. पा.—यह प्रति पाटन—श्रीहेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमंदिरस्थित श्रीसर्वके ज्ञानभंडारकी प्रति है। यह प्रति अनुमान विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीमें लिखित है।

३. इ.— यह प्रति बड़ौदा श्रीआत्मारामजी जैन ज्ञानमंदिरस्थित पृथ्वपाद श्रीहंसविजयजी महाराज संगृहीत ज्ञान-अंशारकी है और नई लिखी हुई है ।

नन्दीसूत्रकी हारिभद्रवृत्ति एवं उसके ऊपरकी दुर्गपदव्याख्यामें कोई पाठभेद प्राप्त नहीं है ।

नन्दीसूत्रविषमपदटिप्पणिककी प्रतियाँ

नन्दीसूत्रविषमपदपर्याय या टिप्पणक, यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, किन्तु 'सर्वसिद्धान्तपर्याय' नामक ग्रन्थमेंसे विभाजित अंगमात्र है । इसके सशोधनके लिये पाटन—श्रीहंसचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिरकी दो प्रतियोंका उपयोग किया गया है, जो अनुमान विक्रमकी सत्रहवीं शतीकी लिखित प्रतीत होती है ।

इस प्रकार इन सत्रह हस्तप्रतियोंके आधारमें इस ग्रन्थाङ्कका सशोधन एवं संपादन किया गया है ।

नन्दीसूत्रकार

नन्दीसूत्रके प्रणेता स्थविर देव वाचक है । इनके सम्बन्धमें जो कुछ कहनेका था वह चूर्ण सहित नन्दीसूत्रकी प्रस्तावनामें कह दिया है ।

लघुवृत्तिकार श्रीहरिभद्रसूरि

इस ग्रन्थाङ्कमें प्रकाश्यमान वृत्तिके प्रणेता याकिनीमहत्तराधर्मसूनु आचार्य श्रीहरिभद्रसूरि महाराज हैं । इनके विषयमें विद्वानोंने अनेक दृष्टिसे विचार किया है और लिखा भी बहुत है । अतः यहाँ पर मुझे अधिक कुछ भी कहनेका नहीं है । जो कुछ कहनेका था, वह मैंने, श्री लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृतिविद्यामन्दिरमन्थावलीके चतुर्थ प्रन्थाङ्करूपमें प्रसिद्ध किये गये 'सटीक योगशतक और ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चय'की प्रस्तावनामें कह दिया है । अतः विद्वानोंसे प्रार्थना है कि उस प्रस्तावनाको देखें ।

दुर्गपदव्याख्याकार श्री श्रीचन्द्रसूरि

इस ग्रन्थाङ्कमें सम्पादित—नन्दीवृत्तिटिप्पणक, जिसका नाम ग्रन्थकारने दुर्गपदव्याख्या दिया है, इसके प्रणेता आचार्य श्रीश्रीचन्द्रसूरि हैं । ये अपनेको चन्द्रकुलीन आचार्य श्रीशीलभद्रसूरिके शिष्य श्रीधनेश्वराचार्य के शिष्य बतलाते हैं ।

इनका, आचार्यपदप्राप्तिको पूर्ववस्थामें नाम पार्श्वदेवगणि था, ऐसा उल्लेख इन्हींकी रचित पाटन—खेत्रवसी पाढाकी न्यायप्रवेशपञ्जिकाकी ताडपत्रीय प्रतिकी पुष्पिकामें पाया जाता है । जो इस प्रकार है—

न्यायप्रवेशशास्त्रस्य सद्बृत्तेरिह पञ्जिका । स्वपरार्थे दृष्टा (दृष्ट्या) स्पष्टा पार्श्वदेवगणिनाम्ना ॥१॥

मह१रस६रुद्रे११युक्ते विक्रमसंवत्सरेऽनुराधायाम् । कृणायां च नवस्थां फाल्गुनमासस्य निष्पन्ना ॥२॥

न्यायप्रवेशविवृतेः कृत्वैर्मा पञ्जिकां यन्मयाऽवाप्तम् । कुशलोऽस्तु तेन लोको लभतामबोधफलमतुलम् ॥३॥

यावन्नवगोदन्वान् यावन्नक्षत्रमण्डितो मेरुः । ले यावन्नद्राकौ तावदियं पञ्जिका बयतु ॥४॥

शुभमस्तु सर्वव्रततः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः । दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥५॥

इति श्रीशीलभद्रसूरिशिष्यसुगृहीतनामधेयश्रीमद्भद्रेश्वरसूरिशिष्यैः सामान्यावस्थापरिसिद्धपण्डितपार्श्वदेवगण्यभिधान-विशेषावस्थावासि श्रीश्रीचन्द्रसूरिनारामिः स्वपरोपकारार्थं दृष्ट्या विषमपदपञ्जिका न्यायप्रवेशकट्टचेः पञ्जिका परिसमातेति ॥

आचार्य श्री श्रीचन्द्रसूरि, जिनका पूर्ववस्थामें पार्श्वदेवगणि नाम था, उन्होंने अपने गुरु श्रीधनेश्वराचार्यको श्रीजिन-ब्रह्मगणिविरचित साषोडशकप्रकरण-अपरनाम-सूत्राधिकारविचारसारप्रकरणकी वृत्तिकी रचना और उसके सशोधनादिमें साहाय्य

दिया था, ऐसा इस वृत्तिकी प्रशस्तिमें खुद वृत्तिकार गुरुने सूचित किया है। इस प्रशस्तिमें श्री श्रीचन्द्रसूरिकी गुरु—प्रगुह
आदि परम्पराका और वंशादिका उपयुक्त वर्णन होनेसे यह प्रशस्ति यहाँ दी जाती है—

सम्पूर्णनिर्मलकलाकलितं सदैव जाडचेन वर्जितमखण्डितवृत्तभावम् ।

दोषानुपह्वरहितं नितरां समस्ति चान्द्रं कुलं स्थिरमपूर्वशशाङ्कतुल्यम् ॥१॥

तस्मिंश्चरित्रधनधामतया यथार्थाः संजज्ञिरे ननु धनेश्वरसूरिवर्याः ।

नीहारहारहरहारविकाशिकाशसंकाशकीर्त्तनिकैर्धवलीकृताशाः ॥२॥

ये निःसङ्गबिहारिणोऽमलगुणा विश्रान्तविधाधरव्याख्यातार इति क्षितौ प्रविदिता विद्वन्मनोमोदिनः ।

येऽनुष्ठानिजनेषु साम्प्रतमपि प्रातोपमाः सर्वतस्तेभ्यस्तेऽजितसिंहद्वारय इहामुक्त्वा सतां सम्भताः ॥३॥

उदामधामभवजन्तुनिकामवामकामेभकुम्भतटपाटनसिंहपोताः ।

श्रीवर्द्धमानमुनिपाः सुविशुद्धबोधास्तेभ्योऽभवन् विशदकीर्त्तितानभाजः ॥४॥

लोकानन्दपयोधिबर्दनवशात् सद्वृत्ततासङ्गतैः सौम्यत्वेन कलाकलापकलनाच्छलाभ्योदयत्वेन च ।

ध्वस्तप्वान्ततया ततः समभवेच्छन्दान्वयं सान्वयं कुवांणाः शुचिशालिनोऽत्र मुनिपाः श्रीश्रीलम्बद्राभिषाः ॥५॥

निःसंक्षयैरपि लम्बमुक्यगणनैराशाविकाशं सतां कुवांगैरपि सङ्कटीकृतदिगामोगेगुणप्रीणिकैः ।

भेतैरयनुरञ्जितत्रिभुवनैर्येषां विशालैरुणैश्चित्रं कोऽपि यशःपटः प्रकटितः भेतो विचित्रैरपि ॥६॥

सत्तर्ककर्कशशयिः सुविशुद्धबोधाः सुव्यक्तसूक्तशतमौक्तिकशुक्तिकल्पाः ।

तेषामुदारचरणाः प्रथमाः सुशिष्याः सषोऽभवजन्तसिंहमुनीन्द्रवर्याः ॥७॥

तेषां द्वितीयशिष्या जाताः श्रीमद्भनेश्वराचार्याः । साद्देशनकस्य वृत्ति गुरुप्रसादेन ते चक्रुः ॥८॥

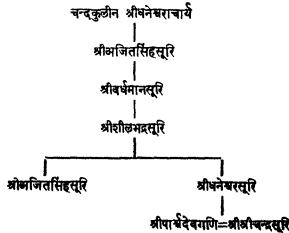
शशिः मुनिः ७ पञ्चपतिः १ सङ्गच्छे वर्षे विक्रमनृपादतिक्रान्ते । चैत्रे सितसमभ्यां समर्थितेयं गुरौ वारे ॥९॥

युक्तायुक्तविवेचन-संशोधन-लेखनैकदक्षस्य । निजशिष्ययुसाहाय्याद् विहिता श्रीपार्श्वदेवगणैः ॥१०॥

प्रथमादर्शो वृत्ति समल्लिखतां प्रवचनानुसारेण । मुनिचन्द्र-विमलचन्द्रौ गणी विनीतौ सदोपुक्तौ ॥११॥

श्री चक्रेश्वरसूरिभिरतिपटुमिनिपुणपाण्डितोपेतैः । अणहिलपाटकनगरे विशोष्य नीता प्रमाणमियम् ॥१२॥

इस प्रशस्तिमें आचार्य श्री श्रीचन्द्रसूरिकी पूर्वजपरम्परा इस प्रकार है—



न्यायप्रवेशपञ्जिकाकी प्रशस्तिका उपर जो उल्लेख किया है उसके अंतमें 'श्रीश्रीचन्द्रसूरिका ही पूर्वावस्थामें पार्श्व-देवगणि नाम था' ऐसा जो उल्लेख है वह खुद ग्रन्थप्रणेताका न होकर तत्कालीन किसी शिष्य-प्रशिष्यादिका लिखा हुआ प्रतीत होता है। अस्तु, कुछ भी हो, इस उल्लेखसे इतना तो प्रतीत होता ही है कि—श्रीचन्द्राचार्य ही पार्श्वदेव गणि है या पार्श्वदेवगणी ही श्री श्रीचन्द्रसूरि हैं, जिनका उल्लेख धनेश्वराचार्यने सार्धशतकप्रकरणकी वृत्तिमें किया है।

श्रीश्रीचन्द्रसूरि का आचार्यपद

श्रीश्रीचन्द्रसूरिका आचार्यपद किस संवतमें हुआ? इसका कोई उल्लेख नहीं मीलता है, फिर भी आचार्यपदप्राप्तिके बादकी इनकी जो ग्रन्थरचनायें आज उपलब्ध हैं उनमें सबसे पहली रचना निशीथ चूर्णविशोदेशकन्याख्या है। जिसका रचना-काल वि. सं. ११७४ है। वह उल्लेख इसप्रकार है—

सम्यक् तथाऽऽन्यायाभावादत्रोक्तं यदुत्तमम् (?)। मतिमान्वाद्वा किञ्चित् क्षन्तव्यं श्रुतधरैः कृपाकलितैः ॥१॥

श्रीश्रीलभद्रसूरीणां शिष्यैः श्रीचन्द्रसूरिभिः। विश्वकोदेशकन्याख्या दम्बा स्वपरहेतवे ॥२॥

वेदाथरुद्रसङ्घे ११७४ विक्रमसंवत्सरे तु भृगशीर्षे। माघसितद्वादस्यां समर्थितेयं स्वी वारे ॥३॥

निशीथचूर्णविशोदेशकन्याख्याप्रशस्तिके इस उल्लेखको और इनके गुरु श्री धनेश्वराचार्यकृत सार्धशतकप्रकरणवृत्तिकी प्रशस्तिके उल्लेखको देखते हुए, जिसकी रचना ११७१ में हुई है और जिसमें श्रीचन्द्राचार्य नाम न होकर इनकी पूर्वावस्थाका पार्श्वदेवगणि नाम ही उल्लिखित है, इतना ही नहीं, किन्तु प्रशस्ति के ७ वें पद्यमें जो विशेषण इनके लिये दिये हैं वे इनके लिये घटमान होनेसे, तथा खास कर पाटन—खेत्रवसी पाडाकी न्यायप्रवेशपञ्जिकाकी प्राचीन ताडपत्रीय प्रस्तिके अंतमें उनके किसी विद्वान् शिष्य-प्रशिष्यादिने—“सामान्यावस्थाप्रसिद्धपण्डितपार्श्वदेवगण्यभिवान-विशोधावस्थावातश्रीश्रीचन्द्रसूरिनामभिः” ऐसा जो उल्लेख दाखिल किया है, इन सब का पूर्वापर अनुसन्धान करनेसे इतना निश्चित रूपसे प्रतीत होता है कि—इनका आचार्यपद वि. सं. ११७१ से ११७४ के बिचके किसी वर्षमें हुआ है।

ग्रन्थरचना

ग्रन्थरचना करनेवाले श्रीश्रीचन्द्राचार्य मुख्यतया दो हुए हैं। एक मलबारगण्ठीय आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरिके शिष्य और दूसरे चन्द्रकुलीन श्री धनेश्वराचार्यके शिष्य, जिनका पूर्वावस्थामें पार्श्वदेवगणि नाम था। मलबारी श्रीश्रीचन्द्रसूरिके रचे हुए आज पर्यंतमें चार ग्रन्थ देखनेमें आये हैं—१. समग्रणी प्रकरण २ क्षेत्रसमासप्रकरण ३ लघुप्रवचनसारोद्धारप्रकरण और ४ प्राकृत मुनिमुवतस्वामिचरित्र। प्रस्तुत नन्दीमूत्रवृत्तिदुर्गपदव्याख्याके प्रणेता चन्द्रकुलीन श्रीश्रीचन्द्राचार्य की अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनके नाम, उनके अन्तकी प्रशस्तियोंके साथ यहाँ दिये जाते हैं—

(१) न्यायप्रवेशपञ्जिका और (२) निशीथचूर्णविशोदेशकन्याख्याके नाम और प्रशस्तियोंका उल्लेख उपर हो चुका है। (३) आद्यप्रतिक्रमणसूत्रवृत्ति। रचना संवत् १२२२। प्रशस्ति—

कुबलयसत्त्विकासप्रदस्तम् प्रहतिपट्टमलबोधः। प्रस्तुततीर्थाधिपतिः श्रीवीरजिनेन्दुरिह जयति ॥१॥

विजयन्ते हतमोहाः श्रीर्षातममुष्यगणधरादिव्याः। सन्मार्गदीपिकाः कृतसुयानसाः जन्तुबाड्यभिमदः ॥२॥

नित्यं प्राप्तमहोदयत्रिभुवनधीराश्विरत्नोत्तमं, स्वर्ग्योतिस्ततिपात्रकान्तकिरणैरन्तस्तमोमेदकम् ।

त्वञ्चातुञ्जसिताम्बरैकतिलकं विभक्तं सदा कीमुर्वं श्रीमत् चन्द्रकुलं समन्तित विभक्तं जाड्यक्षितिप्रत्यलम् ॥३॥

तस्मिन् सूरिपरम्पराक्रमसमायाता नूहव्याभवाः सम्यग्ज्ञानसुदर्शनातिविमलश्रीपल्लवङ्गोपमाः ।

सञ्चारित्रिभूषिताः शमषणाः सद्दर्मेकन्याहुषिष्या विष्यतातु मुषि सूरयः सममवन् श्रीश्रीलभद्राभिषाः ॥४॥

ततश्च तेषां पदपद्महंसः, समप्रगल्भभरणावतंसः । धनेश्वरः सूरिरभूत् प्रशस्यः, शिष्यः प्रभावप्रथितो यदीश्वः ॥५॥

निःशेषागमतर्कशास्त्रसकलालङ्कारसंविनिधेयैर्येन्दारिव दीधितिर्वितमसो वाचोऽद्भुतस्यन्दनिः ।

आस्वाभामितभक्तिसम्प्रभविक्काः स्वात्मानमस्ताद्युभं मन्यन्ते स्म सुरापवर्गैरुचिरश्रीपात्रमस्युत्तमम् ॥६॥

श्रीचन्द्रसूरिनामा शिष्यस्तेषां बभूव गुरुभक्त । तेन कृता स्पष्टार्था **श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तिरियम्** ॥७॥

करनयनसूर्यवर्षे १२२२ प्रातः पुण्यार्कमधुसितदशम्याम् । धृतियोगनवमकक्षे समर्थिता प्रकृतवृत्तिरियम् ॥८॥

उत्सृजे यद् रचितं मतिदीर्घन्यात् कथञ्चनापि मया । तच्छोधयन्तु कृतिनोऽनुग्रहबुद्धिं मयि विवाय ॥९॥

यावत् सुमेरुशिखरी शिखरीकृतोऽत्र, नित्यैर्विभाति जिनबिम्बगृहैर्मनोऽज्ञैः ।

श्रीचन्द्रसूरिरचिता भुवि तावदेषा, नन्यान् प्रतिक्रमणवृत्तिरधीयमाना ॥१०॥

प्रत्यक्षं निरूप्यस्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् । श्लोकपञ्चाशदुत्तरशतान्येकोनविंशतिः ॥११॥

॥ ग्रन्थाम् १९५० ॥

(४) **जीतकल्पवृहत्चूर्णिदुर्गपदव्याख्या** । रचनासवत् १२२७ । प्रशस्ति—

इति **जीतकल्पचूर्णि**विषया व्याख्या समाप्ता ।

जीतकल्पवृहत्चूर्णौ व्याख्या शाब्दानुसारतः । **श्रीचन्द्रसूरिर्**दृष्ट्वा स्व-परोपकृतिहेतवे ॥१॥

मुनि-नयन-नरगणिवर्षे १२२७ **श्रीवीरजिनस्य** जन्मकन्यागे । प्रकृतग्रन्थकृतिरिय निष्पत्तिमथाप रविवारे ॥२॥

सङ्घ-चैत्य-गुरूणां च सर्वाथप्रविधायिनः । वशाऽभयकृमारस्य वसतो दृष्ट्वा सुबोधकृत् ॥३॥

एकादशगतविश्वयथिकं श्लोकप्रमाणग्रन्थाम् । ग्रन्थकृति प्रविधाया मुनिपुङ्गवसूरिभिः सततम् ॥४॥

यदिहोत्सवं किञ्चिद् दृष्टं उग्रस्थबुद्धिभावनया । तन्मयि कृपानुकुलितैः शोभ्यं गीतार्थविवृद्धिः ॥५॥

समाप्ता चैयं **श्रीशीलभद्रप्रभु-श्रीधनेश्वरसूरि**पादपद्मचञ्चरीकृ**श्रीश्रीचन्द्रसूरि**संरचिता **जीतकल्पवृहत्चूर्णिदुर्गपद**विषया **निर्देशादिशाब्दानुसारतः** सम्प्रदायाच्च सुगमा व्याख्येति ।

धावल्लवणोदन्वान् यावन्नक्षत्रमण्डितो मेरुः । खे यावच्चन्द्रार्कौ तावदिय वाच्यतां भव्यैः ॥१॥

(५) **नन्दीसुब्रह्मलुप्तुवृत्तिदुर्गपदव्याख्या** । प्रशस्ति—

श्रीधनेश्वरसूरिणां पादपद्मोपजीविना । नन्दिवृत्तौ कृता व्याख्या **श्रीमच्छ्रीचन्द्रसूरिणा** ॥१॥

इति समाप्ता **श्रीशीलभद्रप्रभु-श्रीधनेश्वरसूरि**शिष्य**श्रीश्रीचन्द्रसूरि**विरचिता **नन्दिटीकाया** दुर्गपदव्याख्या ॥

नन्दिवृत्तिदुर्गपदव्याख्यान्ते ।

(६) **सुखबोधा सामाचारी** । प्रशस्ति—

इत्थेसा गिहृत्थसाहुसत्थाणुट्टाणविहिपदरिसणपरा मिरिसीलभद्दसूरि-धणोसरसूरिसिस्ससिरिचंदसूरिससुद्धरिया **सुखबोधा** सामायारी सम्भत्ता । इति बहुविधप्रतिष्ठाकल्पान् संवीक्ष्य समुद्रुतेयं **श्रीश्रीचन्द्रसूरिणा** ॥

समुच्चय ग्रन्थाम् १३८६ ॥

कमलवने पाताले क्षीरोदे संस्थिता यदि स्वर्गे । भगवति ! कुह सानिध्यं विन्धे श्रीभ्रमणसङ्घे च ॥१॥

॥ इति श्रीसुबोधा सामाचारी समाप्ता ॥

सं. १३०० माघ शुद्धि १० गुरौ **श्रीचन्द्रगच्छे** भण्डनीय **शुद्धांकसूरि**मिर्लिखापिता ।

(७) निरयावलिकादिपञ्चोपाङ्गसूत्रवृत्ति । रचना सं. १२२८ । प्रशस्ति—

इति श्रीश्रीचन्द्रसूरिविरचितं निरयावलिकाभूतस्कन्धविवरणं समाप्तमिति । निरयावलिकादिपञ्चोपाङ्गसूत्रवृत्ति-
ग्रन्थप्रम् ६३७ ॥

वसु-लोचन-रविवर्षे १२२८ श्रीमच्छ्रीचन्द्रसूरिमिर्दन्धा । आभडवसगकवसतौ निरयावलिशास्त्रवृत्तिरियम् ॥११॥

(८) पिण्डविशुद्धिप्रकरणवृत्ति । रचना सवत् ११७८ । प्रशस्ति—

समाप्तये श्रीश्रीचंद्रसूरिविरचिता सूत्रमपदार्थनिष्कनिष्कर्षणपट्टकसन्निभप्रतिभविनवल्लभाभिधानाचार्यदम्बपिण्डविशुद्धि-
शास्त्रस्य वृत्ति ॥

यच्चके जिनवल्लभो ददमतिः पिडैषणागोचरं, प्रज्ञावर्जितमानवोपकृतये प्राथ्यार्थमल्पाक्षरम् ।

शास्त्रं पिण्डविशुद्धिसंज्ञितमिदं श्रीचन्द्रसूरिः स्फुटां तद्वृत्तिं सुगमां चकार तनुयीः श्रीदेवतानुपहात् ॥१॥

वसु-मुनि-रैर्युक्ते विक्रमवर्षे ११७८ रवौ समाप्त्येवा । कृष्णैकादश्यां कार्तिकस्य योगे प्रशस्ते च ॥२॥

अस्यां चतु सहस्राणि गतानां च चतुष्टयम् । प्रत्यक्षरप्रमाणेन श्लोकमानं विनिश्चितम् ॥३॥ प्र० ४४०० ॥

उपर श्री श्रीचन्द्रसूरिकी जिन आठ कृतियोंके नाम उनकी प्रशस्तियोंके साथ उल्लिखित किये हैं, उनको देखनेसे यह स्पष्ट होता है कि— प्रारम्भकी छ रचनायें चन्द्रकुलीन आचार्य श्रीधनेश्वरके शिष्य श्रीश्रीचन्द्रसूरिकी ही हैं । सातवीं निरया-
वल्यादिपञ्चोपांग्याख्या भी अनुमान इन्हींकी रचना मानी जाती है । आठवीं पिण्डविशुद्धिप्रकरणवृत्तिकी रचना इन्हीं आचार्य-
की है या नहीं, यह कहना बरा कठिन है । क्यों कि इन रचनायें वृत्तिकारने “श्रीदेवतानुपहात्” ऐसा उल्लेख किया है, जो दूसरी कोई कृतियें नहीं पाया जाता है । यद्यपि रचनाकाल ऐसा है, जो अपनेको इन्हीं आचार्य की रचना होने की ओर आकर्षण करता है । फिर भी इस बातका वास्तविक निर्णय मैं तज्ज्ञ विद्वानोंके पर छोड़ देता हूँ ।

उपर मैंने श्रीश्रीचन्द्राचार्यकी रचनाओंके नाम और उनके अन्तकी प्रशस्तियोंका उल्लेख किया है, उनको देखते ही विद्वानोंके दिलमें एक कल्पना जरूर उठेगी कि इन आचार्यकी विक्रमसंवत् ११६९, ११७४, ११७८, ११८०, १२२२, १२२७, १२२८ आदि सवतमें रची हुईं जो कृतियाँ पाई गई हैं उनमें सं. ११८० बाद एकदम उनकी रचना सं. १२२२ में आ जाती है, तो क्या ये आचार्य चालीस वर्ष के अंतरमें निष्क्रिय बैठ रहे होंगे ? जरूर यह एक महत्वका प्रश्न है, किन्तु अन्य साधनोंके अभावमें इस समय में इतना ही जवाब दे सकता हूँ कि— प्राचीन ग्रन्थोंकी सूँची बृहद्विष्णुनिकामे, जैनग्रन्थावली आदिमें १ श्रमणप्रतिक्रमणमूत्रवृत्ति २ जयदेवछन्दःशास्त्रवृत्तिटिप्पणक ३ सनकुमारचरित र. सं. १२१४ प्र. २२७ आदि नाम पाये जाते हैं । इसी तरह इनकी और कृतियाँ जरूर होंगी, किन्तु जब तक ऐसी कृतियाँ कहीं भी देखने—सुननेमें न आयें तब तक इनके विषयमें कुछ कहना उचित प्रतीत नहीं होता है । परन्तु यह तो निर्विवाद है कि— बिचके वर्षोंमें रची हुईं इनकी ग्रन्थकृतियाँ अवश्यमेव होनी चाहिए ।

पाटन—श्रीहेमचन्द्राचार्य जैनज्ञानमंदिरस्थित श्रीसंघजैनज्ञानमंडार कमांड १०२३ बाड़ी प्रकरगपुस्तिकामें श्रीश्रीचन्द्रा-
चार्यकृत अनागतचतुर्विंशतिजिनस्तोत्र है, जो यहाँ उपयुक्त समझ कर दिया जाता है, किन्तु यह कृति कौनसे श्रीचन्द्रा-
चार्यकी है यह कहना शक्य नहीं है । स्तोत्र—

वीरवरस भगवन्तो बोलियचुखसीयवरिससहसेहि । पउमार्इ चउवीसं बह हुंति जिणा तथा धुणियो ॥१॥

पयं व पउमनाई सेणियबीभं जिगेसरं नमिमो । नीयं व छरसेणं बंदे जीवं सुपासस ॥२॥

तदयं सुपासनाय उदायजीवं पण्डुभववास । वंदे सयंपमज्जिणं पुट्टिलजीवं चऊथमहं ॥३॥
 सञ्चापुश्रयनायं दद्वउजीवं च पंचमं वंदे । उट्टं देवसुयजिणं वंदे जीवं च कित्तिस्स ॥४॥
 सत्तमयं उदयजिणं वंदे जीवं च सैस्वनामस्स । पेढालं भट्टकयं आणंदजियं नमंसाणि ॥५॥
 पुट्टिलजिणं च नवमं सुरकयसेवं सुनंदजीवस्स । सयक्कित्तिजिणं दसमं वंदे सयगस्स जीवं ति ॥६॥
 एगारसमं मुणिसुञ्चयं च वंदामि देवईजीवं । बारसमं अममजिणं सञ्चइजीवं जगपईवं ॥७॥
 निकसायं तेरसमं वंदे जीवं च वासुदेवस्स । बलदेवजियं वंदे चउदसमं निप्पुलाइजिणं ॥८॥
 झुलसाजीवं वंदे पनरसमं निम्ममत्तनामाणं । रोहिणिजीवं नमिमो सोलसमं चित्तुचं ति ॥९॥
 सत्तरसमं च वंदे रेवइजीवं समाहिजिणनामं । संवरमट्टारसमं सयालिजीवं पणिवयामि ॥१०॥
 दीवापणस्स जीवं जसोहरं वंदिमो इगुणवीसं । कन्हजियं गयत्तहं वीसहमं विजयमभिवंदे ॥११॥
 वंदे इगवीसहमं नारयजीवं च मल्लिनामाणं । देवजिणं वावीसं अंबडजीवस्स वंदे हं ॥१२॥
 अमरजियं तेवीसं अणंतविरियाभिहं जिणं वंदे । तह साइबुद्धजीवं चउवीसं भइजिणनामं ॥१३॥
 उस्सप्पिणीए चउवीसजिणवरा कित्तिया सनामेहिं । सिरिचंदस्सरिनामेहिं सुहयरा हुंतु सयकाळं ॥१४॥

॥ इति अनागतचतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम् ॥

यहाँ पर एक बातको स्पष्ट करना अति आवश्यक है कि— प्राकृत पृथ्वीचन्द्रचरितके प्रणेता चन्द्रकुलीन श्रीशान्ति-
 स्सरिचिने अपने इस चरितकी मंगलगाथायें सूचित किया है कि— ‘ धनेश्वराचार्यकी अर्यगम्भीर वाणीका आपके उपर बडा
 प्रभाव पडा है ’ और इसी चरितकी प्रशस्तिमें आपने लिखा है कि—चन्द्रकुलीन श्रीसर्वदेवमूर्तिके स्वहस्तसे दीक्षा पाने वाले
 श्रीश्रीचन्द्राचार्यकी कृपासे आपको आचार्यपद प्राप्त हुआ है । वह मंगलगाथान्तर्गत गाथा और प्रशस्ति इस प्रकार है ।
 मंगलगाथान्तर्गतगाथा—

जन्नाणघणलवेणं ववहरमाणा वय मइदरिदा । करिमो परोवयारं तेसि नमो गुरु धणेसाणं ॥१०॥

प्रशस्ति—

आसी कुंदिंदुसुद्धे विउलससिक्खे चारुचारितपत्तं सूरी सेयंबराणं वरनिलयसमो सञ्चदेवामिहाणो ।

नाणास्सरिप्पसाहपिहियसुमहिमो कप्परुक्खो व्व गच्छो जाओ जत्तो पवित्तो गुणसुरसफलो सुप्पसिद्धो जयम्मि ॥१॥

तेसि चास्सो सुयजलनिही खंतदंतो पसंतो, सीसो वीसो सियगुणगणो नेमिचंदो मुण्णिदो ।

जो विक्खाओ पुहइवलए सुग्गचारी विहारी, मने नो से मिहिर-ससिणो तेय-कंतीहि तुल्ला ॥२॥

तेसि च सीसो पर्यईजडप्पा, अविट्टपुब्बिल्लविसिट्टसत्थो । परोवयारेकरसावियञ्जो, जाओ निसग्गेण कइत्तकोइ ॥३॥

जो सञ्चदेवमुणिपुंगवदिक्खिणहिं, साहिच-त्तक्क-समएसु सुसिक्खिणहिं ।

संपाविओ वरपयं सिरिचंदस्सरिपुजेहिं पक्खमुवगम्म गुणेसु मूरि ॥४॥

संबेगंजुनिवाणं पर्यं सिरिसंतिस्सरिणा तेण । वज्जियं वरचरियं मुणिचंदविणेषवयणाओ ॥५॥

क्खं किंचिं अजुत्तं बुत्तमेथ मइजइ-न्हसवित्तीहि । तमपुग्गहबुद्धीए सोहेयव्वं छइल्लोहिं ॥६॥

इगतीसाहियसोलससपहिं वासाण निब्बुए वीरे । कत्तियचरिमत्तिहीए कित्तियरिक्खे परिसमत्तं ॥७॥

उपर दी गई पृथ्वीचन्द्रचरितकी मंगलगाथान्तर्गत दसवीं गाथा और उसकी प्रशस्तिकी देखनेसे यह प्रतीत होता है कि—
 प्राकृत पृथ्वीचन्द्रचरितके प्रणेता आचार्य श्रीशान्तिस्सरिके हृदयपर श्रीधनेश्वराचार्यके अर्थगंभीर विचारोंका भारी प्रभाव पडा

है और श्रीचन्द्राचार्य, जो साहित्य, तर्क और सिद्धान्तके पारंगत थे, उनकी कृपासे आपको आचार्यपद प्राप्त हुआ था। इस प्रकार यहाँ पर इस आचार्ययुगके नामोंको सुनते ही यह भी सभावना हो आती है कि— ये दो आचार्य, सार्धशतक-प्रकरणवृत्ति आदिके प्रणेता श्रीधनेश्वराचार्य और न्यायप्रवेशपञ्जिका, निशैयविशोदेशकव्याख्या आदिके प्रणेता पार्श्वदेवगणि अपगनाम श्रीश्रीचन्द्राचार्य, गुरु—गिथ्यकी जोड़ी हों। परन्तु पूर्वापर उल्लेखोंका अनुसंधान करनेसे प्रतीत होता है कि—**पृथ्वीचन्द्रचरितमें निर्दिष्ट श्रीधनेश्वराचार्य और श्री श्रीचन्द्राचार्य जुदा हैं।** इसका कारण यह है कि— यद्यपि पृथ्वीचन्द्र-चरितमें निर्दिष्ट धनेश्वराचार्य कौन थे? किन्तु शिष्य थे? यह स्पष्ट नहीं है, तो भी श्री श्रीचन्द्राचार्य, जिनको सहायसे श्रीशान्तिमूर्तिको सूरिपद प्राप्त हुआ था, वे चन्द्रकुलीन श्रीसर्वदेवमूर्तिके हस्तसे दीक्षा पाये थे, ऐसा तो इस प्रशस्तिमें साफ उल्लेख है, इससे ज्ञात होता है कि— पार्श्वदेवगणि अपगनाम श्री श्रीचन्द्राचार्यसे पृथ्वीचन्द्रचरितनिर्दिष्ट श्रीचन्द्राचार्य भिन्न है। दूसरी बात यह भी है कि— पार्श्वदेवगणि अपगनाम श्री श्रीचन्द्राचार्यका आचार्यपद, मैं उपर लिख आया हू तदनुसार वि. स ११७१ से ११७४ के बीचके किसी भी वर्षमें हुआ है, तब पृथ्वीचन्द्रचरितकी रचना वारसवत् १६३१ अर्थात् विक्रम-संवत् ११६१ में हुई है, जिस समय शान्तिनाथका आचार्यपदप्रदानकरनेके लिये सहायभूत होनेवाले श्री श्रीचन्द्राचार्य प्रौढावस्थाको पा चुके थे। अतः ये धनेश्वराचार्य और श्रीचन्द्राचार्य प्रस्तुत नन्दीवृत्तिदुर्गापदव्याख्याकार श्रीचन्द्राचार्य और उनके गुरु धनेश्वराचार्यसे भिन्न ही हो जाते हैं।

इस प्रकार यहाँ नन्दीवृत्तिदुर्गापदव्याख्याकार चन्द्रकुलीन श्री श्रीचन्द्राचार्यका यथासाधनप्राप्त परिचय दिया गया है।

मल्हारी श्रीहेमचन्द्रस्मरितकृत नन्दिटिप्पणक

इस नन्दिवृत्तिके उपर मल्हारागच्छीय आचार्य श्रीहेमचन्द्रस्मरितकृत टिप्पणक भी था, जो आज प्राप्त नहीं है। आज पर्यन्तमें मैं सख्याबन्ध ज्ञानभंडारी को देखे है, इनमेंसे कोई ज्ञानभंडारमें वह देखनेमें नहीं आया है। फिर भी आपने इस टिप्पणककी रचना की थी—इनमें कोई संशय नहीं है। खुद आपने ही विशेषावश्यकमहाभाष्यवृत्तिके प्राक्त भागमें अपनी प्रथमरचनाओका उल्लेख करते हुए, इस रचनाका भी निर्देश किया है। जो इस प्रकार है—

इह ससारवारानिधौ ना मिश्रं . . अवलोक्य कोऽपि . . महापुरुषः . . चारित्रमय महायानपात्रं समर्पयामास । भणित-
वांश्च—ओ महाभाग ! समधिरोह त्वमस्मिन् यानपात्रे । समारूढश्चात्र . . . अवत्रलक्षित्युत्थी प्राप्यसि शिवारस्नद्वीपम् । समर्पितं च
मम तेन महापुरुषेण सद्भावनामञ्जूषायां प्रक्षिप्य शुभमनोनामकं महारत्नम् । अभिहितं च मां प्रति—रक्षणीयमिदं प्रयत्नतो
भद्र ! . . एतद्भावे तु सर्वमेतत् प्रलयमुपयाति । अत एव तव पृष्टत. सर्वादेरैतदपहरणार्थं लग्निध्वस्तं ते मोहराजादयो
दुष्टतस्करा । . . 'रे रे तस्कराधमा ! किमेतदारब्धम् / स्थिरीभूय लगन उगत सर्वमना' इति ब्रुवाणो मोहचरटचक्रवर्ती
ससैय एवास्रग्धो युगपत् प्रहृष्टम् । केचिस्वतीवच्छलधातितो मोहतैनिका . . . जर्जरयन्ति सद्भावनाज्ञानि । सतो मया
तस्य परमपुरुषस्योपदेशं स्मृत्वा विरच्य भटिति निवेगितमावश्यकटिप्पणकामिधानं मद्भावनामञ्जूषायां नूतनफलकम्, ततो-
ऽपरमपि शतकविवरणनामकम्, अन्यदप्यनुयोगद्वारवृत्तिसंज्ञितम्, ततोऽपरमप्युपदेशमात्राभ्यामिधानम्, अपरं तु तद्-
वृत्तिनामकम्, अन्यच्च जीवसमासविवरणनामधेयम्, अन्यत्तु भवभावनापूत्रसंज्ञितम्, अपरं तु तद्विवरणनामकम्, अन्यच्च
भटिति विरच्य तस्याः सद्भावनामञ्जूषायां अङ्गभूतं निवेगितं नन्दिटिप्पणकनामधेयं नूतनं दृढफलकम् । एतैश्च नूतनफलकै-
र्निवेशितैर्वज्रमयीष सद्भावनामञ्जूषा तेषां पापानामगम्या । ततस्तैरतीवच्छलधातितया सङ्कर्णयितुमारब्धं तद्वारकपाट-
सम्पुटम् । ततो मया ससम्भ्रमेण निपुणं तत्प्रतिविधानोपायं चिन्तयित्वा विरचयितुमारब्धं तद्वारविधानहेतोः विशेषावश्यक-
विवरणामिधानं वज्रमयिष नूतनकपाटसम्पुटम् । ततश्चाभ्यकुमारराणि-धनेश्वराणि-जिनभद्रगणि-लक्ष्मणगणि-विबुध-
चन्द्रादियुनिवृन्द-श्रीमहानन्द-श्रीमहत्तारावीरमतीगणिन्यादिसाहाय्याद् 'रे रे निश्चितमिदानीं हता बधं यथेतद् निष्पद्यते,

ततो धावत धावत, गृहीत गृहीत, लगत लगत' इत्यादि पूर्ववर्तां सर्वात्मशक्त्या युगपत् प्रहरतां हाहारं कुर्वतां च मोहादि-
चरटानां चिरात् कथं कथमपि विरचय्य तद्द्वारे निवेशितमेतदिति । ततः शिरो हृदयं च हस्ताभ्यां कुड्यन् विष्णो मोहमहाचरटः,
समस्तमपि विलक्षीभूतं तत्सैन्यम्, निरीनं च सनायकमेव । ततः क्षेमेण शिवरत्नद्वीपं प्रति गन्तुं प्रवृत्तं तद् यानपात्रमिति ॥

—मलधारीश्रीहेमचन्द्रवृत्तिकृतविशेषावश्यकवृत्तिप्रान्ते ।

इस उल्लेखको पढ़नेसे प्रतीत होता है कि आपने आवश्यकहारिमद्रीवृत्तिटिप्पनककी तरह नन्दिहारिमद्रीवृत्तिटिप्पनककी भी
रचना की थी । यद्यपि श्रीहेमचन्द्राचार्य महाराज इस टिप्पनकरचनाका उल्लेख आप करते ही हैं, फिर भी आश्चर्यकी बात
यह है कि— इनके ही शिष्य श्री श्रीचन्द्रहरि महाराजने प्राकृत मुनिसुवतस्वामिचरित्रकी प्रशस्तिये अपने दादागुरु और
गुरुके, सक्षिप्त होते हुए भी महत्त्वके चरित्रका बर्णन करते हुए श्रीहेमचन्द्राचार्य की प्रत्यक्षतियोका उल्लेख किया है, उसमें
सभी कृतियोंके नाम दृष्टिगोचर होते हैं, सिर्फ इस नन्दिटिप्पनकका नाम उसमें नहीं पाया जाता है । वह उल्लेख
इस प्रकार है—

जे तेण सयं रडया गंथा ते संपइ कहेमि ॥

सुत्तमुत्पणसमाला-भवभावणपगरणण काऊण । गंधसहस्सा चउदस तेरस विची कया जेण ॥

अणुओगदाराणं जीवसमासस्स तह य सयगस्स । जेणं छ सत्त चउरो गंधसहस्सा कया विची ॥

मुलावस्सपविचीए उवरि रडयं च टिप्पणं जेणं । पंचसहस्सपमाणं विसमट्टणावबोडयं ॥

जेण विसेसावस्सयसुत्तस्सुवर्णि सक्खिया विची । रडया परिफुड्ढा अडवीससहस्सपरिमाणा ॥

मुनिसुवतस्वामिचरित्रप्रशस्ति ।

इस उल्लेखमें श्री श्रीचन्द्रहरिने अपने गुरुकी सब कृतियोंके नाम दिये हैं । [सिर्फ नन्दिटिप्पनकका नाम इसमें नहीं
है, जिसका नामोल्लेख खुद मलधारी श्रीहेमचन्द्राचार्य महाराजने विशेषावश्यकवृत्तिके प्रान्तभागमें किया है । यद्यपि मुनि-
सुवतस्वामिचरितके इस उल्लेखको प्राचीन ताडपत्रीय प्रतियोसे मीलाया गया है, तथापि सम्भव है कि प्राचीन कालसे ही
नन्दिटिप्पनकके नामको निर्देश करनेवाली गाथा छूट गई हो । अस्तु, कुछ भी हो, फिर भी जब विशेषावश्यकवृत्तिके
अंतमें खुद श्रीहेमचन्द्राचार्य महाराज आप ही नन्दिटिप्पनकरचनाका निर्देश करते हैं तो यह निर्विवाद हा है कि आपने
नन्दिटिप्पनककी रचना अवश्यमेव की थी, जो आज नहीं पाई जाती है ।

नन्दीविषमपदटिप्पनक

इस प्रथाङ्कमें पृ. १८२ से १८६में नन्दीख्वट्टचिचिषमपदटिप्पनक मुद्रित है । इस टिप्पनकको श्री चन्द्र-
कीर्त्तिहरिकी कृति बतलाया है, किन्तु यह रचना वास्तवमें उनकी रचना नहीं है । इस टिप्पनकके मुद्रण समय संभातकी
वि. स. १२१२में लिखित ताडपत्रीय प्रतिको ध्यानमें रख कर, एवं पाटनके भंडारोकी कुछ प्रतियों के अन्त भागमें निरया-
बलिकादिपंचोपाङ्गपर्याय और नन्दीवृत्तिचिषमपदपर्यायको इसी टिप्पनकके साथ देख कर 'श्रीचन्द्रकीर्त्तिहरिकृत'
ऐसा लिख तो दिया है, किन्तु संभातके भंडारकी और जैसलमेरके भंडारकी प्राचीन ताडपत्रीय निःशेषसिद्धान्त-
पर्याय और सर्वसिद्धान्तविषमपदपर्याय की प्रतियोंको गौरसे देखी तब यह समझ आन्त प्रतीत हुई है । संभातके भंडा-
रकी प्रतिये और जैसलमेरभंडारकी प्रतिये अलग अलग सिद्धान्तोंके पर्याय होनेसे दोनों प्रतियाँ जुदी जुदी है । अतः इतना
निश्चित होता है कि—संभातकी निःशेषसिद्धान्तपर्याय की प्रति, जो जिस वर्षमें प्रन्थरचना हुई उसी वर्षमें लिखी हुई है—,
उसमें जितने सिद्धान्तोंके पर्याय हैं, उतनी ही श्रीचन्द्रकीर्त्तिहरिकी रचना है । शेष सिद्धान्तपर्यायोंकी रचना किसी अन्य गीतार्थ
की रचना है, जिसका नाम ज्ञात नहीं है । संभात भंडारकी प्रतिये नन्दीविषमपदपर्याय नहीं है, तब जैसलमेर भंडारकी

प्रतिका प्रारम्भ नन्दीविषमपदपर्यायसे ही होता है। अतः यह निर्विवाद ही है कि इस मुद्रित नन्दीविषमपदटिप्पणककी रचना श्रीचन्द्रकीर्त्तिसूचिकी न हो कर किसी अन्य गीतार्थकी रचना है।

नन्दीविषमपदपर्याय प्रायशः नन्दीवृत्तिदुर्गापदव्याख्यासे उद्भूत होनेके कारण, अज्ञातकर्तृके अन्य सर्वसिद्धान्त-विषमपदपर्याय ग्रन्थ अगार एककर्तृके ही है तो, यह रचना निर्विवादरूपसे श्रीचन्द्राचार्यके बाद की ही है।

यहाँ पर विद्वानोंकी जानकारीके लिये उपयुक्त समझ कर स्वभातकी प्रतिका पूर्ण परिचय दिया जाता है—

कमाङ्क ८७ (१) निःशेषसिद्धान्तविचार (व्यवहार सप्तमोदेशपर्यन्त) पत्र १२९वाँ + १ - २१०

(२) निःशेषसिद्धान्तविचार (व्यवहार अष्टमोदेशसे आगे) पत्र १ - २०

अन्तिम प्रशस्ति—

शिष्याम्भोजदिवाकरस्य पुरतः श्रीधर्मयोषधभोः, सिद्धान्तं विमन्त्राख्ययस्त्रिरिगणशृङ्खल्येण सशृण्वता ।
स्पृश्यथै गणितचन्द्रकीर्त्तिकृतिनो केचिद् विचारा वराः, सन्त्येते परिपिण्डिताः परिलससिद्धान्तस्नानकरात् ॥

(३) प्रतिष्ठाविधि पत्र २१-२२

(४) प्रायश्चित्तविचार पत्र २३ वाँ

(५) निःशेषसिद्धान्तपर्याय पत्र २४-१११

दृग्गालिधोयपांती सदसक्थं नि भणियं होइ ५ । रात्म कंगू ॥छा॥ सवत् १२१२ आषाढ वदि १२ गुरी लिखितेयं
सिद्धान्तोद्धारपुस्तिका लेखक देवप्रसादेनेति ॥छा॥ ग्रन्थप्रसू १६७०॥ द्वितीयखण्डम् ॥छा॥

शिष्याम्भोजवनप्रबोधनधरेः श्रीधर्मयोषधभोः वक्रयाम्भोजविनिर्गताः कतिपयाः सिद्धान्तसत्का अमी ।

पयाया गणितचन्द्रकीर्त्तिकृतिना सखिन्य संपिण्डिताः स्वस्य श्रीविमन्त्राख्ययस्त्रिरिगणशृङ्खल्येण चिन्ताकृते ॥छा॥

आस्ते श्रीमदसर्वपर्वततिभि सर्वोदयः क्मान्तके छायाञ्जनदिगन्तरः परिलसत्पवावकीसङ्कुलः ।

सेवाकारितृणा नवीनफलदोऽप्यश्रान्तमान्द्रघुतिः निष्छिद्रः सरलवकौतुककरः प्राग्वाटवंशः सताम् ॥

मौक्तिकहारसङ्काशः समासीन् तत्र वीहिलः । श्रावकी गुणसयोगान्तराणां हृदये स्थितः ॥

समजनि धनदेवः श्रावकस्तस्य गूनुः, प्रथितगुणसमुद्रो मञ्जुवाणीविलासः ।

गानकलयरङ्गस्कीर्त्तचन्द्रोदयेऽस्मिन्, लगति न च कलङ्काः सख्नं यस्य सत्काः ॥

तस्य च भार्या यशोमती, तयोश्च पुत्रो गुणरत्नेकरोहणाचलो धर्मचन्द्रद्रुममलयः कीर्त्तिमुषाधवलितसमस्तविषयवलयो
यशोदेवश्रेष्ठी । तस्य च—

आंबीनि नाम्ना जनकसत्याऽभूर, भार्या यशोदेवगुहाधिपस्य । यस्याः सतीनां गुणवर्णनायामाचैव रेखा क्रियते मुनीन्द्रैः ॥

तयोश्च पुत्रा उद्धरण-आम्बिका-श्रीरदेवाख्या बभूवुः । सोली-लोली-सोखीनामानश्च पुत्रिकाः सञ्जज्ञिरे । अन्यदा च

सिद्धान्तलेखनवद्वादेशेण त्रिगणसनापुरञ्जितचित्तेन यशोदेवश्रावकैण सिद्धान्तविचार-पर्यायपुस्तिका लेखयामास ।

पृथ श्री विमन्त्राख्ययस्त्रिरिगणशृङ्खल्यस्य चारित्रिगो योग्याऽसौ गणितचन्द्रकीर्त्तिविदुषो विद्वज्जनानन्दिनी ।

शास्त्रार्थस्तिहेतवे परिलसञ्ज्ञानप्रया पुस्तिका भक्तिप्राश्चितयन्पुपासकयशोदेवेन निर्मापिता ॥

यावच्चन्द्रन्वी नभस्तलजुषौ यावच्च देवाचलो यावत् सप्तसमुद्रमुद्रितगह्वी यावन्नभोमण्डलम् ।

यावत् स्वर्गविमानसन्ततिरियं यावच्च दिग्दन्तिनस्तावत् पुस्तकमेतदस्तु सुधिपिं व्याख्यायमानं मुदे ॥

॥ इति प्रशस्तिः समाप्ता ॥ छ ॥

(६) कतिचित् सिद्धान्त विचार तथा पर्याय पत्र ११

यहाँ पर **स्वभातके** श्रीशान्तिनाथ ताडपत्रीय जैन ज्ञानमंडारकी क्रमांक ८७ पुस्तिकाका जो विवरण और प्रशस्तियाँ दी गई हैं, इससे ज्ञात होता है कि—यह प्रति दो खंडमें विभक्त है। प्रथम खंडके प्रारंभके १२८ पत्र इस समय प्राप्त नहीं हैं, जिनमें संभव है कि—आचार्य श्री **चन्द्रकीर्त्तिसूरि** की ही कोई कृति होगी। १२९ वाँ + १-२२० + १-२० पत्रोंमें अंग-उपांग-छेद-आगमगत उपयुक्त विचारोंका सग्रह है, जो आचार्य श्री **चन्द्रकीर्त्ति**ने अपने विद्यागुरु श्री **धर्मघोषधर**रिके पास जैन सिद्धान्तोंका श्रवण अध्ययन करते करते किया है, जिसका निर्देश आपने प्रशस्तपथमें किया है। २१ से २३ पत्रोंमें प्रतिष्ठाविधि एवं प्रायश्चिताधिकारका सग्रह है।

पत्र २४ से १११ में **निःशेषसिद्धान्तपर्याय** है। जिनमें आचार्य श्री **चन्द्रकीर्त्ति**ने पञ्चवस्तुक, आचाराङ्ग, सूत्र-कृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवतीसूत्र, प्रश्रन्याकरण, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, निशोथचूर्णि, कल्प, व्यवहार, पञ्चकल्प, दशा, जीतकल्प, पाक्षिकसूत्र, इन सोलह शास्त्रोंके पर्याय अर्थात् विषमपदके अर्थ दिये हैं।

पाटन, जैसलमेर आदिके ज्ञानमंडारकी प्रतियोंमें नन्दीपूत्रवृत्ति, आवश्यकवृत्ति, दशकालिकवृत्ति, ओषनिर्गुक्ति, पिण्ड-निर्गुक्ति, पिण्डनिर्गुक्तिगाथा, उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति, आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवतीसूत्र, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, प्रज्ञापनाविवरण, जीतकल्प, इन सोलह शास्त्रोंके पर्याय है। यद्यपि इस **सर्वसिद्धान्तविषमपदपर्याय** ग्रन्थमें आचाराङ्गादि शास्त्रोंके पर्याय अवश्यमेव शामिल है, तथापि दोनों पर्याय अलग अलग हैं। कितनेक शास्त्रोंके पर्याय श्रीचन्द्रकीर्त्तिसूरि की रचनामें विस्तृत हैं, तो कितनेक शास्त्रोंके पर्याय दूसरी रचनामें विस्तृत हैं। इसी तरह कितनेक शास्त्रोंके पर्याय परस्पर एक दूसरोंमें नहीं भी हैं। यह दोनों **विषमपदपर्याय**की दो हुई मूर्त्तियोंको देखनेसे प्रतीत होगा। अतः दोनों विषमपदपर्यायकारोंका प्रयत्न अलग अलग है, ग्रन्थ में जुड़े हैं, ग्रन्थकार भी भिन्न हैं। पाटनके मंडार आदिमें ऐसी प्रतियाँ भी नजर आती हैं, जिनमें दोनों विषमपदपर्याय ग्रन्थ साथमें लिखे हैं। किन्तु आचार्य **चन्द्रकीर्त्तिसूरि**की ग्रन्थरचनाप्रशस्ति स्वभातकी प्रतिके सिवा और कोई प्रतियें नजर नहीं आती है, जो अनेक दृष्टिसे महत्त्वकी है।

इस प्रशस्तिको देखनेसे पता चलता है कि—यह प्रति श्रावक **यज्ञोदेव**ने वि. स. १२१२ आषाढमासमें खुद ग्रन्थकार श्रीचन्द्रकीर्त्तिसूरिके लिये लिखवाई है। साथमें इस प्रशस्तिको देखते हुए ग्रन्थरचनाका समय भी वि. स. १२१२ सभावित किया जा सकता है। यह पुस्तिका खुद ग्रन्थकारके लिये लिखवाई होनेके कारण इस प्रतिको प्रथम प्रति कह सकते हैं, इस दृष्टिसे इस प्रतिका और भी महत्त्व बढ़ जाता है। इन आचार्यकी अन्य कोई कृति अभी तक देखनेमें नहीं आई है।

इस पुस्तिकाके साथ कतिचित्सिद्धान्तविचार तथा पर्यायके जो ग्यानह पत्र जुड़े हुए हैं, इनका इस ग्रन्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ये विक्रीर्ण पत्र हैं।

पहाँ पर गीतार्थ मुनिगण एवं विद्वद्वर्यसे निवेदन है कि इस ग्रन्थमें मेरे अनवधानसे नन्दीवृत्तिदुर्गापदव्याख्याके शीर्षकमें श्री श्रीचन्द्राचार्यनामके साथ जो **मलधारि** विशेषण छपा है उन सभी स्थानोंमें **चन्द्रकुलीन** ऐसा सुधार लिया जाय। और **नन्दीवृत्तिसंज्ञासप्तटिप्पण**के साथ 'श्री चन्द्रकीर्त्तिसूरिप्रणीत' छपा है उसको मिटा दिया जाय।

यहाँ पर ग्रन्थकारोंके विषयमें जो कतन्य था, वह समाप्त हो जाता है।

संशोधन और सम्पादन

प्रस्तुत नन्दिसूत्र, हारिभद्रीवृत्ति, दुर्गापदव्याख्या और विषमपदटिप्पणके संशोधन एवं सम्पादनके लिये मात्र उनको प्रतियोगी ही आधार लिया गया है, ऐसा नहीं है किन्तु मूलसूत्र, और हारिभद्रीवृत्तिके उद्धरण जो मलधारी आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरि, आचार्य श्रीमल्लयगिरि आदिने अपने अपने ग्रन्थोंमें दिये हैं, उनका भी इस संशोधनमें उपयोग किया गया है।

हारिभद्रवृत्ति के सशोधनमें इसकी प्रतियोगे अतिरिक्त इसकी श्रीचण्डीयदुर्गपदव्याख्याको भी लक्ष्यमें रक्खी है, इतना ही नहीं किन्तु आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजीने अपनी वृत्तिमें जो जो उद्धरण दिये हैं, उन सबको, हो सका बहाँ तक,—मूल स्थानों के साथ तुलना कर, प्राचीन कालसे चली आती अशुद्धियोंका परिमार्जन करनेका प्रयत्न किया है। दुर्गपदव्याख्याका परिमार्जन प्रतियोगे अलावा विशेषावश्यककी मलधारी वृत्तिके आधारसे किया गया है। आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिने विशेषावश्यक-महामाष्य आदिके जो उद्धरण दिये हैं, उनके पाठोंकी ओर दुर्गपदव्याख्याकारने कोई खास ध्यान दिया प्रतीत नहीं होता है। यही कारण है कि आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिके उद्धरण और दुर्गपदव्याख्याकारने दी हुई गाथाओंमें पाठभेद पाये जाते हैं। दुर्गपदव्याख्याकारने हारिभद्रवृत्तिमें उद्धृत विशेषावश्यकमहामाष्यकी गाथाओंके उपर कोई स्वतंत्र व्याख्या नहीं की है, किन्तु उन गाथाओंकी मलधारी आचार्य श्रीहमचन्द्रसूरिने जो व्याख्या की है उसीका अक्षरशः ऊतारा ही कर लिया है। अतः ऐसे पाठोंको तत्तत् स्थानके पाठोंके साथ मिलाया गया है।

नन्दिमूलसूत्र के उपर आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिने जिस पाठको लक्ष्यमें रख कर व्याख्या की है, वही सूत्रपाठ मैने वृत्तिके आधारसे मूलमें दिया है। ऐसे स्थानोंमें आचार्य श्रीहरिभद्रको इष्ट सूत्रपाठ प्रतियोगे कहीं पाया गया है और कहीं नहीं भी पाया गया है। फिर भी आचार्यकी व्याख्याकी सगतिको लक्ष्यमें रख कर यह परिवर्तन मैने उचित माना है। आज अपने सामने नन्दिमूलकी जो प्राचीन—अर्वाचीन प्रतियाँ विद्यमान हैं, उनमेंसे एक भी प्रति ऐसी नहीं है जो श्रीचूर्णिकार, श्रीहरिभद्रसूरि या श्रीमलयगिरिकी व्याख्याके साथ पूर्णतया महमत हो। इस दृष्टिमें तत्तत् वृत्तिके साथ तत्तत् सूत्रपाठोंका स्थापन या परावर्तन करना असगत नहीं है। फिर भी मैने नन्दीसूत्रकी प्रतियोगे पाये गये महत्त्वके कोई भी पाठभेद की ओर नहीं देखा है, इतना ही नहीं ग्रन्थान्तरोमें नन्दीसूत्रके उद्धृत उद्धरणोंसे उपलब्ध पाठभेद भी मैने दिये हैं। साथमें चूर्णिकार, हरिभद्रसूरि और श्रीमलयगिरि, ये तीन व्याख्याकार महर्षियोंमेंसे, किसको कौनसा या कैसा सूत्रपाठ अभिमत है—इसका भी सर्वत्र विवेक किया गया है। इन पाठभेदोंके जिज्ञासुओंसे विज्ञप्त है कि— इस सस्थाकी ओरसे प्रकाशित चूर्णिसहित नन्दीसूत्रकी पादटिप्पणीओंको ध्यानसे देखें।

परिशिष्ट

इस ग्रन्थके साथ पांच परिशिष्ट एवं शुद्धिपत्र दिये गये हैं। प्रथम परिशिष्टमें मूलनन्दीसूत्रकी गाथाओंका क्रम दिया है। दूसरे परिशिष्टमें नन्दीहारिभद्रवृत्ति, दुर्गपदव्याख्या और अनुज्ञानन्दी या लघुनन्दीकी वृत्तिमें दिये उद्धरणोंका क्रम दिया है। तीसरे परिशिष्टमें नन्दीसूत्रमूल, हारिभद्रवृत्ति, दुर्गपदव्याख्या, विषमपदटिप्पणक, अनुज्ञानन्दी और योगनन्दीमें स्थित विशेषनामोंका क्रम दिया है। चतुर्थ परिशिष्टमें नन्दीहारिभद्रवृत्तिगत पाठान्तर-मतान्तर-व्याख्यान्तरोके स्थान दिये हैं। पांचवें परिशिष्टमें नन्दीसूत्र और व्याख्याओंमें स्थित व्याख्यात, अन्याख्यात एवं विषयघोतक शब्दोंका अनुक्रम दिया है। और अन्तमें मुनिवर श्रीजम्बूविजयजी, भाई श्रीदलमुखभाई मालवगिया और पंडित श्रीबेचरदास दोसिने तैयार किया शुद्धिपत्रक है। विद्वानोंसे प्रार्थना है कि— इस ग्रन्थके पढ़नेके पूर्व शुद्धिपत्रकका उपयोग करें।

उपसंहार

प्रस्तावनाके प्रारम्भमें उल्लिखित प्रतियोगे आधारसे प्रस्तुत ग्रन्थका संशोधन किया गया है। इस मुद्रणके पुष्पपत्रोंका निरीक्षण एवं परिशिष्ट भी पं. भाई अमृतलाल मोहनलाल भोजक ने किया है। भाई श्रीदलमुखभाई मालवगियाजीका साहाय्य भी आदिसे अन्त तकमें रहा है। इतना होते हुए भी अगर इस संशोधनमें कोई क्षति प्रतीत हो तो विद्वानोंसे प्रार्थना है कि— ऐसी क्षतियोंकी सूचना देनेकी कृपा करें। जिनका उपयोग यथावसर अवश्य ही किया जायगा।

सं. २०२२ माघ शुक्ल पूर्णिमा

अहमदाबाद

मुनि पुष्पविजय

हारिभद्रि वृत्ति सहित नन्दीसूत्रका विषयानुक्रम ।

सूत्र	विषय	पत्र	सूत्र	विषय	पत्र
	वृत्तिकारका मगल और उपक्रम नन्दिसाब्दको व्युत्पत्ति, अर्थ और निक्षेप	१		ऊट, चालनी, परिपूजक, हम आदिके लाक्षणिक उदाहरण और त्रपपत्र, अक्षरभेद एव दुर्विदग्धपर्वका निरूपण	
१	गाथा १-३ भगलसूत्र	२-५	८	ज्ञानसूत्र	१७-२०
	गाथा १ सामान्यतः त्रिनस्तुति गा. २-३ महावीर परमात्माकी स्तुति		९	मत्स्यादि पाच ज्ञानके नाम, उनकी व्युत्पत्ति और क्रमसाफल्य आदिका निरूपण	
२	गाथा ४-१७ संखस्तुतिसूत्र रथ, चक्र, नगर, पद्म, चक्र, सूर्य, समुद्र और मंदरगिरिके रूपको द्वारा श्रीचक्रकी स्तुति	५-९	१०	मत्स्यादिज्ञानोका प्रत्यक्ष परोक्ष रूपसे विभाजन	१०
३	गाथा १८-१९ तीर्थकरावलीसूत्र बोबीस तीर्थकरोंकी स्तुति	१०	११	प्रत्यक्षज्ञानके इन्द्रियप्रत्यक्ष नोइन्द्रिय- प्रत्यक्ष दो भेद	२०
४	गाथा २०-२१ गणधरावलीसूत्र भगवान् श्रीमहावीरके स्याद् गणधरोंकी स्तुति	१०	१२	इन्द्रियप्रत्यक्षके पाच भेद	२०-२१
५	गाथा २२ वीरशासनस्तुतिसूत्र भगवान् महावीरके शासनको-प्रवचनकी स्तुति	१०	१३	नोइन्द्रियप्रत्यक्षके तीन भेद	२१
६	गाथा २३-४३ रुचविरावलीसूत्र भूतसंधिविरोकी स्तुति-गा २३ सुषर्मा, अम्बुस्वामी, प्रभवस्वामी, क्षत्र्यम्भव- स्वामी; गा २४ यशोभद्र, सम्भूतायं, भद्रबाहु, क्षुलभद्र; गा २५ महागिरि, सुहस्ती, बहुल, बलिस्सह, गा. २६ स्वाति, श्यामायं, शाण्डिक्य, जीवधर; गा. २७ आर्यसमुद्र, गा २८ आव- सुभु; गा २९ आवनन्दिल; गा ३० आयंनागहस्ती वाचक; गा ३१ देवति- मित्र वाचक, गा ३२ विह वाचक; गा. ३३ स्तन्दिलाचार्य, गा ३४ हिमवन्त, गा ३५-३६ नागाजुनवाचक; गा ३७-३९ भूदिजाचार्य, गा ४० औदित्य; गा. ४१-४२ दुष्पगनी, गा ४३ सामान्यरूपसे सर्वस्थितियोंकी स्तुति	१०-१५	१४	शोयोपशामक और भवप्रत्ययिक ज्ञायोपशामिक तथा गुणप्रत्ययिक अवधि- ज्ञानका स्वरूप	२१-२२
			१५	अवधिज्ञानके आनुगामिकादि छ भेद	२२-२३
			१६-२२	१, आनुगामिक अवधिज्ञानका स्वरूप, उत्तरे अन्तगत और मध्यगत भेद तथा पुरतोअन्तगत, माग्नोअन्तगत, पाश्चतो- अन्तगतादि प्रभेदोंका स्वरूप. उनके प्रतिविशेषका-स्वरूपभेदका निरूपण	२३-२४
			२३	२ अनानुगामिक अवधिज्ञान	२४-२५
			२४	३ वधमानक अवधिज्ञान गा ४५-४६ अवधिज्ञानका जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञान. गा ४७-५० द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे अवधि- ज्ञानके विषयभूत द्रव्यादिकी वृद्धिका स्वरूप. गा ५१-५२ द्रव्य-क्षेत्र-काल- भावकी पारस्परिक वृद्धिका स्वरूप आदि	२५-२८
			२५	४ हीनमानक अवधिज्ञान	२९
			२६	५ प्रतिपाति अवधिज्ञान	२९
			२७	६ अप्रतिपाति अवधिज्ञान	२९-३०
			२८	द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे अवधिज्ञानका स्वरूप	३०
७	गा ४४ पर्यन्तसूत्र भूतज्ञानके-साक्षके अधिकारि-अनवि- कारी शिष्योंकी परीक्षाके लिये सेलघण,	१५-१७	२९	गा ५३-५४ अवधिज्ञानके अन्तर्ना- वधि और बाह्यावधि भेद और अवधि- ज्ञानका उपसंहार	३०-३१

सूत्र	विषय	पत्र	सूत्र	विषय	पत्र
३०	मनःपर्यवसानका अधिकारी	३१-३४		कर्मणा बुद्धिका स्वरूप और उदाहरण;	
३१	मनःपर्यवसानके क्रतुवृत्ति विपुलमति दो मेद	३४		६८-७१ पारिणामिकी बुद्धिका स्वरूप और उदाहरण	
३२	द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आश्री मनःपर्यवसानका स्वरूप	३४-३६	४८	भूतनिश्चित मतिज्ञानके अवग्रह ईहा आदि चार मेद	४९
३३	गा. ५५ मन पर्यवसानका स्वरूप और उपसंहार	३६-३७	४९	अवग्रहके अर्थावग्रह व्यञ्जनावग्रह दो मेद	४९
३४	केवलज्ञानके भवस्थकेवलज्ञान और सिद्ध-केवलज्ञान दो मेद	३७	५०	व्यञ्जनावग्रहके मेद और स्वरूप	४९-५०
३५-३७	भवस्थकेवलज्ञानके सयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो मेद और उसका स्वरूप	३७-३८	५१	अर्थावग्रहके मेद, स्वरूप और एकाधिक	५०
३८-४०	सिद्धकेवलज्ञानके अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान और परम्परसिद्धकेवलज्ञान दो मेद और उसका स्वरूप	३८-४०	५२	ईहाके मेद, स्वरूप और एकाधिक	५०-५१
४१	द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव आश्री केवलज्ञानका स्वरूप	४०	५३	अपार्यके मेद, स्वरूप और एकाधिक	५१-५२
	वृत्तिमें—केवलज्ञान-केवलज्ञानविषयक युगपदुपयोग-एकोपयोग-कमोपयोगमाव्य-ताओंकी चर्चा	४०-४३	५४	धारणाके मेद, स्वरूप और एकाधिक	५१-५२
४२	गा. ५६-५७ केवलज्ञानका स्वरूप और उपसंहार	४३-४४	५५	अवग्रह आदिका कालप्रमाण	५२
४३	परोक्षज्ञानके आमिनिबोधिक और श्रुत ज्ञान दो मेद	४४	५६	अवग्रह आदि मेदोपे २८ प्रकारके मतिज्ञानका स्वरूप कथन करनेके क्रिये प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्त	५२
४४	आमिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञानकी सैन सहभाविता	४४-४५	५७	प्रतिबोधक दृष्टान्त द्वारा व्यञ्जनावग्रहके स्वरूपका निरूपण	५२-५३
	वृत्तिमें—मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका पृथक्करण—विशेष	४५-४६	५८	मल्लक दृष्टान्त द्वारा अवग्रह-ईहा-अपार्य-धारणाके स्वरूपका निरूपण	५३-५५
४५	मतिज्ञान और मतिअज्ञान तथा श्रुत-ज्ञान और श्रुतअज्ञानका या सम्यग्मति-ज्ञान और मिथ्यामतिज्ञानका एव धम्म-वश्रुतज्ञान और मिथ्याश्रुतज्ञानका विवेक	४५-४६	५९	द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आश्री आमिनिबोधिक ज्ञानका स्वरूप	५५-५६
४६	आमिनिबोधिकज्ञानक श्रुतनिश्चित अश्रुत-निश्चित दो मेद	४६	६०	गा ७२-७७ आमिनिबोधिक ज्ञानके मेद अर्थ, कालप्रमाण शब्दश्रवणका स्वरूप, एकाधिक नाम-शब्द और उपसंहार	५६-५८
४७	अश्रुतनिश्चित आमिनिबोधिकज्ञानके मेद, स्वरूप और उदाहरण	४६-४९	६१	श्रुतज्ञानके चौदह मेद	५८-५९
	गा. ५८ अश्रुतनिश्चित मतिज्ञानके औत्पत्तिकी बुद्धि आदि चार मेद; गा. ५९-६२ औत्पत्तिकी बुद्धिका स्वरूप और उदाहरण; गा. ६३-६५ वैमिषिकी बुद्धिका स्वरूप और उदाहरण; ६६-६७		६१-६५	१ अक्षरश्रुतके संज्ञाक्षर, व्यञ्जनावग्रह और लब्धक्षर तीन मेद और इनका स्वरूप	५९-६०
			६६	गा. ७८ २ अनक्षरश्रुतका स्वरूप	६०
			६७-७०	३ संज्ञिश्रुतके कालियुपदेश, हेतुपदेश और दृष्टिदोपदेश तीन प्रकार, स्वरूप और ४ असंज्ञिश्रुत	६०-६२
			७१	५ सम्यक्श्रुत—ज्ञादवाश्रीके नाम	६२-६४
			७२	६ मिथ्याश्रुत—भारत, रामायण, हनी, मासुक्क आदि प्राचीन जैनतर शास्त्रोंके नाम और सम्यक्श्रुत मिथ्याश्रुतका तात्पर्यक विवेक	६४-६५
			७३-७५	७-८ सादि-अनादि श्रुतज्ञान, ९-१० उपसंघटित-अपसंघटित श्रुतज्ञान और उनका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आश्री स्वरूप	६५-६७

सूत्र	विषय	पत्र	सूत्र	विषय	पत्र
७६-७७	पर्यायाप्राप्तरका निरूपण और अतिगाढ ज्ञानावरणीयकर्माहत दशमो भी जीवको अक्षरके अनन्तये भाग जितने ज्ञानका शाश्वतिक षड्भाव	६७-६९	११४	दृष्टिबाधका परिमाण और विषय	९२-९३
७८	११-१२ गमिक अगमिक श्रुतज्ञान	६९	११५	द्वादशाह्निका विषय	९३
७९	१३-१४ अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाध श्रुतज्ञान	७०	११६-१७	द्वादशाह्निके विराधकोको हानि और आराधकोको लाभ	९३-९४
८०	अङ्गबाध श्रुतज्ञानके दो भेद	७०	११८	द्वादशाह्निके शाश्वतिकता	९४-९५
८१	आवश्यक श्रुत	७०	११९	द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आश्री श्रुतज्ञानका स्वरूप	९५
८२	आवश्यकव्यतिरिक्तश्रुतके कालिक उत्कालिक दो प्रकार	७०	१२०	गा. ८३ श्रुतज्ञानके चौदह भेद, गा. ८४ श्रुतज्ञानका लाभ, गा. ८५ बुद्धिके आठ गुण, गा. ८६ सूत्रार्थश्रवणविधि, गा. ८७ सूत्रव्याख्यानविधि और नन्दी-स्वरकी समाप्ति	९५-९७
८३	उत्कालिकश्रुतके २९ नाम बुद्धिर्मे-२९ उत्कालिकस्वरके नामोंका व्युत्पत्त्यर्थविवरण	७०-७२		चन्द्रकुलीन आचार्य श्रीश्रीचन्द्र-सुरिप्रणीत नन्दीस्वरहारिभद्री-वृत्तिको दुर्गपदव्याख्या	९९-१६९
८४	कालिकश्रुतके ३१ नाम बुद्धिर्मे-कालिकस्वरके ३१ नामोंका व्युत्पत्त्यर्थविवरण	७२-७३		चन्द्रकुलीन आचार्य श्रीश्रीचन्द्र-सुरिगिरिचिन्टीकासहित लघु-नन्दी-अनुज्ञानन्दी	१७०-१७८
८५	आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुतज्ञानका उपसंहार	७३-७४		जोगण्डी	१७९-१८१
८६	अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञानके १२ नाम	७४		नन्दीस्वरहारिभद्रीवृत्तिके विषय-पत्र्यांय-विषयमपट्टिपानक	१८२-१८६
८७	१ व्याचाराङ्गस्वरका स्वरूप	७४-७७		१. प्रथम परिशिष्ट	१८७-१८८
८८	२ सूत्रकलाङ्गस्वरका स्वरूप	७७-७९		नन्दीस्वरान्तगत सूत्रगाथाओंकी अकारा-दिक्रमसे अनुक्रमणिका	
८९	३ स्थानाङ्गस्वरका स्वरूप	७९		२. द्वितीय परिशिष्ट	१८९-१९४
९०	४ समवायाङ्गस्वरका स्वरूप	७९-८०		नन्दीहारिभद्रीवृत्ति, दुर्गपदव्याख्या और लघुनन्द्यन्तगत उद्घरणोंकी अकारादि-क्रमसे अनुक्रमणिका	
९१	५ व्याख्या[प्रज्ञाति]स्वरका स्वरूप	८०		३. तृतीय परिशिष्ट	१९५-२०३
९२	६ ज्ञाताधमकपाङ्गस्वरका स्वरूप	८०-८२		नन्दीस्वरमूल, हारिभद्रीवृत्ति, दुर्गपद-व्याख्या, लघुनन्दीमूल और उसकी वृत्ति, नन्दीहारिभद्रीवृत्तिविषयपदपर्यायके अन्तर्गत विद्येयनामोंकी अनुक्रमणिका	
९३	७ उपासकदशाङ्गस्वरका स्वरूप	८२		४ चतुर्थ परिशिष्ट	२०३
९४	८ अन्तःकृद्दशाङ्गस्वरका स्वरूप	८२-८३		नन्दीस्वरवृत्त आदिमें स्थित पाठान्तर, मत्तान्तर और व्याख्यान्तरके स्थान	
९५	९ अनुत्तरोपपतिकदशाङ्गस्वरका स्वरूप	८३-८४		५. पञ्चम परिशिष्ट	२०४-२१६
९६	१० पञ्चव्याकरणदशाङ्गस्वरका स्वरूप	८४		नन्दीस्वर, हारिभद्रीवृत्ति, दुर्गपदव्याख्या आदिमें स्थित शब्दोंका अनुक्रम	
९७	११ विपाकदशाङ्गस्वरके दुःखविपाक सुख-विपाक दो प्रकार और उनका स्वरूप	८४-८५		शुद्धिपत्र	२१७-२१८
९८	१२ दृष्टिबाधभंगके पाँच भेद	८५			
९९-१००	१ परिकर्मदृष्टिबाधके सात प्रकार और भेद	८५-८७			
१०८	२ सूत्रदृष्टिबाधके २२ प्रकार	८७			
१०९	३ पूर्वगतदृष्टिबाध-चौदह पूर्व	८८-८९			
११०-१२	४ अनुयोगदृष्टिबाधके मूलप्रथमानुयोग और गठिकानुयोग दो भेद और इनका स्वरूप बुद्धिर्मे-सिद्धगठिकाका स्वरूप	८९-९२			
११३	५ वृत्तिकादृष्टिबाध	९२			

॥ णमो त्थु णं समणस्स भगवन्नो महइ-महावीर-वद्दमाणसामिस्स ॥

णमो अणुओगघराणं येराणं ।

श्रीदेववाचकविरचितं

नन्दिसूत्रम् ।

याकिनीमहत्तराधर्मसूनुना आचार्यश्रीहरिभद्रद्वरिणा

द्वचितया दृष्या समलङ्कृतम् ।



॥ श्रीसर्वज्ञाय नमः ॥

जयति श्रुवनैकमानुः सर्वत्राविहतकेवलालोकः ।

नित्योदितः स्थिरस्तापव्रजितो वद्रेमानजिनः ॥ १ ॥

इह सर्वैरेव संसारिणा सत्त्वेन नारक-तिर्यङ्-नरा-ऽमरातिनिबन्धनानेकशारीर-मानसातितीव्रतरदुःखैरसङ्घात-
पीडितेन जाति-जरा-मरण-शोक-रोगाद्युपद्रवत्रातरहित-निरतिशयालोकसुखस्वभावापवर्गगतिसम्भवे सति पीडानिर्वे- 5
दात् तन्परित्यागाय, निरतिशयालोकसुखाभिलाषाच्च तदवाप्तये, आत्म-परतुल्यचिचेन सर्वथा स्व-परोपकाराय प्र-
चिन्तितव्यमिति । तत्रान्यपरिरक्षणदिना परोपकारपूर्वक एवाऽऽत्मोपकार इति विशेषतन्त्रेण । स पुनः परोपकारो
द्विधा—द्रव्यतो भावतश्च । तत्र द्रव्यतो भोजनादिविचित्रविभवप्रदानजनितः, अयं चानेकान्तिकोऽनात्यन्तिकश्च ।
भावतस्तु सद्धर्मप्रदानजनितः, अयं चैकान्तिकस्तथाऽऽन्यन्तिकश्च । सद्धर्मश्च श्रुतधर्म-चारित्रधर्मभेदाद् द्विभेदः ।
तत्र श्रुतधर्मो जिनवचनस्वाध्यायः, चारित्रधर्मस्तु तदुक्तः श्रमणधर्म इति । उक्तं च— 10

सुयधम्मो सज्जाओ चरित्तधम्मो समणधम्मो । []

तत्र श्रुतधर्मसम्पत्समन्विता एव प्रायश्चारित्रधर्मग्रहण-परिपालनसमर्था भवन्तीति तत्प्रदानमेवाऽऽदौ न्याय्य-
मिति । तत्रापि श्रुतप्रदाने सत्यपि नाविज्ञातार्थादेव तस्मादभिलषितार्थावाप्तिः प्राणिनामित्यतः प्रारभ्यतेऽहं-
चनानुयोगः । अयं च परमपदभासिहेतुत्वाच्छ्रेयोभूतो वर्चते । श्रेयांसि बहुविधानि भवन्ति । यथोक्तम्—

श्रेयांसि बहुविधानि भवन्ति महतामपि । अश्रेयसि प्रट्टचानां ऋापि यान्ति विनायकाः ॥ १ ॥ 15

[] इति ।

अतोऽस्य प्रारम्भ एव विघ्नविनायकोपशान्तये मङ्गलाधिकारे नन्दिवैक्त्यः ।

अथ नन्दिरिति कः शब्दार्थः?, उच्यते—“टुणदि समृद्धौ” [पा. धा. पा. ६७] इत्यस्य धातोः “इदितो नुम्
धातोः” [पा. ७. १. ५८] इति नुमि विहितेऽनुबन्धलोपे च कृते औणादिकः इन् प्रत्ययो विधीयते, “सर्वधातुष्व-
इन्” [पा. उ. ५. ६७] इति वचनात्, अनुबन्धलोपे च कृते सति नन्दि, सो रुच्यं विसर्जनीयश्चेति नन्दिः । नन्दं 20
नन्दिः । नन्दन्त्यनेनेति वा नन्दन्त्यस्मिन्निति वा नन्दयन्तीति वा तदभेदोपचाराद् नन्दिः हर्षः प्रमोद इत्यनर्था-
न्तरम्, “ताभ्यामन्यत्रोणादयः” [पा. ३. ४. ७५] इति वचनात् ताभ्यामिति सम्प्रदाना-ऽपादानाभ्यामन्यत्र
उपादयः प्रत्यया ऋवन्ति । अल्पे तु “नन्दी” इत्यभिदधति, तत्रापि नन्दिरिति स्थिते “इक् कृष्यादिभ्यः” [पा.
वा. ३. ३. १०८] इति इक् प्रत्ययः, स च “कृत्यल्युटो बहुलम्” [पा. ३. ३. ११३] इति वचनाद् भावे करणे

१ तत्र इति परोपकारे, वतितव्यमिति शेषः ॥ २ अन्ये इति नन्दीर्षुङ्गिहदादयः ॥

वाऽवगन्तव्य इति, ततः “कृदिकारादक्तिनः” [पा. वार्तिकम् ४. १. ४५] “सर्वतोऽक्तिभयोदित्येके” [पा. वा. ४. १. ४५] इति स्त्रीप्रत्ययः; अस्य भावार्थः—कृदिकारान्तो यः शब्दः क्तिनवर्जितस्तस्मात् स्त्रीप्रत्ययो भवति, अपरे तु सर्वतः अक्तिभयोदिकारान्तात् स्त्रीप्रत्ययो भवतीति मन्यन्ते; अनुबन्धलोपे च कृते “यस्य” [पा. ६. ४. १४८] इतीकारलोपे च नन्दी इति रूपं भवति । नन्दनं नन्दी । नन्दन्त्यनयेति वा भव्याः प्राणिन इति 5 नन्दी इत्यलमप्रस्तुतातिप्रसङ्गेनेति ।

अयं च नन्दिश्रुतविधः, तद्यथा—नामनन्दिः १ स्थापनानन्दिः २ द्रव्यनन्दिः ३ भावनन्दि ४ श्रेति । तत्र नाम-स्थापने प्रकटार्थे । द्रव्यनन्दिर्द्विधा—आगमतो नोआगमतश्च । तत्राऽऽगमतो नन्दिपदार्थज्ञः तत्र चाऽनुपयुक्तः, “अनुपयोगो द्रव्यम्” [अनुयोग. सू. १३] इति वचनात् । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिः भव्यशरीरद्रव्यनन्दिः 10 ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तश्च द्रव्यनन्दिः । तत्र ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिः नन्दिपदार्थज्ञस्य शरीरं जीवविप्रसृक्तम्, अनु-भूतनन्दिभावत्वात्, पश्चात्कृतभावस्य द्रव्यत्वात् । यथोक्तम्—

भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतना-ऽचेतनं कञ्चित् ॥ १ ॥

[]

भव्यशरीरद्रव्यनन्दिश्च नन्दिपदार्थपरिज्ञानभावयोग्यं बालादिशरीरम्, पुरस्कृतभावत्वादस्य । व्यतिरिक्तश्च पुनः क्रियाविष्टो द्वादशविधस्तूर्याङ्गसङ्घातः । अयं तद्यथा—

15 मंभा १ मउदं २ महल ३ कडंब ४ झल्लरि ५ हुहुक्क ६ कंसाला ७ ।

काहल ८ तल्लिमा ९ वंसो १० संखो ११ पणवो १२ य बारसमो ॥ १ ॥ []

भावनन्दिरपि द्विविधैव—आगमतो नोआगमतश्च । तत्राऽऽगमतो भावनन्दिः नन्दिपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः, उपयोगो भाव इति कृत्वा । नोआगमतस्तु भावनन्दिः पञ्चप्रकारज्ञानसमुदायः, नोशब्दो देशवचनः । अथवा पञ्चप्रकारज्ञानस्वरूपमतिपादकोऽध्ययनविशेषः, नोशब्दो देशवचन एव, अयं चाध्ययनविशेषः श्रुतांशेन सर्वश्रुता- 20 ध्यन्तरभूतो वर्धते । अत एव सर्वश्रुतारम्भेऽप्येव विघ्नविनायकोपशान्तये मङ्गलार्थमभिधीयत इति ।

अस्य च मङ्गलस्थानावसरमाप्तस्य सत आचार्यां विनेयानां सूत्रा-ऽर्थगौरवोत्पादनार्थमविच्छेदेन सन्तानागत-सूत्रा-ऽर्थपददर्शनार्थं चाऽऽदावेवाऽऽवल्लिक्कामभिधाय व्याख्यानाय यतन्ते । सर्वे श्रुतार्थाश्च यतस्तीर्थकरमभवा अतः मङ्गापक-श्रावक-पाठकाः अभिलषितार्थासिद्धये प्रवर्त्तमानाः प्रधानोपायत्वाद् भगवत एव नमस्कारपूर्वकं प्रवर्त्तन्त इत्यत आह ग्रन्थकारः—

25

[सुतं १]

जयइ जगजीवजोणीवियाणओ जगगुरु जगाणंदो ।

जगणाहो जगबंधू जयइ जगपियामहो भयवं ॥ १ ॥

१. जयनि० गाय। व्याख्या—इन्द्रिय-विषय-कषाय-घातिकर्म-भवोपप्रादिकर्मकमुगणनयाज्यपतीत्युच्यते । किंविशिष्टो जयति ? ‘जगजीवयोनिविज्ञायकः’ इह जगच्छब्देन सकलधर्मा-ऽधर्मा-ऽऽकाश-पुद्गलास्तिकायपरिग्रहः, 30 जीवशब्देन तु सकलजीवास्तिकायपरिग्रहः । उक्तं च—

जगन्ति जग्नमान्याहुर्जगद् ज्ञेयं चराचसम् । []

योनयः सच्चिताद्याः । उक्तं च—“सच्चित्त-शीत-संभ्रतेतर-मिश्रास्तद्योनयः” [तप्ता. २. ३३] जीवोत्पत्ति-
स्यानानीत्यर्थः । “यु मिश्रेणे” [पा. धा. पा. १०३३] युजन्ति-तैजस-कार्माणशरीरवन्तः सन्त औदारिकादि-
शरीरेण मिश्रीभवन्त्यस्यामिति योनिः । उक्तं च —

जोषण कम्मएणं आहारेई अणंतरं जीवो । तेण परं मीसेणं जाव सरीरस्स निष्पत्ती ॥ १ ॥

[सूत्र. नि. गा. १७७]

5

ततश्च जगच्च जीवाश्च योनयश्च जगज्जीव-योनयः, विविधम्—अनेकधा उत्पादाद्यनन्तधर्मात्मकं जानातीति
विज्ञायकः, जगज्जीव-योनीनां विज्ञायको जगज्जीव-योनिविज्ञायक इति समासः, अनेन केवलज्ञानमतिपादनात्
स्वार्थसम्पदमाह । तथा जगद् युगातीति जगद्गुरुः, यथोपलब्धजगद्वक्तेति भावना, अनेनापि स्वार्थसम्पदमेवाह ।
तथा ‘जगदानन्दः’ इह जगच्छन्देन संक्षिपञ्चेन्द्रियपरिग्रहः, तेषां सद्धर्मदेशनाद्वारेणाऽऽनन्दहेतुत्वादेहिका-ऽऽशुभिक-
ममोदकारणत्वाज्जगदानन्द इति, अनेन परार्थसम्पदमाह । तथा ‘जगन्नाथः’ इह जगच्छन्देन सकलचराचरपरिग्रहः, तस्य
यथावस्थितस्वरूपमरूपणद्वारेण वितथप्ररूपणापायेभ्यः पालनाद् नाथवद् नाथ इति, अनेनापि परार्थसम्पदमिति ।
तथा ‘जगद्गन्धुः’ इह जगच्छन्देन सकलप्राणिपरिग्रहः, तद्व्यापादनीपदेशप्रणयनेन सुखस्थापकत्वाद् बन्धुवद्
बन्धुः । तथा चोक्तम्—“सर्वे पाणा सर्वे भूया सर्वे जीवा सर्वे सत्ता ण इंतव्वा ण अज्जावेयव्वा [ण परि-
चेत्तव्वा] ण परितावेयव्वा ण उवदवेयव्वा, एस धम्मं धुवे णितिण एससने, समेच्च कोयं खेदणोहिं पवेदिते”
[आचा ध्रु. १ अ. ४ उ. १ सू. १-२] इत्यादि, अनेनापि परार्थसम्पदमिति । तथा ‘जयति जगत्पितामहः’ इति, 15
इह जगच्छन्देन सकलसत्त्वपरिग्रह एव, तेषां च कुगतिगमनभयापायरक्षणत्वात् पिता धर्मो वर्तते, तथोक्तम्—

दुर्गतमिष्टतान जीवान् यस्माद् धारयते ततः । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने तस्माद् धर्म इति स्मृतः ॥ १ ॥

[]

तस्यापि चार्थप्रणेतृत्वेन भगवान् पिता वर्तते, अतो जगत्पितामह इति । स्तवाधिकाराच्च पुनः क्रियाभिधानमदुष्टम् ।
उक्तं च—

सज्जाय-ज्ञान-तव-ओसहेसु उवएस-थुइ-पयाणेसु । संतगुणकित्तणेसु य न इति पुणरुचदोसा उ ॥ १ ॥

[आव. नि. गा. १५०४ पत्र ७८२-१]

अनेनापि परार्थसम्पदमाह । ‘भगवान्’ इति भगः—समग्रैश्वर्यादिलक्षणः, तथा चोक्तम्—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यज्ञसः श्रियः । धर्मस्वाथ प्रयत्नस्य पणां भग उतीव्वना ॥ १ ॥

[विष्णुपुराणे ६. ५. ७४]

25

भगोऽस्यास्तीति भगवानिति । अनेन चोभयसम्पदमाह, स्व-परोपकारित्वादैश्वर्यादेरित्यलं प्रसङ्गेनेति गार्थार्थः ॥ १ ॥

व्याख्यानयन्ति केचित् स्तुतिमेनामन्यथाऽपि विद्वांसः ।

तत्राप्यपानरुक्त्यं सूक्ष्मधिया चिन्तनीयमिति ॥ १ ॥

एवं तावद् ‘अनादिमन्तो मतास्तीर्थकराः’ इति ज्ञापनार्थं सामान्येन नमस्कारमभिधाय साम्प्रतमासभो-
पकारित्वात् सकलदुःखपरमौषधभूतप्रवचनमणेतृत्वाद् वर्तमानतीर्थधिपतेः नमस्कारं प्रतिपादयन्नाह—

१ “मिश्रेणेऽमिश्रेणे च” इति पाणिनिघाट्टपाठे ॥ २ “वराभ्यस्याथ मोक्षस्य” इति विष्णुपुराणे ॥ ३ अत्र केचित् इत्यनेन
सूक्तिद्वारादेति जिणवसओ सकलियवसमविक्रमगती महावीरो इतिरूपेण प्रथमसूत्रगाथोत्तरार्धे व्याख्यानयन्तं पूर्वाचार्याः हेवाः ॥

30

जयइ सुयाणं पमवो तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।

जयइ गुरु लोगाणं जयइ महप्पा महावीरो ॥ २ ॥

- जयति सु० गाहा । व्याख्या—‘जयति’ इति पूर्ववत् । ‘श्रुतानां’ आचारादिभेदभिन्नानां ‘प्रभवः’ प्रभवन्त्यस्मादिति प्रभवः, तदर्थभिधायकत्वात् कारणमित्यर्थः । ऋषभादयोऽप्येवम्भूता एव अत आह—‘तीर्थकराणामपश्चिमो जयति’ तत्र तीर्थकरणशीलास्तीर्थकरास्तेषां तीर्थकराणाम्, भरतेऽधिकृतावसर्पिण्यां पश्चिम एव अनिष्टशब्दपरिहारार्थमपश्चिम इत्युच्यते, पश्चानुपूर्व्यां वाऽपश्चिम इति । ‘जयति गुरुलोकानां’ गृणाति शास्त्रार्थमिति गुरुः, ‘लोकानां’ इति सत्त्वानाम् । ‘जयति महात्मा’ अनन्तज्ञान-वीर्ययुक्तत्वाद् महान् आत्मा यस्य स महात्मा । ‘महावीरः’ इति “शूर वीर विक्रान्तौ” [पा. भा. पा. १९०३] इति, कथापादिशत्रुजयाद् महाविक्रान्तो महावीरः । ईरं गति-भरणयोः” इत्यस्य वा विपूर्वस्य विशेषेण ईरयति—कर्म गमयति, याति वा इह शिवमिति वीरः, महाश्वसौ वीरश्च महावीर इति गायार्थः ॥ २ ॥

पुनरस्यैवातिशयमदर्शनद्वारेण म्नुतिमभिधित्सुराह—

भइं सव्वजगुज्जोयगस्स भइं जिणस्स वीरस्स ।

भइं सुराऽसुरणमंसियस्स भइं धुयस्यस्स ॥ ३ ॥

- भइं० गाहा । व्याख्या—‘भइं’ कल्याणं भवतु । कस्य ? ‘सर्वजगद्दुष्टोत्कस्य’ इति, अनेन ज्ञानातिशयमाह । इह च “चतुर्थी चाऽऽशिष्यायुष्य-भद्र-भद्र-कुशल-सुखा-ऽर्थ-हितैः” [पा. २. ३. ७३] इति वचनात् षष्ठ्यपि भवत्येव, यथा—आयुष्यं देवदत्ताय आयुष्यं देवदत्तस्येति, एवं मद्रादिष्वपि वक्तव्यमिति । ‘भइं जिनस्य’ “जि जये” अस्य औपादिकनकृमत्ययान्तस्य जिन इति भवति, रागादिजयाद् जिन इति, अनेनापायातिशयमाह । अपायः—विश्लेषः, रागादिभिः सार्द्धमात्यन्तिकवियोग इत्यर्थः । आह—अपायातिशये सति ज्ञानातिशयभावाद् व्यतिक्रमः किमर्थम्?, “फलप्रधानाः समारम्भाः” इति ज्ञापनार्थम् । ‘भइं सुराऽसुरनमस्कृतस्य’ इति, अनेन पूजातिशयमाह, न हि विश्ववानुरूपां पूजामकृतैव सुराऽसुरा नमस्कारक्रियायां प्रवर्त्तन्त इति । उक्तं च—

अशोकवृक्षः सुरपुष्यवृष्टिर्दिव्यो ध्वनिश्चामरमासनं च ।

भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्पातिहायाणि जिनेश्वराणाम् ॥ १ ॥

[] इति ।

- पूजातिशयान्यथानुपपत्त्यैव वागतिशयो गम्यते । ‘भइं धुतरजसः’ इति, अनेन सकलसंसारकेशविनिर्मुक्तं सिद्धावस्थामेवाऽऽह, यतो बन्धमानकं कर्म रजो भण्यते, तदभावस्त्वयोगिसिद्धानामेव, न पुनरन्येषाम् । यत आह—“जाव णं एस जीवे एयइ वेदति चल्इ फंदइ० ताव णं अट्टविहबंधप वा सत्तविहबंधप वा छन्विहबंधप वा एग-विहबंधप वा” [भग. श. उ. सू. पत्र] इत्यादि । तत्त्व—

सत्तविहबंधगा होति पाणिणो आउवज्जगारणं तु । तह सुहुमसंपराया छन्विहबंधा विणिहिद्धा ॥ १ ॥

मोहाऽऽउगवजाणं पगढीणं ते उ बंधगा मणिया । उवसंत-खीणमोहा केवळिणो एगविहबंधा ॥ २ ॥

- ते उण दुसमयट्टितस्स बंधगा ण उण संपरायस्स । सेळेसि पडिवन्ना अबंधगा होति विषेया ॥ ३ ॥”

[पष्ठा. १६ गा. ४०-४२]

आह—भगवतः संसारार्तीतत्वात् परमकल्याणरूपत्वात् किमेवमुच्यते 'भद्रं भवतु' ? न च स्तोत्रा भणितं सर्वमेव भवतीति, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, तथापि कुशलमनो-गोक्ष-कायमदृष्टिकारणत्वात् दोष इत्यलं मत्प्रज्ञेनेति गार्थार्थः ॥ ३ ॥ एवं तावत् तीर्थकरनमस्काराः प्रतिपादिताः । साम्प्रतं तीर्थकरानन्तः सङ्घ इति कृत्वा तीर्थान्तर-ग्रामव्युदासेन नगररूपकेण तत्संस्तवं कुर्वन्नाह—

[सुतं २]

5

गुणभवनगहन ! सुयस्यगहनरिय ! दंसणविसुद्धरच्छागा ! ।

संघनगर ! भद्रं ते अस्खंडचरित्तपागारा ! ॥ ४ ॥

२. गुण० गाहा । व्याख्या—'गुणभवनगहन !' इह गुणाः—पिण्डविशुद्ध्यादय उत्तरगुणा अभियुद्धान्ते । यथोक्तम्—

पिंडस्स जा विसोही समितीओ भावणा तवो दुविहो । पडिमा अभिग्गहा वि य उत्तरगुणमो विघाणाहि ॥ १ ॥ 10

[व्यव. भा. पी. गा. २८९]

एत एव भवनानि एभिर्गहनं—प्रचुरत्वादुत्तरगुणानाम् एभिः सङ्कुलं सद्नगरमभियुद्धान्ते, तस्याऽऽमन्त्रणं हे गुणभवनगहन ! । तथा 'श्रुतरत्नभूत !' श्रुतान्येव—आचारादीनि निरूपमसुवहेनुत्वाद् रत्नानि तैर्भूतं—पूरितमित्यर्थः तस्याऽऽमन्त्रणम् । तथा 'दर्शनविशुद्धरथ्याक !' इह दर्शनं—प्रशम-संवेग-निर्वैदा-ऽऽनुकम्पा-ऽऽस्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्पददर्शनं शुद्धते । तच्चौपशमिकादिभेदात् पञ्चविधम् । तथा चोक्तम्—“तं च पंचधा सम्मं । ओवसमं ? ससायण 15 स्वयवसमिय ३ वेदयं ४ खडयं ५ ॥” [विंश्या. गा. ५२८] ति । दर्शनमेव असाराभिव्यालादिकचवररहिता विशुद्धा रथ्या यस्य तत् तथाविधं तस्याऽऽमन्त्रणम् । 'सद्नगर !' सङ्घः—चातुर्वर्णः श्रमणादिसङ्घ्यातः स नगरमिव सङ्घ-नगरं तस्याऽऽमन्त्रणम्, यथा पुरुषोऽयं व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः । उक्तं च—“ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ” [पा. २. १. ५६] । 'भद्रं' कल्याणं तव भवतु । 'अखण्डचारित्रप्रकार !' चारित्रं—मूलगुणाः, अखण्डं—अविराधिंतं चारित्रमेव प्राकारो यस्य तत् तथाविधं तस्याऽऽमन्त्रणमिति गार्थार्थः ॥ ४ ॥ 20

संसारोच्छेदित्वात् सङ्घस्यैव चक्ररूपकेण स्तवं कुर्वन्नाह—

संजम-तवतुंवा-ऽयस्स णमो सम्मत्तपारियल्लस्स ।

अपडिचक्कस्स जओ होउ सया संघचक्कस्स ॥ ५ ॥

संयम० गाहा । व्याख्या—'संयम-तपस्तुम्बा-ऽऽस्स नमः' संयमश्च तपांसि च संयम-तपांसि, तुम्बं च अरकाश्च तुम्बा-ऽऽस्स, तत्र यथासङ्घं संयम-तपांस्येव तुम्बा-ऽऽस्सका यस्य तत् तथाविधं तस्मै नमः । तत्र संयमः— 25

पञ्चोश्रवाद् विरमणं पञ्चोन्द्रियनिग्रहः कषायत्रयः । दण्डत्रयविरतिश्चेति संयमः सप्तदशभेदः ॥ १ ॥

[प्रथम. आ. १७२]

तपो द्वादशप्रकारं बाह्यमभ्यन्तरं च । तत्र बाह्यं षड्विधम् । यथोक्तम्—

अनश्ननमूनोदरता हृत्तेः सङ्क्षेपणं रसत्यागः । कायक्लेशः संलीनतेति बाह्यं तपः भोक्तुम् ॥ १ ॥

[प्रथम. आ. १७५]

30

अभ्यन्तरमपि बहुविधम् । उक्तं च—“प्रायश्चित्तं विनयो वैयाहृत्यं स्वाध्यायो ध्यानं व्युत्सर्गश्च” [] इति । “सम्मत्तपारियट्टस्स” चि पारियट्टं—बाह्यपुष्टकस्य बाह्या भ्रमिरुच्यते, ततश्च सम्यक्त्वबाह्यभ्रमिणे नमः । व्याख्यातं गायार्थम् । चरकादिभिरतुल्यत्वाद् नास्य प्रतिचर्कं विद्यते इत्यप्रतिचक्रम्, तस्य जयो भवतु इति सुमणि-धानमेतत् । ‘सदा’ सर्वकालम् । सङ्घयश्चक्रमिव सहचक्रं तस्येति गायार्थः ॥ ५ ॥

5 इदानीं सङ्घस्यैव मार्गगामित्वतो रथरूपकेण स्तवं कुर्वन्नाह—

भद्रं सीलपडागूसियस्स तव-णियमतुरगजुत्तस्स ।

संघरहस्स भगवओ सज्झायसुणंदिघोसस्स ॥ ६ ॥

भद्रं० गाहा । व्याख्या—‘भद्रं’ कल्याणं भवतु । कस्य ? सहस्यस्य भगवत् इति योगः । किंविशिष्टस्य ? शीलोच्छ्रितपताकस्य, प्राकृतशैल्याऽन्यथोपन्यासः, शीलब्रह्मणाद् अष्टादशश्रीलाङ्गसहस्रपरिग्रहः । तथा ‘तपो-नियम-तुरगयुक्तस्य’ तपः-संयमाश्रयुक्तस्येत्यर्थः । स्वाध्यायः—वाचनादिः, यथोक्तम्—“वाचना प्रच्छना परावर्चना अनुपेक्षा धर्मकथा च” [] इति, तत्र स्वाध्याय एव शोभनो नन्दिघोषः—तूर्यरवः “सुनेमिघोसस्स” चि नेमिनिर्योषो वा यस्य स तथाविधस्तस्य । इह च श्रीलाङ्गनिरूपणे सत्यपि तपो-नियमनिरूपणं प्रधानपरलोकाङ्ग-त्वख्यापनार्थम् । अस्ति चायं न्यायो यदुक्तं—“सामान्योक्तावपि प्राधान्यव्यापनार्थं विशेषाभिधानम्” इति, यथा ब्राह्मणा आयाता वशिष्टोऽप्यायात इति, एवमन्यत्रापि योजनीयमित्यलं प्रसङ्गेनेति गायार्थः ॥ ६ ॥

15 सङ्घस्यैव लोकासंश्लिष्टत्वंतः पथरूपकेण स्तवं प्रतिपादयन्नाह—

कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स सुयरयणदीहणालस्स ।

पंचमहव्वयथिरकण्णियस्स गुणकेसरालस्स ॥ ७ ॥

सावगजणमहुयरिपिखुडस्स जिणसूरतेयबुद्धस्स ।

संघपउमस्स भद्रं समणगणसहस्सपत्तस्स ॥ ८ ॥ [जुम्मं]

20 कम्मरय० गाहा । सावय० गाहा । व्याख्या—सहस्रस्य ‘भद्रं’ मङ्गलं भवन्विति क्रिया । किम्भूतस्य ? ‘कर्मरजोजलौघविनिर्गतस्य’ इह ज्ञानावरणादिलक्षणं कर्म, तदेव अनेकधा जीवगुण्डानाद् रजो भण्यते, तदेव भव-कारणत्वाद् जलौघवद् जलौघः, तस्माद् विनिर्गत इव विनिर्गतः, तथा चाविरतसम्यग्दृष्टेरप्युपाद्बुद्धलपरावर्त्तः परः संसार उक्त इत्यनो विनिर्गतस्तस्य । श्रुतरत्नमेव दीर्घनालं यस्य सः, तद्वलादेव निर्गत इति भावनीयम् । पञ्च महाव्रतानि—प्राणातिपातादिविनिर्गच्छिलक्षणानि तान्येव स्थिरा—दृढा कर्णिका—मध्यगण्डिका यस्य । गुणाः—उत्तर-25 गुणाः त एव तत्परिकरत्वात् केसराणि यस्य विद्यन्ते इति गुणकेसरवत् तस्य गुणकेसरवतः ॥ ७ ॥

‘श्रावकजनमप्युकीपरिहृतस्य’ इति प्रकटार्थम् । नवरमभ्युपेत्य सम्यक्त्वं प्रतिपन्नाश्रुवतोऽपि प्रतिदिवसं यतिभ्यः सकाशात् साधूनामगारिणां च सामाचारिं शृणोतीति श्रावकः । उक्तं च—

यो ह्यभ्युपेतसम्यक्त्वो यतिभ्यः प्रत्यहं कथाम् । शृणोति धर्मसम्बद्धामसौ श्रावक उच्यते ॥ १ ॥

30 ‘मिनसूर्यतेजोबुद्धस्य’ केवलज्ञानभास्करविशिष्टसंवेदनमभवधर्मदेशनाबुद्धस्येति भावार्थः । ‘श्रमणगणसहस-पत्रस्य’ इति प्रकटार्थमेव । नवरं श्राम्यतीति श्रमणः, “कृत्यल्युटो बहुलम्” [पा. ३. ३. ११३.] इति वचनात्

कर्त्तरि ल्युट्, श्राभ्यतीति—तपस्यति, एतदुक्तं भवति—मन्त्रज्यादिवसादारभ्य सकलसावधयोगविरतो गुरुपदेशादन-
श्ननादि यथाशक्ति आ प्राणोपरमात् तपश्चरतीति श्रमणः । उक्तं च—

यः समः सर्वभूतेषु स्व्यावरेषु त्रसेषु च । तपश्चरति श्रुद्रात्मा श्रमणोऽसौ प्रकीर्तितः ॥ १ ॥

[]

इति गाथाद्वयार्थः ॥ ८ ॥ इदानीं सङ्ख्यस्यैव सौम्यतया चन्द्ररूपकेण स्तवमाह—

5

तव-संजममयलंछण ! अकिरियराहुमुहुद्वरिस ! णिबं ।
जय संघचंद ! णिम्लसम्भत्तविसुद्धजुणहागा ! ॥ ९ ॥

तवसंजम० गाथा । व्याख्या—‘तपः-संयममृगलाञ्छन !’ तपः-संयममृगचिह्न ! । ‘अक्रियाराहुमुहु-
दुष्पशृण्य !’ इह अक्रियाशब्देन नास्तिका शृण्वन्ते, अनभ्युपगमाद् अविद्यमानपरलोकक्रियाः अक्रियाः, त एव राहु-
मुखं तेन दुष्पशृण्यः—अनभिभवनीयः तस्याऽऽमन्त्रणम् । ‘नित्यम्’ इति सदा जय सहचन्द्र ! । ‘निर्मलसम्यक्तव- 10
विशुद्धज्योत्स्नाक !’ इह मिथ्यात्वभावमलरहितं निर्मलं सम्यक्तवमुच्यते, तदेव विशुद्धा-निर्मला ज्योत्स्ना—चन्द्रिका
यस्य स तथाविधः तस्याऽऽमन्त्रणमिति गाथार्थः ॥ ९ ॥ अधुना सङ्ख्यस्यैव प्रकाशकतया सूर्यरूपकेण स्तवमाह—

परतित्थियगहपहणासगस्स तवतेयदित्तलेसस्स ।
गाणुज्जोयस्स जए भइं दमसंघसूरस्स ॥ १० ॥

परतित्थिय० गाथा । व्याख्या—‘परतीर्थिकग्रहप्रभानाशकस्य’ इह परतीर्थिकाः—कपिल-कणभक्षा-ऽश- 15
पादादिमतावलम्बिनः त एव ग्रहास्तेषां प्रभा—एकदुर्णयज्ञानलक्षणा तां नाशयति—अनन्तनयसङ्कुलभवचनसमुत्प-
ज्ञानालोकेन अपनयतीति समासस्तस्य । ‘तपस्तेजोदीप्तलेडयस्य’ तपस्तेज एव दीप्ताः—उज्ज्वला लेडयाः—दीधि-
तयो यस्य । ‘ज्ञानोद्योतस्य’ इति गतार्थम् । ‘जगति’ लोके ‘भद्रं’ मङ्गलं भवतु । कस्य ? ‘दमसङ्घसूरस्य’
दमः—उपशमो भण्यते, तत्प्रधानः सङ्घसूर्यः दमसङ्घसूर्यस्तस्येति गाथार्थः ॥ १० ॥

साम्भतं सङ्ख्यस्यैव महत्तया समुद्ररूपकेण स्तवमाह—

20

भइं धिइवेलापरिगयस्स सज्झायजोगमगरस्स ।
अक्खोभस्स भगवओ संघसमुहस्स रुंदस्स ॥ ११ ॥

भइं० गाथा । व्याख्या—सहस्रमुद्रस्य भद्रं भवत्विति क्रिया । किम्भूतस्य ? ‘धृतिवैलापरिगतस्य’ धृतिः—
आत्मपरिणामः सैव वेला—वेदिका-जलान्तररमणलक्षणा मर्यादा वा तथा परिगतस्तस्य । ‘स्वाध्याययोगमकरस्य’
कर्मविदारणमहाशक्तिपुक्तत्वाद् स्वाध्याय एव मकरो यस्मिस्तस्य । ‘अज्ञोभ्यस्य’ परीषदोपसर्गसम्भवे निष्प- 25
कम्पस्य । ‘भगवतः’ समग्रैश्वर्यादियुक्तस्य । ‘रुन्दस्येति’ विस्तीर्णस्येति गाथार्थः ॥ ११ ॥

इदानीं सङ्ख्यस्यैव स्थिरतयाऽचलरूपकेण स्तुतिं कुर्वन्माह—

सम्भइंसणवइरददरुदगादावगाढपेढस्स ।
धम्मवसरयणमंडियचामीयरमेह्लगस्स ॥ १२ ॥

णियमूसियकणयसिलायलुज्जलजलंतचित्तकूडस्स ।

णंदणवणमणहरसुरभिसीलगांधद्धमायस्स ॥ १३ ॥

जीवदयासुंदरकंदरुहसियमुणिवरमईदइण्णस्स ।

हेउसयघाउपगलंतरत्तदित्तोसहिगुहस्स ॥ १४ ॥

संवरवरजलपगलियउज्झरपविरायमाणहारस्स ।

सावगजणपउररवंतमोरणच्चंतकुहरस्स ॥ १५ ॥

विणयणयपवरमुणिवरफुरंतविज्जुज्जलंतसिहरस्स ।

विविहगुणकप्परुक्खवगफलभरकुसुमाउलवणस्स ॥ १६ ॥

णाणवररयणदिप्यंतकंतवेरुलियविमलचूलस्स ।

वंदामि विणयपणओ संघमहामंदरगिरिस्स ॥ १७ ॥ [छर्हि कुल्यं]

- 10 सम्मद्दंस्सण० गाथा । व्याख्या—सम्यग्-अविपरीतं दर्शनं सम्यग्दर्शनम्, तदेव प्रथममोक्षाङ्गत्वात् सारत्वाद् वज्रं सम्यग्दर्शनवज्रम्, तदेव दृढं रूढं गाढं अवगाढं पीठं यस्य सङ्घमहामन्दरगिरेः स सम्यग्दर्शनवज्रदृढरूढगाढावगाढपीठस्तस्य वन्दे इति, द्वितीयायै षष्ठी प्राकृतशैल्या आर्षत्वाच्च, तं वन्दे इत्यर्थः । तत् सम्यग्दर्शनवज्रपीठं दृढमिति—निष्कम्पम्, शङ्कादिशैल्यरहितत्वात्; रूढमिति—दृढिसुगुणम्, प्रतिसमयं विभुधमानत्वात्
- 15 प्रश्नस्ताध्यवसायस्थानेषु वर्तनात्, गाढमिति—निषिद्धम्, तीव्रतत्त्वरुचिरूपत्वात् सुपुत्रदानरूपत्वादित्यर्थः, अवगाढमिति—निमग्नम्, जीवादिपदायुषु सम्यगवबोधरूपतया प्रविष्टमित्यर्थः । “ धम्मवरे ” इत्यादि धारयतीति धर्मः, धर्म एव वररत्नमण्डिता—प्रधानरत्नमण्डिता चामीकरमेखला यस्य स धर्मवररत्नमण्डितचामीकरमेखलाकः । क्रियायोजना पूर्ववदेवावसेया । इह धर्मो द्विविधः मूलगुणोत्तरगुणरूपः, तत्रोत्तरगुणधर्मो रत्नानि, मूलगुणधर्मस्तु चामीकरमेखलेति । तथा च न राजते मूलगुणधर्मचामीकरमेखला उत्तरगुणधर्मरत्नभूषणविकलेति गाथार्थः ॥ १२ ॥

- 20 नियमूसिय० गाथा । व्याख्या—इहोत्सृतशब्दस्य व्यवहितः प्रयोगो द्रष्टव्यः, तत्रैव भवति—नियम एव कनकशिलातलानि नियमकनकशिलातलानि, तेषुच्छिन्नतानि उज्ज्वलानि उज्वलन्ति विचान्त्येव प्राकृतशैल्या कूटानि यस्मिन् स तथाविधः । इह च नियमः इन्द्रियनोऽन्द्रियनियमः परिगृह्यते । उत्सृतानि अशुभाध्यवसायपरित्यागात् । उज्ज्वलानि प्रतिसमयं कर्ममलयिगमात् । ज्वलन्ति सदा सन्नार्थानुस्मरणरूपत्वात् । चित्त्यते यैस्तानि विचानि । उक्तं च—

- 25 चित्तरत्नमसंक्रिष्टमान्तरं धनमुच्यते । यस्य तन्मुपितं दोषैस्तस्य शिष्टा विपत्तयः ॥ १ ॥

[इति ।]

- वर्नं—वृक्षसमुदायः, नन्दनं च तद् वर्नं च नन्दनवनम्, तत्र नन्दन्ति यत्र सुरसिद्धदैत्यविद्याधरादयस्तद् नन्दनम्, वनमिति—अशोकसहकारादिजालम्, मनो हरतीति मनोहरम्, लतावितानविविधपुष्पफलप्रचालाद्युपपेतत्वात्, नन्दनवनं च तद् मनोहरं चेति “ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ” [पा. २. १. ५७] इति समासः,
- 30 तस्य सुरभिश्वासौ शीलान्धश्च सुरभिशीलान्धः तेनाऽऽप्नातः—व्याप्तौ यः स तथाविधस्तस्य । क्रिया पूर्ववत् ।

इह च सङ्ख्यमन्दरगिरीः सन्तोष एव नन्दनवनम्, तथाहि—नन्दन्ति तत्र साधव इति, तदेव विविधामर्षौष्यादिलब्ध-
पथेतत्त्वान्मनोहरं तस्य सुरभिशीलग्नान्ध एवेति, अथवा मनोहरत्वं सुरभिशीलग्नान्धविशेषणमिति गाथार्थः ॥ १३ ॥

जीवदद्या० गाथा । व्याख्या—जीवदयव सुन्दराणि स्व-परनिर्द्धृतिहेतुत्वात् कन्दराणि वस्तुतस्तपस्विनिल-
यत्वात्, तथाहि—“अहिंसाव्यवसिधतः तपस्वी” [] इति, मुनिवरा एव शक्यादिमृगपराजया-
न्यगेन्द्राः मुनिवरमृगेन्द्राः, उत—प्रावलयेन दर्पिताः उदरपिताः कर्मशत्रुजयं प्रति, उदरपिताश्च ते मुनिवरमृगेन्द्राश्चेति 5
विशेषणसमासः, जीवदयामुन्दरकन्दरेषु उदरपितमुनिवरमृगेन्द्रास्तैः आकीर्णः—व्याप्तो यस्तस्येति । ‘हेतुशत’ इत्यादि,
मगलन्ति च तानि रत्नानि च मगलद्रत्नानि, निस्पन्दवन्ति चन्द्रकान्तादीनि परिशृण्वन्ते, धातवः—कनकादिधातवो
शृण्वन्ते, धातवश्च मगलद्रत्नानि च धातु-मगलद्रत्नानि, दीप्ताश्च ता औषधयश्च दीर्घौषधयः, धातुमगलद्रत्नानि च
दीर्घौषधयश्च धातु-मगलद्रत्न-दीर्घौषधयः, ताः गुहासु यस्य स तथोच्यते । इह च सङ्ख्यमन्दरगिरी हेतुशतान्येव
धातवः, अन्वय-व्यतिरेकलक्षणश्च हेतवो शृण्वन्ते, मगलद्रत्नानि तु क्षायोपशमिकभावनिस्पन्दवन्ति श्रुतरत्नानि 10
शृण्वन्ते, दीर्घौषधयस्तु विशुद्धा आमर्षौष्यादयो शृण्वन्ते, गुहास्तु समवायाः प्ररूपणगुहा वा शृण्वन्ति इति
गाथार्थः ॥ १४ ॥

संवर० गाथा । व्याख्या—संवरश्चासौ वरश्च संवरवरः, संवरः—प्रत्याख्यानरूपः, सर्वमाणातिपातादिविनि-
ष्टृतिरूपत्वाद् वरः, असावेव कर्ममलक्षालनाद् जलमिव जलं संवरवरजलम्, तस्मात् प्रगलितं च तदुज्जरं च संवर-
वरजलमगलितोऽज्जरम्, तथा च संवरवरजलादुपचारतः प्रगलति श्रुतज्ञानाद्युज्जरमिति, तदेव प्रविराजमानः हारो 15
यस्य स तथाविधः । “सावगजणे”त्यादि, रवन्तश्च ते मयूराश्च रवन्मयूराः, प्रचुराश्च ते रवन्मयूराश्च प्रचुररव-
न्मयूराः, श्रावका एव जनास्त एव प्रचुररवन्मयूरास्तैरेत्यन्तीव कुहराणि यस्येति समासः । इह च स्तुति-स्तोत्र-
गन्धर्वादि रवणम्, कुहराणि शास्त्रमण्डपादीनि [इति] गाथार्थः ॥ १५ ॥

विणय० गाथा । व्याख्या—स्फुरन्त्यश्च ता विद्युतश्च स्फुरद्विद्युतः, विनयेन नताः विनयनताश्च
ते प्रवरमुनिवराश्चेति, त एव स्फुरद्विष्टृज्ज्वलन्ति शिवराणि यस्येति समासः । इह च विनयस्याऽऽन्तरतपोभेद- 20
त्वात् तपास्येव स्फुरन्ति, प्रावचनिकाश्च विशिष्टाचार्यादयः शिवराणि । “विविधगुणे”त्यादि, विविधा गुणा येषां ते
विविधगुणाः, विशेषणान्यधानुपपत्त्या साधवो शृण्वन्ते, त एव विशिष्टकुलोत्पन्नत्वात् सत्त्वसुषुप्तेहेतुधर्मफलप्रदानाच्च
कल्पवृक्षकाः विविधगुणकल्पवृक्षकाः, फलभरश्च कुसुमानि च फलभर-कुसुमानि, विविधगुणकल्पवृक्षकाणां फलभर-
कुसुमानि विविधगुणकल्पवृक्षकफलभर-कुसुमानि तैराकुलानि वनानि यस्येति समासः । इह च फलभरो धर्मफलभरो
शृण्वते, कुसुमानि ऋद्धयः, वनानि गन्धा इति गाथार्थः ॥ १६ ॥ 25

णाण० गाथा । व्याख्या—ज्ञानं च तद् वरं च ज्ञानवरम्, परमनिर्द्धृतिहेतुत्वात् तदेव रत्नम्, [नेन] दीप्यमाना
कान्ता विमला वैहृयंभुडा यस्य स तथाविधः । अत्र दीप्यमानेति यथावस्थितजीवादिपदार्थस्वरूपोपलम्भात्,
कान्ता भव्यजनमनोहारित्वाद्, विमला तदावस्थाभावात् । वन्दे इति विनयप्रणतः सङ्ख्यमन्दरगिर्यन्माहात्म्य-
मिति, कर्मणि वा षष्ठीति गाथार्थः ॥ १७ ॥

एवं सङ्ख्यमन्स्कारा अपि प्रतिपादिताः । साम्प्रतमावलिका प्रतिपाद्यते । सा च त्रिविधा—तीर्थकरावलिका 30
१ गणधरावलिका २ स्यविरावलिका ३ च । तत्र तीर्थकरावलिकां प्रतिपादयन्माह—

[सुत्तं ३]

वंदे उसभं अजिअं संभवमभिणंदणं सुमति सुप्पभ सुपासं ।

ससि पुप्फदंत सीयल सिज्जंसं वासुपुज्जं च ॥ १८ ॥

विमलमणंतइ धम्मं संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च ।

5 सुणिसुव्वय णमि णेमी पासं तह वद्धमाणं च ॥ १९ ॥ [जुम्मं]

३. वंदे० गाहा । विमल० गाहा । गाथाद्वयमपि निगदसिद्धम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ गणधरावल्किा तु या यस्य तीर्थकृतः सा प्रथमानुयोगानुसारेण द्रष्टव्येति । महावीरवर्द्धमानस्य पुनरियम्—

[सुत्तं ४]

पढमेत्थ इंदभूर्इ वीओ पुण होइ अग्गिभूइ ति ।

10 तइए य वाउभूर्इ तओ वियत्ते सुहम्मं य ॥ २० ॥

मंडिय-मोरियपुत्ते अकंपिए चैव अयलभाया य ।

मेयज्जे य पभासे य गणहरा हुंति वीरस्स ॥ २१ ॥ [जुम्मं]

॥ २० ॥ २१ ॥ साम्भतं वर्त्तमानतीर्थाधिपतेः स्थविरावल्किां प्रतिपादयन्प्रतिशयभक्त्या सामान्यतस्तच्छा-
सनस्तवं प्रतिपादयन्नाह—

15

[सुत्तं ५]

णेव्वुइपहसासनयं जयइ सया सव्वभावदेसणयं ।

कुसमयमयणासनयं जिणंदवरवीरसासनयं ॥ २२ ॥

५. निव्वुइपह० रूपकम् । अस्य व्याख्या—निर्द्वैतिपथशासनकमिति, अत्र यद्यपि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्याणि
निर्वाणमार्गस्तथाप्यनेन दर्शन-चरणपरिग्रहः, यत आह—जयति सदा 'सर्वभावदेशनकं' सर्वभावरूपकमित्यर्थः,
20 अनेन तु ज्ञानपरिग्रहः । अथवा 'निर्द्वैतिपथशासनकम्' इत्यनेन सम्पूर्णनिर्वाणमार्गकथनमेवेति शक्यते, 'जयति
सदा सर्वभावदेशनकम्' इत्यनेन तु विधि-प्रतिषेधद्वारेण 'न निर्द्वैतिमार्गव्यतिरेकेण किञ्चिदस्ति' इति ख्याप्यते ।
यत एवम्भूतमत एव 'कुसमयमदनाशनकं' कुसिद्धान्तावलेपनाशनकमित्यर्थः । 'जिनेन्द्रवरवीरशासनकं' चरमतीर्थ-
करभवचनमिति हृदयम् । अयं रूपकार्यः ॥ २२ ॥

अधुना यैरविच्छेदेन स्थविरैः क्रमेणैदंयुगीनानामानीतं तदावल्किां प्रतिपादयन्नाह—

25

[सुत्तं ६]

सुहम्मं अग्गिचेसाणं जंबूणामं च कासवं ।

पभवं कच्चायणं वंदे वच्छं सेज्जंभवं तहा ॥ २३ ॥

६. सुधम्मं० गाहा । व्याख्या—इह स्थविरावल्भिका सुधर्मस्वामिनः प्रवृत्ता । उक्तं च—“ तित्थं च सुधम्मालो विरवच्चा गणहरा सेसा । ” [] इति । अतस्तमेव पुरस्कृत्येवं प्रतिपाद्यते—सुधर्मं भगवद्गणवरं ‘अग्निवैशायनं’ इति अग्निवैशायनसगोत्रम् । तथा तच्छिष्यं जम्बूनामानं च ‘काश्यपं’ काश्यपगोत्रम् । तस्मात् ‘प्रभवं’ तच्छिष्यं प्रभवनामानं ‘काश्यायनं’ इति काश्यायनसगोत्रम् । वन्दे इति क्रिया प्रत्येकमभिसम्बध्यते । तथा तच्छिष्यं “ वच्छं ” इति वत्ससगोत्रं शय्यम्भवं तथेति गाथार्थः ॥ २३ ॥

5

जसभहं तुंगियं वंदे संभूयं चैव मादरं ।
भद्रबाहुं च पाइणं थूलभहं च गोयमं ॥ २४ ॥

जसभहं० गाहा । व्याख्या—‘शय्यम्भवशिष्यं यगोमदं तुङ्गिकं’ इति तुङ्गिकगणं—व्याघ्रापत्यसगोत्रं वन्दे । अस्य च द्वौ प्रधानशिष्यौ बभूवतुः, तद्यथा—सम्भूतविजयो मादरसगोत्रः, भद्रबाहुश्च प्राचीनसगोत्र इति । तथा चाह—सम्भूतं चैव मादरं भद्रबाहुं च प्राचीनमिति । तत्र सम्भूतस्य विनेयः स्थूलभद्रो गौतमसगोत्र आसीत् । आह च—स्थूलभद्रं च गौतम- 10 मिति गाथार्थः ॥ २४ ॥

एलावच्चसगोतं वंदामि महागिरिं सुहृत्थे च ।
तत्तो कोसियगोतं बहुलस्स सरिख्वयं वंदे ॥ २५ ॥

एलावच्चस० गाहा । व्याख्या—स्थूलभद्रस्यापि द्वावेव प्रधानशिष्यौ । तद्यथा—एलापत्यसगोत्रो महागिरिः वशिष्ठसगोत्रः मुहूर्त्ती च । यत् आह—एलापत्यसगोत्रं वन्दे महागिरिं सुहृत्स्तिनं च । तत्र सुहृत्स्तिनः सुस्थित-सुप्रतिबुद्धा- 15 दिक्कमेणाऽऽवल्भिका यथा दसाम् [अ० ८ सू० २१०] तथैव द्रष्टव्या, न तथेहाधिकारः, महागिर्यावल्भिकेहाधि-कारः । तत्र महागिरिर्बहुल-बलिस्सहो कौण्डिकसगोत्रो यमलभ्रातरौ द्वौ प्रधानशिष्यौ बभूवतुः । तयोरेपि बलिस्सहः प्रावचनीय आसीत्, अत आह—ततः कौण्डिकगोत्रं बहुलस्य सदृशत्रयसं यमलभ्रात्, वन्द इति गाथार्थः ॥ २५ ॥

हारियगोतं साइं च वंदिमो हारियं च सामज्जं ।
वंदे कोसियगोतं संबिलं अज्जजीयधरं ॥ २६ ॥

20

हारिय० गाहा । व्याख्या—बलिस्सहशिष्यं हारीतसगोत्रं स्वाति च वन्दे । तथा स्वातिशिष्यं ‘हारीतं च’ हारीत-सगोत्रमेव श्यामार्यम् । [श्यामार्यं] शिष्यं च वन्दे कौण्डिकसगोत्रं शाण्डिल्यम् । किम्भूतम् ? आर्यजीतधरं आराद् यातं सर्वदेयधर्मेभ्य इत्यार्यम्, जीतमिति—द्वत्रम्, जीतं मर्यादा व्यवस्था स्थितिः कल्प इति पर्यायाः, मर्यादादिकारणं च द्वत्रमिति भावनीयम्, धारयतीति धरः, आर्यजीतस्यः धरः आर्यजीतधरः तम् । अन्ये तु व्याचक्षते—किल 25 शाण्डिल्यस्य शिष्यः आर्यसगोत्रो जंतधरनामा हारिरासीदिति गाथार्थः ॥ २६ ॥

तिसमुद्दत्तायकिर्त्तिं दीव-समुद्देसु गहियपेयालं ।
वंदे अज्जसमुद्दं अक्खुभियसमुद्दगंभीरं ॥ २७ ॥

तिसमुद्द० गाहा । व्याख्या—शाण्डिल्यशिष्यं वन्दे, आर्यसमुद्रमिति क्रिया । किम्भूतम् ? ‘त्रिसमुद्दत्तरयात-कीर्त्तिं’ पूर्व-वक्षिणा-ऽपराक्षयः समुद्राः उचरतस्तु हिमवान् वैताडयो वेति, अत्रान्तरे मथितकीर्त्तिमित्यर्थः । ‘द्वीप-

समुद्रेषु गृहीतप्रमाणं' अतिशयेन द्वीपसागरप्रज्ञानविज्ञायकमिति भावः । अश्लुभितसमुद्रवद् गम्भीरो अश्लुभितसमुद्र-
गम्भीरः अतस्तमिति गाथार्थः ॥ २७ ॥

भणगं करगं झगं पभावगं णाण-दंसणगुणाणं ।
वंदामि अज्जमंगुं सुयसागरपागं धीरं ॥ २८ ॥

- 5 भणगं० गाहा । व्याख्या—आर्यसमुद्रशिष्यं वन्दे आर्यमङ्गुमिति योगः । किम्भूतम् ?—'भणकं' कालिकादि-
सूत्रार्थं भणतीति भणः, स एव प्राकृतशैल्या भणकस्तम् । 'कारकं' कालिकादिसूत्रोक्तमेवोपधिप्रत्युपेक्षणादिक्रिया-
कलापं करोतीति कारकस्तम् । 'ध्यातारं' धर्मध्यानं ध्यायतीति ध्याता तम् । इद्वीयतः कारकमित्युक्ते प्रधानपर-
लोकान्नताख्यापनार्थं ध्यानस्य ध्यातारमिति विशेषाभिधानम् । यत् इत्यम्भूतोऽत आह—प्रभावकं 'ज्ञान-दर्शन-
गुणानां' यथावस्थितपदार्थावबोधार्थिनाम्, एकग्रहणात् तज्जातीयग्रहणात् चरणपरिग्रहः । श्रुतसागरपारगं धीर-
10 मिति गाथार्थः ॥ २८ ॥

णाणम्मि दंसणम्मि य तव विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं ।
अज्जाणंदिल्लखमणं सिरसा वेदे पसणमणं ॥ २९ ॥

णाणम्मि० गाहा । व्याख्या—आर्यमङ्गुशिष्यं आर्यनन्दिल्लक्षणं शिरसा वन्दे प्रसन्नमनसम् । किम्भूतम् ?—
ज्ञाने दर्शने च तपसि विनये च, अनेन चरणमाह । नित्यकालं 'उद्युक्तं' अप्रमादिनमिति गाथार्थः ॥ २९ ॥

- 15 वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जाणागहत्थीणं ।
वागरण-करण-भंगिय-कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥ ३० ॥

वड्ढउ० गाहा । व्याख्या—'वर्द्धतां' वृद्धिमुपयानु । कोऽसौ ? 'वाचकवंशः' तत्र विनेयेभ्यः पूर्वगतं सूत्र-
मन्यच्च वाचयन्तीति वाचकाः तेषां वंशः—भाविपुरुषपर्वप्रवाहः । किम्भूतः ? यशोवंशः, अनेन विपक्षव्यवच्छेदमाह ।
तथाहि—अलमयशःप्रधानस्य संसारहेतोः परमशुनिविश्रुतलिङ्गविडम्बकस्य वृद्धयेति । केषां सम्बन्धिसम्भूतः ? आर्य-
20 नन्दिल्लक्षणशिष्याणां आर्यनागहस्तिनाम् । किम्भूतानाम् ? 'व्याकरण-करण-भङ्गिक-कर्मप्रकृतिप्रधानानां' तत्र व्या-
करणं—प्रश्रव्याकरणं शब्दप्राप्तं वा, करणं—पिण्डविशुद्ध्यादि, उक्तं च—

पिंडविसोहो ४ समिती ५ भावण १२ पडिमा १२ य इंदियणिरंहो ५ ।

पडिल्लेहण २५ गुत्तीभो ३ अभिगहा ४ चैव करणं तु ॥ १ ॥ [ओषनि. गा. ३]

भङ्गिकाः—चतुर्भङ्गिकाद्यास्तच्छ्रुतं वा, कर्मप्रकृतिः प्रतीता, एतेषु प्ररूपणामधिकृत्य प्रधानानामिति
25 गाथार्थः ॥ ३० ॥

जच्चंजणधाउसमप्पहाण मुद्दीय-कुवल्लयनिहाणं ।
वड्ढउ वायगवंसो रेवइणक्खत्तणामाणं ॥ ३१ ॥

जच्चंजणधाउसमप्पहाण० गाहा । व्याख्या—जात्यक्षासावज्जनधातुश्चेति समासः, तत्समा प्रभा—देहच्छाया
येषां ते तथाविधास्तेषाम् । मा भूदत्यन्तकृष्णसम्बल्यस्तत् आह—'मुद्दिका-कुवल्लयनिधानां' शकसरसद्रासा-नीलोत्पल-

निभानामित्यर्थः । रत्नविशेषः कुक्कुलमित्यन्त्ये, तथाऽप्यविरोधः । वर्द्धतां वाचकवंशः । केषाम् ? आर्यनागहस्ति-
शिष्याणां 'रेवतिनक्षत्रनाम्नां' रेवतिवाचकानामिति गार्थार्थः ॥ ३१ ॥

अयलपुरा णिक्स्वन्ते कालियसुयआणुओगिए धीरे ।
वंमहीवग सीहे वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥ ३२ ॥

अयलपुरा० गाहा । व्याख्या—अचलपुराद् निष्क्रान्तान् । कालिकश्रुतानुयोगेन नियुक्ताः कालिकश्रुतानु- 5
योगिकास्तान्, यद्वा कालिकश्रुतानुयोगे एषां विद्यत इति समासस्तान् कालिकश्रुतानुयोगिनः । 'धीरान्' स्थि-
रान् । 'ब्रह्मद्रीपिकान् सिद्धान्' ब्रह्मद्रीपिकाशास्त्रोपलक्षितान् सिद्धाचार्यान् रेवतिवाचकशिष्यान् । वाचकपदं तत्कालापेक्षया
'उत्तमं' प्रधानं प्राप्तानिति गार्थार्थः ॥ ३२ ॥

जेसि इमो अणुओगो पयइ अज्जा वि अइहभरहम्मि ।
बहुनगरनिगयजसे ते वंदे खंदिलायरिण ॥ ३३ ॥

जेसि० गाथा । व्याख्या—येषामयमनुयोगः प्रचरति अद्या'पदंभरते वैतादद्यादारतः । बहुनगरेषु निर्गतं-
प्रसिद्धं यशो येषां ते बहुनगरनिर्गतयशसः तान् वन्दे सिद्धवाचकशिष्यान् स्कन्दिलाचार्यान् ।

कहं पुण तेसिं अणुओगो ?, उच्यते, धारससंवच्छरिणं महन्ते दुग्भिक्खे काले भस्सद्वा
फिडियाणं गहण-गुणण-ऽणुप्येहाऽभावतो सुत्ते विप्पणट्ठे पुणो सुभिक्खे काले जाते महुराणं महन्ते
समुदुणं स्वदिलायरियप्पमुहसंघेण 'जो जं संभरइ'त्ति एवं संवडितं कालियसुयं । जम्हा एणं महुराते 15
कयं तम्हा माहुया वायणा भन्नति । सा य खंदिलायरियसम्मत्त त्ति काउं तस्संनिओ अणुओगो भण्णति ।
अने मणंति जहा- मुयं णो णट्ठं, तम्मि दुग्भिक्खकाले जे अन्ने पहणा अणुओगधरा ते
विणट्ठा । एगे खंदिलायरिणं संघरे । तेण महुराणं पुणो अणुओगो पवस्सिओ त्ति माहुरा वायणा भन्नइ ।
तस्संनिओ य अणुओगो भण्णइ त्ति गार्थार्थः ॥ ३३ ॥

ततो हिमवंतमहंतविक्रमं धीपरकममणंतं ।

सज्जायमणंतधरं हिमवंतं वंदिमो सिस्सा ॥ ३४ ॥

तत्तो० गाहा । व्याख्या—ततः स्कन्दिलाचार्यशिष्यं हिमवंतं वन्दे शिरसेति क्रिया । किम्भूतम् ? 'हिमवन्महा-
विक्रमं' हिमवत इव महाविक्रमः—विदारव्याप्यादिलक्षणो यस्य स तथाविधस्तम् । "धीपरकममणंतं" ति अन-
न्तश्रुतिपराक्रमम्, प्राकृतशैल्या तु अन्यथोपन्यासः, अनन्तः श्रुतिप्रधानः पराक्रमः—कर्मशत्रुजयो यस्य स तथा- 25
विधस्तम् । "सज्जायमणंतधरं" ति 'अनन्तस्वाध्यायधरं' धरतीति धरः, अनन्तगम-पर्यायत्वादनन्तं—सूत्रम्, तदि-
षयः स्वाध्यायस्तस्य धर इति ममासः तमिति गार्थार्थः ॥ ३४ ॥

कालियसुयअणुओगस्स धारए धारए य पुव्वाणं ।

हिमवंतखमासणे वंदे णागज्जुणायरिण ॥ ३५ ॥

कालिय० गाहा । व्याख्या—कालिकश्रुतानुयोगस्य धारकान् । धारकांश्च 'पूर्वाणां' उपादादीनाम् । हिम- 30
कक्षमाश्रमणान् वन्दे । तथैतच्छिष्यान्नेव वन्दे नागार्जुनाचार्यानि गार्थार्थः ॥ ३५ ॥ किम्भूतान् ?—

मिउ-महवसंपण्णे अणुपुत्विं वायगतणं पत्ते ।
ओहसुयसमायरए णागज्जुणवायए वंदे ॥ ३६ ॥

मिउ० गाहा । व्याख्या - मृदु-भार्दवसम्पन्नान्, उपलक्षणतान्मृदुत्वस्य कान् [सम्पन्नान्]? समा-भार्दवा-SS-
र्जव-सन्तोषसम्पन्नानित्यर्थः । 'आनुपूर्व्यां' वयः-पर्यायकालगोचरया वाचकत्वं प्राप्तान् ।

5 ऐदंयुगीनानामपि सामाचारीप्रदर्शनपरमेतत्, न चापुष्टं द्वितीयपदमाश्रित्यैदंयुगीनाना-
मपि युज्यते कालोचिन्तानुपूर्वीं विहाय क्वचिदप्याचार्यत्वाचारोपणम्, महापुरुषाणां गौतमादीनामा-
शातनाप्रसङ्गात्, कृतं प्रसङ्गेन, संसार एव दण्डो भगवदाज्ञावितथकारिणामिति ।

'ओघश्रुतसमाचरकान्' ओघश्रुतं-उत्सर्गश्रुतं तत् समाचरन्ति ये ते तथाविधास्तान् नागार्जुनवाचकान्
वन्दे इति गायार्थः ॥ ३६ ॥

10 वरकणगतविय-चंपयविमउलवस्कमलगम्भसरविण्णे ।
भवियजणहिययदइए दयागुणविसारए धीरे ॥ ३७ ॥
अद्धभरहण्णहाणे बहुविहसज्झायसुमुणियपहाणे ।
अणुओइयवस्वसहे णाइलकुलवंसणंदिकरे ॥ ३८ ॥
भूअहिययप्पगम्भे वंदे हं भूयदिण्णमायरिए ।

15 भवमयवोच्छेयकरे सीसे णागज्जुणरिसीणं ॥ ३९ ॥ [विसेसयं]

वरकणग० गाहा । अद्ध० गाहा । भूअहियय० गाहा । व्याख्या-इदं गाथात्रयमपि प्रायो निगदसि-
द्धमेव । नवरम्-'मन्यजनद्वयदयितान्' मन्यजनद्वयवल्लभान् ॥ तथा मुविज्ञातबहुविधस्याध्यायप्रधानान्,
बहुविध आचारादिभेदान् स्वाध्यायः । अनुयोजिता यथोचिते वैयावृत्यादीं वरदृषभाः-सुसाधवो यैस्तान् । नागेंद्र-
कुलवंशानन्दिकरानिति, प्रमोदकरानित्यर्थः ॥ 'भूतहितप्रगल्भान्' अनेकधा सत्त्वहितनिपुणानिति भावः ।

20 वन्देऽहं भूतदिनाचार्यामिति, अत्रानुस्वारोऽलाक्षणिकः । 'भवमयव्यवच्छेदकरान्' इति सदुपदेशादिना संसार-
भयव्यवच्छेदकरणशीलान् ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

सुमुणियणिच्चा-ऽणिच्चं सुमुणियसुत्त-ऽत्थधारयं णिच्चं ।
वंदे हं लोहिच्चं सन्भावुभावणातच्चं ॥ ४० ॥

सुमुणिय० गाहा । व्याख्या-भूतदिनाचार्यशिर्यं "वंदे हं लोहिच्चं" इति क्रिया । किम्भूतम् ? सुप्ठु विज्ञातं

25 नित्या-ऽनित्यं येन स तथाविधस्तम् । किं विज्ञातम् ?, विशेषणान्यथाऽनुपपत्तेः वस्तु इति गम्यते, यथा 'सर्वत्सा
धेनुः' इत्युक्ते गौः, वदवाया विशेषणायोगादिति । तच्च वस्तु सचेतना-ऽचेतनम् । तत्र सचेतनमात्मा, चेतनता-
द्यपेक्षया नित्यः, नारक-तिर्यह-नरा-ऽनरपर्यायापेक्षया चानित्यः । एवमचेतनमप्यन्वादि विज्ञातव्यम्, तथाहि-
परमाणुरजीवत्-सृष्टतादिभिर्नित्यः, वर्णादिभिर्द्वेष्युक्तादिभिस्तनित्य इति । उक्तं च—

सर्वव्यक्तियु नितयं क्षणे क्षणेऽन्यतमथ च न विशेषः । सत्योश्चित्यपचित्योराकृति-जातिव्यवस्थानात् ॥ १ ॥

अत्र बहु वक्तव्यम्, तच्च नोच्यते, ग्रन्थविस्तरभयात्, गमनिकामात्रप्रधानोऽयमारम्भ इति । अनेन न्याय-
वेदित्वाद् । 'सुविज्ञातसूत्रा-ऽर्थधारकम्' इत्यनेन त्वोच्यत एव स्वभ्यस्तसूत्रा-ऽर्थधारकमिति । 'सद्भावोद्भावनातथ्यम्'
इत्यनेन सम्पत्प्रत्ययत्वमाहेति गार्थार्थः ॥ ४० ॥

अत्य-महत्त्वस्वाणी सुसप्रणवक्त्राणकहणणेव्वाणी ।

पयतीए महुरवाणी पयओ पणमामि दूसगणी ॥ ४१ ॥

अत्यमहत्त्वस्वाणी० गाहा । व्याख्या—ओहित्यशिक्ष्यं 'प्रयतः' सन् अनुत्सृष्टप्रयत्नपरः सन्नित्यर्थः,
प्रणमामि दुष्यगणिनमिति क्रिया । किम्भूतम् ? 'अर्थ-महार्थस्त्वानि' खानिरिव खानिः, अर्थ-महार्थानां स्वानिः अर्थ-
महार्थस्त्वानिः तम् । तत्र भाषाभिधेया अर्थाः, विभाषा-वार्तिकगोचरा महार्था इति । सुभ्रमणव्याख्यानकथने निर्द्वे-
तिर्यस्य स तथाविधस्तम् । तत्र व्याख्यानं-प्रतीतम्, कथनं-संशये सति विनेयप्रश्नोचरकालभावि व्याकरणम्,
अथवा व्याख्यानम्-अनुयोगः, कथनं-ओच्यतो धर्मस्य, धर्मकथेत्यर्थः । 'प्रकृत्या' स्वभावेन 'मधुरवाचं' 10
मधुरगिरमिति गार्थार्थः ॥ ४१ ॥

सुकुमाल-कोमलतले तेसि पणमामि लक्खणपसत्थे ।

पादे पावयणीणं पाडिच्छगसएहि पणिवइए ॥ ४२ ॥

सुकुमालकोमल० गाहा । निगदसिद्धा ॥ ४२ ॥ एवमावलिकाक्रमेण महापुरुषाणां स्तत्रमभिषाय सम्पत्ते
सामान्येनैव श्रुतधरनमस्कारं प्रतिपिपादयिषुराह —

15

जे अण्णे भगवंते कालियसुयआणुओगिए धीरे ।

ते पणमिऊण सिरसा णाणस्स परूवणं वोच्छं ॥ ४३ ॥

॥ धेराबलिया सम्मत्ता ॥

जे अन्ने भगवंते० गाहा । व्याख्या—'ये चान्ये' अतीता भाविनश्च 'भगवन्तः' श्रुतरत्नोपपेतत्वात्
समश्रैश्वर्यादिमन्त इत्यर्थः । कालिकश्रुतानुयोगिनः 'धोराः' सत्त्वन्तस्तान् प्रणम्य 'शिरसा' उच्यमानेन 'ज्ञानस्य' 20
आभिनिवोधिक्रादेः प्ररूपणं वक्ष्ये । क एवमाह ? दूष्यगणिशिष्यो देववाचक इति गार्थार्थः ॥ ४३ ॥

इदं च पञ्चप्रकारं ज्ञानम्, एतत्प्रतिपादकं चाध्ययनं योग्येभ्य एव विनेयेभ्यो दीयते, नायोग्येभ्य इत्यतो
योग्या-ऽयोग्यविभागोपदर्शनार्थमेव तावदिदमाह —

[सुत्तं ७]

सेलघण १ कुडग २ चालणि ३ परिपूणग ४ हंस ५ महिस ६ मेसे ७ य ।

मसग ८ जल्लग ९ बिराली १० जाहग ११ गो १२ भेरि १३ आभीरी ॥ ४४ ॥

सा समासओ तिविहा पणत्ता, तं जहा—जाणिया १ अजाणिया २ दुविवयइदा ३ ।

७. सेलघण० गाहा । व्याख्या—आह—शुभाध्ययनप्रदानाधिकारे समभावव्यवस्थितानां सर्वसत्त्वहितायो-
द्यतानां महापुरुषाणामलं योग्या-ऽयोग्यविभागानिरीक्षणेन, न हि परहितार्थमिह महादानोच्यता महीया-

25

सोऽर्थिगुणमपेक्ष्य प्रदानक्रियायां प्रवर्त्तन्ते दयालव इति, अत्रोच्यते, ननु यत् एव शुभाध्ययनप्रदानाधिकारे समभावव्यवस्थिताः सर्वसंस्मृतितायोद्यता महापुरुषाश्च गुरवः अत एव योग्याऽयोग्यविभागोपदर्शनं न्याय्यम्, मा भूदयोग्यप्रदाने तत्सम्यक्षियोगासमार्थिजनानर्थं इति, “न खलु तत्त्वतोऽनुचितप्रदानेनाऽऽप्यासहेतुनाऽ-
 5 शिवेकिनमर्थिजनमनुयोजयन्तोऽप्यनवगतपरार्थसम्पादनोपाया अवन्ति दयालवः” इत्यवधूय मिथ्या-
 भिमानमालोच्यतामेतदिति । आह—क इवायोग्यप्रदाने दोषः ? इति, उच्यते, स ह्यचिन्त्यचिन्तामणिकल्पमनेकम-
 वशतसहस्रोपाचानिष्टदृष्टाष्टकर्मराशिजनितदोर्गत्यविच्छेदकमपीदमयोग्यत्वादवाप्य न विधिवदासेवते, लाघवं चांस्य
 समापादयति, ततो विधिसमासेवकः कल्याणमिव महदकल्याणमासादयति । उक्तं च—

आमे घडे निहितं जहा जलं तं घडं विणासेइ । इय सिद्धंतरहस्सं अप्पाहारं विणासेइ ॥ १ ॥

[] इत्यादि ।

10 अतोऽयोग्यदाने दातृकृतमेव वस्तुतस्तस्य तदकल्याणमित्यलं प्रसङ्गेन । प्रकृतं प्रस्तुतम्—तत्राधिकृतगायां
 प्रपञ्चत आबन्धकानुयोगो व्याख्याम्यामः । इह पुनः स्थानाशून्यार्थं भाष्यगाथाभिर्व्याख्यायत इति—

‘उल्लेउण न सक्को’ गज्जइ इय मुग्गसेलओ रन्ने । तं संबद्दगमेहो सोउं तस्सोवरिं पडइ ॥ १ ॥

‘रविओ’ चि ठिओ मेहो ‘उल्लो मि? ण व?’ चि गज्जइ य सेल्लो । ‘सेल्लसमं गाहेस्सं’ निव्विज्जइ गाहगो एवं ॥ २ ॥

आपरिए सुत्तम्मि य परिवआओ, सुत्त-अत्थपल्लिमंथो । अन्नेसिं पि य हाणी, पुट्टा वि न द्दुग्गा वा वंझा ॥ ३ ॥

15 बुट्ठे वि दोणमेहे ण कण्ठभोमाउ लोट्टए उदगं । गहण-धरणासमत्ये इय देयमच्छिचकारिम्मि ॥ ४ ॥

भावि य इयरे य क्खडा, अपसत्थ-पसत्थभावि या दुविहा । पुण्णाईहि पसत्था, सुर-तेल्लईहि अपसत्था ॥ ५ ॥

वम्मा य अवम्मा वि य, पसत्थ वम्मा य होति अग्गेज्जा । अपसत्थ अवम्मा वि य, तण्णडिवक्कवा भवे जेज्जा ॥ ६ ॥

कुप्पवयण-ओसन्नेहि भावि या एवमेव भावक्खडा । संविग्गेहिं पसत्था वम्माऽवम्मा य तह चेव ॥ ७ ॥

जे पुण अभावि या खलु ते चतुथा, अधविमो गमो अन्नो । छिट्ठक्खड भिन्न ग्बंधे सगाले य परुवणा तेसिं ॥ ८ ॥

20 सेल्ले य छिट्ठि चालिणि मिहो क्खडा सोउमुट्टियाणं तु । छिट्ठाऽऽह ‘तत्थ विट्ठो सुमरिंसु, सरामि णेदाणि’ ॥ ९ ॥

‘एणेण विसइ वीएण णोइ कणेण’ चालणी आह । ‘घन्नं त्य’ आह सेल्लो ‘जं पविसति नीति वा तुज्जं’ ॥ १० ॥

तावसखउरकडिणयं चालणिपडिवक्खि ण सवइ दवं पि । परिपूणगम्मि य गुणा गलंति, दोसा य चिट्ठंति ॥ ११ ॥

सव्वन्नुप्पामन्ना दोसा हु न संति जिणमते केइ । जं अणुवउत्तकहणं, अपत्तमासज्ज व हवेज्जा ॥ १२ ॥

अंबचणेण जीहाए कूचिया होइ खीरमुदगम्मि । हंसो मोचूण जलं आवियइ पयं, तह सुसीसो ॥ १३ ॥

25 सयमवि न पियइ महिसो, ण य जूहं पियइ लोलियं उदगं । विग्गाह-विकहाहि तथा अथक्पुच्छाहि य कुसीसो ॥ १४ ॥

अवि गोपयम्मि वि पिण सुट्ठिओ तणुयत्तणेण तौडस्स । न करेइ कलुसतोये मेसो, एवं सुसीसो वि ॥ १५ ॥

मसउत्तवं तुदं जच्चादिपिहं निच्छुक्कमए कुसीसो उ । जल्लगा व अदमितो पियइ सुसीसो वि सुयणाणं ॥ १६ ॥

छट्ठेउं भूमीए खीरं जह पियइ दुट्ठमज्जारी । परिमुट्टियाण पासे सिक्खइ एवं विणयमंसी ॥ १७ ॥

पाउं थोवं थोवं खीरं पासाइं जाहओ लिहइ । एमेव जियं काउं पुच्छइ मइमं, न खिज्जेइ ॥ १८ ॥

30 अण्णो दोज्झिहि कल्लं, णिरत्थयं किं वहामि से चारिं? । चउचरणगवी उ मत्ता, अवक्ख हाणी य बद्दुगारणं ॥ १९ ॥

मा मे होज्ज अक्णो, गोवज्जा, मा पुणो व न दल्लिज्जा । वयमन्नि दोज्जामो पुणो, अणुमाहो अक्खद्वे वि ॥ २० ॥
 सीसा पडिच्छमाणं भरो चि, ते वि यद्दु सीसगभरो चि । ण करेति सुत्तहाणो, अक्खत्थ वि दुल्लभं तेस्सि ॥ २१ ॥
 कोमुदिया १ संग्गामिय २ उच्चभूतियगा ३ उ तिष्णि भेरीओ । कण्हस्साऽऽसी उ तथा, असिवोवसमी चउत्थी उ ॥ २२ ॥
 सकपसंसा, गुणगाहि केसया, णेमिबंद, मुणदंता । आसरयणस्स हरणं, कुमारभगे य, पुयजुज्जं ॥ २३ ॥
 णेहि जिओ मि चि अहं, असिवोवसमीइ संपयाणं च । छम्मासिययोमणया पसमइ, ण य जायए अणो ॥ २४ ॥ 5
 आगंतु वाधिखोभे, महिइडि भोलेण, कंथ, दंडणता । अट्ठम आराहण, अन्न भेरि, अन्नस्स ठवणं च ॥ २५ ॥
 झक्कं तथा अगहिते, दुपरिमाहिंयं कयं तथा, कल्लहो । पिट्ठण, अइचिर, विकिय गतेसु चोरा य, ऊणग्यं ॥ २६ ॥
 मा णिण्हव इय दातुं, उवत्तुंजिय देहि, किं विचितेसि ? । विचामेल्लियदाणे किलम्मसी तं, चऽहं चेव ॥ २७ ॥
 भणिया जोग्गा-ऽजोग्गा सीसा गुरवो य, तत्थ दाण्हं पि । वेयालियगुण-दोसो, जोगो जोगस्स भासेज्जा ॥ २८ ॥
 [विशेषा. गा. १४५५-२२, कल्पमा. गा. ३३५-६१] 10

एवं तावद् विभागतो योग्या-ऽयोग्यविनेयविभोगोपदर्शनं कृत्वा साम्प्रतं सामान्येन पर्षदं प्ररूपयन्माह—

सा समस्तओ निविहा पन्नन्तेत्यादि सूत्रम् । अस्य व्याख्या—‘सा’ पर्षत् ‘समासतः’ संक्षेपेण ‘त्रिविधा’ त्रिपकारा ‘प्रज्ञप्ता’ प्ररूपिता । कैः ? तीर्थकर-गणधरैरिति गम्यते । ‘तद्यथा’ इत्युदाहरणोपन्यासासार्थः । ‘ज्ञिका’ इति, अत्र “ज्ञा अवबोधने” इत्यस्य “इगुपपज्ञामीकिरः कः” [पा. ३. १. १३५] इति कर्मन्त्ययः, “आतो लोप इटि च विहर्ति” [पा. ६. ४. ६४] इत्याकारलोपः; परगमनम्, टाए, जानातीति ज्ञा, कर्मन्त्ययः, “प्रत्ययस्थात् 15 कान् पूर्वस्थात् इदाप्यसुपः” [पा. ७. ३. ४४] इति इच्चम्, ‘ज्ञिका’ परिज्ञानवती । न ज्ञिका ‘अज्ञिका’ तद्विलक्षणम् । ‘दुर्विदग्धा’ मिथ्यावलेपगर्भा । तस्थिमा जाणिया—

गुण-दोसविसेसण्णु, अणभिग्गाहिया य कुस्सुति-मएसु । एसा जाणगपरिसा, गुणतच्छिळा अगुणवज्जा ॥ १ ॥

[कल्पमा. गा. ३६५]

इमा तु अयाणिया—

20

पगतीसुद्ध अयाणिय, मिगळावय-सोह-कुक्कुडयभूया । रयणमिव अमंठविया, सुहसन्नप्या गुणसमिद्धा ॥ २ ॥

[कल्पमा. गा. ३६७]

इमा पुण दुच्चियडिहया—

किं-चिम्मत्तग्गाही १ पल्लगगाही २ य तुरियगाही ३ य । दुच्चियडिहया उ एसा भणिया तिविहा भवे परिसा ॥ ३ ॥

[कल्पमा. गा. ३६९] 25

साम्प्रतमिष्टदेवतास्तवादिसम्पादितसकलसौविहित्यो देववाचकोऽधिकृताध्ययनविषयभूतस्य ज्ञानस्य प्ररूपणां कुर्वाभिमदाह—

८. णाणं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—आभिणिवोहियणाणं १ सुयणाणं २ ओहिणाणं ३ मणपज्जवणाणं ४ केवलणाणं ५ ।

८. ग्राणं पञ्चविहं पण्यसं इत्यादि सूत्रम् । अस्य व्याख्या—ज्ञातिः ज्ञानम्, “कृत्यल्प्युदो बहुलम्” [पा. ३. ३. ११३] इतिवचनाद् भावसाधनः, संविदित्यर्थः । ज्ञायते वाऽनेनेति ज्ञानम्, तदावरणक्षयोपशमादेव । ज्ञायतेऽस्मिन्निति क्षयोपशमे सति ज्ञानम् । आत्मैव विशिष्टक्षयोपशमयुक्तः जानातीति वा ज्ञानं तदेव, स्वविषयसंवेदनरूपत्वात् तस्य । ‘पञ्चविधं मित्यत्र पञ्चेति सङ्ख्यानाचक्रः, विधानं विधेति, अत्र “दुधाञ्च धारण-पोषणयोः” 5 [पा. धातु. १०९२] इत्यस्यानुबन्धलोपे कृते विपूर्वस्य स्त्रियां वर्त्तमानायां “विद्विदादिभ्योऽङ्” [पा. ३. ३. १०४] इति वर्त्तमाने “आतश्चोपसर्गे” [पा. ३. १. १३६] इत्यनेन अङ्प्रत्ययः, अनुबन्धलोपे कृते “आतो लोप इटि च क्विञ्चि” [पा. ६. ४. ६४] इत्यनेन चाकारलोपे कृते परगमने च “अनाद्यतष्टाप्” [पा. ४. १. ४] इति टाप् प्रत्ययः, अनुबन्धलोपः, परगमने विधा, पञ्च विधा अस्येति समासः “ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य” [पा. १. २. ४७] इति वर्त्तमाने “गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य” [पा. १. २. ४८] इत्यनेन ह्रस्वत्वम्, सुअम्भावः ‘पञ्चविधं’ पञ्च- 10 प्रकारमिति, एतदेवमनवद्यम्, कुव्याख्याव्यपोहार्यं चेतदेवं निदर्शितमित्यलं प्रसङ्गेन । ‘प्रज्ञप्तं’ प्ररूपितम् । कैः ?—अर्थतस्तीर्थकैः सूत्रतो गणधरेरिति । उक्तं च—

अत्यं भासइ अरहा, मुचं गंथंति गणहरा णिउणं । सासणस्स हियद्दाए तओ मुचं पवत्तइ ॥१॥

[आव. नि. गा. ९२] इति ।

- अनेन स्वमनीषिकाव्यपोहमाह । अथवा ‘प्राज्ञाप्तं’ प्राज्ञान्—तीर्थकरादासमिति—प्राप्तं गौतमादिभिः । अथवा 15 प्राज्ञैराप्तं प्राज्ञाप्तं गौतमादिभिः । प्रज्ञया वाऽप्तं प्रज्ञाऽऽप्तं प्रज्ञासम्, सर्वैरेव संसारिभिरिति । तथाहि—न प्रज्ञा-विकलैरिदमवाच्यत इति भावनीयम् । ‘तद्यथा’ इति उदाहरणोपन्यासायर्थः । आभिनिबोधिकज्ञानं १ श्रुतज्ञानं २ अवधिज्ञानं ३ मनःपर्यायज्ञानं ४ केवलज्ञानं ५ चेति ।

- तत्राऽर्थाभिमुख्यो नियतो बोधोऽभिनिबोधः, स एव स्वाधिकप्रत्ययोपादानादाभिनिबोधिकम् । अभिनिबोधे वा भवं तेन वा निर्देष्टं तन्मयं तत्प्रयोजनं वेत्याभिनिबोधिकम् । अभिनिबुध्यते वा तदित्याभिनिबोधिकं—अवग्रहादि- 20 रूपं मतिज्ञानमेव, तस्य स्वसंविदितरूपत्वाद् अभेदोपचारादित्यर्थः । अभिनिबुध्यते [वा]ऽनेनेत्याभिनिबोधिकम्, तदावरणक्षयोपशम इति भावार्थः । अभिनिबुध्यतेऽस्मादिति वा आभिनिबोधिकम्, तदावरणकर्मक्षयोपशम एव । अभिनिबुध्यतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशमे सति आभिनिबोधिकम् । आत्मैव वा अभिनिबोधोपयोगपरिणामान्न्यत्ता-दभिनिबुध्यत इत्याभिनिबोधिकम् । आभिनिबोधिकं च तच्छानं चाभिनिबोधिकज्ञानम् ? ।

- तथा श्रूयते इति श्रुतं—शब्द एव, भावश्रुतकारणत्वात्, कारणे कार्योपचारादिति भावार्थः । श्रूयते वा 25 अनेनेति श्रुतम्, तदावरणक्षयोपशम इति हृदयम् । श्रूयतेऽस्मादिति वा श्रुतम्, तदावरणक्षयोपशम एव । श्रूयतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशमे सति श्रुतम् । आत्मैव श्रुतोपयोगपरिणामान्न्यत्ताच्छ्रुणोतीति श्रुतम् । श्रुतं च तद् ज्ञानं च श्रुतज्ञानम् २ ।

- तथाऽवधीयतेऽनेनेत्यवधिः । अवधीयत इति—अधोऽधो विस्तृतं परिच्छिद्यते मर्यादाया वेति अन्धिः, अवधि- 30 ज्ञानावरणकर्मक्षयोपशम एव, तदुपयोगहेतुत्वादित्यर्थः । अवधीयतेऽस्मादित्यवधिः, तदावरणकर्मक्षयोपशम एव । अवधीयतेऽस्मिन्निति वेत्यवधिः, भावार्थः पूर्ववदेव । अवधानं वा अवधिः, त्रिषयपरिच्छेदनमित्यर्थः । अवधिक्षासौ ज्ञानं च अवधिज्ञानम् ३ ।

तथा मनःपर्यायज्ञानमित्यत्र परि—सर्वतोभावे, अपयं अयः गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अयः पर्ययः,

पर्ययनं पर्यय इत्यर्थः, मनसि मनसो वा पर्ययो मनःपर्ययः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः, स एव ज्ञानं मनःपर्यय-ज्ञानम् । अथवा मनसः पर्याया मनःपर्यायाः, [पर्यायाः—] धर्मा बाह्यवस्त्रालोचनादिप्रकारा इत्यन्योन्तरम्, तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम्, तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम्, इदं चार्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्तिसंज्ञिमनोगत-द्रव्यालम्बनमेवेति भावार्थः ४ ।

तथा केवलम्—असहायं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षम् । शुद्धं वा केवलम्, आवरणमलकलङ्काङ्करहितम् । सकलं वा केवलम्, तत्प्रथमतयैवाशेषतदावस्थाभावतः सम्पूर्णोत्पत्तेः । असाधारणं वा केवलम्, अनन्यसदृशमिति हृदयम् । ज्ञेयानन्तत्वादनन्तं वा केवलम्, यथावस्थिताशेषभूत-भवद्-भाविभावस्वभावावभासीति भावना । केवलं च तद् ज्ञानं च केवलज्ञानम् ५ ॥

आह—एषां ज्ञानानामित्युपन्यासे किं प्रयोजनम् ? इति, उच्यते, इह स्वामि-काल-कारण-विषय-परोक्षत्व-साधर्म्यात् तद्भावे च शेषज्ञानभावादादावेव मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोरुपन्यास इति । तथाहि—य एव मतिज्ञानस्य स्वामी स एव श्रुतज्ञानस्य, “जत्य मतिर्णाणं तत्यं स्रुयणाणं” [सूत्रं ४४] इति चकनान् । तथा यवान् मतिज्ञानस्य स्थिति-कालस्तावानेवेतरस्य, प्रवाहापेक्षया अतीता-ऽनागत-वर्तमानः सर्व एव, अमतिपतितैकजीवापेक्षया च षट्षष्टिसाग-रोपमाप्यधिकानीति । उक्तं च भाष्यकाण्डेण—

दो वारे विजयाइसु गयस्स, तिन्नुऽच्युते अहव ताई । अइरेगं नरभविंयं, णाणाजीवाणं सच्चदं ॥११॥

[विशेषा. गा. ४३६] 15

यथा मतिज्ञानं क्षयोपशमहेतुकं तथा श्रुतज्ञानमपि । यथा च मतिज्ञानमादेशतः सर्वद्रव्यादिविषयमेवं श्रुतज्ञानमपि । यथा मतिज्ञानं परोक्षं एवं श्रुतज्ञानमपीति । तथा मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोरैव अन्वयादिज्ञानभावादिति । आह—एवमपि मतिज्ञानमादौ किमर्थम् ? इति, उच्यते, मतिपूर्वकत्वाद् विशिष्टमत्पंशरूपत्वाद्वा श्रुतस्याऽऽदौ मति-ज्ञानमिति । उक्तं च—

मतिपुल्वं जेण सुयं नेणाऽऽदीए मती, विसिद्धो वा । मतिभेओ चेव सुचं, तो मतिसमणंतरं मणियं ॥११॥ 20

[विशेषा. गा. ८६]

इति पर्यायं विस्तरेण ।

तथा काल-विपर्यय-स्वामि-लाभसाधर्म्यान्मति-श्रुतज्ञानानन्तरमवधिज्ञानस्योपन्यासः । तथाहि—यावानेव मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोः स्थितिकालः प्रवाहापेक्षयाऽमतिपतितैकसत्त्वाधारापेक्षया च तावानेवावधिज्ञानस्यापि अतः स्थितिसाधर्म्यम् । तथा यथैव मतिज्ञान-श्रुतज्ञाने विपर्ययज्ञाने भवत एवमिदं मिथ्यादृष्टेर्विभङ्गज्ञानं भवतीति विपर्ययसाधर्म्यम् । तथा य एव मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोः स्वामी स एवावधिज्ञानस्यापि भवतीति स्वामिसाधर्म्यम् । तथा विभङ्गज्ञाननिस्त्रिदशादेः सम्यग्दर्शनावान्ती युगपदेव ज्ञानत्रयलाभसम्भवाद्भावात्साधर्म्यम् ।

तथा छद्मस्थ-विषय-भावा-ऽध्यक्षसाधर्म्यादवधिज्ञानानन्तरं मनःपर्यायज्ञानस्योपन्यासः । तथाहि—यथा-ऽवधिज्ञानं छद्मस्थस्य भवति एवं मनःपर्यायज्ञानमपि छद्मस्थस्यैवेति छद्मस्थसाधर्म्यम् । तथा यथाऽवधिज्ञानं रूपद्रव्यविषयमेवं मनःपर्यायज्ञानमपि सामान्येनेति विषयसाधर्म्यम् । तथा यथाऽवधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे तथा मनःपर्यायज्ञानमपीति भावसाधर्म्यम् । तथा यथाऽवधिज्ञानं प्रत्यक्षमेवं मनःपर्यायज्ञानमपीत्यध्यक्षसाधर्म्यम् ।

तथा मनःपर्यायज्ञानानन्तरं केवलज्ञानस्योपन्यासः, तस्य सकलज्ञानोक्तमत्वाद् । तथाऽममचयतिस्वामिसा-

धर्म्यात्, तथाहि—यथा मनःपर्यायज्ञानमप्रमत्तयतरेव भवति एवं केवलज्ञानमप्यप्रमत्तभावयतरेवेति साधर्म्यम् । तथाऽवसानलाभाच्च, यो हि सर्वज्ञानानि समाप्तादयति स खल्वन्त एवेदमानोतीति भावना । विपर्ययाभावात्साधर्म्याच्च, तथाहि—यथा मनःपर्यायज्ञानं विपर्ययज्ञानं न भवति एवं केवलज्ञानमपीति साधर्म्यम् । अत्र विस्तरेणेति सूत्रार्थः ॥

3 ९. तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—पञ्चकत्वं च परोक्षत्वं च ।

९. तं समासतो दुविहं पन्नत्तमित्यादि सूत्रम् । अस्य व्याख्या—‘तत्’ पञ्चप्रकारं ज्ञानं ‘समासतः’ सङ्क्षेपेण ‘द्विविधम्’ इति द्वे विधे अत्येति ‘द्विविधं’ द्विप्रकारं ‘प्रज्ञप्तं’ मरूपितम् । ‘तद्यथा’ इति उदाहरणोपन्यासात् । प्रत्यक्षं च परोक्षं च । तत्र प्रत्यक्षमित्यत्र जीवोऽक्षः । कथम् ? “अशु व्य्याप्तौ” [पा. धातु. १२६५] इत्यस्य ज्ञानात्मनाऽशुभेऽर्थानित्यसः, व्याप्नोतीत्यर्थः, “अश भोजने” [पा. धातु. १५२४] इत्यस्य वाऽभ्राति सर्वाथानिति अक्षः, पालयति भुङ्क्ते चेत्यर्थः, तमक्षं प्रति वर्त्तत इति प्रत्यक्षम्, आत्मनोऽपरनिमित्तमव्याद्यतीन्द्रियमिति भावार्थः । ‘चक्षब्दः’ स्वगतानेकभेदप्रदर्शनपरः । विचित्रतां चास्पृष्टतत्र वक्ष्यामः । ‘परोक्षं च’ इत्यत्र अक्षस्य—आत्मनः द्रव्येन्द्रियाणि द्रव्यमनश्च पुद्गलमयत्वात् पराणि वर्तन्ते, पृथगित्यर्थः, तेभ्योऽक्षस्य यद् ज्ञानस्युत्पद्यते तत् परोक्षम्, परनिमित्तत्वात्, धृमादग्निज्ञानवत् । अथवा परैः उक्ता—सम्बन्धनं विषय-विषयिभाव-लक्षणमस्येति परोक्षम् । चक्षब्दः पूर्ववत् । एवमन्यत्राप्युत्प्रेक्ष्य चक्षब्दायै वक्तव्य इति सूत्रार्थः ॥

15 एवं भेदद्वये उपन्यस्यते सति अनयोः सम्यक् स्वरूपमनवगच्छन्नाह चोदकः—

१०. से किं तं पञ्चकत्वं ? पञ्चकत्वं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—इंदियपञ्चकत्वं च णोइंदियपञ्चकत्वं च ।

१०. से किं तं पञ्चकत्वं ? इत्यादि सूत्रम् । अस्य व्याख्या—सेशब्दो माग्यदेशीप्रसिद्धो निपातोऽयशब्दोर्ध्वे वर्तते, स च प्रक्रियादिवाचकः । यथोक्तम्—“अथ प्रक्रिया-प्रक्षाऽऽनन्तर्य-मङ्गलोपन्यास-भतिवचन-समुच्चयेषु” इहोपन्यासायः । ‘किम्’ इति परिमश्रे । ‘तत्’ माग्यपदिष्टं प्रत्यक्षमिति सूत्रार्थः ॥ एवं चोदकेन प्रश्ने कृते सति न्यायप्रदर्शनार्थमाचार्यशोधकोक्तानुवादद्वारेण निर्वचनमभिधातुकाम आह—

पञ्चकत्वं दुविहं पन्नत्तमित्यादि सूत्रम् । एवमन्यत्रापि यथायोगं प्रश्न-निर्वचनसूत्राणां पातनिका कार्येति । प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—इन्द्रियप्रत्यक्षं च नोऽन्द्रियप्रत्यक्षं च । इन्द्रियाणां प्रत्यक्षं इन्द्रियप्रत्यक्षम् । इहेन्द्रः—स्वरूपतो ज्ञानार्थैश्वर्ययुक्तत्वादात्मा, तस्येदमिन्द्रियम् । तच्च द्विधा—द्रव्येन्द्रियं च भावेन्द्रियं च । तत्र पुद्गलैर्वाहसंस्थाननिर्घृतिः कदम्बपुष्पाद्याङ्कतिविशिष्टोपकरणं च द्रव्येन्द्रियम्, “निर्घृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्” [तत्त्वा. २. १७] इति वचनात् । श्रोत्रेन्द्रियादिविषया सर्वात्मप्रदेशानां तदावरणक्षयोपशमलन्धिरूपयोगाश्च भावेन्द्रियम्, “लन्धुपयोगौ भावेन्द्रियम्” [तत्त्वा. २. १८] इति वचनात् । इन्द्रियप्रत्यक्षं न भवतीति नोऽन्द्रिय-प्रत्यक्षम्, नोशब्दः सर्वप्रतिषेधे ॥

११. से किं तं इंदियपञ्चकत्वं ? इंदियपञ्चकत्वं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—सोइंदिय-

30 पञ्चकत्वं ? चर्म्मिदियपञ्चकत्वं २ घाणिदियपञ्चकत्वं ३ रसणेदियपञ्चकत्वं ४ फार्सिदियपञ्चकत्वं ५ ।

से तं इंद्रियपञ्चकत्वं ।

११. से किं तमित्यादि । अथ किं तदिन्द्रियमत्यक्षम् ? इन्द्रियमत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षमित्यादि । श्रोत्रेन्द्रियस्य श्रोत्रेन्द्रियमथानं वा प्रत्यक्षं श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षम्, श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तमित्यर्थः । एवं शेषेष्वपि वक्तव्यम् । एतच्चोपचारतः प्रत्यक्षम्, न परमार्थतः । कथं ज्ञायते ? इति चेत्, सूत्रप्रामाण्यात् । वक्ष्यति च—“परोक्षत्वं दुविहं पञ्चकं, तंजहा—आभिनिबोधियमाणपरोक्षत्वं च सुयुष्माणपरोक्षत्वं च” [मुचं ४३] । 5
न च मति-श्रुताभ्यामिन्द्रिय-मनोनिमित्तमन्यदस्ति यत् प्रत्यक्षमज्ञप्ता भवेत्, भावे च षष्ठज्ञानमसङ्गाद् विरोध इति, तस्मात् परोक्षमेवेदं तच्चत इति ।

आह—इह लोके ‘लिङ्गं परोक्षम्’ इति प्रतीतमिति, उच्यते, इह यदिन्द्रिय-मनोभिर्बाह्यलिङ्गप्रत्ययमुत्पद्यते तदेकान्तैर्नैवेन्द्रियाणामात्मनश्च परोक्षम्, परनिमित्तत्वात्, ध्रुवादधिज्ञानवदिति, अतः परोक्षमिति प्रतीतिः । यत् पुनः साक्षादिन्द्रिय-मनोनिमित्तं तत् तेषामेव प्रत्यक्षम्, अलिङ्गत्वात्, आत्मनोऽवध्यादिवत्, न त्वात्मनः, 10
आत्मनस्तु तत् परोक्षमेव, परनिमित्तत्वात्, लैङ्गिकवत् । इन्द्रियाणामपि तदुपचारतः प्रत्यक्षम्, न परमार्थतः, कथम् ? अचेतनत्वादिति, अत्र बहु वक्तव्यं तच्चान्यत्र वक्ष्यामः, मा भूत् प्रथमदश्व एव प्रतिपत्तिगौरमित्यलं विस्तरेण ।

आह—स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणीन्द्रियाणीति क्रमः, अयमेव च ज्यायान्, पूर्वपूर्वलाभ एवोत्तरोत्तर-लाभात्, अतः क्रिमर्थमुत्क्रमः ? उच्यते, पश्चानुपूर्व्यादिन्यायज्ञापनार्थं स्पष्टसंवेदनद्वारेण सुखप्रतिपत्त्यर्थं चेति । 15

इह मनोज्ञानमपीन्द्रियज्ञानतुल्ययोग-भ्रममेव द्रष्टव्यम्, तथा चाभिनिबोधिकज्ञानप्ररूपणायां प्रवक्ष्यत इति ।
“से च इंद्रियपञ्चकत्वं” तदेतदिन्द्रियप्रत्यक्षम् ॥

१२. से किं तं णोइंद्रियपञ्चकत्वं ? णोइंद्रियपञ्चकत्वं त्रिविहं पणत्तं, तं जहा—ओहि-
णाणपञ्चकत्वं १ मणपज्जवणाणपञ्चकत्वं २ केवलणाणपञ्चकत्वं ३ ।

१२. से किं तं णोइंद्रियपञ्चकत्वं ? इत्यादि । अथ किं तद् नोऽन्द्रियप्रत्यक्षम् ? नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं 20
प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवधिज्ञानप्रत्यक्षमिन्यादि ॥

१३. से किं तं ओहिणाणपञ्चकत्वं ? ओहिणाणपञ्चकत्वं दुविहं पणत्तं, तं जहा—
भवपञ्चतियं च खयोवसमियं च । दोन्हं भवपञ्चतियं, तं जहा—देवाणं च णेरतियाणं च ।
दोन्हं खयोवसमियं, तं जहा—मणुस्साणं च पंचेदियतिरिक्खजोणियाणं च ।

१३. से किं तं इत्यादि सूत्रम् । अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षम् ? अवधिज्ञानप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—
भवप्रत्यक्षं च १ क्षायोपशमिकं च २ । तत्र भवन्त्यस्मिन् कर्मवशवर्तिनः प्राणिन इति भवः, नारकादिजन्मेति
भावः, भव एव प्रत्ययः—कारणं यस्य तद् भवप्रत्ययम् ? । ‘चः’ पूर्ववत् । तथा क्षयशोपशमश्च क्षयोपशमौ, ताभ्यां
निर्वृचं क्षायोपशमिकम् २ । तत्र यद् येषां भवति तत् तेषामुपदर्शयन्नाह—

दोण्हमिन्यादि । ‘द्वयोः’ जीवसमूहयोः भवप्रत्ययम् । तद्यथा—देवानां नारकाणां च । तत्र दीप्यन्तीति
देवाः, निरुपमक्रीडामनुभवन्तीत्यर्थः, तेषाम् । तथा नरान् काप्यन्तीति नरकाः, योग्यतया शब्दयन्तीत्यर्थः, तेषु 30

भवा नारकान्तेषाम् । अत्राह—नन्ववधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे वर्तते, देव-नारकभवधौदयिकः, तत् कथं तद् भवमत्ययम् ? इति, उच्यते, क्षायोपशमिकमेव तत्, किन्तु स देव-नारकभवे अवश्यम्भावी, पक्षिणां गगनगमनलब्धि-निमित्तवदित्यतो भवमत्यय इति । उक्तं च—

उद्य-क्खय-क्खयोवसमोवसमा जं च कम्मणो भणिया । दब्बं खेत्तं कालं भवं च भावं च संपप्य ॥१॥११

5

[विशेषा. गा. ५७५, धर्मसं. गा. १४९]

तथा द्वयोः क्षायोपशमिकम्, तद्यथा—मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गोनीनां च । न चैषामवश्यन्तया भवती-त्यतः सत्यपि क्षायोपशमिकत्वे भवमत्ययाद् भिन्नमिदमिति २ । तत्रतस्तत् सर्वमेव क्षायोपशमिकमिति ॥ अपुना क्षयोपशमस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

१४. को हेऊ खायोवसमियं ? खायोवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं
10 स्वएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिणाणं समुपज्जति । अहवा गुणपडिवण्णस्स
अणगारस्स ओहिणाणं समुपज्जति ।

१४. को हेऊ इत्यादि । 'को हेतुः' किनिमित्तं—किविषयं क्षायोपशमिकम् ? यद्वा किंकारणं क्षायोपश-
मिकम् ? उच्यते इत्यध्याहारः । अत्र निर्वचनमाभिधातुकाम आह—क्षायोपशमिकं 'तदावरणीयानाम्' अवधिज्ञानावर-
णीयानां कर्मणां 'उदीर्णानां' उदायावलिकामाक्षानां 'क्षयेण' प्रलयेन 'अनुदीर्णानां च' आत्मनि व्यवस्थितानां
15 'उपशमेन' उदयनिरोधेन अवधिज्ञानमुत्पद्यते इति सम्बन्धः, यत एवमतः कर्मोदया-ऽनुदयविषयम् । अथवा येन
तदावरणीयानां कर्मणां उदीर्णानां क्षयेणानुदीर्णानामुपशमेनावधिज्ञानमुत्पद्यते तेन क्षायोपशमिकमित्युच्यते इति ।

स च क्षयोपशमो विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण ? तथा गुणप्रतिपत्तितश्च २ भवति । तत्रान्तरेण—यथाऽऽ-
काशे घनघनपटलाच्छादितमूर्त्तैर्दिवसकरमण्डलस्य कथञ्चिदुपजातरन्ध्रेण विनिर्गतास्तिमिरनिचयप्रलयहेतवः किरणाः
स्वावपातदेशास्पदं द्रव्यमुद्योतयन्ति तथा प्रकृतिभास्वरस्याऽऽत्मनो मिथ्यात्वादिजनितज्ञानावरणीयादिकर्ममलय-
20 टल्लितिमिरतिरस्कृतस्वभावस्यानादौ संसारे परिभ्रमतो यथाप्रवृत्त्योपजातावधिज्ञानावरणक्षयोपशमविवरस्यावधिज्ञा-
नालोकः प्रसाध्यति स्वकार्यमिति १ । गुणप्रतिपत्तितस्तु मूलगुणादिप्रतिपत्तेर्भवति । यत आह—

अथवा इत्यादि । 'अथवा' इति प्रकारान्तरप्रदर्शनार्थम्, अन्तरेण प्रतिपत्तिमित्यस्मादिदं प्रकारान्तरमेव ।
गुणाः—मूलगुणादयस्तेः प्रतिपन्नः—ग्रहीतो गुणप्रतिपन्न इति, अनेन अतिशयपात्रतामाह, यतः पात्राअश्रियो
गुणाः । उक्तं च—

25 नोदन्वानर्थितामेति न चाम्भोभिर्न पूयेते । आत्मा तु पात्रतां नेयः पात्रमायान्ति सम्पदः ॥१॥ []

अथवा प्राकृतशैल्या पूर्वापरनिपातकरणात् प्रतिपन्नगुणस्य 'अनगारस्य' न गच्छन्तीत्यागा—वृक्षाः, तैः
कृतमगारं—ग्रहम्, नास्यागारं विद्यत इत्यनगारः, परित्यक्तद्रव्य-भावग्रह इत्यर्थः, तस्य प्रशस्ताध्यवसायस्य तदाव-
रणकर्मक्षयोपशमे सत्यवधिज्ञानं समुत्पद्यते ॥ २ ॥

१५. तं समासओ छ्विहं ण्णत्तं, तं जहा—आणुगामियं ? अणाणुगामियं ३
30 वड्डमाणयं ३ हायमाणयं ४ पडिवाति ५ अपडिवाति ६ ।

१५. तं समासतो इत्यादि । 'तद्' अवधिज्ञानं 'समासतः' सङ्क्षेपेण 'षड्विधं' षट्प्रकारं 'प्रज्ञप्तं' प्ररूपितम् । तद्यथा—'आनुगामिकं' अनुगमनशीलमानुगामिकम्, अवधिज्ञानिनं लोचनवद् गच्छन्तमनुगच्छतीति भावार्थः १ । अनानुगामिकं नावधिज्ञानिनं गच्छन्तमनुगच्छति, सङ्कलामतिबद्धप्रदीपचरिति हृदयम् २ । वर्धते वर्द्धमानम्, तदेव वर्द्धमानकम्, संज्ञायां कन्, उत्पत्तिकालादारभ्य प्रवर्द्धमानम्, महेन्धननिबन्धनोत्पद्यमानानालम्बाज्वालाकलापवदिति भावना ३ । 'हीयमानकं' हीयते हीयमानम्, तदेव हीयमानकम्, कुत्सायां कन्, उदयसमयसमनन्तरमेव हीयमानं दग्धेन्धनमायधुमध्वजाचिर्व्रातवदित्यर्थः ४ । 'प्रतिपाति' प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति, कथञ्चिदापादितजात्यमणि-
प्रभाजालवदिति गर्भार्थः ५ । 'अप्रतिपाति' न प्रतिपाति अप्रतिपाति, क्षारशुट्पुटपाकाद्यापाद्यमानजाल्यमणिकिरणनिकरवदित्यभिप्रायः । आह—आनुगामिकाऽनानुगामिकभेदद्वय एव शेषभेदानां वर्द्धमानकादीनामन्तर्भावत् किमर्थमुपन्यासः ? इति, उच्यते, सत्यप्यन्तर्भावे तद्विकल्पद्वयादेव तेषामपरिच्छिन्नेः, तथाहि—नाऽऽनुगामिकमनानुगामिकं चेत्युक्ते वर्द्धमानकादयो गम्यन्त इति, अज्ञातज्ञापनार्थं च शास्त्रप्रवृत्तिरित्यलं प्रसङ्गेन ॥

१६. से किं तं आणुगामियं ओहिणाणं ? आणुगामियं ओहिणाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—अंतगयं च मज्झगयं च ।

१६. से किं तमाणुगामियमिन्यादि । अथ किं तदानुगामिकमवधिज्ञानम् ? आनुगामिकमवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अन्तगतं च १ मध्यगतं च २ । इहान्तः—पर्यन्तो भण्यते, वनान्तवत्, गतं स्थितमित्यनर्थान्तरम्, अन्ते गतं 'अन्तगतं' अन्ते स्थितम् । तच्च फट्टकावधिलादात्मप्रदेशान्ते, सर्वात्मप्रदेशस्योपशमभावतो वा
औदारिकशरीरान्ते, एकदिगुपलम्भाद्वा तदुद्योतितक्षेत्रान्ते गतमन्तगतम् । इह चाऽऽत्मप्रदेशान्तगतमुच्यते, सकल्जीवोपयोगे सत्यपि साक्षादेकदेशेनैव दर्शनात् ; औदारिकशरीरान्तगतमपि, औदारिकशरीरैकदेशेनैव दर्शनाच्च ; यथोक्तक्षेत्रान्तगतं त्ववधिमतस्तदन्तवृत्तेरिति भावना १ । चशब्दः पूर्ववत् । 'मध्यगतं' इह मध्यः प्रसिद्ध एव दण्डादिमध्यवत्, मध्ये गतं 'मध्यगतं' मध्ये स्थितम् । तच्च सर्वत्र फट्टकविशुद्धैरात्ममध्ये सर्वात्ममध्ये, सर्वात्मनो वा क्षयोपसमयोगाविशेषेऽपि औदारिकशरीरमध्येऽपलम्बेः तन्मध्ये, सर्वदिगुपलम्भाद्वा तत्प्रकाशितक्षेत्रमध्ये गतं
मध्यगतम् । अत्र चात्ममध्यगतमभिधीयते, सर्वात्मोपयोगे सत्यपि मध्य एव फट्टकसङ्घावात् साक्षान्मध्यभागेनोपलम्बेः ; औदारिकशरीरमध्येगतमपि, औदारिकशरीरमध्येभागेनैवोपलम्बेः ; प्रस्तुतक्षेत्रमध्येगतं पुनरवधिज्ञानिनस्तत्र मध्ये भावादिति भावार्थः । चशब्दः पूर्ववत् ॥

१७. से किं तं अंतगयं ? अंतगयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—पुरओ अंतगयं १ मग्गओ अंतगयं २ पासतो अंतगयं ३ ।

१८. से किं तं पुरतो अंतगयं ? पुरतो अंतगयं से जहानामए केइ पुरिसे उक्के वा चुडलिअं वा अलायं वा मणिं वा जोइं वा पदीवं वा पुरओ काउं पणोल्लेमाणे पणोल्लेमाणे गच्छेज्जा । से तं पुरओ अंतगयं १ ।

१७-१८. से किं तमित्यादि प्रायः सुगमम् । नवरं उल्का दीपिका । चुडली—पर्यन्तज्वलिता वृणपूलिका । अलातम्—उल्लुक्कम् । मणिः—पथरागादिः । प्रदीपशिखादि ज्योतिः, मल्लिकाद्याधारोऽग्निः । प्रदीपः—
प्रतीतः । 'पुरतः' अग्रतो हस्तदण्डादौ गृहीत्वा "पणोल्लेमाणे पणोल्लेमाणे" ति मेरयन् मेरयन् 'गच्छेद्'

यायात् “से चं” तदेतत् पुरतोऽन्तगतम् । अयमत्र भावार्थः—स हि गच्छन् उल्कादिभ्यः सक्राशात् पुरत एव पश्यति, नान्यत्र, एवं यतोऽवधिज्ञानाद् विविधस्योपक्रमनिमित्तत्वाद् देशपुरत एव पश्यति, नान्यत्र, तत् पुरतोऽन्तगतमभिधीयते इत्येतावताऽज्ञेन दृष्टान्त इत्येवं सर्वत्र योज्यम् ? ॥

१९. से किं तं मग्गओ अंतगयं ? मग्गओ अंतगयं से जहाणामए केइ पुरिसे
५ उक्कं वा चुडलियं वा अलायं वा मणिं वा जोइं वा पईवं वा मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे
अणुकड्ढेमाणे गच्छेज्जा । से तं मग्गओ अंतगयं २ ।

२०. से किं तं पासओ अंतगयं ? पासओ अंतगयं से जहाणामए केइ पुरिसे
उक्कं वा चुडलियं वा अलायं वा मणिं वा जोइं वा पईवं वा पासओ काउं परिकड्ढेमाणे
परिकड्ढेमाणे गच्छेज्जा । से तं पासओ अंतगयं ३ । से तं अंतगयं ।

10 १९-२०. से किं तमित्यादि निगदसिद्धम् । नवरं “अणुकड्ढेमाणे अणुकड्ढेमाणे” त्ति अनुकर्पणं अनु-
कर्पणं २ । एवं “परिकड्ढेमाणे परिकड्ढेमाणे” त्ति परिकर्पणं परिकर्पणं ३ ॥

२१. से किं तं मज्झगयं ? से जहाणामए केइ पुरिसे उक्कं वा चुडलियं वा अलायं
वा मणिं वा जोइं वा पईवं वा मत्थए काउं गच्छेज्जा । से तं मज्झगयं ।

२१. अथ किं तन्मध्यगतमित्यादि निगदसिद्धमेव । नवरं ‘मस्तके’ शिरसि कृत्वा गच्छेत् तदेतन्मध्यगत-
15 मिति । एतदुक्तं भवति—स तेन मस्तकस्थेन सर्वत्र तत्प्रकाशितमर्थं पश्यति, परमेवं यतोऽवधिज्ञानात् तद्दुद्योतितता-
र्थावगमस्तन्मध्यगतमित्येतावताऽज्ञेन दृष्टान्त इति ॥ इह व्याख्यानार्थं सम्यगवगच्छन्नाह चोदकः—

२२. अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ? पुरओ अंतगएणं ओहिणाणेणं
पुरओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ, मग्गओ अंतगएणं
ओहिणाणेणं मग्गओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ,
20 पासओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पासओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं
जाणइ पासइ, मज्झगएणं ओहिणाणेणं सब्बओ समंता संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि
वा जोयणाइं जाणइ पासइ । से तं आणुगामियं ओहिणाणं ।

२२. अंतगतस्स य इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत् “मज्झगतेण”मित्यादि । मध्यगतेनावधिज्ञानेन ‘सर्वतः’
सर्वास्तु दिग्बिदिक्षु ‘समन्तात्’ सर्वैरात्मप्रदेशैर्विद्युद्द्रफड्कैर्वा सङ्घेयानि वा असङ्घेयानि वा योजनानि जानाति
25 पश्यति । अथवा ‘स मन्ता’ अवधिज्ञान्येव शृण्वते, सङ्घेयानि चेत्यत्र सङ्घाथन्त इति सङ्घेयानि—एकादीनि
शीर्षभहेलिकापर्यन्तानि शृण्वन्ते, तत ऊर्ध्वमसङ्घेयानि, तदेतदानुगामवधिज्ञानमिति ? ॥

२३. से किं तं अणाणुगामियं ओहिणाणं ? अणाणुगामियं ओहिणाणं से जहा-

णामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइद्वारणं काउं तस्सेव जोइद्वारणस्स परिपेरंतेहिं परिपेरंतेहिं परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे तमेव जोइद्वारणं पासइ, अण्णत्थ गए ण पासइ, एवमेव अणाणुगामियं ओहिणाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, अण्णत्थ गए ण पासइ । से तं अणाणुगामियं ओहिणाणं २ ।

5

२३. से किं तमित्यादि प्रकटार्थमेव । नवरं 'ज्योतिःस्थानं' अग्निस्थानं कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य पर्यन्तेषु, किमेकदिग्गतेषु ? नेत्याह— परिः—सर्वतोभावे, ततश्च परिपर्यन्तेषु परिपर्यन्तेषु 'परिघूर्णन्' परिभ्रमन् इत्यर्थः, तदेव 'ज्योतिःस्थानं' ज्योतिःप्रकाशितं क्षेत्रमित्यर्थः पश्यति, अन्यत्र गतो न पश्यति, तदुपलम्भाभावात्, तदावरणक्षयोपशमस्य तत्क्षेत्रसम्बन्धसापेक्षत्वात्, एवमेव अनानुगामिकमवधिज्ञानं यत्रैव क्षेत्रे व्यवस्थितस्य सतः समुत्पद्यते तत्रैव व्यवस्थितः सन् सङ्क्षेपयानि वाऽसङ्क्षेपयानि वा योजनानि सम्बद्धानि वा असम्बद्धानि वा जानाति पश्यति, नान्यत्र, तत्क्षेत्रसम्बन्धसापेक्षत्वादवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य । तदेतदनानुगामिकम् २ ॥

२४. से किं तं वट्टमाणयं ओहिणाणं ? वट्टमाणयं ओहिणाणं पसत्थेसु अज्झवसाणद्वारेणसु वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ ।

जावतिया तिसमयाहारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स ।

15

ओगाहणा जहन्ना ओहीखेत्तं जहन्नं तु ॥ ४५ ॥

सव्वबहुअगणिजीवा णिरंतरं जत्तियं भरेज्जंसु ।

खेत्तं सव्वदिसागं परमोही खेत्तनिद्धिदो ॥ ४६ ॥

अंगुलमावलियाणं भागमसंखेज्ज, दोसु संखेज्जा ।

अंगुलमावलियंतो, आवलिया अंगुलपुहत्तं ॥ ४७ ॥

20

हत्थम्मि सुहुत्तंतो, दिवसंतो गाउयम्मि बोद्धव्वो ।

जोयण दिवसपुहत्तं, पक्खंतो पण्णवीसाओ ॥ ४८ ॥

भरहम्मि अद्धमासो, जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो ।

वासं च मणुयलोए, वासपुहत्तं च रुयगम्मि ॥ ४९ ॥

संखेज्जम्मि उ काले दीव-समुद्दा वि होंति संखेज्जा ।

25

कालम्मि असंखेज्जे दीव-समुद्दा उ भइयव्वा ॥ ५० ॥

काले चउण्ह वुड्डी, कालो भइयव्वु खेतवुड्डीए ।
 वुड्डीए दव्व-पज्जव भइयव्वा खेत-काला उ ॥ ५१ ॥
 सुहुमो य होइ कालो, ततो सुहुमयरयं हवइ खेतं ।
 अंगुलसेदीमेत्ते ओसप्पिणिओ असंखेज्जा ॥ ५२ ॥

5 से तं बहुमाणयं ओहिणाणं ३ ।

२४. से किं तमित्यादि । अथ किं तद् वर्द्धमानकम् ? 'वर्द्धमानकं' वर्द्धमानमेव वर्द्धमानकं प्रशस्तेष्व-
 ध्यवसायस्थानेषु वर्त्तमानस्य वर्त्तमानचारित्रस्य । इहीयतो द्रव्यलेइयोपरजित्तं चित्तमध्यवसायस्थानमुच्यते, अस्य
 चानवस्थितत्वात् तद्द्रव्यसाच्चिन्ने सति विशेषभावाद् बहुत्वमिति । तत्र 'प्रशस्तेषु' इत्यनेनाप्रशस्तकृष्णालेइयादि-
 द्रव्योपरजित्तव्यवच्छेदमाह । अध्यवसायस्थानेषु वर्त्तमानस्य, प्रशस्ताध्यवसायस्येत्यर्थः, 'सर्वतः' समन्तादवधिः
 10 परिवर्द्धत इति योगः, अनेनाविरतसम्यग्दृष्टेरपि वर्द्धमानक उक्तो वेदितव्यः । वर्त्तमानचारित्रस्येत्यनेन तु देशविरत-
 सर्वविरतयोरिति । 'विशुध्यमानस्य' तदावरणकर्ममलविगमाद्बुद्धोचरं शुद्धिमनुभवतः अविरतसम्यग्दृष्टेरेव, अने-
 नावधेः शुद्धिजन्यत्वमाह, विशुध्यमानचारित्रस्य देशसर्वविरतस्य सर्वतः समन्तादवधिः परिवर्द्धत इति, ततः
 परिवर्द्धत इत्युक्तम् ॥ अथ सर्वजनयोऽयं कियत्प्रमाणो भवति ? इति प्रश्नसम्भवे क्षेत्रतः प्रतिपादयषाह -

जाबहूया० गाहा । व्याख्या- 'यावती' यावत्प्रमाणा, आहारयतीत्याहारकः, त्रिसमयं आहारकः त्रिसमया-
 15 हारकः, त्रीन वा समयानिति तस्य । ब्रह्मनामकर्मोऽयात् ब्रह्मस्तस्य । पनकश्चांनो जीवश्च पनकजीवः, वनस्पति-
 विशेष इत्यर्थः, तस्य । अक्काहन्ते यम्यां प्राणिनः सा अक्काहना, तनुत्तरित्यर्थः । 'जन्या' सर्वतोक्ता । अवधेः
 क्षेत्रं अवधिक्षेत्रम् । 'जन्यं' सर्वतोक्तम् । तुण्णद् एवकारार्थः, स चावधारणे, तस्य चैवं प्रयोगः-अवधिक्षेत्रं
 जन्यमेतावदेवेति । अत्र च सम्प्रदायसमधिगम्योऽयमर्थः-

योजनसहस्रमानो मत्स्यो मृत्वा ष्वकायदेशे यः । उत्पद्यते हि ब्रह्मः पनकत्वेनेह स ब्राह्मः ॥ १ ॥
 20 संहत्य चाऽऽद्यसमये स ह्यायामं करोति च प्रतरम् । सङ्घातीताख्याङ्गुलिभागवाहल्यमानं तु ॥ २ ॥
 स्वकतनुपुधुत्वमात्रं दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात् । तमपि द्वितीयसमये संहत्य करोत्यसौ ब्रह्मिम् ॥ ३ ॥
 सङ्घातीताख्याङ्गुलिभागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम् । निजतनुपुधुत्वदैर्घ्यां तृतीयसमये तु संहत्य ॥ ४ ॥
 उत्पद्यते च पनकः स्वदेहदेशे स ब्रह्मपरिणामः । समयत्रयेण तस्याऽक्काहना यावती भवति ॥ ५ ॥
 तावज्जन्यमवधेराख्यन्वस्तनुभाजनं क्षेत्रम् । इदमित्थमेव मुनिगणसुसम्प्रदायात् समवसेयम् ॥ ६ ॥

25 अत्र कश्चिदाह-किमिति महान् मत्स्यः ? किं वा तस्य तृतीयसमये निजदेहदेशे समुत्पादः त्रिसमयाहारकत्वं
 वा कल्प्यते ? इति, अत्रोच्यते, स एव हि महामत्स्यस्त्रिभिः समयैरात्मानं सहस्रपत्तु प्रपन्नविशेषात् ब्रह्मा-
 क्काहना भवति, नान्यः; प्रथम द्वितीयसमयोऽथातिब्रह्मः, चतुर्थादिषु चातिस्पूरः, त्रिसमयाहारक एव च तद्व्योम्य
 इत्यतस्तद्ब्रह्ममिति । अन्ये तु व्याचक्षते-त्रिसमयाहारक इति आयामविष्कम्भ संहारसमयद्वयं ब्रह्मिंसंहरणोत्पा-
 दसमयश्चैते त्रयः समयाः, विग्रहाभावाच्चाऽऽहारक एतेऽनित्यत उत्पादसमय एव त्रिसमयाहारकः ब्रह्मः पनकजीवो
 30 जन्यत्वाक्काहनश्च, अतस्तत्प्रमाणं जन्यमवधिक्षेत्रमिति, पतचायुक्तम्, त्रिसमयाहारकत्वस्य पनकजीवविशेषणत्वात्,
 मत्स्यायाम-विष्कम्भसंहरणसमयद्वयस्य च पनकसमयायोगात् त्रिसमयाहारकत्वाख्यविशेषणानुपपत्तिमसङ्गात् । अलं

१. हि पनकः स्रह्मत्वेनेह मत्स्यगिरिवृत्तौ ॥

प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥४५॥ एवं तावज्जयन्त्यमवधिक्षेत्रमुक्तम् । इदानीमुत्कृष्टविभागमभिधातुकाम आह—

सव्वबहुअगणिजीवा० गाहा । व्याख्या— सर्वेभ्यः—विवक्षितकालावस्थायिभ्योऽनलजीवेभ्य एव बहवः सर्ववहवः, न भूत-भविष्यद्भ्यो नापि शेषजीवेभ्यः । कुतः ? असम्भवात् । अवयवश्चेत् जीवाश्च अधिजीवाः, सर्व-बहवश्चेत् अधिजीवाश्च सर्ववहधिजीवाः । निरन्तरमिति क्रियाविशेषणम् । ‘यावद्’ यावत्परिमाणं ‘भूतवन्तः’ व्याप्तवन्तः ‘क्षेत्रम्’ आकाशम् । एतदुक्तं भवति—नैर्गन्वयैण विशिष्टसूचिरचनया यावद् भूतवन्त इति । भूतकाल-निर्देशश्च ‘अजितस्वामिकाल एव प्रायः सर्ववहवोऽनलजीवा भवन्त्यस्यामवसर्षिण्याम्’ इत्यस्यार्थस्य ख्यापनार्थम् । इदमन्तरादितविशेषणं क्षेत्रमेकदिकमपि भवति अत आह—सर्षदिकम्, अनेन सूचीपरिभ्रमणमभितमेवाह । परम-क्षासाववधिश्च परमावधिः क्षेत्रम्—अनन्तरव्यावर्णितं प्रभूतानलजीवमितमङ्गीकृत्य निर्दिष्टः क्षेत्रनिर्दिष्टः प्रतिपादितो गणधरादिभिरिति, तत्रश्च पर्यायण परमावधेरेतावत् क्षेत्रमित्युक्तं भवति । अथवा सर्ववहधिजीवा निरन्तरं यावद् भूतवन्तः क्षेत्रं सर्वदिकं एतावति क्षेत्रे यानि अवस्थितानि द्रव्याणि तत्परिच्छेदसामर्थ्ययुक्तः परमावधिः क्षेत्रम-ङ्गीकृत्य निर्दिष्टः, भावार्थस्तु पूर्ववदेव । अयमक्षरार्थः । इदानीं साम्प्रदायिक प्रतिपाद्यते—तत्र सर्ववहग्निजीवा वादराः प्रायोजितस्वामितीर्थकरकाले भवन्ति, तदागम्भकपुरुषवाहल्यात्, सूक्ष्मांशोत्कृष्टपदिनस्तत्रैवावकः सन्ते, तत्रश्च सर्ववहवो भवन्ति, तेषां च बुद्ध्या षोडाशस्थानं कल्प्यते—एकैकक्षेत्रप्रदेशे एकैकजीवावगाहनया सर्वैश्च-तुरस्रो घनः प्रथमम् १, स एव जीवः स्वावगाहनया द्वितीयम् २, एवं प्रतोऽपि द्विभेदः ३-४, श्रेण्यपि द्विभेदा ५-६, तत्राऽऽद्याः पञ्च प्रकारा अनादेशाः, क्षेत्रस्याल्पत्वात् क्वचित् समयविरोधाच्च, षष्ठप्रकारस्तु सूत्रादेश इति । 15 तत्राश्रमां श्रेणी अवधिज्ञानिनः सर्वासु द्विषु शरीरपर्यन्तेन भ्राम्यन्ते, सा चासङ्ख्येयानलोके लोकमात्रान् क्षेत्रविभागान् व्यानोति एतावदवधिक्षेत्रमुत्कृष्टमिति । सामर्थ्यमङ्गीकृत्यैवं प्रकल्प्यते, एतावति क्षेत्रे यदि द्रष्टव्यं भवति पश्यति, न त्वल्लोके द्रष्टव्यमस्तीति गाथार्थः ॥४६॥ एवं तावज्जयन्त्यमुत्कृष्टं चावधिक्षेत्रमभिहितम् । इदानीं विमध्यममतिपिपादादिपिषया एतावत्क्षेत्रोपलम्भे चैतावत्कालोपलम्भः तथा एतावत्कालोपलम्भे चैतावत्क्षेत्रोपलम्भ इत्यस्यार्थस्य प्रदर्शनाय चेदं गाथाचतुष्टयं जगद् शासकारः—

अंगुलमावलिघाणं० गाहा । हृथम्भि० गाहा । ऋरहम्भि० गाहा । संखेजम्भि उ० गाहा । आसां

व्याख्या—‘अङ्गुलं’ क्षेत्राधिकारात् प्रमाणाङ्गुलं गृह्यते, अवधिधिकाराच्चोच्छ्रयाङ्गुलमित्येके । आवलिका—असङ्ख्येयसमयसङ्घातोपलक्षितः कालः, उक्तं च—“असंखेयाणं समयणां समुद्रसमिति समागमेणं एगा आवलिका ति बुच्च” [अनुयो० सूत्रं १३८ परं १७८-२] अङ्गुलं च आवलिका च अङ्गुला-ऽऽत्रलिके तयोरङ्गुला-ऽऽत्रलिकयोर्भागमसङ्ख्येयं पश्यति अवधिज्ञानी । एतदुक्तं भवति—क्षेत्रमङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रं पश्यन् कालत आवलिका-या असङ्ख्येयमेव भागं पश्यति अतीतमनागतं चेति । क्षेत्र-कालदशैतन्मुपचारेणोच्यते, अन्यथा हि क्षेत्रव्यवस्थितानि दर्शनयोग्यानि द्रव्याणि तत्पर्यायांश्च विवक्षितकालान्तर्वर्तिनः पश्यति, न तु क्षेत्र-कालौ, मूर्तेद्रव्यालम्भनत्वात्, एवं सर्वत्र भावना द्रष्टव्या । क्रिया च गाथाचतुष्टयेऽप्यध्याहायां । तथा ‘द्वयोः’ अङ्गुला-ऽऽत्रलिकयोः सङ्ख्येयोर्भागां पश्यति, अङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रं क्षेत्रं पश्यन्नावलिकायाः सङ्ख्येयभागमेव पश्यतीत्यर्थः । तथा अङ्गुलं पश्यन् क्षेत्रत आवलिकान्तः पश्यति, भिन्नामावलिकामित्यर्थः । तथा कालत आवलिकां पश्यन् क्षेत्रतोऽङ्गुलपृ-थक्त्वं पश्यति, पृथक्त्वं हि द्विमष्टितानवभ्यः । इति प्रथमगाथार्थः ॥४७॥

द्वितीयगाथाव्याख्या—‘हस्ते’ इति हस्तविषयः क्षेत्रतोऽवधिः कालतो मुहूर्तान्तः पश्यति, भिन्न-

सूक्ष्ममित्यर्थः, अवध्यवधिमतोरभेदोपकारादवधिः पश्यतीत्युच्यते । तथा कालतः 'दिवसान्तः' भिक्षुदिवसं पश्यन् क्षेत्रतः 'गन्तुते' इति गन्तुत्वविषयो बोद्धव्यः । तथा योजनविषयः क्षेत्रतोऽवधिः कालतो दिवसपृथक्त्वं पश्यति । तथा 'पशान्तः' भिक्षं पशं पश्यन् कालतः पञ्चविंशतिं योजनानि पश्यतीति द्वितीयगाथार्थः ॥ ४८ ॥

तृतीयगाथाव्याख्या— 'भरते' इति क्षेत्रतो भरतविषयेऽवधौ कालतः अर्द्धमास उक्तः । एवं जम्बूद्वीप-
5 विषये चावधौ साधिको मासः । वर्षं च मनुष्यलोकविषयेऽवधाविति, मनुष्यलोकः खल्वर्द्धतृतीयद्वीप-समुद्रपरि-
माणः । वर्षपृथक्त्वं च रुचकारणवाङ्मद्वीपविषयेऽवधाववगन्तव्यमिति तृतीयगाथार्थः ॥ ४९ ॥

चतुर्थगाथाव्याख्या—सङ्घायत इति सङ्घेयः, स च संवत्सरलक्षणोऽपि भवति । तुशब्दो विशेषणार्थः ।
किं विशिनष्टि ? सङ्घेयो वर्षसहस्रात् परतोऽपि गृह्यत इति, तस्मिन् सङ्घेये कलनं कालः तस्मिन् काले अवधे-
गोचरे सति क्षेत्रतस्तस्यैवावधेर्गोचरतया द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीप-समुद्रा अपि भवन्ति सङ्घेयाः । अपिशब्दाद् महा-
10 नेकोऽपि तदेकदेशोऽपीति । तथा 'कालेऽसङ्घेये' पल्योपमादिलक्षणेऽवधेर्विषये सति तस्यैवासङ्घेयकालपरिच्छे-
दकस्यावधेः क्षेत्रतः परिच्छेद्यतया द्वीप-समुद्रास्तु भाज्याः कदाचिदसङ्घेया एव । यदा इह कस्यचिन्मनुष्यस्या-
सङ्घेयद्वीप-समुद्रविषयोऽवधिरूपयद्यत इति, कदाचिन्महान्तः सङ्घेयाः, कदाचिदेकदेशः स्वयम्भूरमणतिरश्चोऽवधि-
विज्ञेयः, स्वयम्भूरमणविषयमनुष्यवाङ्मावधेर्वा, योजनापेक्षया च सर्वषोऽसङ्घेयमेव क्षेत्रमिति गाथार्थः ॥ ५० ॥
एवं तावत् परिस्थूरन्यायमङ्गीकृत्य क्षेत्रद्वयथा कालद्विद्विरनियता, कालद्वयथा च क्षेत्रद्विद्विः प्रतिपादिता । साम्प्रतं
15 द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावापेक्षया यस्य दृढौ यस्य दृढिर्भवति यस्य ना न भवत्यस्यमर्थमभिधिन्युराह —

काले० गाहा । व्याख्या—'काले' भवधिज्ञानगोचरे वर्द्धमाने 'चतुर्णां' द्रव्यादीनां दृढिर्भवति । कालस्तु
'भाज्यः' विकल्पयितव्यः क्षेत्रस्य दृढिः क्षेत्रदृढिः तस्यां क्षेत्रदृढौ सत्याम्, कदाचिद् वर्द्धते कदाचिधेति । कुतः ?
क्षेत्रस्य दृढत्वत्वात्, कालस्य च स्थूलत्वात् । द्रव्य-पर्यायौ तु वर्द्धन्ते । सप्रम्यन्तता चास्य—

ए होइ अयारंते पयम्मि वीयाए बहुसु पुळिगे । तइयाइसु छट्ठी-सत्तमीण एकम्मि महिल्लये ॥ १ ॥

20

[]

अस्माल्लक्षणत्वात् सिद्धेति । एवमन्यत्रापि प्राकृतशैल्या इष्टविभक्त्यन्तता पदानामवगन्तव्येति । तथा दृढौ च
द्रव्यं च पर्यायश्च द्रव्य-पर्यायौ तयोर्दृढौ सत्यां 'भाज्यौ' विकल्पनीयौ क्षेत्र-कालावेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्,
कदाचिदनयोर्दृढिर्भवति कदाचिधेति, द्रव्य-पर्याययोः सकाशात् परिस्थूरत्वात् क्षेत्र-कालयोरिति भावार्थः । द्रव्य-
दृढौ तु पर्याया वर्द्धन्त एव, पर्यायदृढौ च द्रव्यं भाज्यम्, द्रव्यात् पर्यायाणां दृढत्वत्वाद् एकस्मिन् भावे
25 क्रमवर्तिनामपि च दृढिसम्भवात् कालदृढत्वभावात् भावनीय इति गाथार्थः ॥ ५१ ॥ अत्र कश्चिदाह—जघन्य-मध्य-
मोत्कृष्टभेदभिक्षोरवधिज्ञानसम्बन्धिनोः क्षेत्र-कालयोरङ्गुला-ऽऽवलिक्काऽऽसङ्ख्येयभागापलक्षितयोः परस्परतः प्रदेश-
समयसङ्ख्येयया परिस्थूर-दृढत्वत्वे सति कियता भागेन हीना-ऽधिकत्वम् ? इति, अत्रोच्यते, सर्वत्र प्रतियोगिनः
खल्वावलिक्काऽऽसङ्ख्येयभागादेः कालादसङ्ख्येयगुणं क्षेत्रम् । कुत एतत् ? अत आह—

सहस्रो य० गाहा । व्याख्या—दृढत्वम्—दृढत्वम् भवति कालः, यस्मादुत्पलपत्रतभेदे समयाः प्रतिपत्र-
30 मसङ्घेयाः प्रतिपादिताः । तथापि ततः कालात् दृढत्वम् भवति क्षेत्रम् । कुतः ? यस्मादङ्गुलश्रेणिमात्रे क्षेत्रे प्रदेश-
परिमाणं प्रतिप्रदेशं समयगणनया अवसर्पिण्यः असङ्घेयास्तीर्थकृद्भिः प्रतिपादिताः । एतदुक्तं भवति—अङ्गुलश्रे-
णिमात्रक्षेत्रप्रदेशाग्रसङ्घेयावसर्पिणीसमयराशिपरिमाणमिति गाथार्थः ॥ ५२ ॥

से चं इत्यादि, तदेतद् वर्द्धमानकं अवधिज्ञानमिति ३॥

२५. से किं तं हायमाणयं ओहिणाणं ? हायमाणयं ओहिणाणं अप्पसत्येहिं अज्झवसायट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही परिहायति । से चं हायमाणयं ओहिणाणं ४ ।

२५. से किं तमित्यादि । अथ किं तद् हीयमानकम् ?, हीयमानकं कयञ्चिद्वासं सद् अप्पसस्तेण्वध्य-⁵ वसायम्यानेषु वर्तमानस्य सतोऽविरतसम्यग्दृष्टेः, 'वर्त्तमानचारित्रस्य' देशविरतादेः, 'संकिलिश्यमानस्य' बध्यमानकर्मसंसर्गादुत्तरोत्तरं संकलेशमामादायत अविरतसम्यग्दृष्टेरेव, 'संकिलिश्यमानचारित्रस्य' देशविरतादेः, सर्वतः समन्तादवधिः परिसीयते । तदेतद् हीयमानकमवधिज्ञानमिति ४॥

२६. से किं तं पडिवाति ओहिणाणं ? पडिवाति ओहिणाणं जण्णं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं वा संखेज्जतिभागं वा वालग्गं वा वालग्गपुहत्तं वा लिक्खं वा लिक्खपुहत्तं¹⁰ वा जूयं वा जूयपुहत्तं वा जवं वा जवपुहत्तं वा अंगुलं वा अंगुलपुहत्तं वा पायं वा पायपुहत्तं वा वियत्थि वा वियत्थिपुहत्तं वा रयणिं वा रयणिपुहत्तं वा कुच्छिं वा कुच्छिपुहत्तं वा धणुयं वा धणुयपुहत्तं वा गाउयं वा गाउयपुहत्तं वा जोयणं वा जोयणपुहत्तं वा जोयणसयं वा जोयणसय-¹⁵पुहत्तं वा जोयणसहस्सं वा जोयणसहस्सपुहत्तं वा जोयणसतसहस्सं वा जोयणसतसहस्सपुहत्तं वा जोयणकोडिं वा जोयणकोडिपुहत्तं वा जोयणकोडाकोडिं वा जोयणकोडाकोडिपुहत्तं¹⁵ वा उक्कोसेण लोमं वा पासित्ता णं पडिवाएज्जा । से चं पडिवाति ओहिणाणं ५ ।

२६. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ?, प्रतिपात्यवधिज्ञानं "जण"मिति 'यद्' अवधिज्ञानं 'जणय्येन' सर्वस्तोकतयाऽङ्गुलस्यामङ्गद्येयभागमात्रं वा, उत्कर्षेण सर्वमचुरतया यावद् 'लोकं दृष्ट्वा' लोकमुपलभ्य तथाविधप्रयोपशमजन्यत्वात् प्रतिपत्तेत् न भवेदित्यर्थः, तदेतद् प्रतिपात्यवधिज्ञानमिति क्रिया । शेषं प्रायो निगदसिद्धम् । नवरं 'पृथक्त्वमिति' द्विमूर्तिः आ नरभ्य इति सिद्धान्तपरिभाषा । तथा इन्द्रयं कुक्षिरुच्यते ।²⁰ चत्वारो इस्ता धनुरिति । "से च"मित्यादि तदेतद् प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ५॥

२७. से किं तं अपडिवाति ओहिणाणं ? अपडिवाति ओहिणाणं जेणं अलोमस्स एगमवि आगासपदेसं पासेज्जा तेण परं अपडिवाति ओहिणाणं । से चं अपडिवाति ओहिणाणं ६ ।

२७. से किं तमित्यादि । अथ किं तदप्रतिपात्यवधिज्ञानम् ?, "जेणं" ति "येन" अवधिज्ञानेनालोकस्य²⁵ सम्बन्धिनयैकमप्याकाशप्रदेशम्, अपिशब्दाद् बहून् वा 'पश्येत्' शक्त्यपेक्षयोरुलभेत, एतावत्प्रयोपशममभवं यत् 'तत् ऊर्ध्वमिति' तत् आरभ्याप्रतिपाति आ केवलप्राप्तेरवधिज्ञानमिति । अयमत्र भावायः—एतावत्प्रयोपशमसम्प्राप्तत्वात् विनिहतप्रधानमतिपक्षयोश्चङ्घात इव नरपतिर्न पुनः कर्मशत्रुणा परिभूयते, किं तर्हि ? समासादितैताव-²⁵दालोक एवामतिनिवृत्तः शेषमपि कर्मशत्रुं विनिर्जित्याऽऽप्नोति केवलराज्यश्रियमिति । लोकाऽलोकविभागस्त्वयम्—

जीवादीनां वृषिर्द्रव्याणां भवति यत्र तत् क्षेत्रम् । तैर्द्रव्यैः सह लोकस्तद्विपरीतं बालोकाख्यम् ॥१॥

[]

“स्त्रे च”मित्यादि तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञानमिति ६॥ व्याख्याताः पद् भेदाः । साम्प्रतं द्रव्यादिविषया-
पेक्षया भेदतोऽवधिज्ञानमेव निरूपयन्माह —

- 5 २८. तं समासओ चउच्चिहं षण्णतं, तं जहा-दव्वओ खेतओ कालओ भावओ ।
तत्थ दव्वओ णं ओहिणाणी जहण्णेणं अणंताणि रुविदव्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं
सव्वाइं रुविदव्वाइं जाणइ पासइ १ । खेतओ णं ओहिणाणी जहण्णेणं अंगुलस्स
असंखेज्जतिभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोए लोयमेत्ताइं खंडाइं जाणइ
पासइ २ । कालओ णं ओहिणाणी जहण्णेणं आवलियाए असंखेज्जतिभागं
10 जाणइ पासइ, उक्कोसेणं अमंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अनीतं च अणागतं
च कालं जाणइ पासइ ३ । भावओ णं ओहिणाणी जहण्णेणं अणंते भावे जाणइ
पासइ, उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावानमणंतभागं जाणइ पासइ ४ ।

२८. तं समासओ इत्यादि । ‘तद्’ अवधिज्ञाने ‘समासतः’ सहस्रेषु चतुर्विधं प्रज्ञसम् । तद्यथा-
द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावत इति । तत्र द्रव्यतः “ण”मिति वाक्यालङ्कारे अवधिज्ञानी जघन्येनानन्तानि
15 द्रव्याणि तैजस-भाषाद्रव्याणामपान्तरालवर्तीनि, यत उक्तम्—“तेया-भासादव्वाण अंतरा एत्थ लभ पट्टवओ ।”
[आव. नि. गा. ३८] चि । उत्कृष्टतः सर्वरूपिद्रव्याणि बादर-सूक्ष्मभेदभिन्नानि जानाति विशेषाकारेण, पश्यति
सामान्याकारेण । आह—आदौ दर्शनं ततो ज्ञानमिति क्रमः तत् किमर्थमेन परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युक्तम् १,
अत्रोच्यते, इहावधिज्ञानाधिकारात् प्राधान्यख्यापनार्थमादौ जानातीत्युक्तम्, अवधिदर्शनस्य त्ववधि-विभङ्गसाधा-
रणत्वात् पश्चात् पश्यतीति । अथवा सर्वा एव लब्धयः साकारोपयोगोपयुक्तस्योत्पद्यन्त इति, अवधेयं लब्धित्वा-
20 दित्यस्यार्थस्य ख्यापनार्थमादौ जानातीत्याह, ततः क्रमेणोपयोगप्रवृत्तेः पश्यतीति १ । क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्ये
नाङ्गुलस्यासङ्गचेयभागम्, उत्कृष्टतोऽसङ्गचेयानि ‘अलोके’ केवलाकाशास्तिकाये शक्तिमपेक्ष्य लोकप्रमाणानि
खण्डानि जानाति पश्यति २ । कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाऽऽवलिकामङ्गचेयभागं उत्कृष्टतोऽमङ्गचेया अवसर्पिष्णु-
त्सर्पिणीरतीतं चानागतं च कालं जानाति पश्यतीति, भावार्थः प्राक् प्रतिपादित एव ३ । भावतोऽवधिज्ञानी
जघन्येनानन्तानन्तान् ‘भावान्’ पर्यायान्, आधारद्रव्यानन्तत्वात्, न तु प्रतिद्रव्यमिति, उत्कृष्टतोऽप्यनन्तान्
25 भावान् जानाति पश्यति, तेऽपि चोत्कृष्टपदिनः ‘सर्वभावानां’ सर्वपर्यायाणामनन्तभाग इति ४ ॥ इत्यमवधिज्ञानं
भेदतोऽप्यभिधाय साम्प्रतं सङ्ग्रहगाथामाह -

२९. ओही भवपच्चतिओ गुणपच्चतिओ य वण्णिओ एसो ।

तस्स य बहू वियप्पा, दव्वे खेत्ते य काले य ॥ ५३ ॥

२९. ओही भव० इत्यादि । अस्य व्याख्या—अवधिभेदप्रत्ययो गुणप्रत्ययश्च ‘वर्णितः’ व्याख्यातः ‘एषः’

- 30 अनन्तरम् । पाठान्तरं वा वर्णितो द्विविधः । ‘तस्य’ द्विविधस्यापि बहवो विकल्पाः । ‘द्रव्ये’ इति द्रव्यविषयाः

परमाणु-द्रव्यणुकादिद्रव्यभेदात् । 'क्षेत्रतः' इति क्षेत्रविषया अह्मगुलासङ्गयेयभागादिविशिष्टक्षेत्रभेदात् । 'कालतः' इति कालविषयाः आवल्लिकासङ्गयेयभागाद्युपलक्षितकालभेदात् । चक्षुःशब्दाद् भावविषयाश्च, वर्णाद्यनेकप्रकारत्वाद् भावानामिति गाथार्थः ॥५३॥ एवं तावदवधिज्ञानमभिधाय साम्प्रतं ये बाह्यावधयो ये चाभ्यन्तरावधयो भवन्ति तानुपदर्शयन्नाह—

णेरतिय-देव-तित्थंकरा य ओहिस्सऽवाहिा होंति ।

पासंति मव्वओ खलु सेसा देसेण पासंति ॥५४॥

से तं ओहिणाणं ।

णेरइय० गाहा । व्याख्या—नारकाश्च देवाश्च तीर्थंकराश्चेति समासः । चक्षुःशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, अस्य च व्यवहितः प्रयोग इति दर्शयिष्यामः । एते नारकादयः 'अवधेः' अवधिज्ञानस्य न बाधा अबाधा भवन्ति । इदमत्र हृदयम्—अवधुपलब्धक्षेत्रम्यान्तर्वर्तन्ते, सर्वतोऽप्यभासकत्वात्, प्रदीपवत्, अबाध्यावधय एव भवन्ति, नैषां बाध्यावधिभेदतीत्यर्थः । तथा पश्यति 'सर्वतः' सर्वास्तु दिक्षु । त्रिदिक्षु च, खलुशब्दोऽप्येवकारार्थः, स चावधारणे, सर्वाभवेव दिक्ष्विति । आह—'अवधेरबाधा भवन्ति' इत्यस्मादेव सर्वत इत्यस्य सिद्धत्वात् सर्वतोऽग्रहणमतिरिच्यते? इति, अत्रोच्यते, नन्वभ्यन्तरत्वे सत्यपि न सर्वे सर्वतः पश्यन्ति, दिगन्तरात्त्वादर्शनात्, अवधेर्विचित्रत्वात्, अतो नातिरिच्यत इति । 'शेषाः' तिर्यग्-नराः 'देशेनेति' एकदेशेन पश्यन्ति, अत्रेष्टितोऽवधारणविधिः, शेषा एव देशतः पश्यन्ति, न तु देशत एवेति गाथार्थः ॥ अथवाऽप्यथा व्याख्यायते—एवं तावदवधिज्ञानमभिधाय साम्प्रतं ये नियतावधयो ये चानियतावधयो भवन्ति तान प्रतिपादयन्नाह—

नेरइय० गाहा । व्याख्या—नारका देवास्तीर्थंकरा एवावधेरबाधा भवन्ति । किमुक्तं भवति?—नियतावधयो भवन्ति, नियमेनैषामवधिभेदतीत्यर्थः, तेन चावधिना पश्यन्ति सर्वत एव, न पुनर्देशतोऽपि । अत्राऽह—'पश्यन्ति सर्वत एव' इत्येतावदेवास्तु, 'अवधेरबाधा भवन्ति' इत्येतत् त्वनर्थकम्, नियतावधित्वमप्यर्थसिद्धत्वात्, तथा चोक्तम्—'द्वयोर्मवप्रत्ययः, तद्यथा—देवानां च नारकाणां च' [मुन १३] इति, अतोऽर्थगम्यमेवैषां नियतावधित्वम्, तीर्थंक्रतामपि प्रसिद्धतत्पारमविकावधिसमन्वागमादेव नियतावधित्वसिद्धिरिति, अत्रोच्यते, नियतावधित्वे सिद्धेऽपि न सर्वकालावस्थायित्वसिद्धिरित्यतस्तत्रदर्शनाथम् 'अवधेरबाधा भवन्ति' इति सदाऽवधिज्ञानवन्तो भवन्ति इति ज्ञापनार्थत्वाददृष्टम् । यद्येवं तीर्थंक्रतां सर्वकालावस्थायित्वं विरुध्यत इति, न, छद्मस्थकालस्यैव विवक्षितत्वात्, अत्रं विस्तरंण । शेषं पूर्ववदिति गाथार्थः ॥ ५४ ॥

“से तं ओहिणाणं” ति तदेतदवधिज्ञानम् ॥

25

३०. [१] से किं तं मणपज्जवणाणं ? मणपज्जवणाणे णं भंते ! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ अमणुस्साणं ? गोयमा ! मणुस्साणं, णो अमणुस्साणं । [२] जइ मणु-

स्साणं किं सम्मुच्छिमणुस्साणं गम्भवकंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! णो सम्मुच्छिमणुस्साणं, गम्भवकंतियमणुस्साणं । [३] जइ गम्भवकंतियमणुस्साणं किं कम्मभूम-

गगम्भवकंतियमणुस्साणं अकम्मभूमगगम्भवकंतियमणुस्साणं अंतरदीवगगम्भवकंतियमणु-

30

संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगभवकंतियमणुस्साणं अणिट्ठिपत्तअपमतत्तंसंजयसम्मदिट्ठि-
पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगभवकंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! इट्ठिपत्तअपमतत्तंसंजय-
सम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगभवकंतियमणुस्साणं, णो अणिट्ठिपत्तअपम-
त्तंसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगभवकंतियमणुस्साणं मणपज्जवणाणं
समुप्यज्जइ ।

5

३०. से किं नं मणपज्जवणाणमित्यादि । अथ किं तद् मनःपर्यायज्ञानम् ? इदं प्राग्विरूपितशब्दार्थमेव ।
साम्प्रतस्मृत्यन्ति-स्वामिमार्गणाद्वारेण चिन्त्यते । तथा चाह—“मणपज्जवणाणे णं भंते” इत्यादि । मनःपर्यायज्ञानं
“ण”मिति वाक्चालङ्कारे, ‘भदन्त !’ इति गुत्रामन्त्रणम्, ‘किम्’ इति परिप्रश्ने, मनुष्याणामुत्पद्यत इति प्रकटा-
र्थम्, अमनुष्याणामुत्पद्यत इति । अमनुष्याः—देवादयः । अत्रेदं निर्बचनम्—“गौतम ! मणुस्साण”मित्यादि । आह—
किमिदं अकाण्ड एव गौतमामन्त्रणम् ? ननु देववाक्करचितोऽयं ग्रन्थ इत्युच्यते, सत्यम्, किन्त्वेते पूर्वसूत्रालापका
एवार्थवशाद् विरचिताः, “जावडया तिसमयाहास्ससे” [आव. नि. गा. ३०] त्वदिमिथुंकिगायासूत्रवद् इत्यतो न
दोषः, तत्र च गौतमप्रश्न-भगवाभिरुचनरूप एव ग्रन्थ इति । पुनरप्याह—ननु गौतमोऽपि सूत्रतः प्रवचनमणोत्तात् चतु-
र्दशपूर्वधरत्वात् सकल्पज्ञापनीयभावपरिज्ञानयुक्तत्वात् सर्वज्ञकल्प एव, उक्तं च—

संवातांते वि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा । ण य णं अणाइसेसो विघाणइ एस छउमत्थो ॥ १ ॥

[आव. नि. गा. ५९०] 15

ततः किमर्थं पृच्छति ? अत्रोच्यते, कुतश्चिदभिमायात्, जानान एव स्वशिष्येभ्यो वा प्ररूप्य तत्सम्प्रत्यय-
निमित्तम्, सूत्ररचनाकल्पतो वेति न दोषः, कृतं प्रसङ्गेन । प्रकृतं प्रस्तुतम्—गौतमेन पृष्टो भगवानाह—गौतम !
मनुष्याणामुत्पद्यते, नान्येषाम्, विशिष्टचारित्र्यप्रतिपत्त्यभावात् । एवमन्यत्रापि भावना कार्यति । सम्पृच्छिममनु-
ष्या गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यवान्तादिसमुद्भवाः । उक्तं च—“कहि णं भंते ! सम्पुच्छिममणुस्सा सम्पुच्छंति ?
गोयमा ! अंतोमणुस्सखेचे पणयालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अड्हाज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरसमु कम्मभूमिसु
तीसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाते अंतरदीवसु गन्धकंतियमणुस्साणं चेव उचारंसे वा पासवणेसु वा खेलेसु वा
सियाणेसु वा वनेसु वा पिचेसु वा [पूएसु वा] सोणिएसु वा सुकेसु वा मुक्कोपोगलपरिसाडेसु वा विगय[जीव]कले-
वरेसु वा थी-पुरिससंजोगेसु वा गामणिद्धमणेसु वा णगरणिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव अमुद्दणोणेसु वा, एत्थ णं
सम्पुच्छिममणुस्सा सम्पुच्छंति अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए असणी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी सव्वाहिं
पज्जत्तीहिं अपज्जत्ता अंतोसुहुत्तदाउया चेव कालं करंति । [प्रज्ञा० पदं १ सूत्रं ३६ पत्रं ५० १] भरताद्याः पञ्चदश
कर्मभूमयः । हैमवताद्यास्त्रिंशदकर्मभूमयः । त्रीणि योजनागतानि लयणजलधिजलमध्यमधिलहद्य हिमवच्छिन्नरिपादमतिष्ठिता
पकोरुकाद्याः षट्पञ्चाशदन्तर्दीपा भवन्ति । कर्मभूमौ जाताः कर्मभूमिजा इत्येवमक्षरगमनिका कार्या । सङ्ख्येयव-
र्षायुषः—पूर्वकोट्यादिविजिविनः । असङ्ख्येयवर्षायुषः—पल्पोपमादिविजिविन इति ।

इह पर्याप्तिर्नाम—शक्तिः, सा च पुद्गलद्रव्योपचयादुत्पद्यते । सा पुनः षट्प्रकारा, तथा—आहारपर्याप्तिः १
शरीरपर्याप्तिः २ इन्द्रियपर्याप्तिः ३ माषापातपर्याप्तिः ४ भाषापर्याप्तिः ५ मनःपर्याप्तिश्चेति ६ । तत्र पर्याप्तिः— 30

१ ‘पूर्वसूत्रालापकाः’ शानप्रवाधात्पूर्वसूत्रका आलापका इत्यर्थः ॥

क्रियापरिसमाप्तिः । आत्मनः शरीरेन्द्रिय-प्राणायान-वाङ्-मनोयोग्यदल्लिकद्रव्याहरणक्रियापरिसमाप्तिराहारपर्याप्तिः १। वृद्धीतस्य शरीरतया संस्थापनक्रियापरिसमाप्तिः शरीरपर्याप्तिः; संस्थानरचनाघटनमित्यर्थः २ । त्क्वादीन्द्रियनिर्वर्चनक्रियापरिसमाप्तिरिन्द्रियपर्याप्तिः ३। प्राणायानक्रियायोग्यद्रव्यग्रहणशक्तिनिर्वर्चनक्रियापरिसमाप्तिः प्राणायानपर्याप्तिः ४। भाषायोग्यद्रव्यग्रहण-निसर्गशक्तिनिर्वर्चनक्रियापरिसमाप्तिः भाषापर्याप्तिः ५। मनस्स्त्वयोग्यद्रव्यग्रहण-निसर्गशक्तिनिर्वर्चनक्रियापरिसमाप्तिर्मनःपर्याप्तिरित्येके । आसां युगपदारब्धानामपि क्रमेण परिसमाप्तिः; उत्तरोत्तररक्षसमतरत्वात् । अत्र चाऽऽद्यात्तस्य एकेन्द्रियाणाम्, पञ्च विकलेन्द्रियाणाम्, पदं संज्ञिनाम् । उक्तं च—
आहार सरीरिदिय पञ्जत्ती आणुपाण भास मणे । चत्तारि पंच छ प्पि य एग्गिदिय-विगल-सञ्जीणं ॥ १ ॥

[बृहसं. गा. ३४९]

तत्र पर्याप्तकनामकर्मोदयाद् निष्पद्यमाननियन्त्रणपर्याप्तमन्तः पर्याप्ताः; “अर्क्षआदिभ्यः” [पा. ५-२-१२७]
१० इत्येष मत्वर्थीयः; त एव पर्याप्तकाः । एवमपर्याप्तकनामकर्मोदयादनियन्त्रणपर्याप्तियोगादपर्याप्ताः; त एवापर्याप्तका इति । सम्यग्-अविपरीता दृष्टिर्षेपां ते तथा । मिथ्या-विपरीता दृष्टिर्षेपां ते तथा । सम्यग्मिथ्यादृष्टयस्तु प्रतिपर्याप्तमिच्छुत्वा अन्तर्बृहत्तमात्रं भवन्ति, न तु परित्यागाभिमुखताः । यत उक्तम्—

मिच्छता संकंती अविरुद्धा होइ सम्म-मीसेसु । मीसाओ वा दोषु वि, सम्मा मिच्छं, न पुण मीसं ॥ १ ॥

[कल्पमा. गा. ११४]

११ संयताः—सकलचारित्रिणः । असंयताः—अविरतसम्यग्दृष्टयः । संयतासंयताः—देशविरतिमन्तः श्रावकाः । प्रमत्तसंयताः—गच्छवासिनः; कचिदनुपयोगसम्भवात् । अमत्तसंयतास्तु—जिनकल्पिकादयः; सततोपयोगात्; अथवा गच्छवासिनः तर्जिगताश्च परिणामविशेषतः प्रमत्ताश्चामत्ताश्चान्वगन्तव्य इति । आमपौषध्यादिलब्धिलक्षणा क्रुद्धयः; तासामन्यतरमाप्तियोगात् प्राप्त्यर्थः अवधिक्रुद्धिभावाद्वा । अन्ये त्वत्रधिक्रुद्धौ नियममभिदधति । इह च सर्वत्रैव मनुष्यादिषु विधाने सत्यर्थतो गम्यमानस्यापि विपक्षनिषेधस्याभिधानमव्युत्पन्नविनेयजनात्प्राप्त्यर्थमदुष्टमेवेति ।
२० तथाहि—सर्वपार्षदं हीदं श्रास्त्रम्, त्रिविधाश्च विनेया भवन्ति, तद्यथा—उद्वटित्तलाः १ मध्यमबुद्धयः २ प्रपञ्चविय-३ श्रेत्यलं विस्तरेण । स्थितमेतत्—प्राप्तद्वयप्रमत्तसंयतानामुत्पद्यते ॥

३१. तं च दुविहं उप्यज्जइ, तं जहा—उज्जुमती य विउलमती य ।

३१. एतच्चोत्पद्यमानं द्विधोत्पद्यते, तद्यथा—ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च । मननं मतिः; संवेदनमित्यर्थः; ऋजी—सामान्यप्राहिणी मतिः ऋजुमतिः; ‘घटोऽनेन चिन्तितः’ इत्यध्यवसायनिबन्धनमनोद्रव्यमतिपरिचित्यर्थः ।
२१ एवं विपुला—विशेषप्राहिणी मतिर्विपुलमतिः; ‘घटोऽनेन चिन्तितः; स च सौवर्णः पाटलिपुत्रकोऽद्यतनो महान्’ इत्याध्यवसायहेतुभूतमनोद्रव्यविक्षासिद्धिर्भार्यः । अस्यां व्युत्पत्तौ स्वतन्त्रं ज्ञानमेव शुद्धत इति । अथवा ऋजी—सामान्यप्राहिणी मतिरस्य सोऽयं ऋजुमतिः; तद्वानेव शुद्धते । एवं विपुला—विशेषप्राहिणी मतिरस्येति विपुलमतिः; तद्वानेव । भार्यः भाग्वद्, उत्तरत्र वा वक्ष्यामः ॥

३२. तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ खेतओ कालओ भावओ ।
३० तस्य दव्वओ णं उज्जुमती अणंते अणंतपदेसिण् संवे जाणइ पासइ, ते चेव विउलमती

१ दोषिण वि, ण उं सम्मा परिणमे मीसं इति कल्पमात्रे ॥

अब्महियतराए जाणति पासति । खेत्तओ णं उज्जुमती अहे जाव इमीसे स्यण्णभाए पुदवीए उवरिमहेड्डिलाइं खुड्ढागपयराइं उड्डं जाव जोतिसस्स उवरिमतले तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अट्टाइज्जेसु दीव-समुद्देसु सण्णीणं पंवेदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगते भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमती अट्टाइज्जेहिं अंगुलेहिं अब्महियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणति पासति । कालओ णं उज्जुमती जहण्णेणं पलिओ-वमस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं पि पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणति पासति, तं चेव विउलमती अब्महियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ । भावओ णं उज्जुमती अणंते भावे जाणइ पासइ सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमती अब्महियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ ।

३२. नं समास्तो इत्यादि । तत् समासतश्चतुर्विधं मङ्गलम्, तद्यथा—द्रव्यतः १ क्षेत्रतः २ कालतो ३ भावतः ४ । तत्र द्रव्यतः “णं” इति पूर्ववत्, ऋजुमतिः ‘अनन्तान्’ अपरिमितान् ‘अनन्तपदेशकान्’ अनन्तपरमात्मात्मकानित्यर्थः, ‘स्कन्धान्’ विशिष्टैकपरिणामपरिणतान् सञ्ज्ञिभिः पञ्चेन्द्रियैः पर्याप्तैरुद्भूततीयद्वीप-समुद्रान्तर्वर्त्तिभिर्मनस्त्वेन परिणामितानित्यर्थः, ‘जानीते’ इति मनःपर्यायज्ञानावरणक्षयोपशमस्य पटुत्वात् साक्षात्कारेण विशेषभूयिष्ठपरिच्छेदाजानीत इत्युच्यते । तदालोचितं पुनरर्थं यटादिलक्षणमध्यक्षतो न जानाति, किन्तु तत्परिणामान्याऽनुपपत्त्याऽनुमानतः पश्यतीत्युच्यते । उक्तं च भाष्यकारेण—“जाणति वज्जंऽणुमाणाओ” [विशेषा. गा. ८१४] चि । इत्थं चेतदङ्गीकर्त्तव्यम्, यतो मूर्च्छद्रव्यालम्बनमेवेदम्, मन्तारस्त्वमूर्त्तमपि धर्मास्तिकायादिकं मन्येरन्, न च तदनेन साक्षात्कर्तुं शक्यते । तथा चतुर्विधं च चक्षुर्दर्शनादि दर्शनसूक्तम्, अतो मिथ्यालम्बनमेवेदमवसेयम्, तत्र च दर्शनसम्भवात् पश्यतीत्यपि न दुष्टम्, एकप्रमात्रपेक्षया तदनन्तरभावित्वाच्चोपन्यस्तमिति । ओघतो वा एकविधक्षयोपशमलम्बो विविधोपयोगसम्भवाद् विशेष-सामान्यार्थापेक्षया जानाति पश्यति चेत्सदुष्टमित्यलं विस्तरेण । तानेव विपुलमतिः अभ्यधिकतरान् स्कन्धान् द्रव्यार्थतया वर्णादिभिश्च जानाति पश्यति च १ । क्षेत्रतः ऋजुमतिः अधो यावदस्या रत्नमभायाः पृथिव्या उपरिमापस्त्यानि श्लुल्लकप्रतराणीति । श्लुल्लकप्रतरपरिज्ञानार्थमिदं पण्णविज्जति—

तिरियलोकस्स उड्ढा-ऽहमट्टारसजोयणसतियस्स बहुमज्जे एत्थ असंखेज्जंगुलभागेमात्ता लोगागासपतरा अलोणेण संवेदिया सव्वखुड्ढागतरा खुड्ढापतर चि भञ्जंति, ते य सव्वतो रज्जुप्पमाणा । तेसिं [जे] बहुमज्जे दो खुड्ढागपतरा तेसिं [पि] बहुमज्जे अंबुदीवे रयण्णमपुदवीवहुसमभूमिभागे मंदरस्स बहुमज्जे एत्थऽट्टपएसो रुयोगे, जत्तो दिसि-विदिसिन्निभागे पत्तवो, एयं तिरियलोयमज्जं । एयातो तिरियलोयमज्जातो रज्जुप्पमाणखुड्ढागपतरंहितो उवरि-तिरियं असंखेयंगुलभागवुड्ढी, उवरिहुत्तो वि अंगुलअसंखेयभागारोहो चेव, एवं तिरियसुव्वरिं च अंगुलासंखेयभागवुड्ढीए ताव लोगवुड्ढी णेयव्वा जाव उड्ढल्लोयमज्जं, ततो पुणो तेणेव कमेणं संवेदो कायव्वो जाव उवरिमल्लोयंतो रज्जुप्पमाणो, तत्तो उड्ढल्लोयमज्जातो उवरि हेट्ठा य कमेण खुड्ढागपतरा भाणियव्वा जाव रज्जुप्पमाणा खुड्ढागपतर चि । तिरियलोयमज्जरज्जुप्पमाणखुड्ढागपतरंहितो वि हेट्ठा अंगुलस्स असंखेयभागवुड्ढी तिरियं, अधो-

अवगाहेण वि अंगुलस्स असंखेयभागे वेव, एवमहोलोगो वहुदेयव्णो जाव अहोलोगतो सत्तरज्जूओ, सत्तरज्जू-
पतरेहिंतो वि उवरिं कमेण खुट्ठागपयरा भाणियव्वा जाव तिरियलोयमज्जा रज्जुपमाणा खुट्ठागपयर चि ।

एवं खुट्ठागपरूवणे कते इमं भग्गह—“उवरिम” चि तिरियलोयमज्जाओ अहो जाव णव जोयणसयाणि
ताव इमीसे रयणप्पमाए पुढवीते उवरिमखुट्ठागपतर चि भग्गति, तदधो अधोलोगे जाव अहोलोगिया गाम चि
५ एए हेट्ठिमखुट्ठागपयर चि भग्गति, रिजुमती अहो ताव पस्सति चि भणियं होइ । अहवा अहोलोगस्स उवरिमा
खुट्ठागपयरा तिरियलोगस्स य हेट्ठिमा खुट्ठागपयर चि ते जाव पयतीत्यर्थः । अत्रे भग्गति—“उवरिम” चि
अधोलोगोवरि जे ते उवरिमा, के य ते ?, उच्यते, सच्चतिरियलोगवचिणो तिरियलोगस्स वा अहो नवजोयण-
सतवचिणो, ताण चेव जे हेट्ठिमा ते जाव पयतीत्यर्थः, इमं च ण घडति, अहोलोइयगाममणपज्जवणाणसंभव-
वाहल्लत्तणओ (? संभवपाहणत्तणओ) । उक्तं च—

10 इहाधौलीकिका ग्रामा न तिर्यग्लोकवर्त्तिनः । मनोगतांस्त्वसौ भावान् वेचि तद्वर्त्तिनामपि ॥१॥

[]

अलं भसन्नेन । एवमूर्ध्वं यावज्ज्योतिश्चक्रस्योपरितलम्, तिर्यग् यावद् ‘अन्तोमनुष्यक्षेत्रे’ मनुष्यलोकान्त
इत्यर्थः । शेषं सुगमं यावत् “सण्णीणं पंचिंदियाणं” इत्यादि । तत्र संज्ञिनोऽपान्तराख्यातावपि तदायुष्कसंवेदना-
दभिधीयन्त एव, न तैरिहाधिकार इत्यतः पञ्चेन्द्रियग्रहणम्, तेऽपि चोपपातक्षेत्रपाप्मा अपि मनःपर्याप्त्या अपर्याप्तका
15 अपि भण्यन्ते, न च तैरपीहाधिकार इत्यतः पर्याप्तकग्रहणमिति । स्वरूपकथनं वा सञ्ज्ञिनो पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्त-
कानामिति । अथवा संज्ञिनो हेतुवादोपदेशेन विकलेन्द्रिया अपि भण्यन्ते, तद्वच्यच्छेदार्थं पञ्चेन्द्रियग्रहणम्, तेऽप्य-
पर्याप्तका अपि भवन्ति अतः पर्याप्तकग्रहणमिति । “तं चेवे”त्यादि, इह क्षेत्राधिकारस्यैव प्राधान्यात् ‘तदेव’ मनो-
ल-
ब्धिसमन्वितजीवाधारं क्षेत्रमभिपृच्छते । विपुलमतिः अर्द्धं तृतीयस्य येषु तान्यर्द्धतृतीयानि तैरभ्यधिकतरम्, प्रभूत-
तरमित्यर्थः, तदेव प्राकृतशैल्या अभ्यधिकतरकम्, एवं शोषेऽपि द्रष्टव्यम् । तत्रैकदिशमप्यधिकतरं भवत्यतः
20 सर्वतोऽभ्यधिकतरमिति प्रतिपादनार्थमाह—‘विपुलतरं’ विस्तीर्णतरम्, अथवाऽऽयाम-विष्कम्भावाश्रित्याभ्यधिकतरम्,
बाह्यन्यमाश्रित्य विपुलतरम् । तथा ‘विशुद्धतरं’ निर्मलतरमित्यर्थः, यथा चन्द्रकान्तादिप्रकाशकद्रव्यं विमलविमल-
तरविशेषाद् विमलप्रकाशितद्रष्टुः सकाशाद् विमलतरप्रकाशितद्रष्टा विशुद्धतरं पश्यति, एवं विष्कम्भितोदयमन-
पर्याप्तज्ञानावरणस्य कारणभेदतो मन्दमन्दतरविशेषभावाद् ऋजुमतेः सकाशाद् विपुलमतिर्विशुद्धतरमिति, उप-
शान्तावरणविशेषादपि ज्ञानस्य विशेष इत्येतावतांशेन दृष्टान्तः । तथा तदावरणस्योपशमविशेषाच्च ‘वित्तिमिरतरं’
25 निर्मलतरम् । अथवा प्राग्बद्धतदावरणकर्मस्योपशमस्य प्रधानत्वाद् विशुद्धतरम्, बन्धमानावरणकर्मस्योपशमविशेषाच्च
वित्तिमिरतरम्, बन्धमानाभावाच्च वित्तिमिरतरमित्यन्ये । अथवैकारिका एवेते शब्दाः नानादेशजानां विनेयानां
कस्यचित् कश्चित् प्रसिद्धो भवतीत्युपन्यस्ताः । क्षेत्रं “तात्स्थ्यात् तद्वच्यपदेशः” इति जानाति पश्यति । शेषं
निगदसिद्धं यावत्—

३३. मणपज्जवणाणं पुण जणमणपरिचितियत्थपायडणं ।

30 माणुसस्वेत्तणिवद्धं गुणपच्चइयं चरित्तवओ ॥ ५५ ॥

से तं मणपज्जवणाणं ।

३३. मणपञ्चव० गाहा । व्याख्या—मनःपर्यायज्ञानं प्राग्विकल्पितशब्दार्थम् । पुनःशब्दो विशेषणार्थः । इदं हि रूपनिबन्धन-क्षायोपशमिक-प्रत्यक्षादिसाम्येऽपि सत्यवधिज्ञानान् स्वाम्यादिभेदेन विशिष्टमिति स्वरूपतः प्रतिपादयन्नाह—जायन्त इति जनाः, तेषां मनांसि जनमनांसि, जनमनोभिः परिचिन्तितः जनमनःपरिचिन्तितः, जनमनःपरिचिन्तितश्चासावर्थश्चेति समासः, तं प्रकटयति—प्रकाशयति जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनम् । मातृपुत्र-क्षेत्रम्—अर्द्धवृत्तीयद्वीपसमुद्रपरिमाणं तन्निबद्धम्, न तद्वचिर्व्यवस्थितप्राणिमनःपरिचिन्तितार्थविषयं प्रवर्त्तत इत्यर्थः । 5 गुणाः—क्षान्त्यादयः त एव प्रत्ययाः—कारणानि यस्य तद् गुणप्रत्ययम् । चारित्रमस्यास्तीति चारित्रवान् तस्य चारित्रवत् एवेदं भवति । एतदुक्तं भवति—अममत्तसंयतस्य आमर्षौष्यादिकृद्भिप्राप्तस्य चेति गार्थार्थः ॥५५॥

“से तं मणपञ्चवणाणं” तदेतन्मनःपर्यायज्ञानमिति ॥

३४. से किं तं केवलणाणं ? केवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—भवत्यकेवलणाणं च सिद्धकेवलणाणं च । 10

३४. से किं तं केवलणाणं ? इत्यादि । अथ किं तत् केवलज्ञानम् ?, केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—भवत्यकेवलज्ञानं च सिद्धकेवलज्ञानं च । भवन्त्यस्मिन् कर्मवशवर्त्तिनः प्रागेन इति भवः, भवो गतिर्जन्मेति पर्यायाः, भवे तिष्ठतीति भवस्थः, तस्य केवलज्ञानं भवस्थकेवलज्ञानम् । “पिथो संराद्धो” [पा. धातु. ११९२] “राध साध संसिद्धौ” [पा. धातु. १२६३ ६४] “पिथु शाब्धे माङ्गल्ये च” [पा. धातु. ४८] सिध्वति स्म सिद्धः, यो येन गुणेन निष्पन्नः—परिनिष्ठितः, न पुनः माधनीयः, सिद्धौदनवत्, स सिद्धः । स च कर्मसिद्धादिभेदादनेकविधः । उक्तं च— 15 कम्मे सिप्पे य विज्जा य मंते जोगे य आगमे । अत्य जत्ता अभिप्पाए त्वे कम्मकखए इ य ॥१॥

[आव. नि. गा. ५२७]

इह कर्मसयमिद्रेनाधिकारः, स चाशेषकर्मांशलयात् कर्मसयसिद्धः । सितध्वंसित्वाद्वा सिद्धः, “सि वर्ण-बन्धनयोः” [] इति । सितं—बद्धमष्टप्रकारं कर्म तद् ध्वंसितुं शीलमस्येति सितध्वंसी सिद्धः, तस्य केवलज्ञानं सिद्धकेवलज्ञानम् ॥ 20

३५. से किं तं भवत्यकेवलणाणं ? भवत्यकेवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—सजोगिभवत्यकेवलणाणं च अजोगिभवत्यकेवलणाणं च ।

३५. से किं तमित्यादि । अथ किं तद् भवत्यकेवलज्ञानम् ?, भवत्यकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—सयोगिभवत्यकेवलज्ञानं च अयोगिभवत्यकेवलज्ञानं च । इह युज्यन्त इति योगाः कायादयः, उक्तं च— “काय-वाहू-मनःकर्म योगः” [तत्त्वा. ६.१] । तत्रौदारिकादिशरीरयुक्तस्याऽऽत्मनो वीर्यपरिणतविशेषः काय-योगः । तथौदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारकशरीरव्यापाराहृतवान्द्रव्यसमूहसाचिब्याजीवव्यापारो वाप्योगः । तथौदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारकशरीरव्यापाराहृतमनोद्रव्यसमूहसाचिब्याजीवव्यापारो मनोयोगः । तद् यथासम्भवं योगोऽस्य विद्यत इति सयोगी, सयोगी चासौ भवत्यथ सयोगिभवत्यः, तस्य केवलज्ञानं सयोगिभवत्यकेवलज्ञानम् । एवं न योगी अयोगी, स च भवत्यथ तस्य केवलज्ञानं अयोगिभवत्यकेवलज्ञानम्, शैलेश्यवस्यागतस्येत्यर्थः ॥

३६. से किं तं सजोगिभवत्यकेवलणाणं ? सजोगिभवत्यकेवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, 30

तै जहा-पदमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणं च अपदमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणं च, अहवा चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणं च अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणं च । से तं सजोगिभवत्थकेवलणाणं ।

३६. अथ किं तत् सयोगिभवत्थकेवलज्ञानम् ?, सयोगिभवत्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-प्रथमस-
 5 मयसयोगिभवत्थकेवलज्ञानं च अप्रथमसमयसयोगिभवत्थकेवलज्ञानं च । तत्र प्रथमसमयः-तत्प्रथमतयोत्पत्ति-
 समय एव युज्यते, न प्रथमोऽप्रथमः-द्वितीयादयः सर्व एव शैलेयवस्थाप्राप्तेरप्रथमसमया इति । अथवेत्यन्यथा
 प्रतियाद्यते-“चरमसमये” त्यादि, तत्र चरमः-सयोगिकालान्त्यसमयः, न चरमोऽचरमः, प्रश्नानुपूर्व्या चरमादार-
 भ्य सर्व एव केवलप्राप्तेरचरमा इति । “से त” मित्यादि निगमनम् ॥

३७. से किं तं अजोगिभवत्थकेवलणाणं ? अजोगिभवत्थकेवलणाणं दुविहं पण्णत्तं,
 10 तं जहा-पदमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणं च अपदमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणं च, अहवा चरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणं च अचरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणं च । से तं अजोगिभवत्थकेवलणाणं ।

३७. से किं तमित्यादि । अत्रापि शैलेयवस्थाभावि केवलज्ञानमधिकृत्यैवमेव भावनीयम् । अलं विस्तर-
 रेण । “से त”मित्यादि निगमनम्, तदेतद् भवत्यकेवलज्ञानम् ॥

३८. से किं तं सिद्धकेवलणाणं ? सिद्धकेवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-अणंतरसिद्ध-
 15 केवलणाणं च परंपरसिद्धकेवलणाणं च ।

३८. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानम् ?, सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-
 अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च परंपरसिद्धकेवलज्ञानं च । तत्र शैलेयवस्थापर्यन्तवर्तिसमयममासादितसिद्धव्यस्य
 तस्मिन्नेव समये यत् केवलज्ञानं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् । ततो द्वितीयादिसमयेऽप्यनन्तामप्यनागतार्हा परंपर-
 20 सिद्धकेवलज्ञानमिति ॥

३९. से किं तं अणंतरसिद्धकेवलणाणं ? अणंतरसिद्धकेवलणाणं पण्णसविहं पण्णत्तं,
 तं जहा-तित्थसिद्धा १ अतित्थसिद्धा २ तित्थगरसिद्धा ३ अतित्थगरसिद्धा ४ सयंबुद्ध-
 सिद्धा ५ पत्तेयबुद्धसिद्धा ६ बुद्धबोहियसिद्धा ७ इत्थिलिंगसिद्धा ८ पुरिसिलिंगसिद्धा ९
 णपुंसगलिंगसिद्धा १० सलिंगसिद्धा ११ अण्णलिंगसिद्धा १२ गिहिलिंगसिद्धा १३ एगसिद्धा
 25 १४ अणेगसिद्धा १५ । से तं अणंतरसिद्धकेवलणाणं ।

३९. से किं तमित्यादि प्रश्नद्वयस्य निर्वचनम्-अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तम्, सिद्धाना-
 मेवानन्तरभवगतोपाधिभेदेन पञ्चदशभेदभिन्नत्वात् । पञ्चदशभेदभिन्नतामेव दर्शयन्नाह-‘तद्यथा-तीर्थसिद्धाः’
 इत्यादि । तत्र येनेह जीवा जन्म-जरा-मरणसलिलं मिथ्यादर्शना-ऽकिरतिगम्भीरं विचित्रदुःखगणकरिमकरं राम-
 30 श्रेष्ठचक्रमक्षोभितमनन्तसारसगरं तरन्ति तत् तीर्थमिति, तच्च यथाऽस्थितसकलजीवा-ऽजीवादिपदार्थमरूपकं

अल्पन्तानकक्षा-ऽन्याभिज्ञातचरण-करणक्रियाधारं अचिन्त्यशक्तिसमन्वितात्रिसंवाहुषुपकल्पं चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वि-
तपरमशुक्लमणीतं भवचनम्, एतच्च सङ्घः प्रथमगणधरो वा, तथा चोक्तम्—“ तित्थं भंते तित्थं ? तित्थकरे तित्थं ?,
गोयमा ! अरिहा ताव नियमा तित्थंकरे, तित्थं पुण चाउज्ज्वणो समणसंघो पढमगणधरो वा ” [अग. श. २३. उ. ८
सू. ६८२] इत्यादि, ततश्च तस्मिन्नुत्पन्ने ये सिद्धास्ते तीर्थसिद्धाः १ । ‘अतीर्थसिद्धाः’ तीर्थान्तरसिद्धा इत्यर्थः,
श्रूयते च—“ जिगंनरे साहुबोच्छेओ ” [आव. नि. गा. ३६५] चि, तत्रापि जातिस्मरणादिनाऽवाप्तापवर्गमार्गाः 5
सिध्यन्त्येव; मरुदेविप्रभृतयो वाऽतीर्थसिद्धाः, तदा तीर्थस्यानुत्पन्न्त्वात् २ । ‘तीर्थकरसिद्धाः’ तीर्थकरा एव ३ ।
‘अतीर्थकरसिद्धाः’ अन्ये सामान्यकेवलिनः ४ । स्वचं बुद्धाः सन्तो ये सिद्धास्ते स्वयम्बुद्धसिद्धाः ५ । प्रत्येकबुद्धाः
सन्तो ये सिद्धास्ते प्रत्येकबुद्धसिद्धा इति ६ ।

अथ स्वयम्बुद्ध-प्रत्येकबुद्धयोः कः प्रतिविशेषः ? इति, उच्यते, बोध्युपधि-श्रुत-लिङ्गकृतो विशेषः । तथाहि—
स्वयम्बुद्धा बाह्यप्रत्ययमन्तरणैव बुध्यन्ते, प्रत्येकबुद्धास्तु न तद्विरहेण । श्रूयते च बाह्यप्रथमादिप्रत्ययसापेक्षा कर्क- 10
ण्डवादीनां प्रत्येकबुद्धानां बोधिरिति । उपधिस्तु स्वयम्बुद्धानां द्वादशविधः पात्रादिः, प्रत्येकबुद्धानां तु नवविधः
प्रावरणवर्जः । स्वयम्बुद्धानां पूर्वाधीतश्रुतेऽनियमः, प्रत्येकबुद्धानां तु नियमतो भवत्येव । लिङ्गप्रतिपत्तिः स्वयम्बु-
द्धानामाचार्यसन्निधावपि भवति, प्रत्येकबुद्धानां तु देवता प्रथच्छतीत्यलं विस्तरेण ।

‘बुद्धबोधितसिद्धाः’ बुद्धाः—आचार्यास्तैर्बोधिताः सन्तो ये सिद्धास्त इह गृह्यन्ते ७ । एते च सर्वेऽपि
केचित् स्त्रीलिङ्गसिद्धाः ८ केचित् पुल्लिङ्गसिद्धाः ९ केचिन्पुंसकलिङ्गसिद्धा १० इति । आह—तीर्थकरा अपि स्त्रीलि- 15
ङ्गसिद्धा भवन्ति १, भवन्तीत्याह, यत उक्तं सिद्धप्राप्तौ—“ सव्रत्योवा तित्थगरिसिद्धा, तित्थगरितित्थे णोतित्थ-
सिद्धा संखेज्जगुणा, तित्थगरितित्थे णोतित्थगरिसिद्धाओ संखेज्जगुणाओ, तित्थगरितित्थे णोतित्थगरिसिद्धा
संखेज्जगुणा ” [गा. १०० वृत्तो] इति, न तु नपुंसकलिङ्गाः । प्रत्येकबुद्धास्तु पुल्लिङ्गा एव । ‘स्वलिङ्गसिद्धाः’ द्रव्यलिङ्गं
प्रति रजोहरण-गोच्छकधारिणः ११ । ‘अन्यलिङ्गसिद्धाः’ परिव्राजकादिलिङ्गे सिद्धाः १२ । शुहिलिङ्गसिद्धा मरुदेवी-
प्रभृतयः १३ । ‘एकसिद्धाः’ इति एकस्मिन् समये एक एव सिद्धः १४ । ‘अणेगसिद्धाः’ इति एकस्मिन् समये 20
यावद् अष्टयतं सिद्धम् । यत उक्तम्—

वत्तीसा १ अहयाला २ सट्ठी ३ बावत्तरी ४ य बोद्धवा । चुलसीती ५ छन्नउई ६ दुरहिय ७ अट्टुत्तरसयं ८ च ॥१॥

[बृहत्सं. गा. ३३३]

अत्राऽऽह चोदकः—ननु सर्व एवैते भेदास्तीर्थसिद्धा-ऽतीर्थसिद्धभेदद्वयान्तर्भाविनः, तथाहि—तीर्थसिद्धा एव
तीर्थकरसिद्धाः, अतीर्थकरसिद्धा अपि तीर्थसिद्धा वा स्युः अतीर्थसिद्धा वेति, एवं शेषेष्वपि भावनीयमिति, अतः 25
किमेभिः ? इति, अत्रोच्यते, अन्तर्भावे सत्यपि पूर्वभेदद्वयादेवोत्तरोत्तरभेदाप्रतिपत्तेः, अज्ञातज्ञापनार्थं च भेदाभि-
धानमिति । “ से त ” मित्यादि निगमनम् ॥

४०. से किं तं परंपरसिद्धकेवलगाणं ? परंपरसिद्धकेवलगाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तं
जहा—अपढमसमयसिद्धा दुसमयसिद्धा तिसमयसिद्धा चउसमयसिद्धा जाव दससमयसिद्धा
संखेज्जसमयसिद्धा असंखेज्जसमयसिद्धा अणंतसमयसिद्धा, से तं परंपरसिद्धकेवलगाणं । 30
से तं सिद्धकेवलगाणं ।

४०. से किं तं परंपर इत्यादि । न प्रथमसमयसिद्धाः अप्रथमसमयसिद्धाः, परस्परसिद्धविशेषणप्रथम-समयवर्तिनः, सिद्धतद्वितीयसमयवर्तिन इत्यर्थः । ज्यादिषु तु द्विसमयसिद्धादयः प्रोच्यन्ते । यदा सामान्येनाप्रथ-मसमयसिद्धा अभिधानविशेषतो द्विसमयादिसिद्धाभिधानमिति । शेषं प्रकटार्थं यावत्—

४१. तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ ।

5 तथ दव्वओ णं केवलणाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । खेत्तओ णं केवलणाणी सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ । कालओ णं केवलणाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ । भावओ णं केवलणाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ ।

४१. तं समासतो इत्यादि । तदिति सामान्येन केवलज्ञानमभियुञ्जते । द्रव्यतः केवलज्ञानी 'सर्वद्रव्याणि' धर्मास्तिकायादीनि साक्षाज्जानाति पश्यति । श्वेततः केवलज्ञानी 'सर्वं श्वेतं' लोका-ऽऽलोकभेदभिन्नं साक्षाज्जानाति पश्यति । [सं. १०००] इह च धर्मास्तिकायादिसर्वद्रव्यग्रहणे सत्यप्याकाशास्तिकायस्य श्वेतत्वेन रूढत्वाद् भेदे-नोपन्यासः । कालतः केवलज्ञानी 'सर्वं कालं' अतीता-ऽनागत-वर्त्तमानभेदभिन्नं साक्षाज्जानाति पश्यति । भावतः केवलज्ञानी 'सर्वान्' जीवा-ऽजीवगतान् भावान् गति-रूपायाद्यगुरुत्पुलक्षणादीन् साक्षाज्जानाति पश्यति ॥

इह च केवलज्ञान-दर्शनोपयोगिक्त्यायां क्रमोपयोगादौ सूरीणामनेकविधा विप्रतिपत्तिः, अतः सहस्रेषो विनेयजनानुग्रहाय तत्पदर्शनं क्रियत इति । तत्र—

15 'केई भणंति, जुगवं जाणइ पासइ य केवली गियमा ।

अझे एगंतरिपं इच्छंति सुओवदेसेणं । १॥

अझे ण चेव बीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स ।

जं चिय केवलनाणं तं चिय से दंसणं विंति ॥२॥ [विशेषणवती गा. १५३-५४]

गाथाद्वयम् । अस्य व्याख्या—'केचन' सिद्धमेनाचार्यादयः भणंति । किम् ? 'युगपद्' एकस्मिन्नेव काले 20 जानाति पश्यति च । कः ? केवली, न ह्यन्यः, 'नियमाद्' नियमेन । 'अन्ये' जिनभद्रगणिदामाश्रमगप्रभृतयः एका-न्तरितं जानाति पश्यति चेत्येवमिच्छन्ति 'श्रुतोपदेशेन' यथाश्रुतागमानुसारेणेत्यर्थः । 'अन्ये तु' वृत्ताचार्या 'न' नैव 'त्रिष्वक्' पृथक् तद्दर्शनमिच्छन्ति 'जिनवरेन्द्रस्य' केवलिन इत्यर्थः । किं तर्हि ? यदेव केवलज्ञानं तदेव "से" तस्य केवलिनो दर्शनं ब्रूवते, क्षीणावरणस्य देशज्ञानाभावात्, केवलदर्शनाभावादिति भावतो । अयं 30 गाथाद्वयार्थः ॥१॥२॥ साम्प्रतं युगपदुपयोगवादिमतप्रदर्शनायाह—

25 जं केवलाइं सदाई-अपज्जवसियाइं दो वि भणियाइं ।

ता विंति केइ, जुगवं जाणइ पासइ य सव्वन्नु । ३॥ [विशेषणवती गा. १९२]

यस्मात् केवलज्ञान-दर्शने साद्यपर्वसिते द्वे अपि भणिते ततः ब्रूवते 'केचन' सिद्धमेनाचार्यादयः । किम् ? 'युगपद्' एकस्मिन् काले जानाति पश्यति च । कः ? सर्वज्ञ इति गार्थार्थः ॥३॥

इहराऽऽदी-णिघणत्तं मिच्छाऽऽवरणक्खयो त्ति व जिणस्स ।

30 इहरेतरावरणता अह्वा निक्कारणावरणं ॥ ४ ॥

[विशेषणवती गा. १९४]

१ केवलज्ञान-केवलदर्शनयुगपदुपयोगादिवाद्सङ्गता एता एव चतुर्विंशतिगाथाः श्रीहरिभद्रसूरिवर्यमसकप्रहर्षया गा १३३६ तः १३५५ गाथात्वेनाऽऽस्ताः सन्ति ।

‘इतरथा’ अन्यथा ‘आदि-निधनत्वं’ सादि-पर्यवसानत्वम्, केवलज्ञान-दर्शनयोरुत्पत्त्यनन्तरमेव केवलज्ञानोपयोग-
काले केवलदर्शनाभावात्, एवं केवलदर्शनोपयोगकालेऽपि केवलज्ञानाभावात् । तथा मिथ्याऽऽवरणक्षय इति वा
जिनस्य, न ह्यपनीतावरणौ द्वौ मदीपौ क्रमेण प्रकाश्यं प्रकाशयत इत्यभिप्रायः । तथा इतरेतरावरणता, आवरणे
क्षीणेऽप्यन्यतमभावे अन्यतमाभावादिति भावना । अथवा ‘निष्कारणावरणम्’ इति अकारणमेव अन्यतरो-
पयोगकालेऽन्यतरोपयोगाऽऽवरणम्, तथा च सति सर्वदेव भावाऽभावप्रसङ्गः । तथा चोक्तम्—

नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणात् । अपेक्षतो हि भावानां कादाचित्कत्वसम्भवः ॥ १ ॥

[प्रमाणवार्तिके ३-३४] इति गायार्थः ॥ ४ ॥

तह य असत्त्वन्नुत्तं असत्त्वदरिसित्तणप्पसंगो य ।

एगंतरोवओगे जिणस्स दोम्मा बहुविहीया ॥ ५ ॥ [विशेषणवती गा. १९५]

व्याख्या—तथा च सति असर्वज्ञत्वमसर्वदर्शित्वप्रसङ्गश्च । पार्श्विकं वा असर्वज्ञत्वम्—यदा सर्वज्ञो न तदा 10
सर्वदर्शी, दर्शनोपयोगाभावात्; एवं यदा सर्वदर्शी न तदा सर्वज्ञः, ज्ञानोपयोगाभावात् । एवमेकान्तरोपयोगेऽभ्युप-
गम्यमाने सति ‘जिनस्य’ केवलिनो दोषा बहुविधा इति गायार्थः ॥ ५ ॥ एवं परेशोके सत्यागमवाद्याह—

अण्णति, भिन्नसुहृत्त्वोवयोगकाले वि नो तिणाणिस्स ।

मिच्छा छावट्ठी सागरोवमाई खओवसमो ॥ ६ ॥ [विशेषणवती गा. २०२]

व्याख्या—यदुक्तम् ‘इतरथाऽऽदि-निधनत्वम्’ इति तदसत्’ इति दर्शयति—उपयोगाऽभ्युपयोगकालापेक्षयैव 15
साद्यपर्यवसितत्वात् केवलज्ञान-दर्शनयोरित्यभिप्रायः, न चानार्पणमिदम्, कथम्? अण्यत्वे—अन्यथा हि भिन्नसुहृत्त्वो-
पयोगकालेऽपि मत्यादीनां तत्तस्त्रिजानिनः मिथ्या वटवृष्टिः सागरोपमाणि क्षयोपक्षमः, प्रतिपादितश्च ध्वजे, न च
युगपदेव मत्याद्युपयोगः; एवं क्षायिकोपयोगेऽपि भविष्यति, जीवस्त्वाभाव्यादिति गायार्थः ॥ ६ ॥

न च क्षयकार्येणावश्यमनवरतमेव भवितव्यमिति दर्शयन्नाह—

अह ण वि एवं ता सुण, जहेव खीणंतराहओ अरहा ।

संते वि अंतरापक्खयम्मि पंचप्पगारम्मि ॥ ७ ॥

सततं न देति लहति व भुंजति उवभुंजई व सत्त्वन् ।

कज्जम्मि देति लभति व भुंजति व तहेव इहई पि ॥ ८ ॥

किञ्च—दित्तस्स लभंतस्स य भुंजंतस्स व जिणस्स एस गुणो ।

खीणंतराहयत्ते जं से विग्घं न संभवह ॥ ९ ॥

उवउत्तस्सेमेव य णाणम्मि व दंसणम्मि व जिणस्स ।

खीणावरणगुणोऽयं, जं कसिणं मुणह पासह वा ॥ १० ॥ [विशेषणवती गा. २०३-६]

ओ०—पासंतो वि न जाणह, जाणं व ण पासती जह जिणिंदो ।

एवं न कदाह वि सो सत्त्वन् सत्त्वदरिसी य ॥ ११ ॥ [विशेषणवती गा. २१५]

व्याख्या—पश्यन्पि न जानाति जानन् वा न पश्यति यदि जिनेन्द्रः, एवं न कदाचिदप्यसौ सर्वज्ञः सर्वदर्शी 30
च, युगपद्व्यतरोपयोगकालेऽन्यतरोपयोगाभावादिति गायार्थः ॥ ११ ॥ सिद्धान्तवाद्याह—

जुगषभजाणंतो वि ह्रु चउहि वि णाणेहिं जह व चउणाणी ।

भण्णह, तहेव अरहा सव्वन्तु सव्वदरिप्पी य ॥ १२ ॥ [विशेषणवती गा. २१६]

इयं तु निगदसिद्धैव । नवरं क्षायिकभावमाश्रित्येति गाथार्थः ॥ १२ ॥ पुनरप्याह—

तुल्ले उभयावरणक्वयम्मि पुण्वतरमुचभवो कस्स ? ।

5 द्रुविह्ववयोगाभावे जिणस्स जुगवं ति चोदेति ॥ १३ ॥ [विशेषणवती गा. २१७]

ब्याख्या—तुल्ये 'उभयावरणक्षये' केवलज्ञान-दर्शनावरणक्षये 'पूर्वतरं' प्रथमतरं 'उद्भवः' उत्पादः कस्य ? । यदि ज्ञानस्य स किंनिबन्धनः ? इति वाच्यम्, तदावरणक्षयनिबन्धन इति चेत्, दर्शनेऽपि तुल्य इति तस्याप्युद्भवमसङ्गः; एवं दर्शनेऽपि वाच्यम्, अतः स्वावरणक्षयेऽपि दर्शनाभाववद् ज्ञानस्याप्यभावमसङ्गः विपर्ययो वा । एवं द्विविधो-पयोगाभावे, 'जिनस्य युगपत्' इति चोदयति । अयं गाथार्थः ॥ १३ ॥ अत्र सिद्धान्तवाधाह—

10 भण्णति, ण एस नियमो. जुगवुप्पन्नेण जुगवमेवेह ।

होयव्वं उवओगेण, एत्थ मुण ताव दिट्ठं ॥ १४ ॥

जह जुगवुप्पत्तौय वि मुत्ते सम्मत्त-मति-सुतादीणं ।

णत्थि जुगवोवयोगो सव्वेसु, तहेव केवल्लिणो ॥ १५ ॥

भण्णियं पि य पन्नत्ती-पन्नवणादीसु, जह जिणो समयं ।

15 जं जाणती न पासह तं अणुरयणप्पभादीणं ॥ १६ ॥

[विशेषणवती गा. २१८-२० विशेषा. गा. ३११२]

इदं गाथान्वयमपि प्रकटार्थम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ अधुना ये केवलज्ञान-दर्शनाभेदवादिनस्तन्मतमुपन्यस्यन्नाह—

जह किर खीणावरणे देसन्नाणाण संभवो न जिणे ।

उभयावरणादीते तह केवलदंसणस्सावि ॥ १७ ॥ [विशेषणवती गा. १५५]

निगदसिद्धा ॥ १७ ॥ सिद्धान्तवाधाह—

20 देसन्नाणोवरमे जह केवलणाणसंभवो भणिओ ।

देसदंसणविगमे तह केवलदंसणं होउ ॥ १८ ॥

अह देसणाण-दंसणविगमे तुह केवलं मयं णाणं ।

ण मतं केवलदंसणमिच्छामेत्तं णणु तवेयं ॥ १९ ॥ [विशेषणवती गा. १५६-५७]

भण्णह, जहोहिणाणी जाणह पासह य भासितं सुत्ते ।

25 न य णाम ओहिदंसण-णाणेगत्तं तह इमं पि ॥ २० ॥ [विशेषणवती गा. १७८]

जह पासह तह पासतु, पासति सो जेण दंसणं तं से ।

जाणति य जेण अरहा तं से णाणं ति वत्तव्वं ॥ २१ ॥ [विशेषणवती गा. १९२]

स्वपक्षसमर्थनायैव सिद्धान्तवाधाह—

णाणम्मि दंसणम्मि य एत्तो एगतरयम्मि उवउत्तो ।

30 सव्वस्स केवल्लिस्सा जुगवं दो णत्थि उवओगा ॥ २२ ॥

[विशेषणवती गा. २२९ विशेषा. गा. ३०९६]

उबओगो एगयरो पणुवीसतिमे सते सिणायस्स ।
भणिओ वियइत्थो च्चिय छट्टुइसे विसेसेउं ॥ २३ ॥

[विशेषणवती गा. २३२ विशेषा. गा. ३१२०]

गाथाद्वयमपि निगदसिद्धम् । नवरं भगवत्यां पञ्चविंशतितमे शतेऽधिकारोपलक्षिते “सिणायस्स” चि “स्नात-
कस्य” केवलिनः ॥२२॥२३॥ सिद्धान्तवाद्येवानुद्गतन्वमागमभक्तिं च परां ख्यापयन्नाह—

कस्स व णाणुमतमिणं जिणस्स जदि होज्ज दो वि उबओगा ? ।
णूणं ण हांति जुगवं, जेण णिमिद्धा मुते बहुसो ॥ २४ ॥

[विशेषणवती गा. २४६ विशेषा. गा. ३१३२]

निगदसिद्धैवेति ॥ २४ ॥ अलं प्रसङ्गेन । प्रकृतं प्रम्नुमः—

४२. अहं स्वद्ववपरिणामभावविष्णुत्तिकारणमणंतं ।

सामयमपण्डिवाती एगविहं केवलण्णाणं ॥ ५६ ॥

केवलण्णाणेणऽत्थे णाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे ।

ते भामइ तित्थयरो, वइजोग तयं हवइ सेसं ॥ ५७ ॥

से चं केवलण्णाणं । से चं पञ्चमत्तणाणं ।

४२. अहं० गाथा । व्याख्या—इह मनःपर्यायज्ञानानन्तरं द्वत्रक्रमोद्भवतः शुद्धिवाभक्त्य प्राक् केवलज्ञानमुक्तं 15
तदुपन्यस्यत इत्यतस्तदर्थोऽयमथशब्दः । उक्तं च—“अथशब्दः प्रक्रिया-प्रश्ना-ऽऽनन्तर्य-मङ्गलोपन्यास-प्रतिवचन-
समुच्चयेषु” [सर्वाणि च तानि द्रव्याणि च सर्वेद्रव्याणि-जीवा-ऽजीवलक्षणानि तेषां

परिणामाः-प्रयोग-विश्रमोभयान्ख्या उत्पादादयः सर्वेद्रव्यपरिणामास्तेषां भावः-सत्ता स्वलक्षणमित्यनर्थान्तरं तस्य
विशेषेण ज्ञापनं विज्ञप्तिः विज्ञानं वा विज्ञप्तिः तत्र भेदोपचारात् तस्या विज्ञप्तेः-परिच्छिन्नेः कारणं सर्वेद्रव्य-
परिणामभावविज्ञप्तिकारणम्, अथवा विज्ञप्तिरेव कारणं विज्ञप्तिकारणम्, अत एव सर्वेक्षेत्र-कालविषयं तत्, 20
क्षेत्रादीनामपि द्रव्यत्वात् । तच्च ज्ञेयानन्तत्वादनन्तम् । शाश्वद्भावाच्छाश्वतम्, मदीपयोगादिति भावार्थः । प्रतिपत्तनशीलं
प्रतिपाति, न प्रतिपाति अप्रतिपाति, सदाऽवस्थितमित्यर्थः । आह-यच्छाश्वतं तदप्रतिपात्येवातः किं विशेषेण ?
इति, उच्यते-मा भूद् यावद् भवति तावच्छाश्वतमनवरतमेव भवतीति प्रतिपातिः, न पुनरत्रध्यादिवदन्यथेत्यतो
विशेषणमित्यनवरतं भवति सर्वकालं चेति । अथवैकूपद्रव्यभिकारेऽपि विशेषण-विशेष्यभावो भवतीति ज्ञापनार्थम् ।
तथाहि-शाश्वतमप्रतिपात्येव, अप्रतिपाति तु शाश्वतमशाश्वतं वा, अप्रतिपात्यवधेरेष्यशाश्वतत्वादिति । ‘एकविधं’ 25
एकप्रकारम्, आचरणाभावात् क्षयस्यैकरूपत्वात् । केवलं-मत्यादिलिरोपेक्षम्, केवलं च तज्ज्ञानं चेति गाथार्थः ॥५६॥

इह ‘तीर्थकृतं सद्युपमातकेवलः सत्त्वानुग्रहार्थं देशनां करोति, तीर्थकरनामकर्मोदयात्, ततश्च ध्वनेर्द्रव्य-
श्रुतरूपत्वात् तस्य च भावश्रुतपूर्वकत्वात् श्रुतज्ञानसम्भवाद्निष्ठापत्तिः’ इति मा भूमतिमोहोऽव्युत्पन्नबुद्धीनामित्य-
तस्तद्विनिवृत्त्यर्थमाह—

केवल० गाथा । व्याख्या—इह तीर्थकरः केवलज्ञानेन ‘अर्थान्’ धर्मास्तिकायादीन् मूर्त्तां-ऽमूर्त्तान् 30
अभिलाष्या-ऽनभिलाष्यान् ‘ज्ञात्वा’ विनिश्चित्य, केवलज्ञानेनैव ज्ञात्वा, न तु श्रुतज्ञानेन, तस्य क्षायोपशमिकत्वात्,

केवलिनश्च तदभावात्, सर्वशुद्धौ देशशुद्धयभावादित्यर्थः । ये 'तत्र' तेषामर्थानां मध्ये प्रज्ञापनं प्रज्ञापना तस्या योग्याः प्रज्ञापनायोग्याः तान् 'भाषते' तानेव वक्ति, नेतरानिति । प्रज्ञापनीयानिति न सर्वांनेव भाषते, अनन्तत्वात्, आद्युषः परिमितत्वात्, किं तर्हि ? योग्यानेत्र, गृहीतृशक्यपेक्षया, यो हि यावतां योग्यस्तानिति । तत्र केवलज्ञानोपलब्धार्थाभिधायकः शब्दराशिः प्रोच्यमानस्तस्य भगवतो वाग्योगे एव भवति, न श्रुतम्, नामक्रमोदयनिबन्धनत्वात्, श्रुतस्य च क्षायोपशमिकत्वात्, स च श्रुतं भवति शेषम् । 'शेषमिति' अमधानम् । एतदुक्तं भवति—श्रोतृणां श्रुतप्रत्यानुसारिभावश्रुतनिबन्धनत्वात् 'शेषं' अमधानं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः । अन्ये त्वेवं पठन्ति—“वदजोगं सुयं हवद् तैस्ति” स वाग्योगः श्रुतं भवति 'तेषां' श्रोतृणाम्, भावश्रुतकारणत्वादित्यभिप्रायः । अथवा वाग्योगः 'श्रुतं' द्रव्यश्रुतमेवेति गायार्थः ॥ ५७ ॥

“से तं” इत्यादि निगमनम् । तदेतत् केवलज्ञानम् । तदेतत् प्रत्यक्षम् ॥ एवं प्रत्यक्षे प्रतिपादिते सति

10 परोक्षस्वरूपमनवगच्छन्नाह चोदकः—

४३. से किं तं परोक्षखाणं ? परोक्षखाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आभिणिबोहियणाणपरोक्खं च सुयणाणपरोक्खं च ।

४३. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् परोक्षम्?, परोक्षं द्विविधं प्रश्न्यम्, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षं च श्रुतज्ञानपरोक्षं च । 'चौ' पूर्ववत् । अनयोश्चेत्यं क्रमोपन्यासे प्रयोजनमुक्तमेव ॥

15 साम्प्रतं स्वाम्यभेदप्रतिपादनायाह—

४४. जत्थाऽऽभिणिबोहियणाणं तत्थ सुयणाणं, जत्थ सुयणाणं तत्थाऽऽभिणिबोहियणाणं । दो वि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं तह वि पुण एत्याऽऽयरिया णाणत्तं पण्णवेत्ति—अभिणिबुज्झइ त्ति आभिणिबोहियं, सुणतीति सुत्तं ।

“मतिपुच्चयं सुयं, ण मती सुयपुच्चिया ।”

20 ४४. जत्थ आभिणिबोहियणाणमित्यादि । 'यत्र' पुरुषे इन्द्रिय-नोऽन्द्रियक्षयोपशमे वा आभिनिबोधिकज्ञानं 'तत्रैव' पुरुषादौ श्रुतज्ञानम्, तथा यत्र श्रुतज्ञानं तत्राऽऽभिनिबोधिकज्ञानम् । आह—यत्राभिनिबोधिकज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानमित्युक्ते यत्र श्रुतज्ञानं तत्राऽऽभिनिबोधिकज्ञानमिति गम्यत एवेत्यतः किमनेनोक्तेन ? इति, अत्रोच्यते, नियमतो न गम्यत इत्यतो नियमाथेम् । तथा चाह—

“दो वि एयाइं” इत्यादि । “द्वे अप्येते” आभिनिबोधिक-श्रुते 'अन्योन्यानुगते' परस्परं प्रतिबद्धे ।

25 स्यादेतद्—एवं सत्यभेद एवास्त्वनयोरित्यागङ्गायाह—“तह वि पुणो” इत्यादि । तथापि पुनराचार्याः “नानात्वं” भेदं 'प्रज्ञापयन्ति' मरूपयन्ति । कथम् ? लक्षणभेदात्, दृष्टधान्योन्यानुगतयोः स्यात्काकाशस्थयोर्धर्मा-ऽधर्मास्तिकाय-योलक्षणभेदाद् भेद इति । तत्र यो हि गतिपरिणामपरिणतयोर्जीव-पुद्गलयोर्गत्युपष्टम्भहेतुर्जलमिव क्षयस्य स खल्व-सङ्ख्येयप्रदेशात्मकोऽमूर्च्छो धर्मास्तिकाय इति, तथा यः स्थितिपरिणामपरिणतयोर्जीव-पुद्गलयोरेव स्थित्युपष्टम्भ-हेतुर्विषयस्य स्थितिरिव क्षयस्य स खल्वसङ्ख्येयप्रदेशात्मकोऽमूर्च्छो एवाधर्मास्तिकाय इति, एवमाभिनिबोधिक-श्रुतयो-
30 रपि लक्षणभेदाद् भेदः । तथा चाह—

“अभिनिबुञ्जह” इत्यादि । अभिनिबुध्यत इत्याभिनिबोधिकम्, आत्मनः परिणामविशेषः । एवं श्रुतो-
तीति श्रुतम्, आत्मन एव परिणामविशेष इति । एतदुक्तं भवति—यदिन्द्रिय-मनोनिमित्तमात्मनो विज्ञानं श्रुतग्र-
न्थानुसारेणोपजायते तत् श्रुतम्, शेषमिन्द्रिय-मनोनिमित्तमभिनिबोधिकमिति । इत्थं लक्षणभेदाद् भेदमभिधा-
यायुना प्रकारान्तरेण भेदमभिधित्सुराह—

“मतिपुञ्जं सुतं, ण मती सुयपुञ्जिया” “पू पाठन-पूरणयोः” [पाणिनिशतु १४९०] इत्येतस्य पूर्यते 5
प्राप्यते पाल्यते वाऽनेन कार्यमिति पूर्वं-कारणम्, मतिः पूर्वंमस्येति मतिपूर्वं ‘श्रुतं’ श्रुतज्ञानम्, तथा चेदं मत्या
पूर्यते प्राप्यते पाल्यते वा, अन्यथा प्रणश्यतीत्यर्थः, न मतिः श्रुतपूर्वंत्यर्थं महान् भेद इति । अत्राह—मति-श्रुतयो-
युगपदेव सम्यक्ज्ञावापत्तो भाव उक्तः, अज्ञानयोरपि विगमः, तत् कथं मतिपूर्वं श्रुतम् ? इति, किञ्च—मतिपूर्वकत्वेऽ-
भ्युपगम्यमाने सति मतिज्ञानभावेऽपि तत्काले श्रुतमज्ञानं प्राप्नोति, अनापं चेदमिति, अत्रोच्यते—ननु लब्धिं प्रति
मति-श्रुते समकाले भवतः, न नूपयोऽज्ञानयोः समकाले इति मतिपूर्वं श्रुतम्, इह पुनः को भावार्थः ? श्रुतोप- 10
योगो मतिप्रभवः, यतो नासञ्चिन्त्य मत्या श्रुतग्रन्थानुसारि विज्ञानमुत्पद्यते । आह—एवं मतिरपि श्रुतपूर्वो भव-
त्येव, तथाहि—शब्दं श्रुत्वा या मतिरुत्पद्यते सा श्रुतपूर्वेति प्रतीतम्, अतो न विशेषः, यथा मतिपूर्वं श्रुतं तथा
मतिरपि श्रुतपूर्वेति, अत्रोच्यते—ननु सा द्रव्यश्रुतोद्भवा वर्चते, इह तु ‘न मतिः श्रुतपूर्वो’ इति का भावना ? भावश्रुतात्
सकाशाद् मतिर्नास्तीति, यद्वा कार्यतया निषिध्यते—न पुनः क्रमेण, क्रमेण तु श्रुतोपयोगात् च्युतस्य मत्यवस्थान-
मिष्यत एवेत्यलं प्रसङ्गेन । न चैतत् स्वमनीषिकयोच्यते, यतोऽभ्यधायि भाष्यकृता— 15

गाणाणऽष्णाणाणि य समकालाद् यतो मह-सुयाद् । तो न सुयं मतिपुञ्जं, मतिणाणे वा मुयऽष्णाणं ॥ १ ॥
इह लब्धिमह-सुयाद् समकालाद्, न नृत्रयोगो सिं । मतिपुञ्जं सुयमिह पुण सुतोपयोगो मतिष्पभवे ॥ २ ॥
सोऽरुण जा मती मे सा मुयपुञ्जं चि तेण ण विसेसो । मा दव्वमयुपदमवा, भावसुयाओ मती नत्थि ॥ ३ ॥
कज्जतया, ण तु कमसो, क्रमेण को वा मतिं निचारेद् ? जं तत्थावत्थाणं चुतस्स सुतोवयोगाओ ॥ ४ ॥

[विशेष. गा. १०७-१०] 20

इतश्च मति-श्रुतयोर्भेदः—भेदभेदात्; तथाहि—अत्रग्रहादिभेदादृष्टिभेदविषयं मतिज्ञानम्, अत्रपविष्टाद्यनेक-
भेदभिन्नं च श्रुतज्ञानम् । इन्द्रियोपयोगालाभतो लाभविभागतो वा । उक्तं च—

सोईदिओवल्ह्दी होद् सुतं, सेसयं तु मतिणाणं । मोसुणं दव्वमयुपं अत्तरल्लो य सेसेसु ॥ १ ॥

[विशेष. गा. ११७]

इतश्च भेदः—अनसरमपि मतिज्ञानम्, अक्षरानुगतं च श्रुतज्ञानमिति । अथ शाऽऽत्मप्रत्यायकं मतिज्ञानम्, स्वपर- 25
प्रत्यायकं श्रुतज्ञानम् । आक्षरणभेदाद् भेद इत्यलमितिप्रसङ्गेन ॥ इह च यथा मति-श्रुतयोः कार्य-कारणभेदान्मियो
भेदस्तथा सम्यग्-मिध्यादर्शनपरिग्रहविशेषात् स्वरूपतोऽपि भेद इति दर्शयन्नाह—

४५. अविसेसिया मती मतिणाणं च मतिअष्णाणं च । विसेसिया मती सम्महिद्धिस्स
मती मतिणाणं, मिच्छादिद्धिस्स मती मतिअष्णाणं । अविसेसियं सुयं सुयणाणं च सुय-
अष्णाणं च । विसेसियं सुयं सम्महिद्धिस्स सुयं सुयणाणं, मिच्छादिद्धिस्स सुयं सुयअष्णाणं । 30

४५. अविशेषिता इत्यादि । अविशेषिता मतिः सामान्येनैव मतिज्ञानं मत्यज्ञानं च, सामान्येनोभय-
त्रापि मतिशब्दप्रवृत्तेः । 'विशेषिता मतिः' स्वामिविशेषेण सम्यग्दृष्टेर्मतिर्मतिज्ञानम्, निश्चयनयदर्शनेन स्वकार्य-
प्रसाधकत्वात्; मिथ्यादृष्टेर्मतिः मत्यज्ञानम्, तत्रतः स्वफलरहितत्वादित्यर्थः । एवं श्रुतसूत्रमपि व्याख्येयम् ।
आह-क्षयोपशमादिकारणाभेदे घटादिवर्षिच्छेदकार्याभेदे च कथं मिथ्यादृष्टेरज्ञाने ? इति, तथा च मिथ्यादृष्टेरपि
5 क्षयोपशमादेव मति-श्रुतप्रवृत्तिः, तयोर्धोदिलक्षणाकारमेव घटादिसंवेदनमिति, अत्रोच्यते-मिथ्यादृष्टेरज्ञाने मति-
श्रुते, सदसतोरविशेषात्, उन्मत्तकवत् । उक्तं च भाष्यकारेण—

सदसदविसेसणाओ, भवहेउ जहिच्छिओवलंभाओ । णाणफलाभावान्तो, मिच्छिद्विस्सि अन्नाणं ॥ १ ॥

[विशेषा. गा. ११५]

विनेयजनानुग्रहार्थमियं लेशतो व्याख्यायत इति-मिथ्यादृष्टिः कथञ्चित् सन्तमपि पुरुषे देवादियर्धं न
10 प्रतिपद्यते, पुरुष एवेत्यभ्युपगमात्; तथा असन्तमपि घटादियर्धं प्रतिपद्यते, अस्यैवेत्यभ्युपगमात्; अतः
सदसतोरविशेष इति । अतश्च मिथ्यादृष्टेर्मति-श्रुते अज्ञाने, भवहेतुत्वाच्च, मिथ्यादर्शनवत् । इतश्चाज्ञानम्-यदच्छो-
पलम्भेः, उन्मत्तकवत् । इतश्चाज्ञानम्-[ज्ञान]कल्याणात्वात्, अन्यमदीपयन्, ज्ञानस्य हि फले विरतिः, सा च मिथ्या-
दृष्टेर्न विद्यत इत्यलं प्रसङ्गः ॥ प्रकृतं प्रस्तुमः-इह मतिपूर्वं श्रुतमिति कृत्वा मतिज्ञानमेवाधिकृत्य प्रश्नसूत्रमाह—

४६. से किं तं आभिणिञ्चोहियणाणं ? आभिणिञ्चोहियणाणं दुविहं णणत्तं, तं जहा-
15 सुयणिस्सियं च असुयणिस्सियं च ।

४६. से किं तमित्यादि । अत्र निर्वचनम्-द्विविधं प्रश्नम्, तद्यथा-श्रुतनिश्चितं चाश्रुतनिश्चितं च । 'चो'
पूर्ववत् । श्रुतमिह सामायिकादि लोकत्रिपुरागान्ते द्रव्यश्रुतं गृह्यते, तदनुसारेण श्रुतपरिक्रमितमनेस्तदपेक्षमेव
चोत्पादकाले यदुत्पद्यते तत् श्रुतनिश्चितं अग्रग्राह्यम् । यत्पुनस्तदनपेक्षं तथाविधक्षयोपशमप्रभवमेव वर्त्तते तदश्रुत-
निश्चितं औत्पत्तिक्यादि । आह-इदमप्यत्रग्राह्यरूपमेव, मत्यम्, किन्तु श्रुतानुसारमन्तरणोत्पत्तेर्भेदोक्तम् ॥
20 तत्राल्पतरत्रकल्पत्वादश्रुतनिश्चितमतिज्ञानप्रतिपादनायाह—

४७. से किं तं असुयणिस्सियं ? असुयणिस्सियं चउच्चिहं णणत्तं, तं जहा-
उप्पत्तिया १ वेणइया २ कम्मया ३ पारिणामिया ४ ।
बुद्धी चउच्चिहा वुत्ता पंचमा नोवल्लम्भइ ॥ ५८ ॥
पुवं अदिट्ठमसुयमवेइयतक्खणविसुद्धगहियत्था ।
25 अच्चाहयफलजोगा बुद्धी उप्पत्तिया णाम ॥ ५९ ॥

भरहसिल १ पणिय २ रुक्खे ३ खुड्डु ४ पड ५ सरड ६ काय ७ उच्चारं ८ ।

गय ९ घयण १० गोल ११ खंमे १२

खुड्डु १३ मग्गि १४ त्थि १५ पत्ति १६ पुत्ते १७ ॥ ६० ॥

भरह सिल १ मिद २ कुकुड ३ वालय ४ हत्थी ५ [य] अगड ६ वणसंठे ७ ।

पायस ८ अइया ९ पत्ते १० खाडहिला ११ पंच पियरो १२ य ॥ ६१ ॥
महुसित्य १८ मुहि १९ यंके २० य गाणए २१ भिकखु २२ चेडगणिहाणे २३ ।
सिक्खा २४ य अत्थसत्थे २५ इच्छा य महं २६ सतसहस्से २७ ॥ ६२ ॥ १ ।

भरणित्थरणसमत्था तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला ।

उभयोलोगफलवती विणयसमुत्था हवति बुद्धी ॥ ६३ ॥

5

णिमित्ते १ अत्थसत्थे २ य लेहे ३ गणिए ४ य कूव ५ अस्से ६ य ।

गइभ ७ लक्खण ८ गंठी ९ अगए १० रहिए य गणिया य ११ ॥ ६४ ॥

सीया साडी दीहं च तणं अवसव्वयं च कुंचस्स १२ ।

निव्वोदए १३ य गोणे घोडग पडणं च रुक्खाओ १४ ॥ ६५ ॥ २ ।

उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंगपरिघोलणविसाला ।

10

साहुक्कारफलवती कम्मसमुत्था हवति बुद्धी ॥ ६६ ॥

हेरणिए १ करिसए २ कोलिय ३ डोए ४ य मुत्ति ५ घय ६ पवए ७ ।

तुण्णाग ८ वड्ढती ९ पूतिए १० य घट ११ चित्तकारे १२ य ॥ ६७ ॥ ३ ।

अणुमाण-हेउ-दिट्ठंतसाहिया वयविवागपरिणामा ।

हिय-णीसेसफलवती बुद्धी परिणामिया णाम ॥ ६८ ॥

15

अभए १ सेट्ठि २ कुमारे ३ देवी (? वे) ४ उदिओदए हवति राया ५ ।

साहू य णंदिसेणे ६ धणदत्ते ७ साव(? वि)ग ८ अमच्चे ९ ॥ ६९ ॥

खमए १० अमच्चपुत्ते ११ चाणके १२ चेव थूलभहे १३ य ।

णासिक्कसुंदरीनंदे १४ वइरे १५ परिणामिया बुद्धी ॥ ७० ॥

चलणाहण १६ आमंडे १७ मणी १८ य सप्पे १९ य खग्गि २० थूमि २१ दे २२ । 20

परिणामियबुद्धीए एवमादी उदाहरणा ॥ ७१ ॥ ४ ।

से त्तं असुयनिस्सियं ।

४७. से किं तमित्यादि । अत्र-उत्पत्तिया० गाहा । व्याख्या-उत्पत्तिरेव प्रयोजनं यस्याः सा औत्पत्तिकी ।

आह-स्योपशमः प्रयोजनमस्याः, सत्यम्, किन्तु स खल्वन्तरङ्गत्वात् सर्वबुद्धिमाधारण इति न विवक्ष्यते, न चान्य-
च्छास्त्र-स्वकर्माभ्यासादिकमपेक्षत इति । विनयः-गुरुश्रुत्या स कारणमस्यास्तत्प्रधाना वा नैवियकी । अनाचार्यकं 25
कर्म, साचार्यकं शिल्पम्, नित्यव्यापारः कर्म, कादाचित्कं शिल्पम्, 'कर्मजेति' कर्मणो जाता कर्मजा । परि-समन्ताद्

नमनं परिणामः—सुदीर्घकालपूर्वापराधीनलोकनादिजन्य आत्मधर्म इत्यर्थः, स कारणमस्यास्तत्प्रधाना वा परिणामिका । बुध्यते अनयेति बुद्धिः, मतिरित्यर्थः, सा चतुर्विधोक्ता तीर्थंकर-गणयैः । किमिति ? यस्मात् पञ्चमी नोपलभ्यते केवलान्नाऽपि, अस्त्वादिति गाथार्थः ॥ ५८ ॥ औत्पत्तिकया लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

पुञ्ज० गाथा । 'पूर्व'मिति बुद्ध्युत्पादान् प्राक् स्वयमदृष्टः अन्यतश्चाश्रुतः अवेदितः—मनसाऽप्यनालोचितः

- 5 तस्मिन्नेव क्षणे विशुद्धः—यथावस्थितः शुद्धीतः—अवधारितः अर्थः—अभिप्रेतपदार्थो यया मा तथा । इहैकान्तिकमिह-परलोकविरुद्धं फलान्तरावाधितं चाव्याहृतमुच्यते, फलं—प्रयोजनम्, अव्याहृतं च तत् फलं च अव्याहृतफलम्, योगोऽस्यास्तीति योगिनी, अव्याहृतफलेन योगिनी अव्याहृतफलयोगिनी । अन्ये पठन्ति—'अव्याहृतफलयोगा' अव्याहृतफलेन योगोऽस्याः सा अव्याहृतफलयोगा बुद्धिः औत्पत्तिकी नामिति गाथार्थः ॥ ५९ ॥

साम्भवं विनेयजनानुग्रहायास्या एव स्वरूपमतिपादनार्थमुदाहरणानि प्रतिपादयन्नाह—

- 10 भरहृत्सिल पणिय० गाथा । भरहृ० गाथा । मद्भृत्सि० गाथा । आसामर्थः कथानकेभ्य एवावसेयः । तानि चात्सरप्राप्तान्यपि गुरुनियोगात् ब्रूमः, क्लिवावस्थके वक्ष्यामः ॥६०॥६१॥६२॥

अधुना वैनयिकया लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

- भरणि० गाथा । व्याख्या—इहातिगुरु कार्यं दुर्निर्वहत्वाद् भर इव भरः, तस्मिन्नेव समर्था भरनिस्तरण-समर्था । त्रयो वर्गास्त्रिवर्गमिति लोकवर्धेर्माऽर्थे-कामाः, तदजैनपरोपायमतिपादननिबन्धनं सूत्रम्, तदन्वाख्यानं स्वर्थः, 15 पेयालं—प्रमाणं सारो वा, त्रिवर्गसूत्रार्थयोश्चेद्गीतं प्रमाणं सारो वा यया सा तथाविधा । अथवा त्रिवर्गः—त्रैलोक्यम् । आह—त्रिवर्गसूत्रार्थशुद्धीतसारत्वे सति अश्रुतनिश्चितत्वं विरुध्यते ? इति, न हि श्रुताभ्यामस्मन्तरेण त्रिवर्गसूत्रार्थशुद्धीतसारत्वं सम्भवति, अत्रोच्यते—इह प्रायोऽतिमूर्खीकृत्याश्रुतनिश्चितत्वमुक्तम्, अतः स्वल्पश्रुतनिश्चितभावेऽपि न कश्चिद् दोष इति । 'उभयलोकफलवती' वेदिकाऽऽमुष्मिकफलवती 'विनयसमुत्था' विनयोद्भवा भवति बुद्धिरिति गाथार्थः ॥ ६३ ॥ अस्या एव विनेयजनानुग्रहार्थमुदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयन्नाह—

- 20 णिमिन्ते० गाथा । सीता० गाथा । गाथाद्वयार्थः कथानकेभ्य एवावसेयः । तानि चोत्तरत्र वक्ष्यामः ॥६४॥६५॥ साम्भवं कर्मजाया बुद्धेर्लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

- उच्चयोग० गाथा । व्याख्या—उपयोजनमुपयोगः—विवक्षिते कर्मणि मनसोऽभिविदेशः, सारः—तस्मैव कर्मणः परमार्थः, उपयोगेन दृष्टः सारो ययेति समासः, अभिनिवेशोपलब्धकर्मपरमार्थेत्यर्थः । कर्मणि प्रसङ्गः कर्मप्रसङ्गः, प्रसङ्गः—अभ्यासः, परिशोचनं—विचारः, कर्मप्रसङ्ग-परिशोचनाभ्यां विशाला कर्मप्रसङ्ग-परिशोचनविशाला, अभ्यास- 25 विचारविस्तीर्णैति भावार्थः । साधु कृतमिति—सृष्टु कृतमिति विद्वद्भ्यः प्रशंसा साधुकारः, तेन फलवतीति समासः, साधुकारेण वा शेषमपि फलं यस्याः सा तथा । 'कर्मसमुत्था' कर्मोद्भवा भवति बुद्धिरिति गाथार्थः ॥६६॥ अस्या अपि विनेयवर्गानुक्रमयोदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयन्नाह—

हेरणि० गाथा । व्याख्या—अस्या अप्यर्थं वक्ष्यामः ॥६७॥ साम्भवं पारिणामिकया लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

अणुमाण० गाथा । व्याख्या—अनुमान-हेतु-दृष्टान्तैः साध्यमर्थं साध्यतीति अनुमान-हेतु-दृष्टान्तसाधिका । इह

- 30 लिङ्गज्ञानमनुमानम्, स्वार्थमित्यर्थः, तत्प्रतिपादकं वचो हेतुः, परार्थमित्यर्थः । अथवा ज्ञापकमनुमानम्, कारको हेतुः । दृष्टमर्थमन्तं नयतीति दृष्टान्तः । आह—अनुमानग्रहणादेव दृष्टान्तस्य गतत्वादलक्ष्यनप्यासेन, न, अनुमानस्य तत्त्वत एकलक्षणत्वात् । उक्तं च—“अन्यथाऽनुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ?” [इत्यादि । साध्यो-

पमाभूतश्च दृष्टान्तः । उक्तं च—“यः साध्यस्योपमाभूतः स दृष्टान्त इति कथ्यते” । कालकृतो देहावस्थायविशेषो वय इत्युच्यते, तद्विपाकेन परिणामः—पुष्टता यस्याः सा तथाविधा । हितम्—अभ्युदयस्तत्कारणं वा, निःश्रेयसं—मोक्षस्तथिवन्धनं वा, हित-निःश्रेयसाभ्यां फलवती बुद्धिः पारिणामिकीति गाथार्थः । ॥६८॥

अस्या अपि शिष्यगणहितायोदाहरणैः स्वरूपं दर्शयन्नाह—

अभए० गाहा । स्वमए० गाहा । चलगा० गाहा । आसामर्थः कथानकेभ्य एवावसेयः । तानि चान्यत्र 5
वक्ष्यामः ॥६९॥७०॥७१॥ “से तं” इत्यादि, तदेतदश्रुतनिश्चितम् ॥

४८. से किं तं सुयणिस्मिसं मतिणाणं ? सुयणिस्मिसं मतिणाणं चउव्विहं पणत्तं,
तं जहा—उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४ ।

४८. से किं तमित्यादि । चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अवग्रह ईहा अपायो धारणा । अवग्रहणमवग्रहः, सामान्यमात्रानिर्देश्यार्थग्रहणमित्यर्थः । तथा ईहनमोहा, सदर्शपर्यालोचनचेष्टेऽन्यर्थः । एतदुक्तं भवति—अवग्रहाद्-¹⁰
चीर्णः अपायान् पूर्वः सद्भूतार्थविशेषोपादानाभिमुखोऽसद्भूतार्थविशेषत्यागाभिमुखश्च भावो मधुरत्वादयः शङ्का-
दिशब्दधर्मा अत्र घटन्ते, न त्वर-कर्म-निष्ठुरतादयः शास्त्रीदिशब्दधर्मा इति मतिविशेष ईहेति । तथा तदर्थीय-
वसायोऽप्यायः निर्णयो निश्चयोऽवगम इत्यनर्थान्तरम् । एतदुक्तं भवति—‘शाह एवायम्, शाह एव वा’ इत्याद्यव-
धारणात्मकः प्रत्ययोऽप्याय इति । तथा तदर्थविशेषधरणं धारणा, अविच्युति-स्मृति-त्रासनारूपा ॥

४९. से किं तं उग्गहे ? उग्गहे दुविहे पणत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य । 15

४९. से किं तमित्यादि । अथ कोऽयमवग्रहः ? अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अर्थीयवग्रहश्च
व्यञ्जनावग्रहश्च । अयंयत इत्यर्थः, अर्थस्यावग्रहोऽर्थीयवग्रहः, सकलविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यार्थग्रहणमेकसामयिकमिति
भावार्थः । व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव पट इति व्यञ्जनम्, तत्रोपकरणेन्द्रियं शब्दादिपरिणतद्रव्यसङ्घातो वा,
ततश्च व्यञ्जनेन—उपकरणेन्द्रियेण व्यञ्जनानां—शब्दादिपरिणतद्रव्याणामवग्रहो व्यञ्जनावग्रहः । अथार्थीयवग्रहस्य तु
(? सु) लक्ष्यत्वात् सकलेन्द्रियार्थव्यापकत्वाच्च प्रथममुपपन्त्यासः, ततो दुर्लक्ष्यत्वात् सकलेन्द्रियार्थीयव्यापकत्वाच्चेतरस्य ॥ 20

५०. से किं तं वंजणोग्गहे ? वंजणोग्गहे चउव्विहे पणत्ते, तं जहा—सोत्तियव्वंज-
णोग्गहे ? घाणेदियव्वंजणोग्गहे २ जिम्भियव्वंजणोग्गहे ३ फासेदियव्वंजणोग्गहे ४ । से
तं वंजणोग्गहे ।

५०. से किं तमित्यादि । अथ कोऽयं व्यञ्जनावग्रहः ? इत्यत्र पुनरुपपत्तिक्रम एवाऽऽश्रितो यथासम्भवमिति
सुश्लिष्टमेतदिति । प्रकृतमुच्यते—व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह इत्यादि सूत्रसिद्धम् । 25
आह—पञ्चेन्द्रिय-मनःसङ्घावे सति किमित्ययं चतुर्विधः ? इति, अत्रोच्यते, नयन-मनसोरभाप्तकारित्वात्, अभाप्त-
कारित्वं च विषयकृतानुग्रहोपातशून्यत्वात्, भाप्तकारित्वे पुनरनल-जल-शूलाद्यालोकने दहन-क्लेद-न-पाटनादयः
स्युः । अत्र च विषयदेशं गत्वा न पश्यति, भाप्तं चार्थं नाऽऽलम्बत इत्येतावन्विषयमन्ते, स्मृतिमता पुनः भाप्तेन
भवत एवानुग्रहोपातार्थो भास्करिकरिणादिनेति । अन्यस्त्वाह—अवहितार्थानुपलब्धेरनुमानात् भाप्तकारित्वं लोचन-
स्येति, एतदयुक्तम्, अनैकान्तिकत्वात्, रुचोऽप्रपटल-स्फटिकान्तरितोपलब्धेः । स्यादेतत्—नायना रश्मयो निर्गम्य 30
६० ७

तमर्थं घृह्णतीति दर्शने रश्मीनां तैजसत्वात् तेजोद्रव्यैरप्रतिस्खलनाददोष इति, एतदप्युक्तम्, महाज्वालादीं प्रति-
स्खलनोपलब्धेरिति । अत्र बहु वक्तव्यं तप्तु नोच्यते, ग्रन्थविस्तरमयात्, गमनिकामात्रमेतदिति ॥

५१. [१] से किं तं अथोग्गहे ? अथोग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सोईदिय-
अथोग्गहे १ च्चिक्खिदियअथोग्गहे २ घाणिदियअथोग्गहे ३ जिम्भिदियअथोग्गहे ४
५ फासिदियअथोग्गहे ५ णोईदियअथोग्गहे ६ । [२] तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणा-
घोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा—ओगिण्हणया १ उवधारणया २ सवणता
३ अवलंबणता ४ मेहा ५ । से चं उग्गहे ।

५१. [१] से किं तमित्यादि । अथ कोऽयमर्थोवग्रहः ? अर्थोवग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ओत्रेन्द्रि-
यार्थोवग्रह इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत्—

- 10 [२] तस्स णं इमे इत्यादि । ‘तस्य’ अवग्रहस्य ‘अमूनि’ वक्ष्यमाणानि “णं” पूर्ववद् अवग्रहसामान्या-
पेक्षयैकार्थिकानि नानाधोषाणि नानाप्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति । घोषाः—उदात्तादयः । कादीनि
व्यञ्जनानि । नामैव नामधेयम्, अवग्रहविशेषापेक्षया तु कथञ्चिद् भिन्नार्थानि । त्रिविधश्चावग्रहः—सामान्यावग्रहो
विशेषावग्रहः विशेषसामान्यार्थोवग्रहश्चेति । तत्र भिन्नार्थता निदर्शयते—“ तं जहा—ओगिण्हणने ” न्यादि, अवग्रहत्वेऽने
नेति अवग्रहणम्, करणे ल्युट्, व्यञ्जनावग्रहप्रथमसमयमविष्टशब्दादिद्विव्यादानपरिणाम इत्यर्थः, तद्भावः अव-
15 ग्रहणता १ । धार्यत्वेऽनेनेति धारणम् । उप—सामीप्येन धारणं उपधारणम्, व्यञ्जनावग्रहद्वयादिसमयोरवग्रहमानानं
प्रतिसमयमेव शब्दादिद्विव्यादान-धारणपरिणाम इति भावना, तद्भाव उपधारणता २ । श्रूयतेऽनेनेति श्रवणम्, एक-
सामयिकसामान्यार्थोवग्रहावग्रहोपपरिणाम इत्युक्तं भवति, तद्भावः श्रवणता ३ । अवलम्बत इत्यवलम्बनम्, “कृत्यल्युटो
बहुलम्” [पाणि. ३. ३. ११३] इतिवचनात् कर्मणि ल्युट्, तद्भावः अवलम्बनता, विशेषसामान्यार्थोवग्रह इति
भावार्थः । तथाहि—उत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासायां सत्यां शब्दादिज्ञानमेवावलम्ब्येहादयः प्रवर्तन्ते, ‘किमयं शाङ्गः ? किं
20 वा शाङ्गः ?’ इति, अतस्तदनन्तरमेवेहादिप्रवृत्तेर्विशेषसामान्यार्थोवग्रहोऽवलम्बनमिति ४ । एवमुत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासायां
सत्यां विशेषसामान्यार्थोवग्रहेषु मर्यादया धावतो मेधोच्यते, यावदधिगच्छति, यथा—शाङ्गः, स किं मन्द्रः ? किं वा
तारः ? इत्यादि ५ । यत्र व्यञ्जनावग्रहो नास्ति तत्राद्यभेदद्वयाभाव इति । “मे तं उग्गहे” सोऽयमवग्रहः ॥

५२. [१] से किं तं ईहा ? ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—सोत्तेदियईहा १ च्चिक्खि-
दियईहा २ घाणेदियईहा ३ जिम्भिदियईहा ४ फासेदियईहा ५ णोईदियईहा ६ ।

- 25 [२] तीसे णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा—
आभोगणया १ मग्गणया २ गवेसणया ३ चिंता ४ वीमंसा ५ । से चं ईहा ।

५२. [१] से किं तमित्यादि सूत्रं निगदसिद्धं यावत्—

- [२] ‘आभोगणता’ इहार्थोवग्रहप्रथमसमयसमन्तरमेव सद्भूतार्थविशेषाभिमुख्यमालोचनमाभोगणमुच्यते, तद्भाव
आभोगणता १ । मग्गत्वेऽनेन परिणामकरणेनेति मार्गणम्, सद्भूतार्थविशेषाभिमुख्यमेव तद्व्यवस्थान्वय-व्यतिरेक-
30 धर्मान्वेषणमिति हृदयम्, तद्भावो मार्गणता २ । एवमन्वियत्वेऽनेनेति गवेषणम्, तंत ऊच्ये सद्भूतार्थविशेषाभिमुख्य-

मेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागतोऽन्यधर्माध्यासेनाऽऽलोचनमिति गर्भः, तद्भावो गवेषणता ३ । ततो मुद्गुर्मुद्गुः क्षयोपशम-
विशेषतः स्वधर्मानुगतसद्भूतार्थविशेषचिन्तनं चिन्ता ४ । विमर्षणं विमर्षः, क्षयोपशमविशेषादेवोर्ध्वं स्पष्टतरावबोधतः
सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागतोऽन्यधर्मालोचनं विमर्षः, नित्या-ऽनित्यादिद्रव्यभावालोचन-
मित्यव्ये ५ । “ से तं इहा ” ॥

५३. [१] से किं तं अवाए ? अवाए छ्विहे पणत्ते, तं जहा—सोईदियावाए १ 5
चर्त्स्विदियावाए २ घाणेदियावाए ३ जिर्भिमिदियावाए ४ फासेदियावाए ५ णोईदियावाए ६ ।

[२] तस्स णं इमे एगट्टिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवन्ति, तं जहा—
आवट्टणया १ पच्चावट्टणया २ अवाए ३ बुद्धी ४ विण्णाणे ५ । से चं अवाए ।

५३. [१] से किं तमित्यादि सूत्रसिद्धं यावद्—

[२] ‘आवर्त्तना’ अर्थेतेऽनेनेति वर्त्तनं-धयोपशमकरणमेव, ईहाभावनितृच्यभिमुख्यपायाभावप्रतिपत्त्य- 10
भिमुख्यस्य चार्थविशेषावबोधविशेषस्य आ-मर्यादया वर्त्तनमावर्त्तनम्, तद्भाव आवर्त्तना १ । ततः प्रतिपत्त्याऽऽवर्त्तनं
प्रत्यावर्त्तनं, अर्थविशेष एव विवक्षितापायप्रत्यासन्नतरबोधविशेषाणां मुद्गुर्मुद्गुर्वर्त्तनमित्यर्थः; तद्भावः प्रत्यावर्त्तना २ ।
अप अयः अपायः, विशेषतः सङ्कलनेन निश्चयो निर्णयोऽवगम इत्यनर्थान्तरम्, सर्वत्रेधाभावान्निष्ठतत्त्वावधारणा-
वधारितमर्थमवगच्छतोऽप्याय इति भावार्थः ३ । ततस्तमेवावधारितमर्थं क्षयोपशमविशेषात् स्थिरतया पुनः पुनः स्पष्ट-
तरमेव बुद्ध्यमानस्य बुद्धिः ४ । विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानम्, क्षयोपशमविशेषादवधारितार्थविषयमेव तीव्रतरधारणाकरण- 15
मित्यर्थः ५ । “ से तं अवाए ” सोऽयमपायः ॥

५४. [१] से किं तं धारणा ? धारणा छ्विहा पणत्ता, तं जहा—सोईदियधारणा १
चर्त्स्विदियधारणा २ घाणिदियधारणा ३ जिर्भिमिदियधारणा ४ फासिदियधारणा ५ णोईदिय-
धारणा ६ । [२] तीसे णं इमे एगट्टिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया
भवन्ति, तं जहा—धरणा १ धारणा २ ठ्वणा ३ पतिट्ठा ४ कोट्टे ५ । से चं धारणा । 20

५४. [१] से किं तमित्यादि निगदसिद्धं यावद्—

[२] धरणा इत्यादि । अपायानन्तरमवगतार्थमविविच्युत्या जघन्योत्कृष्टमन्तर्मुहूर्त्तमात्रं कालं धारयतो
धरणेति भण्यते १ । ततस्तमेवार्थे उपयोगात् च्युते जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तौदुत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयकालात् परतः स्मरतो धरणं
धारणोच्यते २ । स्थापनं स्थापना, ततोऽप्यायवधारितमर्थं पूर्वपरालोचितं हृदि स्थापयतः स्थापना, मूर्त्तवत्स्थापना-
वत्, वासन्त्यर्थः । अन्ये तु धारणा-स्थापनयोर्व्यत्ययेन स्वरूपमाचक्षते ३ । प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा, अपायानवधारितमेवार्थं 25
हृदि प्रमेदेन प्रतिष्ठापयतः प्रतिष्ठा भण्यते, जले उपलभक्षेपप्रतिष्ठावत् ४ । ‘कोष्ठकः’ इति अविनष्टसूत्रार्थवीज-
धारणात् कोष्ठकवद् धारणा कोष्ठक इति ५ । इहाऽऽत्मनो ज्ञानम्भवात्त्वाज्ज्ञानावर्णनीयादिकर्ममलपटलाच्छादित-
स्वभावत्वात् गुरुवदनसमुत्थशब्दाद्यनेकविधकारणापाद्यमानक्षयोपशमसामर्थ्यादिवबोधः, ज्ञेयस्य चानन्तर्गतात्म-
कत्वात् कालक्षयोपशमविशेषतोऽन्यग्रहेहा-ऽप्यायवबोधविशेषो भावनीयः, कथञ्चिदेकाधिकरणत्वात्, अन्यथा परिच्छेद-
प्रवृत्तिलक्षणसकललोकप्रसिद्धसंव्यवहारोच्छेदप्रसङ्ग इत्यलं प्रसङ्गेन, गमनिकामात्रमेतत् ॥ 30

अवग्रहादिकाल्पमाणं प्रतिपादयन्नाह —

५५. उग्गहे एकसामइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।

५५. उग्गहे० इत्यादि । अर्थावग्रह एकसामयिकः । आन्तमौहूर्तिको ईहा । आन्तमौहूर्तिकोऽपायः । धारणा सङ्ख्येयं वाऽसङ्ख्येयं वा कालं स्मृति-वासनारूपा, सङ्ख्येयवर्षायुषां सङ्ख्येयमसङ्ख्येयवर्षायुषामसङ्ख्येयम् ॥

५६. एवं अट्ठावीसतिविहस्स आभिणिवोहियणाणस्स वंजणोग्गहस्स परुवणं करिस्सामि पडिवोहगदिट्ठंतेण मल्लगदिट्ठंतेण य ।

५६. एवं अट्ठावीसतिविधस्सेत्यादि । 'एवं' उक्तेन प्रकारेण अष्टाविंशतिविधस्य । कथमष्टाविंशतिविधम् ? चतुर्विधो व्यञ्जनावग्रहः, षड्विधोऽर्थावग्रहः षड्विधा ईहा, षड्विधोऽपायः, षड्विधा धारणा । एवमष्टाविंशतिविध-
15 स्थाऽऽभिनिबोधिकज्ञानस्य सवन्धी यो व्यञ्जनावग्रहः तस्य 'परुवणं' प्रतिपादनं करिष्यामि । कथम् ? प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च ॥

५७. से किं तं पडिवोहगदिट्ठंतेणं ? पडिवोहगदिट्ठंतेणं से जहाणामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिवोधएज्ज 'अमुगा ! अमुग !' च्ति, तत्थ य चोयगे पन्नवगं एवं वयासी—
किं एगसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ? दुसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ? जाव
15 दससमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ? संखेज्जसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ?
असंखेज्जसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ? । एवं वदंतं चोयगं पणवगे एवं वया-
सी—णो एगसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति, णो दुसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमा-
गच्छंति, जाव णो दससमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति, णो संखेज्जसमयपविट्ठा
पोग्गला गहणमागच्छंति, असंखेज्जसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति । से तं पडि-
20 वोहगदिट्ठंतेणं ।

५७. से किं तमित्यादि । प्रतिबोधयतीति प्रतिबोधकः, स एव दृष्टान्तस्तेन । तद् यथानाम 'कश्चिद्' अनिर्दिष्टस्वरूपः पुरुषः 'कश्चित्' अन्यतममनिर्दिष्टस्वरूपमेव पुरुषं सुप्तं सन्तं "पडिवोधएज्ज" च्ति प्रतिबोधयेत् । कथम् ? 'अमुक ! अमुक !' इति । तत्र 'चोदके'त्यादि । इह ज्ञानावरणकर्मोदयतः कथितमपि सूत्रार्थमनकगच्छन् प्रश्नचोदनात् चोदकः, अविशिष्टस्योपसमभावतो वा अष्टहीतशास्त्रगर्भार्थः पूर्वोपरिविरोधचोदनात् चोदकः । यथाऽ-
25 वरियंतं सूत्रार्थं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापकः, श्रोतार्थापेक्षया विरुद्धं पुनरुक्तसूत्रं वा अर्थतोऽविरुद्धमपुनरुक्तं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापकः । तत्र चोदकः प्रज्ञापकं एवशुक्तवानिति, भूतकालनिर्देशः "अनादिमानागमः" इति ख्यापनार्थः । 'किमेकसमयप्रविष्टे'त्यादि सुगमं यावत् 'एवं वदन्तं चोदकं प्रज्ञापक एवशुक्तवान्' । 'नो एकसमयप्रविष्टे'त्यादि प्रकटार्थं यावद् 'नो सङ्ख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति' । नवरमयं प्रतिषेधः स्फुटशब्दविज्ञानग्राह्यता-

मधिकृत्य वेदितव्यः, शब्दविज्ञानजनकत्वेनेत्यर्थः, अन्यथा सम्बन्धमात्रमधिकृत्य प्रथमसमयादारभ्य ग्रहणमागच्छन्त्येव । “ असंखेज्ज ” इत्यादि, प्रतिसमयप्रवेशेनाऽऽदित आरभ्य असङ्ख्येयसमयैः प्रविष्टैरसङ्ख्येयसमयप्रविष्टाः, न पुनर्विशल्याऽहोमिः पथिकगृहप्रवेशवदपान्तरालागमनसमयापेक्षयाऽसङ्ख्येयसमयप्रविष्टा इति, ‘पुद्गलाः’ शब्दद्रव्यविशेषा ग्रहणमागच्छन्ति, अर्थावग्रहज्ञानहेतवो भवन्तीति भावः । इह च चरमसमयप्रविष्टा एव ग्रहणमागच्छन्ति, तदन्ये त्विन्द्रियक्षयोपशमोपकारिण इत्योयतो ग्रहणस्युक्तमिति । असङ्ख्येयमानं चात्र जघन्यमात्रालिकाऽसङ्ख्येयभागसम- 5
यतुल्यम्, उत्कृष्टं तु सङ्ख्येयवावल्किकासमयतुल्यम्, तच्च प्राणापानपृथक्त्वकालसमयमिति । उक्तं च—

वंजनवमाहकालो आवलियाऽसंख्यभागमेतो उ । धोवो, उकोसो पुण आणापाणुपुद्गुचं ति ॥१॥

[]

“से ते” इत्यादि निगमनम् । सेयं प्रतिबोधकट्टणान्तेन व्यञ्जनावग्रहरूपणेति वाक्यशेषः ॥

५८. [१] से किं तं मल्लगदिट्टंतेणं ? मल्लगदिट्टंतेणं से जहाणामए केइ पुरिसे आवाग- 10
सीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगविट्ठुं पक्खिवेज्जा से णट्ठे, अण्णे पक्खित्ते से वि णट्ठे, एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगविट्ठु जण्णं तं मल्लगं रावेहिति, होही से उदगविट्ठु जण्णं तंमि मल्लगंमि ट्ठाहिति, होही से उदगविट्ठु जण्णं तं मल्लगं भरेहिति, होही से उदगविट्ठु जण्णं तं मल्लगं पवाहेहिति, एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्पमाणेहिं 15
अणंतेहिं पोग्गालेहिं जाहे तं वंजणं पूरितं होति ताहे ‘हुं’ ति करेति णो चेव णं जाणति 15
के वेस सहाइ ?, तओ ईहं पविमति तओ जाणइ अमुगे एस सहाइ, तओ अवायं पविसइ तओ से उवगयं हवइ, तओ णं धारणं पविसइ तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।

[२] से जहाणामए केइ पुरिसे अब्वत्तं सइं सुणेज्जा तेणं सहे त्ति उग्गहिए, णो चेव णं जाणइ के वेस सहाइ ?, तओ ईहं पविसइ ततो जाणति अमुगे एस सहे, ततो 20
णं अवायं पविसइ ततो से उवगयं हवति, ततो धारणं पविसइ तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । एवं अब्वत्तं रूवं, अब्वत्तं गंधं, अब्वत्तं रसं, अब्वत्तं फासं पडिसंवेदेज्जा ।

[३] से जहाणामए केइ पुरिसे अब्वत्तं सुमिणं पडिसंवेदेज्जा, तेणं सुमिणे त्ति उग्गहिए ण पुण जाणति के वेस सुमिणे ? त्ति, तओ ईहं पविसइ तओ जाणति अमुगे 25
एस सुमिणे त्ति, ततो अवायं पविसइ ततो से उवगयं हवइ, ततो धारणं पविसइ तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । से तं मल्लगदिट्टंतेणं ।

५८. [१] से किं तमित्यादि । अयं कोऽयं मल्लकट्टणन्तः ? मल्लकट्टणन्तो नाम तद् यथानाम कश्चित् पुरुषः 'आपाकशिरसः' आपाकः प्रतीतः तच्छिरसश्च 'मल्लकं' शरावं गृहीत्वा, 'इदं रुद्धं भवति' इत्यतोऽस्य ग्रहणमिति, 'तत्र' मल्लके एकं उदकविन्दुं मल्लिषेत् स नष्टः, तत्रैव तद्भावापरिणतिमापन्न इत्यर्थः । शेषं सुगमं यावत् "जणं तं मल्लकं राचेहि" आर्द्रतां नेष्यति, शेषं सुगमं यावत् "एवामेव" इत्यादि, अतिवहुत्वात् प्रतिसमयमनन्तैः
- 5 'पुद्गलैः' शब्दपुद्गलैर्यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं भवति तदा 'हूं' इति करोति, तमर्थं गृह्णातीत्युक्तं भवति । अत्र व्यञ्जनशब्देन त्रयमभिगृह्णते—द्रव्यं १ इन्द्रियं २ सम्बन्धो ३ वा । यदा द्रव्यं व्यञ्जनमधिक्रियते तदा 'पूरित'-मिति प्रभृतीकृतम्, स्वप्रमाणमानीतम्, स्वविषयव्यक्तौ समर्थीकृतमित्यर्थः १ । यदा व्यञ्जनमिन्द्रियं तदा 'पूरित'मित्याद्युक्तम्, आश्रितं व्याप्तमित्यर्थः २ । यदा तु द्वयोरपि सम्बन्धोऽधिक्रियते तदा 'पूरित'मिति अङ्गाङ्गीभावमानीतम्, अनुपकृतमित्यर्थः ३ । एवं यदा पूरितं भवति तदानीं तमर्थं गृह्णाति । किंविशिष्टम् ? नाम-जान्यादि-
- 10 कल्पनारहितम्, तथा चाह—"णो चेव णं जाणइ के वेस सदादि?" इति, न पुनरेवं जानाति क एष शब्दादिरर्थ इति, एकसामयिकत्वादर्थावग्रहस्य, अत्रार्थावग्रहात् पूर्वं सर्वो व्यञ्जनावग्रह इति । "ततो ईहं पविमति" इत्यादि सुगमं यावत् "संखेज्जं वा असंखेज्जं वा काळं" इति । अत्राह—सुप्तमङ्गीकृत्य युज्यतेऽयं न्यायः, जाग्रतस्तु शब्दश्रवणसमनन्तरमेव अवग्रहेहाव्यतिरेकेणैवापायज्ञानमुत्पद्यते, तथोपलम्भात्, न चैतदनापम्, यत आह सूत्रकारः—
- 15 "से जहाणामए" इत्यादि; अथवा यदुक्तम् "न पुनरेवं जानाति 'क एष शब्दादिः ?' किं तर्हि ? नाम-जान्यादि-कल्पनारहितं गृह्णातीत्येतदुक्तम्, यत एवमागमः—"से" इत्यादि, अथवा सुप्रतीतौभक्त मल्लकट्टणान्ताभ्यां व्यञ्जना-दर्थावग्रहयोः सामान्येन स्वरूपमभिधाय अपुना मल्लकट्टणन्तेनैव प्रतिपादयिष्याह—

- [२] से जहा इत्यादि, तद् यथानाम कश्चित् पुरुषः अन्यत्कं शब्दं शृणुयात् । 'अव्यक्तमिति' अनिर्देश्यस्वरूपं नामादिकल्पनारहितमिति, अनेनार्थावग्रहमाह, तस्य च श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धिन्तो व्यञ्जनावग्रहपूर्वकत्वाद् व्यञ्जनावग्रहं च । आह—न षडैवं क्रम उपलभ्यते, किन्त्वक्षेपेण शब्दापायज्ञानमेव वेद्यते, सूत्रेऽव्यक्तमिति शब्दविशेषणं कृतम-
- 20 तोऽव्यक्तं सन्दिग्धं पुरुषादिशब्दभेदेन शब्दं शृणुयादिति, न्याय्यम्, तथा चोचिरस्यमर्प्येतदेवाह—"तेणं सदे ति उग्गाहिते" "तेन" श्रोत्रा शब्द इत्यवगृहीतं "णो चेव णं जाणति के वेस सदादि" न पुनरेवं जानाति—कः 'एषः' पुरुषादिसमुत्थानामन्यतमः शब्द इति, आदिशब्दाद् रसादित्रय्ययमेव न्याय इति ज्ञापयति । "ततो ईहं पवि-सति" इत्याद्यपि सम्बद्धमिति, नैतदेवम्, उपलपत्रगतव्यतिरेकेणैवमल्लकट्टणन्तेन कालभेदस्य दृष्टेस्तत्वाद् अक्षेपेण शब्दापाय-ज्ञानानुपपत्तेः, यच्च "तेन शब्द इत्यवगृहीतम्" इत्युक्तम्, अत्र 'शब्दः' इति भणति वक्ता सूत्रकार इति, करणनिर्दे-
- 25 श्चात् शब्दमात्रं चाशेषविशेषविशुद्धत्वम्, न तु शब्दबुद्ध्या, तस्यैवापायमसञ्ज्ञात्, अवग्रहादिश्रुतव्यतिरेकेण च मतिज्ञानानुत्पत्तेः, तथा चाह—"णो चेव णं"मित्यादि, न पुनरेवं जानाति क एष शब्दादिरर्थः, सामान्यमात्रमिति भासनात् । आह च भाष्यकारः—

अव्यक्तमणिहेसं सरूव-णामादिकप्पणारहितं । जदि एवं जं 'तेणं गहियं सदे' ति तं कइ णु ? ॥१॥

'सदे' ति भणति वक्ता, तम्मत्तं वा ण सइसुत्ती(बुद्धी)ए । जदि होज्ज सइबुद्धी तोऽवाओ चेव सो होज्जा ॥२॥

- 30 नति सइबुद्धिभेत्तयमवग्गाहं तच्चिसेसणमवाओ । णणु सइओ णासइओ ण य रूवादी विसेसोऽयं ॥३॥

थोवमियं णावाओ तंभेयाविकखणं अवाओ ति । तंभेयाविकखाए णणु थोवमियं पि णावाओ ॥४॥

[विशेषः. गा. २५२-५५] इत्यादि ।

१ सामण्यमणिहेसं इति महामात्रे पाठो वक्षते ॥ २ संज्ञाविकसेसणं अवाओ ति महामात्रे पाठः ॥

अन्ये त्वाचार्या इदं सूत्रं विशेषसामान्यार्थावग्रहविषयं व्याचक्षते—‘अव्यक्तम्’ अनिर्द्धारितविशेषस्वरूपं अशब्द-
व्यवच्छेदेन शब्दं भ्रूणुयात्, तेन शब्द इति शब्दमात्रमवग्रहीतम्, न पुनरेवं जानाति क एष शब्दः ?, शाब्द-शाब्दा-
दीनामन्यतमः, आदिशब्दाद् रसादिपरिग्रहः, तत्रापीयमेव वार्तेति, युक्तियुक्ता चेयं व्याख्येति । ततः ‘ईहां प्रविशति’
सदर्थपर्यालोचनां करोति, इह च दुरवबोधत्वाद् वस्तुनः अपदुत्वाच्च मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्यासञ्जातापाय एवेहो-
पयोगात् च्युतः पुनरप्यन्यमन्तर्गृह्णामीहेते, एवमोहोपयोगाविच्छेदत एव प्रभूतानप्यन्तर्गृह्णानीहित इति सम्भवः, 5
ततः ‘जानाती’त्यादि वस्तुनः गतार्थं यावत् स्पर्शनेन्द्रियवक्तव्यता । उक्तं च भाष्यकारेण—

सेसेसु वि रूत्रादिसु विसएमु वि होइ सूँवल्लखाइं । पायं पचासन्नचणेणमीहादिवत्थूणि ॥१॥

धाणुपुरिसादि-कुट्टूप्यादि-संभितकरिद्धमंसादी । सप्पोप्यणालादि य समानरूत्रादिविसयाइं ॥२॥

एवं चिय मुमिणादिमु मणसो सहादिपमु विसएमु । होँतिदियवाचाराभावे वि अवग्गहादीया ॥३॥

[विशेषा. गा. २९२-९४] इत्यादि । 10

[३] से जह्वाणामए इत्यादि । इह प्रतिबोधप्रथमसमये ‘अव्यक्तम्’ अनिर्द्धारितस्वरूपं स्वप्नं प्रतिसंवेद-
येत् तस्य तदाऽर्थवग्रहः, तत ऊर्ध्वमीहादय इति । अन्ये तु मनसोऽप्यर्थावग्रहात् पूर्वं व्यञ्जनावग्रहं मनोद्रव्यव्यञ्जन-
ग्रहणलक्षणं व्याचक्षते तत् पुनरयुक्तम्, अनापूर्त्वात्, व्यञ्जनावग्रहस्य श्रोत्रादिभेदेन चतुर्विधत्वात् । शेषं प्रकटार्थम्
यावत् “से तं मल्लगदिद्वंतेणं” । इह च मुख्यप्रतिपत्त्यर्थं स्वप्नमधिकृत्य नोऽन्द्रियार्थावग्रहादयः प्रतिपादिताः,
अन्यथाऽन्यत्रापीन्द्रियव्यापाराभावे सति मनसा पर्यालोचयतोऽवगन्तव्या इति । अत्राऽऽह—किमुक्तलक्षणमवग्रहादि- 15
क्रमं विहाय क्वचिदपि मतिज्ञानं नोत्पद्यते यन्नेवं क्रमः ? उति, अत्रोच्यते, नोत्पद्यते, तथाहि—नानवग्रहीतमीक्षते,
न चानीहितमवगम्यते, न चानवगतं धार्यते इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ सर्वमेवेदं द्रव्यादिभिर्निरूपयन्नाह—

५९. तं समामओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ खेतओ कालओ भावओ ।
तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहियणाणी आएसेणं मव्वदव्वाइं जाणति ण पासति १ ।
खेतओ णं आभिणिबोहियणाणी आएसेणं सव्वं खेतं जाणइ ण पामइ २ । कालओ णं 20
आभिणिबोहियणाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ न पामइ ३ । भावओ णं आभिणि-
बोहियणाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ ण पामइ ४ ।

५९. तं समासतो इत्यादि । द्रव्यत आमिनिबोधिकज्ञानी ‘आदेशेन’ आदेशः—प्रकारः, स च सामान्यतो
विशेषतश्च, तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन ‘द्रव्याणि’ धर्मास्तिकायादीनि जानाति, विशेषतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो
धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि, न पश्यति सर्वात्मना धर्मास्तिकायादीन, शब्दादीर्णैतु योग्यदेशावस्थितान् 25
पश्यत्यपि, श्रुतादेशतो वा जानाति । एवं क्षेत्रादिष्वपि भावनीयम् । नवरं तान् न पश्यत्येव । तथा चोक्तं
भाष्यकारेण—

आदेशो चि पगारो, ओहादेशेण सव्वदव्वाइं । धम्मत्थिकाइयाइं जाणइ, न उ सूँवभावेणं ॥ १ ॥

१ अन्ये इति नन्दिमूर्च्छिणकृतः [पत्र ८०] ॥ २ “एष रूपादिष्वपि विषयेषु सुखलक्ष्याणि ईहादिवस्तुनि, प्रायः प्रत्यसन्न-
स्वात् स्वाधु-पुरुषादिना सादस्यादित्यर्थः” इति स्वोपकटीका ॥ ३ अन्ये नन्दिमूर्च्छिणकृतः [पत्र ९१] ॥ ४ सव्वमेपणं इति महा-
भाष्ये पाठः ॥

स्वेषं लोगाऽलोगं, कालं सञ्जदमहव तिविधो वि । पंचोद्ग्यादीए भावे जं नेयमेवतियं ॥ २ ॥
 आवेसो त्ति च सुचं, सुतोवल्लद्रेसु तस्स मतिणाणं । पसरइ, तन्भावणभाविणो वि सुत्ताणुसारेणं ॥ ३ ॥
 [विरोधा. गा. ४०३-५]

साम्पतं सकृग्रहगाया उच्यन्ते । तत्र—

- 5 ६०. उग्गह ईहाऽवाओ य धारणा एव होंति चत्तारि ।
 आभिणिबोहियणाणस्स भेयवत्थू समासेणं ॥ ७२ ॥
 अत्थाणं उग्गहणं तु उग्गहं, तह वियालणं ईहं ।
 ववसायं तु अवायं, धरणं पुण धारणं विति ॥ ७३ ॥
 उग्गहो एकं समयं, ईहाऽवाया मुहुत्तमद्धं तु ।
 10 कालमसंखं संखं च धारणा होति णायव्वा ॥ ७४ ॥
 पुट्टं सुणेति सद्धं, रूवं पुण पासती अपुट्टं तु ।
 गंधं रसं च फासं च वद्ध-पुट्टं वियागरे ॥ ७५ ॥
 भासासमसेदीओ सद्धं जं सुणइ मीसयं सुणइ ।
 वीसेदी पुण सद्धं सुणेति णियमा पराघ्राए ॥ ७६ ॥
 15 ईहा अपोह वीमंसा मग्गणा य गवेसणा ।
 सण्णा सती मती पण्णा सव्वं आभिणिबोहियं ॥ ७७ ॥
 से त्तं आभिणिबोहियणाणपरोक्खं ।

६०. उग्गह० गाहा । व्याख्या—‘अवग्रहः’ प्राप्तिरूपितशब्दार्थः, तथा ईहाऽपायश्च, चशब्दः पृथग्वग्रहादिस्वरूपस्वातन्त्र्यमदर्शनार्थः, अवग्रहादीनामीहादयः पर्याया न भवन्तीत्युक्तं भवति; समुच्चयार्थो वा, यदा
 20 समुच्चयार्थस्तदा व्यवहितो द्रष्टव्यः, धारणा च । ‘एवकारः’ क्रमपरिदर्शनार्थः, एवमेनेव क्रमेण भवन्ति
 चत्वार्याभिनिबोधिकज्ञानस्य भिद्यन्त इति भेदाः विकल्पाः अंशा इत्यनर्थान्तरम्, त एव वस्तूनि भेदवस्तूनि ।
 कथम् ? यतो नानवष्टहीतमीहते, न चानीहितमक्राम्यते, न चानवगतं धार्यत इति । अथवा काका नीयते, एवं
 भवन्ति चत्वार्याभिनिबोधिकज्ञानस्य भेदवस्तूनि ‘समासेन’ सहस्रेण विशिष्टावग्रहादिस्वरूपापेक्षया, न तु विस्तरत
 इति, विस्तरतोऽष्टाविंशतिभेदभिन्नत्वात् तस्येति गार्थार्थः ॥ ७२ ॥

25 इदानीमनन्तरोपन्यस्तानामवग्रहादीनां स्वरूपं प्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

अत्थाणं० गाहा । व्याख्या—तत्रार्थन्त इत्यर्थाः, अर्थन्ते-गम्यन्ते परिच्छिद्यन्त इति यावत्, ते च रूपादयः
 तेषामर्थानां प्रथमदर्शनानन्तरं च ग्रहणं अवग्रहम्, भ्रुवत इति योगः । आह—वस्तुनः सामान्य-विशेषात्पकतयाऽविशिष्ट-

त्वात् किमिति प्रथमं दर्शनं ततो ज्ञानम् ? इति, उच्यते, तस्य प्रबलावरणत्वाद् दर्शनस्य चाल्पावरणत्वादिति । 'तथा' इति आनन्तये । विचारणं-पर्यालोचनम्, अर्थानामिति वर्तते, ईदृशमीहा ताम्, ब्रुवत इति सम्बन्धः । विविधोऽवग्रहायो व्यवसायः-निर्णयस्तं व्यवसायं च, अर्थानामिति वर्तते, अपायं ब्रुवत इति संसर्गः । घृतिर्धरणम्, अर्थानामिति वर्तते, परिच्छिन्नस्य वस्तुनः अविच्युति-स्मृति-वासनारूपम्, तद् धरणं पुनर्धारणां ब्रुवत इति, अनेन शास्त्रपारतन्त्र्यमाह, इत्थं तीर्थंकर-गणधरा ब्रुवते । अन्ये त्वेवं पठन्ति—“अथाणं उग्राहणम्मि उग्राहो” इत्यादि, 5
अत्राप्यर्थानामवग्रहणे सति 'अवग्रहो नाम' मतिविशेष इत्येवं ब्रुवते, एवमीहादिष्वापि योज्यम् । भावार्थस्तु पूर्ववदेवेति गाथार्थः ॥ ७३ ॥ इदानीमभिहितस्वरूपाणामवग्रहादीनां कालप्रमाणमभिधित्सुराह—

उग्राहो० गाहा । व्याख्या-इहाभिहितलक्षणोऽर्थावग्रहो यो जघन्यो नैश्वयिकः स खल्वेकं समयं भवतीति सम्बन्धः । तत्र कालः परमनिकृष्टः समयोऽभिधीयते, स च प्रवचनप्रतिपादितोऽप्यल्पप्रशस्तव्यतिभेदोदाहरणाजीर्णवदृशादिकापाद्गन्तव्यान्ताच्चावमेय इति । तथा सांख्यवहारिकायां वग्रह-व्यञ्जनावग्रहो तु पृथक् पृथगन्तव्यैर्मुहूर्तकालं भवत इति 10
ज्ञातव्यो । ईहा चापायश्वेहापायो, प्राकृतशैल्या बहुवचनम्, उक्तं च—

बहुवचणेण दुवयणं, छद्विभक्तिद्भि भण्णइ चउत्थी । जह इत्था तह पाया, नमोऽस्त्यु देवादिदेवाणं ॥ १ ॥

[]

तानीहा-ऽपायो मुहूर्त्तार्द्धे ज्ञातव्यो भवतः । तत्र मुहूर्त्तेशब्देन घटिकाद्वयपरिमाणः कालोऽभिधीयते, तस्यार्द्धे मुहूर्त्तार्द्धम् 'तुशब्दः' विशेषणार्थः । किं विशिनष्टि ? व्यवहारापेक्षयैतन्मुहूर्त्तार्द्धमुक्तम्, तच्चतस्त्वन्यैर्मुहूर्त्तमवमेयमिति । अन्ये त्वेव पठन्ति—“मुहूर्त्तमंतं तु” मुहूर्त्तान्तस्तु, द्वे पदे, अयमर्थः-अन्तर्मध्यकरणे, 'तुशब्दः' एवकारार्थः, स चावधारणे, एतदुक्तं भवति-ईहा-ऽपायो 'मुहूर्त्तान्तः' भिन्नं मुहूर्त्तं ज्ञातव्यो भवतः, अन्त्यमुहूर्त्तमेवेत्यर्थः । कलनं कालः, तं कालम्, न विद्यते सङ्ख्या-इयन्तः पक्ष-मास-त्वयन-संत्सरादय इत्येवम्भूता सङ्ख्या यस्यासाव-सङ्ख्यः, पल्योपमादिलक्षण इत्यर्थः, तं कालमसङ्ख्यम्, तथा सङ्ख्यायत इति सङ्ख्यः, इयन्तः पक्ष-मास-त्वयनादय इत्येवंसङ्ख्यममिति इत्यर्थः, तं सङ्ख्यं च, चशब्दादन्तमुहूर्त्तं च, 'धारणा' अभितिलक्षणा भवति 20
ज्ञातव्या । अयमत्र भावार्थः-अपायोचरकालमविच्युतिरूपाऽन्तमुहूर्त्तं भवत्येव, स्मृतिरूपाऽपि, वासनारूपा तु तदावरणभयोपशमाख्या स्मृतिधारणाया बीजभूता सङ्ख्येयवर्षायुषां सत्त्वानां सङ्ख्येयकालं अमङ्ख्येयवर्षायुषां पल्योपमादिजीविनां चासङ्ख्येयमिति गाथार्थः ॥७४॥

इत्थमवग्रहादीनां स्वरूपमभिधायेदानीं श्रोत्रेन्द्रियादीनां प्राप्ता-ऽप्राप्तविषयतां प्रतिषिपादयिषुराह—

पुद्गं स्तुणेह० गाहा । व्याख्या-तत्र 'स्पृष्टमिति' आलिङ्गितम्, तनो रेणुवत्, 'शृणोति' शृङ्गाति । किम् ? 'शब्द' 25
शब्दद्रव्यसङ्घातम् । कुतः ? तस्य घस्त्वत्वाद् भाषुकत्वात् प्रञ्जुरद्रव्याकुलत्वात् श्रोत्रेन्द्रियस्यान्पेन्द्रियगणात् प्रायः

पडुतरत्वात् ? । रूप्यत इति रूपम्, तद् रूपं पुनः 'पश्यति' शृङ्गाति 'अस्पृष्टं' अनालिङ्गितम्, असम्बद्धमित्यर्थः । 'पुनःशब्दः' विशेषणार्थः, 'तुशब्दस्तु' एवकारार्थः, तत्राद्यमर्थः-अस्पृष्टमेव पश्यति, पुनःशब्दादस्पृष्टमपि योग्यदेशावस्थितम्, नायोग्यदेशावस्थितमथोलोकादि । कुतः ? अप्राप्तकारित्वात् परिमितदेशस्थविषयप्रादित्वाच्चक्षुष इति २ । [गन्धयते]-प्रायत इति गन्धंस्तम्, रस्यत इति रसस्तं च, स्पृश्यत इति स्पर्शस्तं च, 'चशब्दो' पूरण-समुच्चयार्थो, 30
'बद्धस्पृष्टमिति' बद्धम्-आक्रिष्टं तोयवदात्ममदेशैरात्मीकृतमित्यर्थः, स्पृष्टं-पूर्ववत्, प्राकृतशैल्या चेत्यमुपपत्त्यासः "बद्धपुद्गं" ति, अर्धतस्तु स्पृष्टं च बद्धं च स्पृष्टबद्धमिति विज्ञेयम्, आलिङ्गितानन्तरमात्मप्रदेशैरास्पृष्टमित्यर्थः,
दी० ८

गन्धादि स्तोत्रद्रव्यत्वादमावृत्त्वाद् प्राणादीनां चापद्रुत्वाद् विनिश्चिनोतीत्येवं व्यावृणीवादिदि गाथार्थः ३ ॥७५॥ इह 'सृष्टं शृणोति शब्दम्' इत्युक्तम्, तत्र किं शब्दप्रयोगोत्प्रेक्षाभ्येव केवलानि शब्दद्रव्याणि शृङ्गाति ? उदायानि तद्भाषितानि ? आहोश्चिद् मिश्राणि ? इति चोदकाभिप्रायमासङ्ग्य 'न तावत् केवलानि, तेषां चासक्त्वात् तद्योग्यद्रव्याकुलत्वाच्च लोकस्य, किन्तु मिश्राणि तद्भाषितानि वा शृङ्गाति' इत्यस्यमर्थमभिधित्तुराह—

- 5 भासा० गाहा । व्याख्या—भाष्यत इति भाषा, वक्त्रा शब्दतयोत्प्रेक्ष्यमाना द्रव्यसंहरितिर्यथः, तस्याः समश्रेणयो भाषासमश्रेणयः, समग्रहणं विश्रेणीव्यवच्छेदार्थम्, इह श्रेणयः क्षेत्रदेशश्रेणयोऽभिधीयन्ते, ताश्च सर्वस्यैव भाषमाणस्य षट्सु दिक्षु विद्यन्ते, यास्तस्यैव सति भाषाऽऽद्यसमय एव लोकान्तमनुपावतीति, ता इतः—भाषासमश्रेणीतः, इतो गतः प्राप्तः स्थित इत्यनर्थान्तरम् । एतदुक्तं भवति—भाषासमश्रेणिव्यवस्थित इति । शब्दयतेऽनेनेति शब्दः—भाषात्वेन परिणतः पुद्गलराशिः तं शब्दम्, यं पुरुषाऽऽद्यादिसम्बन्धिनं 'शृणोति' शृङ्गाति 10 उपलभत इति पर्यायाः, यत्तदोन्मित्यसम्बन्धात् तं मिश्रं शृणोति । एतदुक्तं भवति—उत्प्रेक्ष्यभावविताषान्तरालस्यशब्दद्रव्यमिश्रमिति । विश्रेणि पुनः इत इति वर्तते, तत्राद्यमर्थो भवति—विश्रेणिव्यवस्थितः पुनः श्रोता शब्दं शृणोति नियमेन पराघाते सति, यानि शब्दद्रव्याभ्युत्प्रेक्ष्यद्रव्याभिघाते वासितानि तान्येव, न पुनरुत्प्रेक्षणीति भावार्थः, कुतः ? तेषां अनुश्रेणिगमनात् प्रतिघाताभावाच्च । अथवा विश्रेणिस्थित एव विश्रेणिरभिधीयते, पदेऽपि पदावयवप्रयोगदर्शनात्, भीमसेनः सेनः सत्यभामा भामेति यथेति गाथार्थः ॥७६॥
- 15 साम्प्रतं विनेयगणमुख्यमतिपक्षये मतिज्ञानपर्यायशब्दानामिधित्तुराह—

ईहा० गाहा । व्याख्या—ईहनमीहा, सदर्शपर्यालोचनचेष्टेत्यर्थः । अपोहनमपोहः, निश्चय इत्यर्थः । विमर्षणं विमर्षः, ईहा-ऽप्रापयमध्यवर्ती प्रत्ययः । तथाऽन्वयधर्मान्वेषणा मार्गणा । 'चः' समुच्चयार्थः । व्यतिरेकधर्मालोचना गवेषणा । तथा संज्ञानं सञ्ज्ञा, व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः । स्मरणं स्मृतिः, पूर्वानुभूतार्थात्मन्वन-प्रत्ययः । मननं मतिः, कश्चिदर्थपरिच्छिन्नात्रपि दृश्यधर्मालोचनरूपा बुद्धिरित्यर्थः । तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा, विश्लिष्ट- 20 क्षयोपशमजन्या प्रभूतवस्तुगतपथावस्थितधर्मालोचनरूपा संविदिति भावना । सर्वमिदमाभिनिसोधिकम्, मतिज्ञान-मित्यर्थः । एवं किञ्चिद्भेदाद् भेदः प्रदर्शितः, तत्त्वतस्तु मतिवाचकाः सर्वे एते पर्यायशब्दा इति गाथार्थः ॥७७॥ "से त"मित्यादि, तदेतदामिनिसोधिकज्ञानमिति । साम्प्रतं प्रागुपन्यस्तसकलचरणकारणक्रियाभार-श्रुतज्ञानस्वरूपजिज्ञासयाऽऽह—

६१. से किं तं सुयणाणपरोक्त्वं ? सुयणाणपरोक्त्वं चोदसविहं पण्णत्तं तं जहा—

- 25 अक्खरसुत्तं १ अणक्खरसुत्तं २ सण्णिसुत्तं ३ असण्णिसुत्तं ४ सम्मसुत्तं ५ मिच्छसुत्तं ६ सादीयं ७ अणादीयं ८ सपज्जवसियं ९ अपज्जवसियं १० गमियं ११ अगमियं १२ अंगपविट्ठं १३ अंगंगपविट्ठं १४ ।

६१. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् श्रुतज्ञानम् ? श्रुतज्ञानमपि भेदाच्चतुर्दशविधं मङ्गलम्, तद्यथा—अक्षरश्रुतं १ अनक्षरश्रुतं २ संश्रितश्रुतं ३ असंश्रितश्रुतं ४ सम्यक्श्रुतं ५ मिथ्याश्रुतं ६ सादि ७ अनादि ८ सपर्यवसितं ९ अपर्यवसितं 30 १० गमिकं ११ अगमिकं १२ अङ्गपविट्ठं १३ अनङ्गपविट्ठम् १४ । एतेषां च भेदानां स्वरूपं यथावत्तरं वक्ष्यामः ।

अक्षरभ्रुताऽनक्षरभ्रुतभेदद्वयान्तर्भावे सत्यपि शेषभेदानामुपन्यासोऽज्ञातज्ञापनार्थः, न च भेदद्वयादेवाव्युत्पन्नमतीनां शेषभेदावगम इति प्रतीतमेतत् । अलं विस्तरेण ॥ साम्प्रतमुपन्यस्तभ्रुतभेदानां स्वरूपमनवगच्छन्नाद्यं भेदमधिकृत्य प्रश्नसूत्रमाह—

६२. से किं तं अक्षरसुतं ? अक्षरसुतं तिविहं षण्णत्तं, तं जहा—सण्णक्खरं १ वंजणक्खरं २ लद्धिअक्खरं ३ ।

5

६२. से किं तमित्यादि । अथ किं तदक्षरश्रुतम् ?, क्षर “सञ्चलने” [पाणिनिभातु. ८५१] न क्षरतीत्यक्षरम्, तच्च ज्ञानम्, चेतेत्यर्थः; जीवस्वाभाष्यादनुपयोगेऽपि तच्चतो न प्रच्यवत इत्यर्थः; इत्थम्भूतभावाक्षरकार्यकारणत्वाद्काराद्यभ्यक्षरमुच्यते । तत्राक्षरात्मकं श्रुतमक्षरश्रुतं द्रव्याक्षराण्यधिकृत्य, अधवाऽक्षरं च तत् श्रुतं चाक्षरश्रुतं भावाक्षरमधिकृत्य । इदमक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रकृतम्, अक्षरस्यैव त्रिभेदत्वात् । त्रिभेदतामेव दर्शयन्नाह—सञ्चालनं १ व्यञ्जनाक्षरं लब्ध्याक्षरम् ३ ॥

10

६३. से किं तं सण्णक्खरं ? सण्णक्खरं अक्खरस्स संठाणाऽऽगिती । से तं सण्णक्खरं १ ।

६३. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् संज्ञाक्षरम् ?, सञ्चानं संज्ञा, सञ्चयते वा अनयेति संज्ञा, तच्चिबन्धनमक्षरं संज्ञाक्षरम्, इदं च ‘अक्षरस्य’ अकारादेः संस्थानस्याऽऽकृतिः संस्थानाकारः; यतस्तच्चिबन्धनैवैतेष्वकारादिसंज्ञा प्रवर्तते इति । एतच्च ब्राह्म्यादिलिपीविधानादनेकविधम् । “से तं सञ्चक्खरं” तदेतत् संज्ञाक्षरम् १ ॥

६४. से किं तं वंजणक्खरं ? वंजणक्खरं अक्खरस्स वंजणाभिलावो । से तं वंजणक्खरं २ । 15

६४. से किं तमित्यादि । अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरम् ?, व्यञ्जयतेऽनेनार्थः प्रदीपनेव घट इति व्यञ्जनाक्षरम्, व्यञ्जनं च तदक्षरं च व्यञ्जनाक्षरम्, तत्रेह सर्वमेव भाष्यमाणमकारादि हकारान्तम्, अर्थाभिव्यञ्जकत्वाच्छब्दस्य, तथा चाह सूत्रकारः—‘अक्षरस्य’ अकारादेः ‘व्यञ्जनाभिलापः’ शब्दोच्चारणम् । “से तं” मित्यादि, तदेतद् व्यञ्जनाक्षरम् २ ॥

६५. से किं तं लद्धिअक्खरं ? लद्धिअक्खरं अक्खरलद्धीयस्स लद्धिअक्खरं समुत्पज्जइ, 20 तं जहा—सोईदियलद्धिअक्खरं १ चर्म्मिखदियलद्धिअक्खरं २ घाणेंदियलद्धिअक्खरं ३ रसणिदियलद्धिअक्खरं ४ फासेंदियलद्धिअक्खरं ५ णोईदियलद्धिअक्खरं ६ । से तं लद्धिअक्खरं ३ । से तं अक्खरसुयं १ ।

६५. से किं तमित्यादि । अथ किं तल्लब्ध्याक्षरम् ?, लब्धिः—स्योपशमः उपयोग इत्यर्थः । “अक्खरलद्धीयस्स” इत्यादि, इहाक्षरे लब्धिर्धेस्य सोऽक्षरलब्धिकस्तस्य, इन्द्रिय-मनउभयविज्ञानसमुत्पद्यताद्यक्षरलब्धिसमन्वितस्येत्यर्थः; अनेन विकलेन्द्रियादिव्यच्छेदमाह । ‘लब्ध्याक्षरं समुत्पद्यते’ कुतश्चिच्छब्दादेर्निमित्तात् सञ्जातत्वावरणकर्मस्योपशमस्य ‘लब्ध्याक्षरं समुत्पद्यते’ अक्षरोपलम्भः सञ्जायते । एतदुक्तं भवति—शब्दादिग्रहणसमनन्तरमिन्द्रिय-मनोनिमित्तं श्रुतग्रन्थानुसारि शाब्द इत्याद्यक्षरानुषक्तं विज्ञानसमुत्पद्यते । तन्नानेकप्रकारम्, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्याक्षरमित्यादि । इह श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दश्रवणे सति शाब्दोऽयमित्याद्यक्षरद्वयलाभः श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तताच्छ्रो-

25

त्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरमिति, एवं शेषेष्वपि भावनीयम् । “से त”मित्यादि, तदेतल्लब्ध्यक्षरम् । “से त”मित्यादि, तदे-
तदक्षरात्मकं अक्षरं च तदिति वा श्रुतं चाक्षरश्रुतम् । अत्र संज्ञा-व्यञ्जनाक्षरे द्रव्यश्रुतम्, लब्ध्यक्षरं पुनर्भावश्रुतम्
लब्धेर्विज्ञानरूपत्वात् ॥

६६. से किं तं अणक्स्वरसुयं ? अणक्स्वरसुयं अणोगविहं पण्णत्तं, तं जहा-
उत्ससियं णीससियं णिच्छुद्धं सासियं च छीयं च ।
णिस्संघियमणुसारं अणक्स्वरं छेलियादीयं ॥ ७८ ॥
से चं अणक्स्वरसुयं २ ।

६६. से किं तमित्यादि । अथ किं तदनक्षरश्रुतम् ? । अनक्षरशब्दकारणं कार्यमनक्षरश्रुतं ‘अनेकविधं’
अनेकप्रकारं भ्रजन्तम् । तद्यथा—

- 10 उत्ससियं० गाहा । उच्छ्वसनमुच्छ्वसितम्, भावे निष्ठाप्रत्ययः । तथा निःश्वासने निःश्वासितम् । निष्ठी-
वनं निष्ठश्रुतम् । कासनं कासितम् । ‘चशब्दः’ समुच्चयार्थः । क्षरणं क्षुतम् । ‘चशब्दः’ समुच्चयार्थ एव, अस्य व्यव-
हितः सम्बन्धः । कथम् ? सेण्डितं चानक्षरं श्रुतमिति वक्ष्यामः । निःसङ्घनं निःसङ्घितम् । अनुस्वारवदनुस्वारम्,
अक्षरमपि यदनुस्वारवदनुस्वारमिति । ‘अनक्षर’मिति एतदुच्छ्वसितादि अनक्षरश्रुतमिति । सेण्डितं सेण्डितम्, तत्
सेण्डितं चानक्षरश्रुतमिति । इदं चोच्छ्वसितादि द्रव्यश्रुतमात्रम्, ध्वनिमात्रत्वात् । अथवा श्रुतविज्ञानोपयुक्तस्य
11 जन्तोः सर्वे एव व्यापारः श्रुतम्, तस्य तद्भावेन परिणतत्वात् । आह—यद्येवं किमित्युपयुक्तस्य चेष्टाऽपि श्रुतं
नोच्यते येनोच्छ्वसिताद्येवोच्यते ? इति, अत्रोच्यते, रूढ्या, अथवा श्रूयत इति श्रुतम्, अन्वयसंज्ञामधिकृत्योच्छ्व-
सिताद्येव श्रुतमुच्यते, न चेष्टा, तदभावादिति, अनुस्वारादयस्स्वयंगमकत्वादेव श्रुतमिति ॥७८॥

“से त”मित्यादि, तदेतदनक्षरश्रुतम् ॥

६७. से किं तं सण्णिसुत्तं ? सण्णिसुत्तं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—कालिओवएसेणं ?
हेअवएसेणं २ दिट्ठिवादोवदेसेणं ३ ।

६७. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् संज्ञिश्रुतम् ? । संज्ञानं संज्ञा, साऽप्यास्तीति संज्ञी, तस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतं
त्रिविधं भ्रजन्तम्, संज्ञिन एव त्रिभेदत्वात् । त्रिभेदतामेव दर्शयन्नाह, तद्यथा—कालिक्युपदेशेन ? हेतूपदेशेन २
हृष्टिवादोपदेशेन ३ ॥

६८. से किं तं कालिओवएसेणं ? कालिओवएसेणं जस्स णं अत्थि ईहा अपोहो
52 मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा से णं सण्णि च्चि लब्भइ, जस्स णं णत्थि ईहा अपोहो
मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा से णं असण्णीति लब्भइ । से चं कालिओवएसेणं १ ।

६८. से किं तमित्यादि । अथ कोऽयं कालिक्युपदेशेन ? इहाऽऽदिपदलोपाद् दीर्घकालिकी कालिक्युच्यते,
संज्ञेति प्रकरणाद् गम्यते, उपदेशनष्टोपदेशः, कथनमित्यर्थः; दीर्घकालिक्याः सम्बन्धी दीर्घकालिक्या वा मतेनोपदेशो
दीर्घकालिक्युपदेशः, स्तेन ‘यस्य’ प्राणिनः ‘अस्ति’ विद्यते ‘ईहा’ शब्दाद्यवग्रहणोत्तरकालमन्वय-व्यतिरेकधर्मा-

लोचनचेष्टेत्यर्थः; तथा 'अपोहः' व्यतिरेकधर्मपरित्यागेनान्वयधर्माध्यासेनावधारणात्मकः पत्यय इति भावना, यथा शब्द इति; तथा 'मार्गणा' विशेषधर्माध्वेषणाख्या संविदित्यर्थः, यथा-शब्दः सन् किं शब्दः किं वा शब्दः ? इति; तथा 'गवेपणा' व्यतिरेकधर्मस्वरूपालोचना, यथा स्वरादय एवम्भूता इति; तथा 'चिन्ता' अन्वयधर्मपरिज्ञानाभिमुखत्वा चेष्टा, यथा मधुरत्वादयस्त्वेवम्भूता इति; तथा 'विमर्षः' त्याज्यधर्मपरित्यागेनोपादेयधर्मग्रहणाभिमुख्यम्, यथा न शार्ङ्गः, प्रायोऽयं मधुरत्वादियोगाच्छाह इति; "से णं सर्वाति लभ्यति" चि 'सः' प्राणी 5 "ण"मिति वाक्यालङ्कारे 'संज्ञीति लभ्यते' मनःपर्याप्त्या पर्याप्तः, अवग्रहादिमतिज्ञानसम्पत्समन्वित इत्यर्थः । अथवा यस्यास्ति 'इहा' किमेतदिति चेष्टा, इदमित्यत्रमोऽपोहः, अग्रतार्थाभिन्नाषे तत्पर्यायना मार्गणा, तदप्राप्तौ च निपुणोपायतोऽन्वेषणं गवेपणा, प्रयुक्तमतिहतोपायस्योपायान्तरचिन्तनं चिन्ता, तद्विषय एवोपायालोचनात्मकः प्रत्ययो विमर्षः, स संज्ञीति लभ्यते । अयं च गर्भव्युत्क्रान्तिरुक्तः पुरुषादितोपपाति इत्यं देवादिरेव मनःपर्याप्तित्प्रयुक्तो विज्ञेयः, यथोक्तविशेषणकलापसमन्वितत्वात्, न पुनस्त्यस्तद्विशेषणविकल इति । आह च-"जस्से"त्यादि, 10 यस्य नास्ति इहाऽप्योदो मार्गणा गवेपणा चिन्ता विमर्षः सोऽसंज्ञीति लभ्यते, अयं च सम्पूर्च्छिमपञ्चेन्द्रिय-विकलेन्द्रियादिर्ज्ञेयः, अल्पमनोत्वविश्वत्वादमावाच । "से त"मित्यादि, सोऽयं कालिक्युपदेशेन १॥

६१. से किं तं हेऊवएसेणं ? हेऊवएसेणं जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुब्बिया करणसत्ती से णं मण्णीति लब्भइ, जस्स णं णत्थि अभिसंधारणपुब्बिया करणसत्ती से णं अमण्णि ति लब्भइ । से तं हेऊवएसेणं २ । 15

६१. से किं नमित्यादि । अथ कोऽयं हेतूपदेशेन ?, हेतुः-कारणम्, उपदेशेन उपदेशः, हेतोरुपदेशः हेतूपदेशेनान्ते, कारणोपदेशेनेत्यर्थः । 'यस्य' प्राणिनः 'अस्ति' विद्यतेऽभिसन्धारणम्-अव्यक्तेन विज्ञानेनाऽऽलोचनं तत्पूर्विका-तत्कारणिका करणशक्तिः-क्रियाशक्तिः, करणं-क्रिया शक्तिः-सामर्थ्यम्, अव्यक्तविज्ञानालोचननिबन्धनचेष्टासामर्थ्यमिति भावना, स प्राणी "ण"मिति वाक्यालङ्कारे संज्ञीति लभ्यते, अयं च द्वीन्द्रियादिः सम्पूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियावसानो विज्ञेयः । तथाहि-कृम्यादयोऽपीष्टेष्वहारादिषु प्रवर्तन्ते अनिष्टेभ्यश्च निवर्तन्ते स्वदेहपरिपालनार्थं प्रायो वर्तमान एव, न चासञ्चिन्त्येष्टा-ऽनिष्टविषयप्रवृत्ति-निवृत्तिसम्भव इति संज्ञी । उक्तलक्षणविकलस्त्वसंज्ञी, तथा चाह-"जस्से"त्यादि, यस्य नास्ति अभिसन्धारणपूर्विका करणशक्तिः सोऽसंज्ञीति लभ्यते, अयं चैकेन्द्रियः पृथिव्यादिद्रव्यसेयः, मनोत्वविश्वरहितत्वात् । 20

आह-यदि स्वल्पसंज्ञायोगाद् विकलेन्द्रियादयः संज्ञिन इत्यन्ते पृथिव्यादयः किं नेत्यन्ते ? यतस्तेषामपि दशविधाः संज्ञा विद्यन्त एव, तथा चोक्तं परमगुरुभिः-"कति णं भंते ? एमिदियाणं सन्नाओ पन्नताओ ?, गोयमा ! 25 दस, तेनहा-आहारसन्ना १ अयसन्ना २ मेहुणं ३ परिग्गहसन्ना ४ कोहं ५ माणं ६ मायां ७ लोभं ८ ओहसन्ना ९ लोहसन्ना य" १० [] चि । उपयोगमात्रमोघसंज्ञा, लोकसंज्ञा स्वच्छन्दविकल्पिता त्रिभ्रगमा लौकिकैराचरिता, तद्यथा-"अनपत्यस्य न सन्ति लोकाः" इत्यादि, अन्ये तु व्याचक्षते-ओघसंज्ञा दर्शनेनोपयोगः, लोकसंज्ञा ज्ञानोपयोग इति, अत्रोच्यते, इहोपसंज्ञा स्तोक्तत्वाद् आहारादिसंज्ञाश्चानिष्टत्वात्प्राधिक्रियन्ते, यथा न काषाण्णमात्रेण धनवानभिधीयते मूर्च्छिमात्रेण वा रूपवानिति, किन्तु यथा प्रभूतरत्नादिस- 30 मन्वितो धनवान् प्रशस्तमूर्तिर्युक्तश्च रूपवानभिधीयते; एवं महती शोभना च संज्ञा यस्यास्त्यसौ संज्ञीति, विशिष्टतरा च विकलेन्द्रियसंज्ञेत्यलं विस्तरेण । "से त"मित्यादि, सोऽयं हेतूपदेशेन २॥

७०. से किं तं दिट्टिवाओवएसेणं ? दिट्टिवाओवएसेणं सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भति, असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भति । से तं दिट्टिवाओवएसेणं ३ । से तं सण्णिसुतं ३ । से तं असण्णिसुतं ४ ।

७०. से किं तमित्यादि । अथ कोऽयं दृष्टिवादोपशेन १, दृष्टिः दर्शनं, वदनं वादः, दृष्टीनां वादः दृष्टिवादः १ तदुपदेशेन तन्मतापेक्षया संश्लिष्टतस्य क्षयोपशमेन संज्ञीति लभ्यते, अयमत्र भावार्थः—संज्ञानं संज्ञा, तद्योगात् संज्ञी, तस्य श्रुतं संश्लिष्टतम्, इदं सम्यक्श्रुतमेव, अन्यथा संज्ञानाभावात्, न हि मिथ्यादृष्टिः संज्ञानमस्ति, हिता-हितमवृत्ति-निवृत्त्यभावाद् रागादिप्रवृत्तेः । उक्तं च—

तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्दुदिते विभाति रागगणः ।

तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणप्रतः स्यात्तुम् ॥१॥ []

१० सम्यग्दृष्टिस्तु तन्निग्रहपरत्वाद् वीतरागसम एव । उक्तं च—

कल्लुसफलेण ण जुज्झइ किं चिच्चं तत्थ ? जं किगताराओ । संते वि जो कसाए णिगिण्णदी सो वि तत्तुल्लो ॥१॥

[विलोपा. गा. ३२६५] चीत्यादि ।

अलं प्रसङ्गेन । तदित्यम्भूतस्य संश्लिष्टतस्य क्षयोपशमेन सता संज्ञीति लभ्यते, अयं च सम्यग्दृष्टिरेव क्षायो-पशमिकज्ञानयुक्तो रागादिनिग्रहपरः । तदन्यस्त्वसंज्ञी, यत आह ग्रन्थकारः—असंश्लिष्टतस्य क्षयोपशमेनासंज्ञीति १० लभ्यते, “से त”मित्यादि, सोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन ३ । एवं संज्ञिनस्त्रिभेदभिन्नत्वात् श्रुतमपि तदुपाधिभेदात् त्रिविधमेवेति ।

अत्राह—काल्पियुपदेशेनेत्यादि क्रमः किमर्थम् १, उच्यते, इह प्रायः सूत्रे यत्र क्वचित् संश्लिष्टग्रहणं तत्र दीर्घ-काल्पियुपदेशेन समनस्कसंश्लिष्टपरिग्रह इति प्रथमं तदुपन्यासः, अप्रधानत्वाच्चेतरयोः, अन्ते च प्रधानाभिधानमिति न्याय्यम् । “से त”मित्यादि, तदेतत् संश्लिष्टतम् ३ । असंश्लिष्टं तु प्रतिपत्ताभिधानादेव प्रतिपादितम् ।

२० तदेतदसंश्लिष्टतम् ४ ॥

७१. [१] से किं तं सम्मसुतं ? सम्मसुतं जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाण-दंसणवरेहिं तेलोक्कणिरिक्खिय-महिय-पूइएहिं तीय-पञ्चुप्पण्ण-मणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं णीणीं दुवालसंगं गणपिडगं, तं जहा—आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपण्णत्ती ५ णायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरो-
२५ व्वाइयदसाओ ९ णहावागरणाइं १० विवागसुतं ११ दिट्टिवाओ १२ ।

[२] इच्च्यं दुवालसंगं गणपिडगं चोइसपुब्बिस्स सम्मसुतं, अभिण्णदसपुब्बिस्स सम्मसुतं, तेण परं भिण्णेसु भयणा । से तं सम्मसुतं ५ ।

७१. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् सम्यक्श्रुतम् १, सम्यक्श्रुतं यदिदं प्रणीतमिति सम्बन्धः । तत्रा-श्लोकाद्यन्तमहामातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः, तथा चोक्तम्—

अज्ञोक्तवृत्तः सुरपुष्पदृष्टिर्दिव्यो ध्वनिस्वामरमासनं च ।

भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्यातिहायार्णि जिनेश्वराणाम् ॥१॥ []

तरहर्द्धिः, तत्र शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिभिः अनादिशुद्धा एव मुक्तात्मानोऽभ्युपगम्यन्ते । यथोक्तम्—

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः । ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥१॥

[] इत्यादि । 5

बहवश्च कैश्चिदप्यन्ते, तेऽपि च स्थापनादिद्वारेण पूजाहर्त्वादर्हन्तो भवन्त्येव । अतो 'भगवद्भिः' भगः—सख्य समग्रैश्वर्यादिलक्षणः, यथोक्तम्—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यज्ञसः श्रियः । धर्मस्याथ प्रयत्नस्य ण्णां भग इतीहना ॥१॥

[]

भगो विद्यते येषां ते भगवन्तः तैर्भगवद्भिः, न चानादिशुद्धानां समग्रं रूपमुपपद्यते, अक्षरीरित्वात्, शरीरस्य 10 च रागादिकार्यत्वात्, तेषां च तद्भावादिति । स्वेच्छानिर्माणतः समग्रशरीरसम्भवात् तुल्यतामेवाशङ्क्याऽऽह—उत्पन्नज्ञान-दर्शनधरैः, न च तेऽनादिशुद्धाः उत्पन्नज्ञान-दर्शनधराः, “ ज्ञानमप्रतिघं यस्ये ”त्यादिवचनविरोधात्, एवं शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितस्युक्तव्यवच्छेदार्योऽयं ग्रन्थः । अधुना पर्यायास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितस्युक्तव्यवच्छेदार्थमाह—'त्रैलोक्यनिरीक्षित-महित-पूजितैः' निरीक्षिताश्च महिताश्च पूजिताश्चेति समासः, त्रैलोक्येन निरीक्षित-महित-पूजिता इति विग्रहः । विशेषणसाफल्यं पुनरित्यमवसेयम्—त्रैलोक्यग्रहणाद् भवन- 15 व्यन्तर-नर-विद्याधर-ज्योतिष्क-चैमानिकपरिग्रहः, निरीक्षिताः—भक्तिनम्रैर्मनोरथदृष्टिभिर्दृष्टाः, महिता यथावस्थितान्यासाधारणगुणोत्कीर्चनलक्षणेन भावस्तवेन, पूजिताः सुगन्धिपुष्पप्रकरभक्षेपादिना द्रव्यस्तवेनेति । तत्र सुगतादयोऽपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिस्रैलोक्यनिरीक्षित-महित-पूजिता इत्यन्त एव । आह च स्तुतिकारः—

देवागम-नभोयान-चामरादिविभूतयः । मायाविष्वापि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

[] इत्यादि । 20

अत आह—'अतीत-मत्युत्पन्ना-ऽनागतस्रैः' न चैकान्तशणिकवादिनां यथोक्तविशेषणसम्भवः, अतीता-ऽनागताभावात् । तथा चागमः—

यं विद्याणगया भग्ना, पुंजो गत्वि अणागते । णिव्रुया जेव चिद्धंति आरग्ये सस्सिोवमा ॥१॥

असतां च ग्रहणायोगाद् इत्याद्यत्र बहु वक्तव्यम् न च तदुच्यते, गमनिकामात्रत्वादस्य प्रारम्भस्य । ज्वनहस्त- 25 नयमतानुसारिभिस्तु कैश्चिदतीता-ऽनागतार्थग्राहिण इष्यन्त एव ऋषयः । यथाऽऽहुरेके—

ऋषयः संयतात्मानः फल-मूला-ऽनिलाशनाः । तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१॥

अतीता-ऽनागतान् भावान् कर्षमानांश्च भारत ! । ज्ञानालोकेन पश्यन्ति त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ॥२॥

[] इत्यादि ।

अत आह—सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः, ते तु सर्वज्ञा न भवन्तीत्यभिप्रायः । एवं प्रधानोभयनयमतानुसारिपरिकल्पितस्युक्तव्यवच्छेदेनेदं नीयते, अन्यथा वाऽविरोधेन नेतव्यमिति । प्रणीतम्—अर्थकथनद्वारेण प्रकल्पितम् । किं 30

तत् ? 'द्वादशाङ्गं' श्रुतपरमपुरुषोचमस्याङ्गानीवाङ्गानि द्वादश अङ्गानि-आचारादीनि यस्मिन्स्तद् द्वादशाङ्गम् । गुण-
गणोऽस्यास्तीति गणी-आचार्यशतस्य पिटकं-सर्वम् गणिपिटकम् । अथवा गणिशब्दः परिच्छेदवचनः, तथा चोक्तम्-
आयारम्मि अहीए जं गातो होइ समणधम्मो उ । तम्हा आयारधरो भधति पदमं गणिट्ठाणं ॥१॥

[आचाराङ्गनिर्युक्ति गा. १०]

- 5 परिच्छेदस्थानमित्यर्थः, ततश्च परिच्छेदसमूहो गणिपिटकम्, तद्यथा-आचार इत्यादि पाठसिद्धं यावद्
दृष्टिवादः । अनङ्गपविष्टमावश्यकदि, ततोऽर्हन्मणीतत्वाद् वस्तुत उक्तत्वादनुक्तमपि शृणते । इदं सर्वमेव द्रव्या-
स्तिकनयमतेन तदभिधेयपञ्चाशितकायभाववञ्चित्यं सत् स्वाम्यसम्बन्धचिन्तायां द्वयार्थोभयरूपं सम्यक्कृतमेव
भवति । स्वामिसम्बन्धचिन्तायां तु भाज्यम्, स्वामिपरिणामविशेषात्, कदाचित् सम्यक्कृतं कदाचिद् विपर्ययः ।
तत्र सम्यग्दृष्टेः प्रथमादिसम्यक्परिणामोपेतत्वात् स्वरूपेण प्रतिभासनात् सम्यक्कृतम्, पित्तोदयानभिभूतस्य शर्क-
10 रादिरिषेति, मिथ्यादृष्टेः पुनरप्रथमादिमिध्यापरिणामोपेतत्वाद् वस्तुतः स्वरूपेणाप्रतिभासनान्मिध्याश्रुतम्, पित्तो-
दयाभिभूतस्यशर्करादिवदिति, देशतो दृष्टान्तः, अशर्करादित्वं च तं प्रति तत्कार्याकरणात्, तथाऽप्यभ्युपगमे
चातिमसङ्गादित्यलं प्रसङ्गेन । श्रुतप्रमाणत एव सम्यक्परिणामनियमनायाह—

[२] इच्छेदमित्यादि । इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं चतुर्दशवर्णिगः सम्यक्कृतमेव, तथा अभिन्नदश-
पूर्विणोऽपि सम्यक्कृतमेव । “तेण परं भिन्नेसु भयण” ति पश्चानुपूर्व्यां ततः परं भिन्नेसु दशसु ‘भजना’ कदाचित्
15 सम्यक्कृतं कदाचिन्मिध्याश्रुतम्, परिणामविशेषात् । एतदुक्तं भवति-आसन्नभयोऽपि मिथ्यादृष्टिः सम्पूर्ण-
शपूर्वस्तनिधानं न प्राप्नोति, मिथ्यात्त्रपरिणामकलङ्कितत्वाद् दारिद्र्यानिवन्धनपापकलङ्काङ्कितपुरुषवचिन्ताम-
णिमिति । “से त”मित्यादि तदेतत् सम्यक्कृतम् ॥

७२. [१] से किं तं मिच्छमुतं ? मिच्छमुतं जं इमं अण्णाणिएहं मिच्छदिट्ठीहिं
सच्छंदबुद्धि-मतिवियपियं, तं जहा-भारहं रामायणं हंभीमासुक्कतं कोडलयं मगभहियाओ
20 खोडमुहं कप्पासियं नामसुहुमं कणगसत्तरी वइसेमियं बुद्धवयणं वेसितं कविलं लोगायतं
सट्ठितंतं मादरं पुराणं वागारणं णाडगादी, अहवा वावत्तरिकलाओ वत्तारि य वेदा मंगोवेंगा ।

[२] एयाइं मिच्छदिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहियाइं मिच्छमुतं, एयाणि चैव सम्मदिट्ठिस्स
सम्मत्तपरिग्गहियाइं, सम्ममुयं ।

- [३] अहवा मिच्छदिट्ठिस्स वि सम्ममुयं, कम्हा ? सम्मत्तहेउत्तणओ, जम्हा ते
25 मिच्छदिट्ठिया तेहिं चैव ममएहं चोइया समाणा केइ सपक्खदिट्ठीओ वमंति । से तं
मिच्छमुयं ६ ।

७२. से किं तमित्यादि । अथ किं तन्मिध्याश्रुतम् ? मिध्याश्रुतं यदिदमज्ञानिकैः । तत्राल्पज्ञानभावाद-
धनवदशीलवद्वा सम्यग्दृष्टयोऽप्यज्ञानिकाः मोच्यन्ते, अत आह-मिथ्यादृष्टिभिः । किम् ? ‘स्वच्छन्दबुद्धि-मतिवि-

कल्पितं' इहावग्रहेहे बुद्धिः, अपाय-धारणे मतिः, स्वच्छन्देन-स्वाभिप्रायेण स्वतः सर्वज्ञप्रणीतार्थानुसारमन्तरेण बुद्धि-मतिभ्यां विकल्पितं स्वच्छन्दबुद्धि-मतिविकल्पितम्, स्वबुद्धिकल्पनाश्लेषनिर्मितमित्यर्थः । तद्यथा-‘भारत’ मित्यादि छत्रसिद्धं यावत् ‘चत्वारश्च वेदास्साङ्गोपाङ्गाः’ । एतानि स्वरूपतोऽन्यथावस्त्वभिधानान्मिथ्याश्रुतमेव । स्वामिसम्बन्धचिन्तायां तु भाज्यानि । तथा चाह-

[२] मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिगृहीतानि विपरीताभिनिवेशहेतुत्वात्तन्मिथ्याश्रुतम् । एतान्येव सम्पगृष्टेः 5 सम्पत्परिगृहीतानि असारतादर्शनेन स्थिरतरसम्पत्परिणामहेतुत्वात् सम्पक्कृतम् ।

[३] अथवा मिच्छद्विद्विस्स वि सम्पक्कृतम् इत्यादि, अथवा मिथ्यादृष्टेरप्येतानि सम्पक्कृतम्, कस्मात् ?, सम्पत्त्वहेतुत्वात् । तथा चाऽऽह-“जम्हा ते मिच्छद्विद्वीया” इत्यादि, यस्मात् ते मिथ्यादृष्टयः “तेहिं चैव समयेहिं चोदिता समाण” लि तैरेव ‘समयैः’ सिद्धान्तैः पूर्वा-ऽपरविरोधद्वारेण-‘यद्यतीन्द्रियार्यदर्शनं स्यात् कथं वेदार्थप्रतिपत्तिः ?’ इत्यादिना चोदिताः सन्तः केचन विवेकिनः सत्यक्यादय इव, किम् ?, “सपक्खद्विद्वीओ वमंति” स्वपक्षदृष्टीस्त्यजन्तीत्यर्थः । “से त”मित्यादि, तदेतत् मिथ्याश्रुतम् 10

७३. से किं तं सादीयं सपज्जवसियं ? अणादीयं अपज्जवसियं च ? इच्चैयं दुवालसंगं गणिपिट्ठं विउच्छित्तिणयद्वयाए सादीयं सपज्जवसियं, अविउच्छित्तिणयद्वयाए अणादीयं अपज्जवसियं ।

७३. से किं तमित्यादि । सादि सपर्यवसितं अनाद्यपर्यवसितं चाधिकारवशाद् युगपदुच्यते । अथ किं 15 तत् सादि ?, सह आदिना वर्तत इति सादि । इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिट्ठं व्यवच्छिन्नप्रतिपादनपरो नयः व्यवच्छिन्ननयः, पर्यायास्तिक इत्यर्थः, तस्यार्थो व्यवच्छिन्ननयार्थः, तद्भावो व्यवच्छिन्ननयार्थता तथा व्यवच्छिन्ननयार्थभावेन, पर्यायापेक्षेत्यर्थः, किम् ? सादि सपर्यवसितम्, पर्यवसानं पर्यवसितम्, भावे निष्ठाप्रत्ययः, सह पर्यवसानेन सपर्यवसितम्, नारकादिभवापेक्षया एव जीव इति । तथा अव्यवच्छिन्नप्रतिपादनपरो नयः अव्यवच्छिन्ननयः, द्रव्यास्तिकनय इत्यर्थः, तस्यार्थो अव्यवच्छिन्ननयार्थः, तद्भावः अव्यवच्छिन्ननयार्थता तथा अव्यवच्छिन्ननयार्थभावेन, द्रव्यापेक्षेत्यर्थः, किम् ? अनादि अपर्यवसितम्, त्रिकालावस्थायित्वात्, जीववत् 20

अधिकृतमेवार्थं द्रव्यादिचतुष्टयमधिकृत्य प्रतिपादयन्नाह—

७४. तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-दव्वओ खेतओ कालओ भावओ । तत्थ दव्वओ णं सम्मसुयं एणं पुरिसं पडुच्च सादीयं सपज्जवसियं, बहवे पुरिसे पडुच्च अणादीयं अपज्जवसियं 1 । खेतओ णं पंच भरहाइं पंच एखयाइं पडुच्च सादीयं सपज्जवसियं, पंच 25 महाविदेहाइं पडुच्च अणादीयं अपज्जवसियं २ । कालओ णं ओसपिण्णिं उस्सपिण्णिं च पडुच्च सादीयं सपज्जवसियं, णोओसपिण्णिं णोउस्सपिण्णिं च पडुच्च अणादीयं अपज्जवसियं ३ । भावओ णं जे जया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति पखुविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ते तहा पडुच्च सादीयं सपज्जवसियं, खाओवसमियं

पुण भावं पञ्च अणादीयं अपञ्जवसियं ४ ।

७४. तं समासतो इत्यादि । 'तत्' श्रुतज्ञानं 'समासतः' सङ्क्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञानम्, तथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः । तत्र द्रव्यतः "ण"मिति वाक्यालङ्कारे सम्पत्कृतं एकं पुरुषं प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम् । कथम् ?, सम्यक्चावाप्तौ तत्प्रथमपाठतो वा सादि, पुनर्मिथ्यात्वमाप्तौ सति वा सम्यक्त्वे प्रमाद-ग्लान-सुरलोकगमन-केवलो-
 5 त्पत्तिभावेऽभावात् सपर्यवसितम् । बहून् पुरुषान् प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम्, सन्तानेन प्रवृत्तत्वात्, पुरुषत्ववत् । तथा क्षेत्रतः पञ्च भूतानि पञ्च ऐश्वर्यानि प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम् । कथम् ?, तेषु सृष्टमदुष्यमादिकाले तीर्थकर-धर्म-सङ्गानां तत्प्रथमतयोत्पत्तेः सादि, एकान्तदुष्यमादिकाले च तदभावे सपर्यवसितम् । तथा महाविदेहादि प्रतीत्य प्रवाहरूपेण तीर्थकरादीनामव्यवच्छिन्नेरनाद्यपर्यवसितम् । कालतः "ण"मिति वाक्यालङ्कारे अवसर्पिणीं उत्सर्पिणीं च प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम्, कथम् ?, यतोऽवसर्पिण्यां तिस्रस्त्वेव सृष्टमदुष्यमा-दुःष्यसृष्टमा-दुष्यमास्तिवति, उत्स-
 10 र्पिण्यां द्वयोः दुष्यमसृष्टमा-सृष्टमदुष्यमयोरिति, न परतः, इत्यतः सादि सपर्यवसितम् । अत्र कालचक्रं त्रिशतिसागरोपमकोटीकोटिपरिमाणं विनेयजनानुग्रहाय प्ररूप्यते—

चत्वारि सागरोपमकोडाकोडीउ संततीए उ । एगंससूसमा खलु जिणेहिं सव्वेहिं णिदिट्ठा ॥१॥

तीए पुरिसाणमायुं तिण्णि य पलियाईं तह पमाणं च । तिञ्जेव गाउयाईं आदीए भणंति समयण्णु ॥२॥

उवमोग-परीमोगा जम्मंतरसुक्यवीयजातातो । कप्पतरुसमूहाओ होंति किलेसें विणा तेसिं ॥३॥

15 ते पुण दसप्पगारा कप्पतरु समणसमयकेतुहिं । धीरेहि विणिदिट्ठा मणोरहापूग्गा एए ॥४॥

मत्तंगया १ य भिंगा २ तुडियंगा ३ दीव ४ जोति ५ चिन्त्वा ६ ।

चिचरसा ७ मणियंगा ८ मेहागारा ९ अणियणा १० य ॥५॥

मत्तंगएसु मज्जे सुहपेज्जे १ मायणाणि भिगेसु २ । तुडियंगेसु य संगयतुडियाणि बहुप्पगाराणि ३ ॥६॥

दीवसिहा जोतिसणामया य णिञ्चं करेति उज्जोयं ४। ५। चित्तगेसु य मल्लं ६ चिचरसा भोगणद्राप ७ ॥७॥

20 मणियंगेसु य भूसणवरणि ८ भवणाणि भवणरुक्खेसुं ९ । आयसेसु य इच्छियवत्तयाणि बहुप्पगाराणि १० ॥८॥

एएसु य अण्णेषु य नर-नारिगणाण ताणसुवमोगा । भविय पुणभवराहिया इय सव्वन्नु जिणा बिंति १ ॥९॥

तो तिञ्जे सागरोपमकोडाकोडीउ वीयरगेहिं । सुसम च्चि समक्खाया पवाहरूवेण धीरेहिं ॥१०॥

तीए पुरिसाणमायुं दोण्णि य पलियाईं तह पमाणं च । दो वेव गाउयाईं आदीए भणंति समयन्नु ॥११॥

उवमोग-परीमोगा तेसिं पि य कप्पपादवेहिंतो । होंति किलेसेण विणा नवरं ऊणाणुभावेहिं २ ॥१२॥

25 तो सुसमससमाए पवाहरूवेण कोडिकोडीओ । अयराण दोण्णि सिट्ठा जिणेहिं जियराग-दोसेहिं ॥१३॥

तीए पुरिसाणमाउं एगं पलियं तहा पमाणं च । एगं च गाउयं ती आदीए भणंति समयण्णु ॥१४॥

उवमोग-परीमोगा तेसिं पि य कप्पपादवेहिंतो । होंति किलेसेण विणा पायं ऊणाणुभावेहिं ॥१५॥

सुसमदुसमावसेसे पदमजिणो धम्मणायो भयवं । उप्पन्नो कयपुत्तो सिप्पकलादसगो उत्तहो ३ ॥१६॥

सो दुसमसुसमणा बायालीसाए वरिससहसेहिं । सागरकोडाकोडी एग्गेव जिणेहि पणत्ता ॥१७॥

30 तीए पुरिसाणमायुं पुच्चपमाणेण तह पमाणं च । धणुसंत्तानिदिट्ठं विसेससुत्तदो भायव्वं ॥१८॥

उवभोग-परीभोगा पवरोसहिमाहर्षहिं विण्णोया । जिण-चकि-वासुदेवा सव्वे य इमीएः बोलीणा ४ ॥१९॥

इगवीस सहस्साई वासाणं दुसमा, इमीए य । जीविणमाणुवभोगादिया य दीसंति हायंता ५ ॥२०॥

एत्तो उ किलिद्धतरा जीतपमाणादिएहिं निदिट्ठा । अत्तिदसम चि योरा वाससहस्साई इगवीसं ६ ॥२१॥

ओसपिणीए एसो कालविभागो जिणेहिं निदिट्ठो । एसो चिय पडिलोमं विण्णेषुसपिणीए वि ॥२२॥

एतं तु कालचक्रं सिस्सजणाणुग्गहट्टया भणियं । संखेवण महत्थो विसेसमुत्ताओ णायव्वो ॥२३॥

5

“णोउस्स(ओस)पिणी”मित्यादि । नोअवसर्पिणीनोउत्सर्पिणीं च प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम्, महाविदेहेष्वेव कालस्यावस्थितत्वादिति भावः । भावतः “ण”मिति पूर्ववत् ‘ये’ इत्यनिर्दिष्टनिर्देशे ये केचन ‘यदा’ पूर्वाह्लादीं जिनैः प्रज्ञप्ता जिनप्रज्ञप्ताः ‘भानाः’ पदार्थाः “आयविज्जंति” त्ति प्राकृतशैल्या आख्यायन्ते, सामान्य-विशेषाभ्यां कथ्यन्त इत्यर्थः; ‘प्रज्ञाप्यन्ते’ नामादिभेदाभिधानेन; ‘प्ररूप्यन्ते’ नामादिरूपकथनेन, यथा—“पर्यायानभिधेय”मित्यादि; ‘दर्शयन्ते’ उपमानान्तरतः, यथा गौस्तथा गवय इत्यादि; ‘निदर्शयन्ते’ हेतु-दृष्टान्तोपन्यासेन; ‘उपदर्शयन्ते’ उपनय- 10 निगमनाभ्यामिति सकलनयाभिप्रायतो वा ‘तान्’ भावान् ‘तदा’ तत्कालापेक्षया प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम् । एतदुक्तं भवति—प्रज्ञापकोपयोग-स्वर-प्रयत्ना-ऽऽसनविशेषतः प्रतिक्षणमन्यथा चान्यथा चावस्थितेः सादि सपर्यव- सितम् । तथा चोक्तम्—

उवयोग-सर-पयत्ता आसणभेदादिया य पतिसमयं ।

भिन्ना पन्नवगस्सा सादि सपज्जन्तगं तम्हा ॥ १ ॥ [विशेषा. गा. ५४७]

15

अथवा प्रज्ञापनीयमावापेक्षया गति-स्थिति-द्वयचयुकाद्येकप्रदेशाद्यवगाहैकादिसमयस्थित्येकवर्णादिप्रतिपादान्ता सादि सपर्यवसितम्, क्षायोपक्षमिकभावापेक्षया पुनरनाद्यपर्यवसितम्, प्रवाहरूपेण तस्यानाद्यपर्यवसितत्वात् ॥ अथवाऽत्र चतुर्भङ्गिका—सादि सपर्यवसितं १ साद्यपर्यवसितं २ अनादि सपर्यवसितं ३ अनाद्यपर्यवसितम् ४ । तत्र प्रथमभङ्गकप्रदर्शनायाऽऽह—

७५. अहवा भवसिद्धीयस्स सुयं सार्थं सपज्जवसियं, अभवसिद्धीयस्स सुयं अणा- 20 दीयं अपज्जवसियं ।

७५. “अभवसिद्धीयस्स” इत्यादि । भवसिद्धिकः—अव्यस्तस्य ‘श्रुतं’ सम्पन्नकृतं सादि सपर्यवसितम्, उप- 25 योगाद्यपेक्षया भावितमेव । द्वितीयभङ्गकस्तु शून्यः, प्ररूपणामान्नतो वा अभव्यस्य वर्त्तमानकालापेक्षया अनागत- द्वाभविष्कृत्य मिथ्याश्रुतमिति । तृतीयभङ्गकस्तु सम्पत्तवान्नाती भव्यस्य मिथ्याश्रुतम् । चतुर्थं भङ्गं पुनरुपदर्शयन्नाह— “अभव” इत्यादि, अभवसिद्धिकः—अभव्यस्तस्य ‘श्रुतं’ मिथ्याश्रुतं अनाद्यपर्यवसितम्, तस्य सदैव संसारवर्त्तित्वात् । 25 इह च श्रुतस्य प्रकान्तत्वात् तृतीय-चतुर्थभङ्गकद्वयेऽनादिश्रुतभाव उक्तः, अन्यथा मतेरप्येवमेव द्रष्टव्यम्, मति-श्रुत- योरन्योऽन्यानुगतत्वात् ॥ अत्राह—सोऽनादिज्ञानभावः किं जयन्त्यः ? उत विमध्यमः ? आहोश्चिदुत्कृष्टः ? इति, अत्रोच्यते, जयन्त्यो विमध्यमो वा, न तूत्कृष्टः । कथम् ? यतस्तस्येदं प्रमाणम्—

७६. सव्वागासपदेसग्गं सव्वागासपदेसेहिं अणंतगुणियं पज्जवग्गक्खरं णिप्फज्जइ ।

७६. ‘सव्वागासपदेसग्गं’मित्यादि । सर्वं च तदाकाशं च सर्वाकाशम्, लोका-ऽल्लोकाकाशमित्यर्थः, 30

१ “यद् वस्तुनोऽभिधान स्थितमन्यायं तदर्थनिरपेक्षम् । पर्यायानभिधेयं च नाम वाद्यच्छकं च तथा ॥१॥” इति सम्पूर्णः श्लोकः ॥

पर्यायाः परपर्याया इति, ते पुनः स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः । आह—स्वपर्यायाणां तावत् पर्यायता युक्ता, घटादिपर्यायास्तु विभिन्नस्त्वाश्रितत्वात् कथं 'तस्य' इति व्यपदिश्यन्ते ? उच्यते, स्वपर्यायविशेषणोपयोगात्, इह ये यस्य स्वपर्यायविशेषणतयोपयुज्यन्ते ते तस्य पर्यायतया व्यपदिश्यन्ते, यथा घटस्य रूपादयः, उपयुज्यन्ते चाकार-स्वपर्यायाणां विशेषणतया घटादिपर्यायाः, तानन्तरेण स्वपर्यायव्यपदेशाभावात्, तथा वस्तुस्थित्याऽपि च घटादिपर्याया अभावरूपेणाकारस्य व्यवस्थितत्वाद् घटादिपर्यायाणां अकारपर्यायतायामविरोध इति । इयमत्र भावना—घटादिपर्यायाणामनन्तत्वात् तेभ्यश्चाकारस्य स्वभावभेदेन व्याहृतत्वात्, स्वभावभेदेन व्याहृत्यनभ्युपगमे च घटादिपर्यायाणामेकत्वमसङ्गात्, अतः स्वभावभेदेनियन्तत्वाद् अकारपर्यायता तेषामिति, तस्मात् स्व-परपर्याया-पेक्षया स्वत्वकारस्य सर्वद्वयपर्यायराशितुल्यधर्मताऽविरोध इति । न चेदद्युत्सृज्य, यत् आगमेऽप्युक्तम्—“जे एगं जाणति से सव्वं जाणति, जे सव्वं जाणति से एगं जाणति” [आचाराङ्गे थू० १ अ० ३ उ० ४ सू० १] चि । अस्यायमर्थः—य एकं वस्तुपलभते सर्वपर्यायैः स सर्वमुपलभते, कश्चैकं सर्वपर्यायैरुपलभते ? य एव सर्वसर्वोपलभत इति, अतः सर्वमजानानो नाकारं सर्वोपलभत इति, ततश्चास्मात् सूत्रात् सर्वमेव वस्तु सर्वद्वयपर्यायराशितुल्यधर्मकम्, इह त्वक्षराधिकारादक्षरमुक्तमिति, इतश्चैतदकाराद्येव प्रतिपत्तव्यम्, अस्मिन्नेवाधिकारे 'अक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटितः' इत्युपन्यस्तत्वात्, केवलस्य चाविभागसम्पूर्णत्वेन निकृष्टानन्तमायाम्भवात्, अत्रेरेप्यसङ्ख्येयमकृति-भेदमिन्नत्वात्, मनःपर्यायज्ञानस्याप्योद्यत ऋजु-विपुलभेदमिन्नत्वात्, पारिशेष्यादकारादिभ्रुताक्षरस्य निबन्धनज्ञान-स्यैवासावित्यलं प्रसङ्गेन । “से तं” इत्यादि निगमनद्वयमपि निगदसिद्धम् ॥

5

10

15

७८. से किं तं गमियं ? गमियं दिद्विवाओ । अगमियं कालितं सुयं । से तं गमियं । से तं अगमियं ११ । १२ ।

७८. से किं तमित्यादि । अथ किं तद् गमिकम् ? । इहाऽऽदि-अध्या-ऽवसानेषु किञ्चिद् विशेषतः पुनस्त-त्सूत्रोच्चारणलक्षणो गमः, यथाऽऽदिविशेषे तावत् “इह छज्जीवणिके”त्यादि, [दगवै० अ. ४ सू. १-३] अमा अस्य विद्यन्त इति “अत इनि ठनी” [पा. प. २. १२५] इति गमिकम् । इदं च प्रायोऽत्या दृष्टिवादे, तस्यैव गमवद्बुलत्वात् । अगमिकं तु प्रायो गाथाद्यसमानग्रन्थत्वात् कालिकश्रुतमाचारादि । “से तं”मित्यादि निगमनद्वयं कण्ठ्यम् ॥

20

७९. अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—अंगपविट्टं अंगवाहिरं च ।

७९. तं समासतो दुविहं पल्लवं “तद्” गमिका-ऽगमिकं अथवा ‘तद्’ ओद्युतमर्हेदुपदेशानुसारि ‘समासतः’ सङ्क्षेपेण द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अङ्गमविट्टं अङ्गवाहं च । अत्राह—द्वैमेव चतुर्दशभेदोद्देशाधिकारे अङ्गमविट्टं च अङ्गवाहं चेत्युपन्यस्तम्, किमर्थं पुनः ‘तद् समासतः’ इत्याद्युपन्यासेन तदेवोद्दिश्यते ? इति, अत्रोच्यते, 25 सर्वभेदानामेवाङ्गा-ऽनङ्गमविट्टभेदद्वयान्तर्भावित्वात्प्राप्तमिति तत्त्वेन च प्राधान्यव्यापनार्थमिति । तत्र—

पाददुयं २ जंघो २ रू २ गातदुयं च २ दो य बाहूओ २ ।

गीवा १ सिरं च १ पुरिसो बारसंओ म्पयविसिद्धो ॥१॥ []

श्रुतपुरुषस्याङ्गेषु प्रविष्टम्, अङ्गभावव्यवस्थितमित्यर्थः । अथवा—

गणधरकयमंगगयं जं कत वेरेहिं बाहिरं तं तु ।

नियतं वंगपविट्टं अणिययसुय बाहिरं मणियं ॥१॥ []

30

तत्रान्तरवक्तव्यत्वाद् अङ्गवाहमधिकृत्य प्रभक्षत्रमाह—

८०. से किं तं अंगबाहिरं ? अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-आवस्सगं च आवस्सगवइरित्तं च ।

८०. से किं तमित्यादि । अथ किं तदङ्गबाह्यम् ? । श्रुतपुरुषाद् व्यतिरिक्तं अङ्गबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आवश्यकं च आवश्यकव्यतिरिक्तं च ॥

5 ८१. से किं तं आवस्सगं ? आवस्सगं छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-सामायियं १ चउवीसत्थओ २ वंदणयं ३ पडिक्कमणं ४ काउस्सग्गो ५ पच्चक्ख्वाणं ६ । से त्तं आवस्सयं ।

८१. से किं तमित्यादि । अथ किं तदावश्यकम् ? आवश्यकक्रियानुष्ठानादावश्यकम्, गुणानां वा आ-अभि-विधिना कथ्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकं षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-सामायिकमित्यादि ।

सावज्जजोगविरिती १ उक्किरण २ गुणवयो पडिव्वी ३ ।

10 खलियस्स णिंदणा ४ णणनिगिच्छ ५ गुणधारणा ६ च्चेव ॥१॥ [अनुयोग. पत्रं ४३-१]

अधिकारगाथा । एतदनुसारेण आवश्यकपिण्डार्थो वक्तव्यः । “से त”मित्यादि तदेतदावश्यकम् ॥

८२. से किं तं आवस्सयवइरित्तं ? आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-कालियं च उक्कालियं च ।

८२. से किं तमित्यादि । अथ किं तदावश्यकव्यतिरिक्तम् ? । आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, 15 तद्यथा-कालिकं चोत्कालिकं च । यदिह द्विवस-निशिमथम-पश्चिमपौरुपीद्वय एव पठ्यते तत् कालेन निर्दृष्टं कालिकम् । यत् पुनः कालवेलावर्जं पठ्यते तदुत्कालिकम् ॥ तत्राल्पतरक्तव्यलादुत्कालिकमधिकृत्य प्रश्नवत्माह—

८३. से किं तं उक्कालियं ? उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा-दसवेयालियं १ कणियाकणियं २ चुलकप्पसुत्तं ३ महाकप्पसुत्तं ४ ओवाइयं ५ रायपसेणियं ६ जीवाभिगमो ७ पण्णवणा ८ महापण्णवणा ९ पमायप्पमादं १० नंदी ११ अणुओगदाराइं १२ देविंदित्यओ 20 १३ तंदुलवेयालियं १४ चंदावेज्झयं १५ सूरपण्णती १६ पोरिसिमंडलं १७ मंडलपवेसो १८ विज्जाचरणविणिच्छओ १९ गणिविज्जा २० झाणविभत्ती २१ मरणविभत्ती २२ आयवि-सोही २३ वीयरायसुत्तं २४ संलेहणामुत्तं २५ विहारकप्पो २६ चरणविही २७ आउरयच्चक्ख्वाणं २८ महापच्चक्ख्वाणं २९ । से त्तं उक्कालियं ।

८३. से किं तमित्यादि । अथ किं तदुत्कालिकम् ? । उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-दशवैकालिकं 25 मतीतम् १ । कल्पा-ऽकल्पप्रतिपादकं कल्पाकल्पम् २ । तथा कल्पनं कल्पः-स्थविरकल्पादिः, तत्प्रतिपादकं श्रुतं कल्पश्रुतम्, तत् पुनर्दिग्भेदम्-चुल्लकल्पसुत्तं महाकल्पसुत्तं, एकमल्पग्रन्थमल्पार्थं च, द्वितीयं महाग्रन्थं महार्थं च ३ । ४ । शेषभेदाः माथो निगदसिद्धस्तथापि लेशत्रतोऽप्रसिद्धतरान् व्याख्यास्यामः-जीवादीनां प्रज्ञापनं प्रज्ञापना ८ । बृहत्तरा महाप्रज्ञापना ९ । प्रमादा-ऽप्रमादस्वरूप-भेद-फल-विपाक-प्रतिपादकमध्ययनं प्रमादाप्रमादम् । प्रमा-

इत्स्वरूपं महाकर्मन्धनमभवाविध्यातदुःखानलञ्चालाकलापपरीतमशेषमेव संसारवाससृष्टं पश्यंस्तन्मध्यवर्त्यपि सति तन्निर्गमनोपाये वीतरागमणीतत्परमचिन्तामणौ यतो विचित्रकर्मोद्भयसाचिष्यजनितात् परिणामविशेषादपश्यन्निभ तद्भयमविगणय्य विशिष्टपरलोकक्रियाविशुद्धं एवाऽऽस्ते सत्त्वः स खलु प्रमाद इति । तद्वेदाः मद्यादयः, तत्कारणत्वात् । उक्तं च—

मज्जं विसय कसाया णिहा विगहा य पंचमी भणिया ।

एए पंच पमाया जीवं पाडंति संसारे ॥१॥ []

5

एतस्य च पञ्चप्रकारस्यापि प्रमादस्य फलविपाको दारुणः । उक्तं च—

श्रेयो विषम्युपभोक्तुं क्षमं भवेत् क्रीडितुं हुताशेन । संसारबन्धनगतैर्न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम् ॥१॥

अस्यामेव हि जातौ नरमूढहत्याद विषं हुताशो वा । आसेवितः प्रमादो हन्याजन्मान्तरशतानि ॥२॥

यश्च प्रयान्ति पुरुषाः स्वर्गं, यश्च प्रयान्ति विनिपातम् । तत्र निमित्तमनार्थः प्रमाद इति निश्चितमिदं मे ॥३॥ 10

संसारबन्धनगतो जाति-जरा-व्याधि-भरणदुःखार्चः । यन्मोद्विजने सत्त्वः स ऋपराधः प्रमादस्य ॥४॥

आज्ञाप्यते यदव्ययः तुल्योदर-पाणि-पाद-वदनेन । कर्म च करोति बहुविधमेतदपि फलं प्रमादस्य ॥५॥

इह हि ममचमनसः सोन्मादवदनिष्टतेन्द्रियाश्रयलाः । यत् कृत्यं तदकृत्वा सततमकार्येण्विपतन्ति ॥६॥

तेषामविपतितानामुद्भ्रान्तानां प्रमत्तहृदयानाम् । वर्द्धन्ते एव दोषाः वनतरव इवाम्बुसेकेन ॥७॥

दृष्ट्वाऽप्यालोकं नैव विश्रम्भितव्यं, तीरं नीताऽपि भ्राम्यते वायुना नौः ।

15

लब्ध्वा वैराग्यं भ्रष्टयोगः प्रमादाश्चिन्तं व्यावृत्तो ब्रह्मदत्तो नरेशः ॥८॥ [] इत्यादि ।

एवं प्रतिपक्षद्वारेणामादस्वरूपादयो वाच्या इति १० । “नंदी”त्यादि सुगमम् । सूर्यप्रज्ञसिः सूर्यचरित-प्रज्ञापनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा सूर्यप्रज्ञसिः १६ । पौरुषीमण्डलं पुरुषः—शुद्धः शरीरं वा, तस्मात्तुल्यपक्षा पौरुषी । इयमत्र भावना—यदा सर्वस्य चस्तुनः स्वप्रमाणा छायोपजायते तदा पौरुषीति, एतच्च पौरुषीमानं उत्तरायणान्ते दक्षिणायानादौ चैकं दिनं भवति, तत ऊर्ध्वमङ्गुलस्याप्यावेकषष्टिभागो दक्षिणायने वर्द्धन्ते उत्तरायणे च ह्रसन्तीति, एवं यत्र पौरुषी मण्डले मण्डलेऽन्याऽन्या प्रतिपाद्यते तदध्ययनं पौरुषीमण्डलम् १७ । मण्डलप्रवेशः यत्र हि चन्द्र-सूर्ययोर्दक्षिणोत्तरेषु मण्डलेषु मण्डलान्मण्डलप्रवेशो व्यावर्ण्यते तदध्ययनं मण्डलप्रवेश इति १८ । विद्या-चरणविनिश्चयः विद्येति—ज्ञानम्, तच्च दर्शनसहचरितम्, अन्यथा ज्ञानाभावात्, चरणं—चारित्र्यम्, एतेषां फल-विनिश्चयप्रतिपादको ग्रन्थः विद्याचरणविनिश्चय इति १९ । ‘गणिविद्या’ गुणगणोऽस्यास्तीति गणी, स चाऽऽचार्यः, तस्य विद्या—ज्ञानं गणिविद्या, तत्राविशेषेऽप्ययं विशेषः—

25

जोतिस-णिमित्तपाणं गणिणो पंचात्रयादिकञ्जेसु ।

उवशुजइ तिहि-करणादिजाणणइअहा दोसो ॥१॥ []

] २० ।

ध्यानविभक्तिः ध्यानानि—आर्चयानादीनि, तेषां विभजनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा ध्यानविभक्तिः २१ । भरणानि—भाष्यत्यागलक्षणानि अनुसमयादीनि वर्तन्ते, यथोक्तम्—“अधुसमयं संतरं चे”त्यादि, एतेषां विभजनं यस्यां सा भरणविभक्तिः २२ । आत्मनः—जीवस्याऽऽलोचना-भाष्यविचमतिपत्स्यादिप्रकारेण विभुद्धिः—कर्मविगमलक्षणा 30

प्रतिपाद्यते यत्र तद्ध्ययनं आत्मविशुद्धिः २३ । वीतरागश्रुतं सरागज्यपोहेन वीतरागस्वरूपं प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तद् वीतरागश्रुतम् २४ । संलेखनाश्रुतं द्रव्य-भावसंलेखना प्रतिपाद्यते यत्र तद्ध्ययनं संलेखनाश्रुतम् । तत्र द्रव्यसंलेखनोत्सर्गतः—

चत्वारि विचिताहं विगतीणिज्जूहियाहं चत्वारि । संरच्छरे य दोषि उ एगंवरियं च आयामं ॥१॥

- ५ पातिविगिद्धो य तवो छम्मासे परिमियं च आयामं । अन्ने वि य छम्मासे होति विगिद्धं तवोकम्मं ॥२॥
वासं कोडीसहियं आयामं काउमाणुपुक्वीए । गिरिकंदरं तु गंतुं पादवगमणं अहं करोति ॥३॥

[]

- भावसंलेखना तु क्रोधादिकापायप्रतिपक्षाभ्यास इति २५ । विहारकल्पः विहारेण विहारः, तस्य कल्पः—
व्यवस्था स्थविरकल्यादीनामुच्यते यत्र ग्रन्थेऽसौ विहारकल्पः २६ । चरणविधिः चरणं—प्रतादि, तथा चोक्तम्—
१० “वयं समणधम्मं” गाथा [ओयवि. भा. गा. २], एतत्प्रतिपादकमध्ययनं चरणविधिः २७ । आतुरप्रत्याख्यानं आतुरः—क्रियातीतो म्लानः, तस्य प्रत्याख्यानम् । एतस्य विधी—गित्याणं क्रियातीतं गाउं गीयथा पबक्कावेति दिणे दिणे दब्बासं करोन्ता सन्तः, अंते य सत्त्वदब्बदायणयाए भत्ते वेरमं जणेत्ता भत्ते णित्तहम्म भवचरिमपबक्कावाणं कारेति, एयं जत्थ अज्झयणे सवित्थरं वणिज्जति तदज्झयणं आउरपबक्कावाणं २८ । महाप्रत्याख्यानं महच्च तत् प्रत्याख्यानं चेति समासः, एसित्थ भावत्थो—थेरकप्पेण जिणकप्पेण वा विदरेत्ता अंते २९ । थेरकप्पिया वारस वासे संलेहं करेत्ता जिणकप्पिया पुण विहारेणेव मंकीटा तहा वि जहाजुत्तं संलेहं करेत्ता निच्चायातं सचेत्ता चेव भवचरिमं पबक्कवंति, एयं सवित्थरं जत्थज्झयणे वणिज्जत्तं तमज्झयणं महापबक्कावाणं २९ । एयाणि अज्झयणाणि जहा अभिघाणत्याणि तहा वणिण्याणि । “से त”मित्यादि निगमनम्, तदेतदुत्कालिकम् । उपलक्षणं चैतदित्युक्तमुत्कालिकम् ॥

८४. से किं तं कालियं ? कालियं अणेगविहं पणत्तं, तं जहा—उत्तरज्झयणाहं ?

- २० दसाओ २ कप्पो ३ ववहारो ४ णिमोहं ५ महाणिसीहं ६ इमिभासियाहं ७ जंबुद्धीवपणत्ती
८ दीवसागरपणत्ती ९ चंदपणत्ती १० खुड्डियाविमाणपविभत्ती ११ महल्लियाविमाणपविभत्ती
१२ अंगचूलिया १३ वगचूलिया १४ विवाहचूलिया १५ अरुणोववाए १६ वरुणोववाए १७
गरुलोववाए १८ धरणोववाए १९ वेसमणोववाए २० देविदोववाए २१ वेल्धरोववाए २२
उट्टाणसुयं २३ समुट्टाणसुयं २४ नागपरियावणियाओ २५ निरयावलियाओ २६ कप्पि-
२५ याओ २७ कप्पवडिसियाओ २८ पुप्फियाओ २९ पुप्फचूलियाओ ३० वण्हीदसाओ ३१ ।

८४. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् कालियम् ? कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—उत्तराध्ययनानि उत्तराणि—प्रधानानि रूढ्या चोत्तराध्ययनानि । दशोत्यादि प्रायो निगदसिद्धम् । निशीथवद् निशीथम्, इदं मतीतमेव ५ । अस्मादेव ग्रन्था-ऽर्थोभ्यां महत्तरं महानिशीथम् ६ । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ८ । इहाऽऽवलिकाप्रविष्टे-
तरविमानप्रविभजनं यत्राध्ययने तद् विमानप्रविभक्तिः, तत्रैकमत्यग्रन्थार्थं तथाऽन्यन्महाग्रन्थार्थम् अतः
३० क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्तिर्महतीविमानप्रविभक्तिरिति ११ । १२ । अङ्गचूलिका अङ्गस्य—आचारादे-

शूलिका अन्नचूलिका, यथाऽऽचारस्यानेकविधा । इहोक्ताऽनुकार्यसङ्ग्रहात्मिका चूलिका १३ । वर्गचूलिका इह वर्गः—अध्ययनादिसमूहः, यथाऽन्तकृदशास्त्रवृत्तं वर्गा इत्यादि, तेषां चूलिका वर्गचूलिका १४ । व्याख्या—भगवतीति, अस्याशूलिका व्याख्याचूलिका १५ । अरुणोपपानः इहाराणो नाम देवस्तत्समयनिबद्धो ग्रन्थस्तदुपपातद्वेदः अरुणोपपातः, जाहे तमज्जयणं उवउत्ते समाणे समणे परियट्टेति ताहे से अरुणे देवे समयनिबद्धत्तणओ चल्यासणे समसुभंमंतलयणे पउत्तावही वियाणियट्टे हट्टपहट्टे चल-चवलकुंडलधरे दिव्वाए ज़तीए दिव्वाए विभूईए दिव्वाए गतीए जेणामेव से भगवं समणे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छिता भक्तिभरणयवयणे विमुक्कवरकुमुमवासे ओवयति, ओवतिता ताहे से समणस्स पुरतो ठिच्चा अंतद्विए कयंजल्लिए उवउत्ते संवेगविमुज्जमाणज्जवसाणे सुणेमाणे चिट्ठइ, समचे य भणइ—सुसज्जाइयं सुसज्जाइयं, वरं वरेहि चि, ततो से इहलोगणिप्पिवासे समतिण-मणि-मुत्ता-लेट्टु-कंचणे सिद्धिवधूणिन्मराणुरायचित्ते समणे पडिभणइ-ण मे वरेण अट्टो चि, ततो से अरुणे देवे अधिगततरजातसंवेगे पयाहिणं करेत्ता वंदिता णमंसित्ता पडिगच्छइ १६ । एवं वरुणोववादादिमु वि भाणि-यव्वं । उत्थानश्रुतं अध्ययनम्, तं पुण सिंगणाइयकज्जेसु जस्सेगकुलस्स वा गामस्स वा जाव रायहाणीए वा स चेव समणे कयसंक्रप्पे आयुरुत्ते अप्ससन्ने अप्ससन्नलेसे विसमासणत्थे उवउत्ते समाणे उट्टाणमुअज्जयणं परियट्टेति एक्कं दो तिप्पि वा वारे, ताहे से कुले वा गामे वा जाव रायहाणी वा ओहयमणसंक्रप्पे विलव्वंते दुयं दुयं पहावंते उट्टेति, उव्वसति चि वुच्चं भवति २३ । तथा समुत्थानश्रुतं अध्ययनम्, तं पुण समचे कज्जे तस्सेव कुलस्स वा गामस्स वा जाव रायहाणीए वा स चेव समणे कयसंक्रप्पे तुट्टे पसणं पसणलेसे समनुहासणत्थे उवउत्ते समाणे समुट्टाणमुत्तज्जयणं परियट्टेति एक्कं दो तिप्पि वा वारे, ताहे से कुले वा जाव रायहाणी वा पट्टचित्ते पसन्नमणे कलयलं कुणमाणे मंदाए गतीए सल्लय्यं आगच्छइ, आगच्छिता समुट्टेति, आवासेति चि वुच्चं भवतीत्यर्थः, एवं कयसंक्रप्पस्स परियट्टेत्तस्स पुव्वट्ठितं समुट्टेति २४ । णागपरियावणियाओ नागपरिज्ञा, नाग चि—नागकुमाराः तस्समयाणिवद्धमज्जयणं, से जया समणे उवउत्ते परियट्टेति तदाऽकयसंक्रप्पस्स वि ते णागकुमारा तत्तत्था चेव तं समणं परियाणंति वंदंति नमंसंति बहुमाणं च करेति, सिंगणादियकज्जेसु य वरदा भवन्तीत्यर्थः २५ । गिर-यावलिआओ जामु आवलियपविट्टेत्ते य गिरया तग्गामिणो य णर-तिरिया पसंगओ वन्निज्जंति २६ । कप्पियाउ चि सौधर्मादिकल्पगतवक्तव्यतागोचरा ग्रन्थपद्वत्तयः कल्पिका उच्यन्ते २७ । एवं कल्पावतंसिकाः सोधम्मसीसाणकप्पेसु जाणि कप्पविमाणणि ताणि कप्पवडिसियाणि, तेसु य देवीओ जा जेण तवो-विसेसेण उववन्ना इह्ठिद च पत्ता एवं वन्निज्जंति जामु ताओ कप्पवडेंसियाओ वुच्चंति २८ । तथा पुप्फियाउ चि इह यामु ग्रन्थपद्वत्तिषु गृहवाससुक्कुलनपरित्यागेन प्राणिनः संयमभावपुष्पिताः सुखिताः, पुनः संयमभावपरित्यागानो दुःखावाप्तिमुक्कुलित्ताः, पुनस्तत्परित्यागादेव पुष्पिताः प्रतिपाद्यन्ते ताः पुष्पिता उच्यन्ते २९ । अधिकृतार्थविशेषप्रतिपादिकास्तु पुष्पचूला इति ३० । तथा अन्धकवृष्णिनराधिपवक्तव्यतावियया अन्धकवृष्णिदशा उच्यन्ते ३१ ॥

८५. एवमाइयाइं चउरासीतीपइण्णगसहस्साइं भगवतो अरहओ सिग्गिसहस्स आइतित्थयरस्स, तहा संखेज्जाणि पइण्णगसहस्साणि मज्झिमगाणं जिणवराणं, चोइस पइण्णगसहस्साणि भगवओ वद्धमाणसामिस्स । अहवा जस्स जत्तिया सिस्सा उप्पत्तियाए वेणत्तियाए कम्मयाए पारिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेया तस्स तत्तियाइं पइण्णगसहस्साइं, पत्तेय-
श्री० १०

बुद्धा वि तन्निया चेव । से सं कालियं । से तं आवस्सयवहरितं । से तं अंगणपविट्ठं ।

८५. एवमाहयाइ इत्यादि । 'एवमादीनि' सर्वथा क्रियन्त्याख्यास्यन्ते ? चतुरशीतिप्रकीर्णकसहस्राणि भगवतोऽर्हतः श्रीरूपभस्याऽऽद्वितीयकरस्य, तथा सहस्रक्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमानां—अजितादीनां पार्श्वपर्यन्तानां जिनवराणाम्, तीर्थकराणामित्यर्थः; एतानि च यावन्ति तानि प्रथमानुयोगतोऽवसेयानि, तथा चतुर्दश प्रकीर्णकसहस्राणि अर्हतः, कस्य ?, बर्धमानस्वामिनः । अयमत्र भावार्थः—भगवतो उमहस्स चउरासीति समणसाहस्सीतो होत्था, पयभगज्झयणाणि य सच्चवाणि कालिय-उकालियाणं चउरासीतिसहस्साणि । कयम् ? यतो ताणि चउरासीतिसमणसहस्साणि अरहंतमग्गोवदिट्ठे जं सुयमणुसरिता किचि णिज्जहंतं ताणि सन्वाणि पतिभगणाणि, अहवा सुयमणुसारतो अप्पणो वयणकोसल्लेण जं धम्मदेसणादिमु भासंते तं सच्चं पदभगं । जम्हा अणंतगम-पज्जवं सुत्तं दिट्ठं, तं च वयणं णियमा अन्नयरगमाणुवाती, तम्हा तं पदभगं । एवं चउरासीतिपदभगसहस्साणि भवंतीत्यर्थः । एएण विहिणा मज्झिमतिथ्यराणं संखेज्जाइं पदभगसहस्साणि । समणस्स वि भगवतो महावीरस्स जम्हा चोदस समणसाहस्सीओ उकोसिया समणसंपया तम्हा चोदस पदभगज्झयणसहस्साणि भवंति । एत्थ पुण एंगं जायरिया एवं पञ्चविति—किल एतं चुलसीइसहसादिगं उसनादिजिणवराणं समणपरिमाणं पहाणयुत्तणिज्जहणसमत्थसमणे पडुच्च भणियं, सामभसमणा पुण बहुतरा तकाले । अन्ने भणति—उसमादीणं भवत्थाणं संचराणं एतं चुलसीतिसहसादिगं पमाणं, पवाइएण पुणो एगतित्थेमु बहुगा दट्ठव्वा, तत्थ जे पमाणभूयमुत्तणिज्जहणसमत्था अन्नकालिमा वि ते एत्थ अट्ठिया, एए ते मुप्पसिद्धपदभगणिज्जह्वा चोव दट्ठव्वा । यत आह—“अथेव”त्यादि, ‘अथना’ इति प्रकारान्तर-प्रदर्शनम्, यस्य ऋषभादेस्तीर्थकृतः यावन्तः शिष्या औत्पत्तिकया वैनयिकया कर्मजया पारिणामिकया च चतुर्विधया बुद्ध्या उपपेताः—समन्विताः तस्य तावन्त्येव प्रकीर्णकसहस्राणि, प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्त एव । अत्रैके व्याचक्षते—किल प्रत्येकबुद्धदृष्टान्थेव तान्यवगन्तव्यानि, प्रकीर्णकप्रमाणेन प्रत्येकबुद्धप्रमाणप्रतिपादनात् । स्यादेतत्, प्रत्येकबुद्धानां शिष्यभावो विरुध्यत इति, एतदप्यसत्, तेषां प्रत्येकबुद्धत्वादाचार्यमैवाधिकृत्य शिष्यभावस्य निषिद्धत्वात्, तीर्थकरप्रणीतज्ञासनप्रतिपक्षत्वेन तु तच्छिष्यभावो न विरुध्यत इति । अन्ये पुनरित्यभिमिदधति—सामान्येनेह प्रकीर्णकैस्तुल्यत्वात् प्रत्येकबुद्धानामत्राभिधानम्, न तु नियोगतः प्रत्येकबुद्धदृष्टानि प्रकीर्णकानीत्यलं विस्तरेण । “से त”मित्यादि, तदेतत् कालिकम्, तदेतदावश्यक्यतिरिक्तम्, तदेतदनङ्गप्रविष्टमिति ॥

८६. से किं तं अंगणपविट्ठं ? अंगणपविट्ठं दुवालसविहं पणत्तं, तं जहा—आयारो १ सूय-गडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ वियाहपण्णती ५ णायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगह-दसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइं १० विवागसुत्तं ११ दिट्ठिवाओ १२ ।

८६. से किं तमित्यादि । अयं किं तदङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधं महम्म, तद्यथा—आचारः सूत्रकृतमित्यादि ॥

८७. से किं तं आयारे ? आयारेणं समणाणं णिग्गंथाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइय-सिक्खा-भासा-अभासा-चरण-करण-जाया-माया-वित्तीओ आघविज्जति । से समासओ पंच-विट्ठे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे १ दंसणायारे २ चरित्तायारे ३ तवायारे ४ वीरियायारे ५ । आयारे णं परिता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा,

संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयस्संथा, पणुवीसं अज्झयणा, पंचासीती उद्देसणकाला, पंचासीती समुद्देसणकाला, अट्ठा-स पयसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अस्सरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा । सासत-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्ण-विज्जंति पस्सुविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवंनाया, 5 एवंविण्णया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ । से तं आयारे १ ।

८७. से किं तमित्यादि । अथ किं तदाचारवस्तु ? यद्वा अथ कोऽयमाचारः ? आचरणमाचारः, आचर्यत इति वा आचारः, शिष्टाचरितो ज्ञानाद्यासेवनविधिरिति भावार्थः, तत्प्रतिपादको ग्रन्थोऽप्याचार एवोच्यते । अनेन चाऽऽचारेण करणभूतेन श्रमणानामाचारादि आख्यायत इति योगः । अथवा आचारे “ण”-मिति वाक्यालङ्कारे “श्रमणानां” प्राप्तिरूपितसद्भार्यानां “निर्ग्रन्थानां” बाह्या-ऽभ्यन्तरग्रन्थरहितानाम्, आह-श्रमणा 10 निर्ग्रन्था एव भवन्ति विशेषणं किमर्थम् ? उच्यते, गान्ध्यादिद्वयवच्छेदार्थम् । उक्तं च—“निर्गन्धं सक्तं तावस गेरुय आजीव पंचहा समणा ।” [पिण्डनि. गा. ४४५] तत्राऽऽचारः—ज्ञानाद्यनेकभेदभिन्नाः, गोचरः—भिन्नाग्रहणविशिलक्षणः, विनयः—ज्ञानादि, वैनायिकं—फलं कर्मसंयादि, शिक्षा—ग्रहणा-ऽऽसेवनाभेदभिन्ना, विनेयशिक्षेत्व्ये, विनेयः—शिष्यः, भाषा—सत्या १ असत्यामृषा २ च, अभाषा—असत्या १ सत्यामृषा २ च, चरणं—व्रतादि, करणं—पिण्डविशुद्ध्यादि, “जाता-भाता-विचीओ” चि यात्रा-संयमयात्रा, मात्रा—तदर्थमेवाहारमात्रा, वर्त्तने वृत्तिः त्रिवि- 15 धैरभिग्रहविशेषैरिति, आचारश्च गोचरश्चेत्यादि द्वन्द्वः क्रियते, तत्रश्चाऽऽचार-गोचर-विनय-वैनायिक-शिक्षा-भाषा-ऽभाषा-चरण-करण-यात्रा-मात्रा-वृत्तय आख्यायन्ते । इह च यत्र क्वचिदन्यतरोपादाने अन्यतरगतार्थाभिधानं तत् सर्वं तत्प्राधान्यव्यापनार्थमेवावसेयम् । “से समासतो” इत्यादि, ‘सः’ आचारः ‘समासतः’ सङ्क्षेपतः पञ्चविधः प्रकृतः, तद्यथा—ज्ञानाचार इत्यादि । तत्र ज्ञानाचारः—

काले १ विणाए २ बहुमाणे ३ उवहाणे ४ तथा अनिण्हवणे ४ ।

वंजण ६ अत्थ ७ तदुभए ८ अट्ठविहो णाणमायारो ॥१॥ [दशवै. नि. गा. १८६]

दर्शनाचारः—

णिस्संकिंय १ णिकंखिय २ णिव्वित्तिगिच्छ ३ अमूहदिट्ठी ४ य ।

उववूह ५ थिरीकरणे ६ वच्छल्ल ७ पमावणे ८ अट्ठ ॥२॥ [दशवै. नि. गा. १८४]

अतिसेस १ इड्ढि २ आयरिय ३ वादि ४ धम्मकधि ५ खममा ६ जेमिची ७ ।

विज्जा राया-गणसम्मया ८ य तित्थं पभावेंति ॥३॥ [निशीधमा. गा. ३३]

चारित्र्याचारः—

पणिहाणजोगजुत्तो पंचहिं समितीहिं तिहि य गुत्तीहि ।

एस चरित्तायारो अट्ठविहो होति नायव्वो ॥४॥ [दशवै. नि. गा. १८७]

तपाचारः—

दारसविहम्मि वि तवे सच्चिन्तर-बाहिरे जिणुवदिट्ठे ।

अगिलाए अणाजीषी णायव्वो सो तवायारो ॥५॥ [दशवै. नि. गा. १८८]

वीर्याचारः—

अणिगृहियबल-विरिओ परकमइ जो अहुत्तमाउतो ।

जुंजति य जहायामं णायववो वीरियायारो ॥६॥

[दृग्वै. नि. गा. १८९]

- “आयारे णं परिचा वायणा” आचारे “ण”मिति वाक्यालङ्कारे ‘परित्ता’ सङ्ख्येयाः, आद्यन्तोपलब्धे-
 5 रन्नता न भवन्तीत्यर्थः; काः ?, ‘वाचनाः’ सूत्रा-ऽर्थप्रदानलक्षणाः, अवसर्पिणीकालं वा प्रतीत्य “परित्” चि ।
 सङ्ख्येयानि ‘अनुयोगद्वाराणि’ उपक्रमादीनि, अध्ययनानामेव सङ्ख्येयत्वात् प्रज्ञापकवचनगोचरत्वात् । “संखे-
 ज्जा वेदा” ‘वेदाः’ छन्दोविशेषाः । “संखेज्जा सिलोगा” ‘श्लोकाः’ प्रतीता अनुष्टुप्छन्दसा । “संखेज्जाओ
 णिज्जुत्तीओ” निर्युक्तानां युक्तिनिर्युक्तयुक्तिरिति वाच्ये युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरिति, एताश्च निक्षेपनिर्युक्त्याद्याः
 सङ्ख्येया इति । “संखेज्जाओ पडिवत्तीओ” द्रव्यादिपदार्थाभ्युपगमाः प्रतिपत्तयः, प्रतिमाद्यभिग्रहविशेषा वा ।
 10 “से ण”मित्यादि ‘सः’ आचारः “ण”मिति वाक्यालङ्कारे ‘अज्ञार्थतया’ अज्ञार्थत्वेन, अर्थग्रहणं परलोकचिन्तां
 प्रति सूत्रार्थस्य गरीयस्त्वल्पापनार्थम्, सूत्रार्थोभयरूपो वाऽयमिति ख्यापनार्थम्, प्रथममत्रम्, स्थापनामधिकृ-
 त्वाऽऽयमङ्गमित्थर्थः । द्वौ ‘श्रुतस्कन्धौ’ अध्ययनसमुदायलक्षणौ । पञ्चविंशतिरध्ययनानि, तद्यथा—

सत्यपरिन्ना १ लोमविजयो य २ सीतोसणिज्ज ३ सम्मत्तं ४ ।

आवंति ५ धुअ ६ विमोहो ७ महापरिन्नोऽवहाणसुयं ९ ॥१॥ पढमो सुयक्खंधो ॥

- 15 पिंडेसण १ सेज्जि२रिया ३ भासज्जाया य ४ वत्थ ५ पाएसा ६ ।

उमाहपडिमा ७ सत्त य सत्तिकया १४ भावण १६ विमुत्ती १६ ॥२॥

[आवत्यकसङ्ग्रहणी. हारि. वृत्ति पत्र ६६०-१]

- एवमेतानि निग्रीथवर्जानि पञ्चविंशतिरध्ययनानि । तथा पञ्चाशीत्युद्देशनकालाः, कथम् ? उच्यते, अङ्गस्य
 श्रुतस्कन्धस्याध्ययनस्योद्देशकस्य च एतेषां चतुर्णामप्येक एव, एवं सत्यपरिन्नाए सत्त उद्देशणकाला ७, लोम-
 20 विजयस्स छ फा, सीओसणिज्जस्स चउरो ट्ठक, सम्मत्तस्स चउरो ट्ठक, लोममारस्स छ ष्ठी, धुत्तस्स पंच ना,
 विमोहज्जयणस्स अट्ठ इ, महापरिन्नाए सत्त ग्र, उवहाणसुत्तस्स चउरो ट्ठक, पिंडेसणाए एकारस्स ११, सेज्जाए
 तित्ति ३, इरियाए तिप्पि ३, भासज्जाए दोन्नि २, क्येसणाए दोन्नि २, पाएसणाए दोन्नि २, उमाहपडिमाए
 दोन्नि २, सत्तिकयाए सत्त ७, भावणाए एको १, विमोत्तीए एको १, एवमेए संपिडिया पंचासीई भवन्ति ।
 एत्थ संगहगाहा—

- 25 सत्त य छ चउरो छ पंच अट्ठेव सत्त चउरो य । एकार ति ति य दो दो दो दो सत्तेक एको य ॥१॥

- एवं समुद्देशणकाला वि भाणियव्वा । अष्टादश पदसहस्राणि पदत्रयेण, इह यत्रार्थोपलब्धिस्तत् पदम् । चोदक
 आह—जदि दो सुत्तक्खंधा पणुवीसं अज्झयणाणि अट्टारस्स पदसहस्राणि पदमेणं भवन्ति तो जं भणियं “णव वंभ-
 चेरमइओ अट्टारसपदसहसिसओ वेओ ।” [आचा. नि. गा. ११] चि एयं विरुज्झइ ? आचार्य आह—णणु एत्थ वि
 भणियं “इवइ य सपंचचूलो बहु बहुअयरो पयमेणं ॥” [आचा. नि. गा. ११] ति, इह सुत्तालावयपदेहिं सहितो
 30 बहु बहुयरो य वक्तव्य इत्यर्थः, अथवा दो सुयक्खंधा पणुवीसं अज्झयणाणि एयं आचार्यसहितस्स आचारस्स पमाणं
 भणियं, अट्टारस्स पयसहस्राणि पुण पदमसुयक्खंधस्स णववंभचेरमतियस्स पमाणं, विचित्तयवद्दाणि य सुत्ताणि,
 गुरुवदेसतो तेसि अत्यो जाणियव्वो । “संखेज्जा अक्खरा” सङ्ख्येयान्यभ्राराणि, वेदादीनां सङ्ख्येयत्वात् ।

“अणंता गमा” इह गमा अर्थगमा सूत्रन्ते, अर्थपरिच्छेदा इत्यर्थः, ते चानन्ताः, एकस्मादेव सूत्रात् तत्कदर्भ-
 विशिष्टानन्तधर्मात्मकवस्तुप्रतिपत्तेः । अन्ये तु व्याचक्षते—अभिधानाऽभिधेयवस्तो गमा इति, ते चानन्ताः, ते
 पुनरनेन विधिना अवसेयाः, तद्यथा—सुयं मे आउसं ! तेषां भगवया. आउसंतेषां भगवया, सुयं मे आउसंपदा,
 सुयं मे आउसं तर्हि, सुयं मे आउसं, आउसं सुयं मे, आयुयं मया, तं सुयं मया, आ तया सुयं मया, आ तर्हि
 सुयं मया आ, एवमादिभिर्न्यमानं किलानन्तगममिति । “अणंता पञ्चवा” स्व-परभेदभिन्नाः अप्ररार्थपर्याया 5
 इत्यर्थः । “परित्ता तसा” त्रस्यन्तीति “त्रसाः” द्वीन्द्रियादयस्ते च परित्ताः । “अणंता थावरा” वनस्पतिक्रयसहिताः
 परिगृह्यन्ते । “सामस्य-कड-णिबद्ध-णिकाइय” इति शाश्वता द्रव्यार्थतयाऽविच्छेदेन मट्टत्वेः, कृताः पर्यायार्थतया प्रति-
 समयमन्यत्वावाप्तेः, निबद्धाः सूत्र एव, निकविता निर्युक्ति-सङ्ग्रहणि-हेतूदाहरणादिभिः । “जिणपञ्चत्ता” जिनेः
 मङ्गत्ताः भावाः पदार्थाः “आघविज्जंती”त्यादि ध्रुवगण्डिका पूर्ववत् । साम्प्रतमाचाराङ्गप्रवृत्तफलप्रतिपादनायाऽऽह—
 “से एव”मित्यादि, “सः” इत्याचाराङ्गप्राहकोऽभिसम्बन्धयते, “एवंआय” इति अस्मिन् भावतः सम्यग्धीते सति 10
 एवमात्मा भवति, तदुक्तक्रियापरिणामात्माग्यतिरेकात् स एव भवतीत्यर्थः । एवं क्रियासारमेव ज्ञानमिति ख्या-
 पनार्थं क्रियापरिणाममभिधायानुना ज्ञानमधिकृत्याह—“एवंणाय” इति इदमधीत्य एवंज्ञाता भवति यथैवेहोक्तमिति ।
 “एवंविन्नाय” इति एवं विविधो विशिष्टो वा ज्ञाता विज्ञाता एवंविज्ञाता भवति, तन्त्रान्तरियज्ञातुभ्यः प्रधानतर
 इत्यर्थः । एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जतीत्यादि । निगमनवाक्यं भावितार्थमेव ॥

८८. से किं तं सूयगडे ? सूयगडेणं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोयाऽलोए 15
 सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाऽजीवा सूइज्जंति, ससमए सूइज्जइ,
 परसमए सूइज्जइ, ससमय-परसमए सूइज्जइ । सूयगडे णं आसीतस्स किरियावादिसयस्स,
 चउरामीईए अकिरियवादीणं, सत्तट्टीए अण्णाणियवादीणं, वचीसाए वेणइयवादीणं, तिण्हं
 तेसट्टाणं पावादुयसयाणं वूहं किच्चा ससमए णविज्जइ । सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा
 अणुओगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ 20
 पडिवत्तीओ । से णं अंगट्टयाए विइए अंगे, दो सुयक्कंधा, तेवीसं अज्जयणा, तेत्तीसं
 उद्देसणकारा, तेत्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पदसहस्साणि पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा,
 अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सामस्य-कड-णिबद्ध-णिकाइया
 जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उव-
 दंसिज्जंति । से एवंआया, एवंणया, एवंविण्णया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ । 25
 से तं सूयगडे २ ।

८८. से किं तं सूयगडे ? [“सूत्र सूचायाम्”] सूत्रनात् सूत्रम्, सूत्रेण कृतं सूत्रकृतं
 रूढयोच्यते । तत्र लोक्यते अनेन वाऽस्मिन् वा लोकः । सूत्र्यत इत्यादि निगदसिद्धे यावत् ‘आसीतस्स किरिया-
 चादिसतस्स’ अशीत्यधिकस्य क्रियावादिशतस्य व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यत इति योगः । एवं शेषपदेभ्यपि
 क्रिया योजनायेति । तत्र न कर्तारं विना क्रियासम्भव इति तामात्मसंभवायिर्नो वदन्ति ये तच्छीलान्ध ते 30

क्रियावादिनः । ते पुनरात्माद्यस्तित्वमतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेनाशीत्यधिकशतसङ्ख्या विज्ञेयाः—जीवा-ऽजीवा-
 ५ ऽऽभव-बन्ध-संवा-निर्गता-पुण्य-पाप-मोक्षारूपात् नव पदार्थान् विरक्त्य परिपाटया जीवपदार्थस्यापः स्व-परमेदाबु-
 पन्यसनीयां, तयोरथो नित्या-ऽनित्यभेदौ, तयोरप्यथः कालेश्वरा-ऽऽत्म-नियति-स्वभावभेदाः पञ्च न्यसनीयाः,
 पुनश्चैवं विकल्पाः कर्त्तव्याः—अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालत इत्येको विकल्पः । विकल्पार्थश्चायम्—विद्यते
 ५ स्वत्वात्मा स्वेन रूपेण नित्यश्च कालवादिनः । उक्तेनैवाभिलाषेन द्वितीयो विकल्प इधरकारगिनः, तृतीयो विकल्पः
 आत्मवादिनः “पुरुष एवेदं सर्वम्” [ऋग्वेदमं. ३० सू. ९०] इत्यादि, नियतिवादिनश्चतुर्थविकल्पः, पञ्चमविकल्पः
 स्वभाववादिनः । एवं स्वत इत्यजहता लब्धाः पञ्च विकल्पाः । परत इत्यनेनापि पञ्चैव लभ्यन्ते । नित्यत्वापरित्यागेन
 चैते दश विकल्पाः । एवमनित्यत्वेनापि दशैव, एते त्रिंशतिर्जीवपदार्थेन लब्धाः, अजीवादिष्वप्यष्टस्वेवमेव प्रतिपदं
 त्रिंशतिर्विकल्पानाम्, अतो त्रिंशतिर्नव गुणा शतमशीत्युत्तरं क्रियावादिनामिति ।

10 ‘चउरासीतेते अकिरियावादीणं’ चतुरशीतेरक्रियावादिनाम्, क्रिया पूर्ववत्, न हि कस्यचिदनवस्थितस्य
 पदार्थस्य क्रिया समास्ति, तद्भावे चावस्थितेरभावादित्येवंवादिनोऽक्रियावादिनः । तथा चाऽऽहुंके—

क्षणिकाः सर्वसंस्काराः, अस्थितानां कुतः क्रिया ? ।

भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥१॥ [] इत्यादि ।

एते चाऽऽत्मादिनास्तित्वमतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन चतुरशीतिर्द्रष्टव्याः—एतेषां हि पुण्या-ऽपुण्यविदग्धि-
 15 तपदार्थसत्कन्यासस्तथैव, जीवस्याथः स्व-परविकल्पभेदद्वयोपन्यासः, असच्चादात्मनो नित्या-ऽनित्यभेदौ न स्तः,
 कालादीनां तु पञ्चानां षष्ठी यच्छाब्द न्यस्यते, पश्चाद् विकल्पाभिलाषः—नास्ति जीवः स्वतः कालत इत्येको विकल्-
 पः, एवमीश्वरादिभिरपि यच्छाब्दसामैः, सर्वे च षड् विकल्पाः । तथा नास्ति जीवः परतः कालत इति षडेव
 विकल्पाः, एकत्र द्वादश, एवमजीवादिष्वपि षट्सु प्रतिपदं द्वादश विकल्पाः, एवं द्वादश सप्तगुणाश्चतुरशीति-
 विकल्पा नास्तिकानामिति ।

20 ‘सचद्वीए अन्नाणियवादीणं’ निसप्तषष्टिरज्ञानिकवादिनाम्, क्रिया प्राग्वत् । तत्र कुतिसतं ज्ञानमज्ञानं तदे-
 षामस्तीत्यज्ञानिकाः । नन्वेवं लघुत्वात् प्रक्रमस्य प्राग् बहुव्रीहिणा भवितव्यम् ततश्चाज्ञाना इति स्यात्, नैष दोषः,
 ज्ञानान्तरमेवाज्ञानम्, मिथ्यादर्शनसदृचरितत्वात्, ततश्च जातिशब्दत्वात् गौरस्वरत्वरूपमित्यादिवदज्ञानिकत्वमिति ।
 अथवा अज्ञानेन चरन्ति तत्प्रयोजना वा अज्ञानिकाः, असञ्चिन्त्यकृतवन्वैफल्यादिप्रतिपत्तिलक्षणाः । ते चाद्युनो-
 पायेन सप्तषष्टिर्ज्ञातव्याः—तत्र जीवादीन् नव पदार्थान् पूर्ववद् व्यनस्थाप्य पर्यन्ते चोत्पत्तिपुण्यस्याथः सप्त सदा-
 25 द्यः उपन्यसनीयाः, सत्त्वं ? असत्त्वं २ सदसत्त्वं ३ अवाच्यत्वं ४ सदाच्यत्वं ५ असदाच्यत्वं ६ सदसदाच्य-
 त्वमिति ७ च, एकैकस्य जीवादेः सप्त सप्त विकल्पाः, त एते नव सप्तकाः त्रिषष्टिः, उच्येन्तु चत्वार एवाद्या विक-
 ल्याः, तद्यथा—सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वं अवाच्यत्वं चेति, त्रिषष्टिमध्ये प्रसिद्धाः सप्तषष्टिर्भवन्ति । को जानाति जीवः
 सन् ? इत्येको विकल्पः, ज्ञातेन वा किम् ?, एवं असदाद्योऽपि वाच्याः, उत्पत्तिरपि किं सतोऽसतः सदसतोऽ-
 वाच्यस्य ? इति को वा जानातीत्येतत् ?, न कश्चिदपीत्यभिप्रायः ।

30 “वर्षीसाए वेण्दयवादीणं” द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनाम्, क्रिया पूर्ववत् । तत्र विनयेन चरन्ति विनयो वा
 प्रयोजनमेवामिति वैनयिकाः, एते चानवष्टतल्लिङ्गा-ऽऽचार-शास्त्रा विनयमतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन द्वात्रिंशदवग-
 न्तव्याः—सुर-रुपति-ज्ञाति-यति-स्वविरा-ऽवम-मात-पितृणां मृत्येकं कायेन वाचा मनसा दानेन च देश-कालोपपन्नेन

विनयः कार्ये इति, एते चत्वारो भेदाः सुरादिष्वष्टसु स्थानेषु, एकत्र मेलिता द्वात्रिंशदिति । सर्वसङ्ख्यां प्रति-
पादयन्नाह—“तिष्ठं तेसद्भाग”मित्यादि, त्रयाणां त्रिषष्टयधिकानां ‘प्रावादुक्तशतानां’ विधिचक्रेकैकनयमतावलम्बिनां
प्रवादिशतानामित्यर्थः ‘व्यूहं’ प्रतिशेषं कृत्वा ‘स्वसमयः’ स्वसिद्धान्तः स्याप्यते । शेषं किञ्चिद् व्याख्यातं
किञ्चित् मृगममिति यावत् “से तं ह्यगडे” ति कण्ठ्यम् २ ॥

८९. से किं तं ठाणे ? ठाणेण जीवा ठविज्जति, अजीवा ठविज्जति, जोवा-ऽजीवा 5
ठविज्जति, लोए ठविज्जइ, अलोए ठविज्जइ, लोया-ऽलोए ठविज्जइ, ससमए ठवि-
ज्जइ, परसमए ठविज्जइ, ससमय-परसमए ठविज्जइ । ठाणे णं टंका कूडा सेला
सिहरिणो पन्भारा कुंडाई गुहाओ आगरा दहा णदीओ आघविज्जति । ठाणे णं एगाइयाए
एगुत्तरियाए बुद्धीए दसट्टाणगविवट्ठियाणं भावाणं परूवणया आघविज्जति । ठाणे णं परित्ता
वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जु- 10
त्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्टयाए तइए अंगे,
एगे सुयक्खे, दस अज्झयणा, एकवीसं उहेसणकाला, एकवीसं समुहेसणकाला, बावत्तरिं
पदसहस्साई पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा,
अणंता थावरा, सासत-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जति पण्णविज्जति
परूविज्जति दंसिज्जति णिदंसिज्जति उवदंसिज्जति । से एवंआया, एवंणाया, एवं- 15
विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ । से तं ठाणे ३ ।

९०. से किं तमित्यादि । अथ किं तत् स्थानम् ?, तिष्ठन्त्यस्मिन् प्रतिपाद्यतया जीवादय इति स्थानम् ।
तथा चाह—“ठाणे ण”मित्यादि, स्थानेन स्थाने वा जीवाः स्थाप्यन्ते, व्यवस्थितस्वरूपप्रतिपादनयेति हृदयम् ।
शेषं प्रायो निगदसिद्धमेव । नवरम्—“टंका” ति छिन्नतटं टंकां । “कूडा” ति पञ्चतोवरिं, जहा वेयहृदस्सोवरिं
नव सिद्धाययणादिया कूडा । “सेला” ति हिमवंतादिया सेला । “सिहरिणो” ति सिहरेण सिहरिणो ति, ते य 20
वेयहृदाइया । “पन्भारं” ति जं कूडं उवरिं अंबवज्जयं तं पन्भारं, जं वा पञ्चयस्स उवरिभागे इत्थिक्कंभागिती
कुहुहं णिमायं तं पन्भारं भन्नइ । “कुंडं” ति गंगादीणि कुण्डानि । “गुहा” ति तिमिसादिया गुहा । “आगरा” ति
रूप्य-सुवन्न-रथणादिउप्पत्तिट्टाणा आगरा । “दहा” ति पौंडरीयादीया दहा । “णदीउ” ति गंगा-सिधुमादीओ ।
शेषं धुण्णार्थं यावन्निगमनमिति ३ ॥

९०. से किं तं समवाए ? समवाएणं जीवा समासिज्जति, अजीवा समासिज्जति, 25
जीवा-ऽजीवा समासिज्जति, लोए समासिज्जति, अलोए समासिज्जति, लोया-ऽलोए
समासिज्जति, ससमए समासिज्जति, परसमए समासिज्जति, ससमय-परसमए समासि-
ज्जति । समवाए णं एगाइयाणं एगुत्तरियाणं ठाणगसयविवट्ठियाणं भावाणं परूवणा आघ-
विज्जति । दुवाल्संगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवगे समासिज्जति । समवाए णं परित्ता

वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जु-
 चीओ, संखेज्जाओ पडिवचीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ । से णं अंगट्टयाए चउत्थे
 अंगे, एगे सुयक्खंघे, एगे अज्जयणे, एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले, एगे चोयाले
 पदसयसहस्से पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा,
 5 अणंता थावरा, सासत-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति
 परूविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवंणाया, एवंविण्णाया,
 एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जति । से तं समवाए ४ ।

१०. से किं तमित्यादि । अथ कोऽयं समवायः?, सम् अव अयः समवायः, सम्यग्धिकपरिच्छेद
 इत्यर्थः, तद्देतुकश्च ग्रन्थोऽपि समवायः । तथा चाऽऽह-समवायेन समवाये वा जीवाः समाश्रीयन्ते, अविपरीतस्व-
 10 रूप-गुणभूषिता बुद्ध्या अङ्गीक्रियन्ते इत्यर्थः । अथवा जीवाः 'समम्यन्ते' कुरूपणाभ्यः सम्यक्प्ररूपणायां शिष्यन्ते,
 शेषं निगदसिद्धमा निगमनम् । नवरम्-"एगादियाण"मित्यादि, अत्रैकाद्यैकोचरं स्थानशतं भवति, यथा-"एगे
 आया" इत्यादि । शेषं सूत्रसिद्धं यावन्निगमनमिति ४ ॥

११. से किं तं वियाहे ? वियाहेणं जीवा वियाहिज्जंति, अजीवा वियाहिज्जंति,
 जीवा-ऽजीवा वियाहिज्जंति, लोए वियाहिज्जति, अलोए वियाहिज्जति, लोया-ऽलोए
 15 वियाहिज्जति, ससमए वियाहिज्जति, परसमए वियाहिज्जति, ससमय-परसमए वियाहि-
 ज्जति । वियाहे णं परित्ता यायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा
 सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुचीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवचीओ ।
 से णं अंगट्टयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंघे, एगे सातिरेगे अज्जयणमते, दस उद्देसण-
 सहस्साइं, दस समुद्देसणसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं, दो लक्खा अट्ठासीति पयसह-
 20 स्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता
 थावरा, सासत-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परू-
 विज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवंणाया, एवंविण्णाया,
 एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ । से तं वियाहे ५ ।

११. से किं तमित्यादि । अथ केयं व्याख्या ? व्याख्यानं व्याख्या । तथा चाह-व्याख्यायां जीवादयो
 25 व्याख्यायन्ते । इह सयं चैव अज्जयणसत्तं । शेषं प्रकटार्थं यावत् "से तं वियाहे" ति निगमनम् ५ ॥

१२. से किं तं णायाधम्मकहाओ ? णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराईं उज्जाणाईं
 चैइयाईं वणसंडाईं समोसरणाईं रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोग-पर-
 लोगिया रिद्धिविसेसा भोगपरिचागा पव्वज्जाओ परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाईं संले-

हणाओ भक्तपञ्चस्त्राणां पाओवगमणां देवलोगगमणां सुकुलपञ्चायांओ पुणवोहिलाभा
 अंतकिरियाओ य आघविज्जंति । दस धम्मकहाणं वग्गा । तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए
 पंच पंच अक्खाइयासयां, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उक्खाइयासयां, एगमेगाए
 उक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइओवक्खाइयासयां, एवमेव सपुच्चावरेणं अद्धुट्ठाओ क्हाण-
 गकोडीओ भवंति त्ति मक्खायं । णायाधम्मकहाणं परिता वायणा, संखेज्जा अणुयोगदारा, 5
 संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ,
 संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्टयाए छट्ठे अंगे, दो सुयस्संवा, एगूणवीसं णात-
 ज्जयणा, एगूणवीसं उद्देसणकाला, एगूणवीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहम्साइं पय-
 ग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परिता तसा, अणंता थावरा,
 सामन-कड-णिवद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति 10
 दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवंणाया, एवंविण्णाया, एवं
 चरण-करणपरूवणा आघविज्जति । से चं णायाधम्मकहाओ ६ ।

९.२. से कि तमित्यादि । अथ कास्ताः ज्ञाताधर्मकथाः ? । ज्ञातानि—उदाहरणानि तत्प्रधानानि धर्मकथाः
 ज्ञाताधर्मकथाः । आह च—“णायाधम्मकहायु णं” इत्यादि, ज्ञातानां—उदाहरणभूतानां नगरादीन्पारुष्ययन्ते ।
 “दस धम्मकहाणं वग्गा” इत्यादि, एत्थ भावणा—एगूणवीसं णायज्जयणाणि, णाय त्ति—आहरणा, द्विट्ठित्तिओ 15
 उवणिज्जति जेहउत्थो वा ताणि णाताणि—अज्जयणा, एए पढमसुयस्संवे । अहिंसादिलक्षणास्स धम्मस्स क्हाओ धम्म-
 क्हाओ, धम्मियाओ वा क्हाओ धम्मकहाओ, अक्खानया त्ति बुच्चं भवति, एयाणि वितियसुयस्संवे । पढम-वितिय-
 सुयस्संभणियाणं णायाधम्मकहाणं नगरादिया भवति । वितियसुयस्संवे दस धम्मकहाणं वग्गा, “वग्गो” त्ति समूहो,
 तच्चिसेसणविसिद्धा दस अज्जयणा चैव ते दट्ठवा, एगूणवीसं णाया, दस धम्मकहाओ । तत्थ णातेसु आदिमा
 दस णाता णाया चैव, ण तेसु अक्खादियादिसंभवो, सेसा णव णाया, तेसु पुण एक्केके णाते पंच पंच चत्तालाइ 20
 अक्खाइयासयां, एत्थ त्ति एक्केकाए अक्खाइयाए पंच पंच उक्खाइयासयां, तत्थ त्ति एक्केकाए उक्खाइयाए
 पंच पंच अक्खाइयोवक्खाइयासयां । एवमेयां संपिडियां किं संजायं ?—

इगवीसं कोडिसयं लक्खा पञ्चासमेव बोद्धव्वा ।

एवं ठिते समाणे अधिगतसुत्तस्स पत्थावो ॥१॥ []

तं जहा—दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयां, एगमेगाए 25
 अक्खाइयाए पंच पंच उक्खाइयासयां, एगमेगाए उक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयोवक्खाइयासयां । एवमेयां
 संपिडियां किं संजायं ?—

एगूणवीसं कोडिसयं एत्थ य समलक्खणाइगा जम्हा । णवणायगसंबद्धा अक्खाइयामाइया तेणं ॥१॥

ते सोहिज्जंति फुडं इमाओ रासीओ वेगलाणं तु । पुणरुचवज्जियाणं पमाणमित्थं त्रिणिदिट्ठं ॥२॥

[]

सोषिण्य य समाणे अद्भुद्वाओ कदाणगकोडीओ चेष हवंति, अत एवाह—“एवमेव सपुन्नावरेणं” भक्षिय-
पपारणेणं गुण-सोहणे कते चि वुत्तं भवति, “अद्भुद्वाओ कदाणयकोडीओ भवंतीति मन्त्रवायं” प्रकटार्थमिति, एवं
गुरवो ध्याचक्षते । अन्ये पुनरन्यथा, तदभिप्रायं पुनर्वयमतिगम्भीरलाभावगच्छामः, परमार्थं त्वत्र विशिष्टश्रुतविदो
विदन्तीत्यलं प्रसङ्गेन । शेषं श्रुतं यावत् “संखेज्जा पदसहस्सा पदग्गेणं” ते य किल पंच लक्ष्णा छावत्तरीं च
5 सहस्सा पदग्गेणं, अहवा श्रुत्तालावयपयग्गेणं संखेज्जा पदसहस्सा भवंति, एवं सन्वत्य भावेव्यञ्चं । शेषं छत्रसिद्धं
यावदभिगमनमिति ६ ॥

९३. से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासु णं समणोवासगाणं णगराईं उज्जा-
णाईं चेइयाईं वणसंडाईं समोसरणाईं रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया
इहलोग-परलोइया रिद्धिविसेसा भोगपरिच्चाया परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाईं सील-
10 ज्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासपडिवज्जणया पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ
भत्तपच्चक्खाणाईं पाओवगमणाईं देवलोगगमणाईं सुकुलपच्चायाईंओ पुणबोहिलाभा अंत-
किरियाओ य आघविज्जंति । उवासगदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुयोगदारा,
संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ,
संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगइयाए मत्तमे अंगे, एगे सुयक्त्वेधे, दस अज्जयणा,
15 दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाईं पदसहस्साईं पयग्गेणं । संखेज्जा
अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-णिच्चद-
णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परुविज्जंति दंसिज्जंति णिदं-
सिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवंआया, एवंविण्णाया, एवं चरण-करणपरुवणा
आघविज्जति । से चं उवासगदसाओ ७ ।

20 ९३. से किं तमित्यादि । उपासकाः—श्रावकाः तद्गतक्रियाकलापनिबद्धा दशाः—दशाध्ययनोपलक्षिताः
उपासकदशाः । तथा चाह—“उवासगदसासु णं” इत्यादि छत्रसिद्धं यावत् “संखेज्जा पदसहस्सा पदग्गेणं” ते च
किल एकारस लक्ष्णा वाच्यं च सहस्सा पयग्गेणं ति । शेषं कण्ठ्यमा निगमनमिति ७ ॥

९४. से किं तं अंतगडदसाओ ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराईं उज्जाणाईं चेतियाईं
वणसंडाईं समोसरणाईं रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोग-परलोगिया
25 रिद्धिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ परियागा सुतपरिग्गहा तवोवहाणाईं संलेहणाओ
भत्तपच्चक्खाणाईं पाओवगमणाईं देवलोगगमणाईं सुकुलपच्चायाईंओ पुणबोहिलाभा
अंतकिरियाओ य आघविज्जंति । अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुयोग-
दारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगह-

णीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्टयाए अट्टमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, अट्ट वग्गा, अट्ट उद्देसणकाला, अट्ट समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासत-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति पखुविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसि-ज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवंणाया, एवंविण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा 5 आघविज्जंति । से त्तं अंतगडदसाओ ८ ।

९४. से किं तमित्यादि । अन्तः-विनाशः, स च कर्मणस्तत्फलभूतस्य वा संसारस्य कृतो यैस्तेऽन्तकृतः, ते च तीर्थंकरादयः, तेषां दशाः प्रथमवर्गे दशाध्ययनानीति तत्सङ्ख्यया अन्तकृद्दशा इति । तथा चाऽऽह-“अंत-कृद्दसासु ण”मित्यादि पाठसिद्धं यावत् “अंतकिरियाओ” ति भवापेक्षया अन्त्याश्च ताः क्रियाश्चेति समासः, ताश्च शैलेऽध्ययवस्थाया गृह्यन्ते । शेषं प्रकृतार्थं यावत् “अट्ट वग्गा” एत्थ ‘वग्गो’ ति समूहो, सो य अंतगडाणं अज्झयणाणं 10 वा । सव्वाणि अज्झयणाणि जुगवं उदिसंति, अतो भणियं-“अट्ट उद्देसणकाला” इवादि । “संखेज्जा पदसहस्सा पयग्गेणं” ते य किञ्च एवतिया-तेवीसं लक्खा चउरो य सहस्सा पदग्गेणं ति । शेषं ब्रह्मसिद्धं यावन्निगमनमिति ८॥

९५. से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं णगरां उज्जाणां चैइयां वणसंडां समोसरणां रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मा-यरिया इहलोग-परलोगिया रिद्धिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जपरियागा सुतपरिग्गहा 15 तवोवहाणां पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ भत्तपच्चत्ताणां पाओवगमणां अणुत्तरो-ववाइयत्ते उववत्ती मुकुलपच्चायादीओ पुणवोहिलाभा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति । अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुयोगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्टयाए णवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिण्णि वग्गा, तिण्णि उद्देसणकाला, तिण्णि 20 समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति पखुविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवंणाया, एवंविण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ । से त्तं अणु-त्तरोववाइयदसाओ ९ ।

25

९६. से किं तमित्यादि । उत्तरः-प्रधानः, नास्योचरो विद्यत इति अनुत्तरः, उपपत्तनस्युपपातः, जन्मे-त्यर्थः, अनुत्तरः-प्रधानः संसारेऽन्यस्य तथाविधस्याभावाद् उपपातो येषामिति समासः, तद्वक्तव्यतापत्तिवद्वा दशाः-दशाध्ययनोपलक्षिता अनुत्तरोपपातिकदशाः । तथा चाऽऽह-“अणुत्तरोववाइयदसासु ण”मित्यादि ब्रह्मसिद्धं

यावत् “तिन्नि वग्ग” चि इहाध्ययनसमूहो वर्गः, वर्गे वर्गे दशाध्ययनानि । वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यत इत्यत आह—
“तिन्नि उद्देसणकाला” इत्यादि । “संखेज्जा पदसहस्सा पदग्गेण” ते य किल छायालीसं लक्खा अद्द य सहस्स
चि । शेषं प्रकटार्थं यावन्निगमनमिति ९ ॥

१६. से किं तं पण्हावागरणां ? पण्हावागरणेसु णं अट्टुत्तरं पसिणसयं, अट्टुत्तरं
५ अपसिणसयं, अट्टुत्तरं पसिणा-अपसिणसयं, अण्णे वि विविधा दिव्वा विज्जा-
तिसया नाग-सुवण्णेहि य सद्धि दिव्वा संवाया आघविज्जंति । पण्हावागरणां परिन्ता
वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा मिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जु-
त्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगद्वयाए दसमे अंगे,
एगं सुयक्खंवे, पणयालीसं अज्झयणा, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसण-
१० काला, संखेज्जाइं पदसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा,
परिन्ता तसा, अणंता थावरा, सासत-कड-णिवद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति
पण्णविज्जंति परुविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया, एवं-
णाया, एवंविण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ । से चं पण्हावागरणां १० ।

१६. से किं तमित्यादि । प्रश्नः—प्रतीतः, तन्निर्वचनं व्याकरणम्, बहुत्वाद् बहुवचनम् । प्रश्नव्याकरणेषु
१५ “अट्टुत्तरं पसिणसयं” इत्यादि । अंगुट्ट-बाहुपसिणादियाओ पसिणाओ । जे पुण विज्जा-मंता विधीए जविज्जमाण
अपुच्छिया चेव सुभा-असुभं कहेति एता अपसिणातो । तथा अंगुट्टपसिणभावं च पडुच्च सार्धेति जा विज्जाओ ताओ
पसिणापसिणाओ चि । अथवा अणंतरं जा कहेति ता पसिणा, परंपरं पसिणापसिण चि, तं पुण विज्जाकहितं
तस्स परंपरं भवति । अन्ने य दिव्वा विचित्ता विज्जातिसया । शेषं निगदसिद्धं यावत् “संखेज्जा पदसहस्सा
पदग्गेणं” ते य किल बाणउतिलक्खा सोल्लम य सहस्स चि । शेषं गतार्थं यावदन्त इति १० ॥

१७. से किं तं विवागसुतं ? विवागसुते णं सुकड-दुकडाणं कम्माणं फल-विवागा
आघविज्जंति । तत्थ णं दस दुहविवागा, दस सुहविवागा ।

से किं तं दुहविवागा ? दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं णगरां उज्जाणां वणसंडां
चेइयां समोसरणां रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोइय-परलोइया
रिद्धिविसेसा निरयगमणां दुहपरंपराओ संमारभवपवंचा दुक्कुलपच्चायाईओ दुलहबोहियत्तं
२५ आघविज्जंति । से चं दुहविवागा ।

से किं तं सुहविवागा ? सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं णगरां उज्जाणां वणसंडां
चेइयां समोसरणां रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोइअ-परलोइया
रिद्धिविसेसा भोगपरिवागा पव्वज्जाओ परियागा सुतपरिग्गहा तवोवहाणां संलेहणाओ

भतपञ्चक्खाणां पाओव्रगमणां देवलोगमणां सुहपरंपराओ सुकुलपञ्चायादीओ पुणवो-
हिलाभा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति ।

विवागसुते णं परिता वायणा, संखेज्जा अणुयोगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा
सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।
से णं अंगट्टयाए एकास्समे अंगे, दो सुयक्खंधा, वीसं अज्जयणा, वीसं उदेसणकाला, वीसं 5
समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पदसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता
पज्जवा, परिता तसा, अणंता थावरा, सामय-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघ-
विज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवंआया,
एवंणाया, एवंविण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जति । से तं विवागसुतं ११ ।

९७. से किं तमित्यादि । विपचनं विपाकः, श्रुभा-श्रुभकर्मपरिणाम इत्यर्थः, तत्प्रतिपादकं श्रुतं विपाक- 10
श्रुतम् । शेषमा निगमनं द्वात्रसिद्धमेव । नवरस्य—“संखेज्जा पदसहस्सा पदग्गेणं” एते य एगा पदकोडो चुलसीइं च
लक्खा वचीसं च सहम्म चि ११ ॥

९८. से किं तं दिट्ठिवाए ? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणा आघविज्जति । से समा-
सओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मे १ सुत्ताइं २ पुव्वगए ३ अणुओगे ४ चूलिया ५ ।

९८. से किं तमित्यादि । दृष्टयः—दर्शनाति, वदनं वादः, दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः । दृष्टीनां वा पातो 15
यत्रासौ दृष्टिपातः, सर्वेनयदृष्टय एवैहाऽऽख्यायन्त इत्यर्थः । तथा चाऽऽह—दृष्टिवादेन दृष्टिपातेन दृष्टिवादे दृष्टिपाते
वा सर्वभावपरूवणा आख्यायते । “से समासओ पंचविहे पन्नत्ते” इत्यादि । सर्वमिदं प्रायो व्यवच्छिन्नं तथापि
लेशतो यथागतसम्प्रदायं किञ्चिद् व्याख्यायत इति ॥

९९. से किं तं परिकम्मे ? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—सिद्धसेणियापरिकम्मे
१ मणुस्ससेणियापरिकम्मे २ पुट्टसेणियापरिकम्मे ३ ओगादसेणियापरिकम्मे ४ उवसंपज्जण- 20
सेणियापरिकम्मे ५ विण्पज्जणसेणियापरिकम्मे ६ चुतअचुतसेणियापरिकम्मे ७ ।

१००. से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ? सिद्धसेणियापरिकम्मे चोइसविहे पण्णत्ते,
तं जहा—माउगापयाइं १ एगट्टियपयाइं २ अट्टापयाइं ३ पादो ४ आमासपयाइं ५ केउभूर्यं ६
रासिबद्धं ७ एगगुणं ८ दुगुणं ९ तिगुणं १० केउभूर्यपडिग्गहो ११ संसारपडिग्गहो १२ नंदा-
वत्तं १३ सिद्धावत्तं १४ । से तं सिद्धसेणियापरिकम्मे १ ।

१०१. से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे चोइसविहे पण्णत्ते,
तं जहा—माउगापयाइं १ एगट्टियपयाइं २ अट्टापयाइं ३ पादो ४ आमासपयाइं ५ केउभूर्यं ६

रासिबद्धं ७ एगगुणं ८ दुगुणं ९ तिगुणं १० केउभूयपडिग्गहो ११ संसारपडिग्गहो १२
णंदावत्तं १३ मणुस्सावत्तं १४ । से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे २ ।

१०२. से किं तं पुट्टसेणियापरिकम्मे ? पुट्टसेणियापरिकम्मे एकारसविहे पण्णत्ते, तं
जहा—पाढो १ आमासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६ तिगुणं ७ केउ-
भूयपडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ णंदावत्तं १० पुट्टावत्तं ११ । से त्तं पुट्टसेणियापरिकम्मे ३ ।

१०३. से किं तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ? ओगाढसेणियापरिकम्मे एकारसविहे
पण्णत्ते, तं जहा—पाढो १ आमासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६
तिगुणं ७ केउभूयपडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ णंदावत्तं १० ओगाढावत्तं ११ । से त्तं
ओगाढसेणियापरिकम्मे ४ ।

१०४. से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे एकार-
सविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढो १ आमासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं
६ तिगुणं ७ केउभूयपडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ णंदावत्तं १० उवसंपज्जणावत्तं ११ । से
त्तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ५ ।

१०५. से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ? विप्पजहणसेणियापरिकम्मे एगारस-
विहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढो १ आमासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६
तिगुणं ७ केउभूयपडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ णंदावत्तं १० विप्पजहणावत्तं ११ । से त्तं
विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ६ ।

१०६. से किं तं चुयमचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयमचुयसेणियापरिकम्मे एगारसविहे
पण्णत्ते, तं जहा—पाढो १ आमासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६
तिगुणं ७ केउभूयपडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ णंदावत्तं १० चुयमचुयावत्तं ११ । से त्तं
चुयमचुयसेणियापरिकम्मे ७ ।

१०७-१०८. तत्र ख्वादिग्रहणयोग्यतासम्पादनसमर्थानि परिकर्माणि, गणितपरिकर्मावत् । तं च परिकम्म-
सुयं सिद्धसेणियादिपरिकम्ममूलभेदतो सचविहं, उत्तरभेदतो तेरासीतिविहं माउगपदाति । एयं च सव्वं मूलुत्तर-
भेदं सुत्तत्थतो बोक्खिन्नं, यथागतसम्पदायं वा वाचयम् ॥

१०७. [इच्चेइयाइं सत्त परिकम्माइं, छ ससमइयाइं, सत्त आजीवियाइं,] छ चउकणइ-
याइं, सत्त तेरासियाइं । से त्तं परिकम्मे १ ।

१०७. एषसिं परिक्रम्याणं छ आदिमा य परिक्रम्मा ससम्भया चेव, गोसाल्यपवचियआजीवगपासंदि-
सिद्धंतमएणं पुण चुयअचुयसेणियापरिक्रम्मसहिया सत्त पन्नविज्जति । इयाणि परिक्रम्मे णयचिंता—तत्थ गेगमो
दुविहो, संगहितो असंगहितो य, संगहिओ संगहं पविट्ठो, असंगहिओ ववहारं, तम्हा संगहो ववहारो ऋजुमुत्तो
सरादिया य एको एवं चउरो णया । एतेहिं चउहिं णएहिं छ ससमइयाइं परिक्रम्माइं चित्तिज्जति, अतो भणियं—छ
चउक्कणयाइं भवंति । ते चेव आजीविया तेरासिया भणिया । कम्हा ? उच्चते, जम्हा ते सच्चं जगत्तु ज्ञात्मकमिच्छन्ति, 5
यथा जीवोऽजीवो जीवाजीवो, लोए अलोए लोयालोए, संते असंते संतासंते एवमादि । णयचिंताए ते तिविहं
णयमिच्छंति, तंजहा—द्ववद्वितो पज्जवद्वितो उभयद्विओ, अओ भणियं—“सत्त तेरासिय”त्ति, सत्त परिक्रम्माइं
तेरासियपासंडट्या तिविहाए णयचिंताए चिन्तयन्तीत्यर्थः । “से तं परिक्रम्मे”त्ति निगमनम् ॥

१०८. से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं बावीसं पण्णत्ताइं, तं जहा—उज्जुसुत्तं ? परिणयापरि-
णयं २ बहुभणियं ३ विजयचरियं ४ अणंतरं ५ परंपरं ६ मासाणं ७ संज्जहं ८ संभिण्णं ९ 10
आयत्तयं १० सोवत्थिप्पण्णं ११ णंदावत्तं १२ बहुलं १३ पुट्टापुट्टं १४ वेयावच्चं १५ एवंभूयं १६
भूयावत्तं १७ वत्तमाणुप्पयं १८ समभिरूढं १९ सव्वओभइं २० पण्णासं २१ दुप्परिगहं २२ ।

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए सुत्ताइं १, इच्चेयाइं
बावीसं सुत्ताइं अच्छिण्णच्छेयणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए सुत्ताइं २, इच्चेयाइं बावीसं
सुत्ताइं तिगणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए सुत्ताइं ३, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं 15
ससमयसुत्तपरिवाडीए सुत्ताइं ४, एवामेव सपुव्वावरेणं अट्टासीतीं सुत्ताइं भवंतीति मक्खत्तायं ।
से तं सुत्ताइं २ ।

१०८ से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं उज्जुसुयादियाइं बावीसं भवंति । इह सर्वद्रव्य-पर्याय-नयाद्यर्थ-
सूचनान् सूत्राणि । अमून्यपि च सूत्रार्थतो व्यवच्छिन्नान्येव, यथागतसम्प्रदायतो वा बाच्यानि । एतानि चेव बावीसं
सुत्ताइं विभागतो अट्टासीतीं हवंति, कथम् ? उच्यते, “इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेदणइयाइं, ससमयसुत्तपरि- 20
वाडीए” ति सुत्तं, एत्थं जो णओ सुत्तं छिण्णं छेदेणं इच्छइ सो छिण्णच्छेदणओ, जहा—“धम्मो मंगलमुक्कट्टं”
[दशै. अ. १ गा. १] ति सिलोगो सुत्तथओ पत्तेयं छेदनयठिओ ण वितियादिसिलोए अवेक्खइ, प्रत्येकं कल्पित-
पथेन्त इत्यर्थः । एयाणि एवं बावीसं ससमयसुत्तपरिवाडीए सुत्ताणि ठियाणि । तथा—“इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं
अच्छिण्णच्छेदणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए” ति सुत्तमेव, इह जो णओ सुत्तं अच्छिण्णं छेदेण इच्छइ सो अच्छि- 25
ण्णच्छेदणयो, जहा—“धम्मो मंगलमुक्कट्टं” [दशै. अ. १ गा. १] ति सिलोगो, एस चेव अत्यओ वितियादि-
सिलोगमवेक्खमाणो ति वितियादिया य पदमं ति, अन्योऽन्यसापेक्षा इत्यर्थः । एयाणि बावीसं आजीवियगोसाल-
पवचियपासंडपरिवाडीए अक्खररयणविभागद्वियाणि वि अत्यतो अन्नोन्नमवेक्खमाणानि हवंति । “इच्चेयाइं” इत्यादि
सुत्तं, तत्थ “तिक्रणइयाइं” ति नयत्रिकाभिमायतथिन्त्यन्त इत्यर्थः, त्रैराशिकात्राजीविका एवोच्यन्ते । तथा
“इच्चेयाइं” इत्यादि सूत्रम्, पत्थ “चउक्कणइयाइं” ति नयचतुष्काभिमायतथिन्त्यन्त इति भावना । “एवमेवे”त्यादि
सूत्रम्, एवं चउरो बावीसाओ अट्टासीतीं सुत्ताइं भवंति । “से तं सुत्ताइं” ति निगमनवाक्यम् ॥ 30

१०९. से किं तं पुव्वगते ? पुव्वगते चोद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पादपुव्वं १ अग्गेणीयं २ वीरियं ३ अत्थिणत्थिप्पवातं ४ नाणप्पवातं ५ सच्चप्पवादं ६ आयप्पवादं ७ कम्मप्पवादं ८ पच्चक्खाणं ९ विज्जणुप्पवादं १० अवञ्जं ११ पाणाउं १२ किरियाविसालं १३ लोगविंदुमारं १४ । उप्पायस्स णं पुव्वस्स दस वत्थू चत्तारि चुल्लयवत्थू पण्णत्ता १ । अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स चोद्दस वत्थू दुवालस चुल्लवत्थू पण्णत्ता २ । वीरियस्स णं पुव्वस्स अट्ठ वत्थू अट्ठ चुल्लवत्थू पण्णत्ता ३ । अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू दस चुल्लवत्थू पण्णत्ता ४ । नाणप्पवादस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता ५ । सच्चप्पवायस्स णं पुव्वस्स दोण्णि वत्थू पण्णत्ता ६ । आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता ७ । कम्मप्पवायस्स णं पुव्वस्स तीमं वत्थू पण्णत्ता ८ । पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स १० वीसं वत्थू पण्णत्ता ९ । विज्जणुप्पवादस्स णं पुव्वस्स पणस वत्थू पण्णत्ता १० । अवञ्जस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता ११ । पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता १२ । किरियाविसालस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता १३ । लोगविंदुमारस्स णं पुव्वस्स पणु-वीसं वत्थू पण्णत्ता १४ ।

दस १ चोद्दस २ अट्ठ ३ उट्ठारसेव ४ बारस ५ दुवे ६ य वत्थूणि ।
 १० सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९ पण्णस १० अणुप्पवायग्मि ॥ ७९ ॥
 बारस एकारसमे ११ बारसमे तेरसेव वत्थूणि १२ ।
 तीसा पुण तेरसमे १३ चोद्दसमे पण्णवीसा उ १४ ॥ ८० ॥
 चत्तारि १ दुवालस २ अट्ठ ३ चेव दस ४ चेव चुल्लवत्थूणि ।
 आइल्लाण चउण्हं, सेसाणं चुल्लया णत्थि ॥ ८१ ॥

२० से त्तं पुव्वगते ३ ॥

१०९. से किं तं पुव्वगते इत्यादि । कम्हा पुव्वगतं?, उच्यते, जम्हा तित्थमारो तित्थपवत्तणकाले गणधराणं सव्वसुत्ताधारत्तणतो पुव्वं पुव्वगयसुत्तयं भासइ तम्हा पुव्वं चि मणिया, गणधरा पुण सुत्तरयणं करेन्ता आयारादिकमेण रएति ठवेति य । अजायरियमतेण पुण पुव्वगयसुत्तयो पुव्वं अरहया भासिओ, गणधरेदि वि पुव्वगयसुयं चेव पुव्वं रइयं, पच्छा आयारादि । चोदक आह—णणु पुव्वावरविरुद्धं, कम्हा ? जम्हा आयारणि-
 २५ ञ्जुलीए मणियं—“सव्वेस्सि आयारो” [गा. ८] गाहा, सत्यसुक्तम्, किन्तु सा ठवणा, इमं पुण अवस्सरयणं पद्दुच्च मणियं, पूर्वं पूर्वणि कृतानीत्यर्थः । ताणि य उप्पायपुव्वादीणि चोद्दस पुव्वाणि पञ्चत्ताणि । पढमं उप्पायपुव्वं, तत्थ सव्वदव्वाणं पच्चवाण य उप्पायभावमंणीकाउं पच्चवणा कया, तस्स य पयपरिमाणं एया पयकोडी १ । वित्थियं अग्गेणीयं, तत्थ वि सव्वदव्वाण पच्चवाण य सव्वजीवाजीववित्थेसाण य अन्मं—परिमाणं वच्चिज्जति चि अग्गेणीयं,

तस्स पयपरिमाणं छन्नउर्त्ति पयसयसहस्साणि २ । ततियं वीरियपवायं, तत्थ वि अजीवाणं जीवाणं सकम्मेतरं वीरियं पवयइ ति वीरियपवायं, तस्स विसत्तरि य पयसयसहस्साणि ३ । चउत्थं अक्षिणत्थिपवायं, जं लोए जहा वा अत्थि जहा वा गत्थि अथवा सियवादाभिप्पाततो तदेवास्ति नास्तीत्येवं प्रवदति इति अत्थिणत्थिपवायं भणियं, तं पि पदपरिमाणतो सद्धि पदसयसहस्साणि ४ । पंचमं गाणपवादं ति, तम्मि मतिगाणादिपंचकस्स गाहयपरुवणा जम्हा कया तम्हा गाणप्यवायं, तम्मि पदपरिमाणं एगा पदकोडी परापदणा ५ । छट्ठं सच्चपवायं, सच्चं-संजमो सच्चवयणं ना, तं सच्चं जत्थ समेयं सपडिवक्खं च वञ्चिज्जइ तं सच्चपवायं, तस्स पदपरिमाणं एगा पयकोडी छप्पयाहिया ६ । सत्तमं आयप्पवायं आय ति-आत्मा, सोऽणोगहा जत्थ णयदरिसणेहिं वञ्चिज्जइ तं आयप्पवायं, तस्स वि पदपरिमाणं छब्बीसं पदकोडीओ ७ । अट्ठमं कम्मप्पवायं, गाणावरणादियं अट्ठविहं कम्मं पयति-ठिति-अणुभाग-पदेसादिपहिं भेदेहिं अषेहि य उच्चरुत्तरभेदेहिं जत्थ वञ्चिज्जइ तं कम्मप्पवायं, तस्स वि पयपरिमाणं एगा पयकोडी असीतिं च पयसस्सा भवंति ८ । णवमं पच्चक्खाणं, तम्मि सच्चपच्चक्खाणसरूवं वञ्चिज्जति ति अतो पच्चक्खाणप्पवायं, तस्स य पदपरिमाणं चउरासीतिं पयसयसहस्सा भवंति ९ । दसमं विज्जणुपवायं, तत्थ अणेगे विज्जातिसया वण्णिया, तस्स य पदपरिमाणं एगा पयकोडी दस पयसयसहस्सा १० । एकारसमं अवंशं, ति, वंशं णाम-णिप्फळं, ण वंशमवंशं, सफत्तमित्यर्थः, सन्वे गाण-तव-संजमजोगा सफला वञ्चिज्जति अप्पसत्था य पमादादिया सन्वे अमुहफला वञ्चिया अतो अवंशं, तस्स वि पयपरिमाणं छब्बीसं पदकोडीओ ११ । बारसमं पाणाउं, तत्थ वि आउं-प्राणविधानं सन्वे समेयं अषे य पाणा वञ्चिता, तस्स पयपरिमाणं एगा पयकोडी छप्पञ्चं च पदसयसहस्साणि १२ । तेरसमं किरियाविसालं, तत्थ काय-किरियादियादो विमाल ति-समेया संजमकिरियाओ छंदकिरियाविहाणा य, तस्स य पयपरिमाणं णव कोडीओ १३ । चोदसमं लोगविंदुसार, तं च इमम्मि लोए सुअलोए वा विंदुमिअ अक्खरस्स सच्चुत्तमं सच्चक्खरस-ञ्चिवायपरि (? दित्त)त्तणओ लोगविन्दुसारं भणियं, तस्स य पयपरिमाणं अट्ठत्तरस पयकोडीओ १४ । से तं पुब्बगतं ॥

११०. से किं तं अणुओगे ? अणुओगे दुविहे पणत्ते, तं जहा-मूलपदमाणुओगे य गंडियाणुओगे य ।

११०. से किं तमित्यादि । अनुरूपः अनुकूलो वा योगोऽनुयोगः, द्वयस्य निजेनाभिवेयेन सार्द्धमनुरूपः सम्बन्ध इत्यर्थः । स च द्विविधः प्रकृतः, तद्यथा-मूलप्रथमानुयोगश्च गण्डिकाणुयोगश्च ॥

१११. से किं तं मूलपदमाणुओगे ? मूलपदमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्व-भवा देवलोगगमणां आउं चवणां जम्मणाणि य अभिसेया रायवरसिरीओ पुव्वज्जाओ, तवा य उग्गा, केवलनाणुप्पयाओ तित्थपवत्तणाणि य सीसा गणा गणधरा य अज्जा य पवत्तिणीओ य, संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिण-भणपज्जव-ओहिणाणि-समत्तसुय-णाणिणो य वादी य अणुत्तरगती य उत्तरवेउव्विणो य मुणिणो जत्तिया, जत्तिया सिद्धा, सिद्धिपहो जह य देसिओ, जच्चिं च कालं पादोवगओ, जो जहिं जत्तियाइं भताइं छेयइत्ता अंतगडो मुणिवरुत्तमो तमरओधविप्पमुक्को मुक्खसुहमणुत्तरं च पत्तो, एते अन्ने य एवमादी भावा मूलपदमाणुओगे कहिया । से तं मूलपदमाणुओगे ।

१११. से किं तमित्यादि । ईकैककल्प्यताप्रणयनान्मूलं तावत् तीर्थकराः, तेषां प्रथमः—सम्यक्त्वानापि-
लक्षणपूर्वैश्वरादिगोचरोऽनुयोगो मूलमथमानुयोगः । तथा चाह—“मूलपदमानुयोगे ण” मित्यादि द्वयसिद्धं यावत्
“से चं मूलपदमानुयोगे” ।

११२. से किं तं गंडियाणुओगे? गंडियाणुओगे णं कुलगरगंडियाओ तित्यगरगंडियाओ
चक्रवट्टिगंडियाओ दसागरगंडियाओ बलदेवगंडियाओ वासुदेवगंडियाओ गणधरगंडियाओ
महबाहुगंडियाओ तवोकम्मगंडियाओ हरिवंसगंडियाओ ओसपिणिगंडियाओ उस्सपिणि-
गंडियाओ चिंततरगंडियाओ अमर-गर-तिरिय-निरयगइगमणविविहपरियट्टणेसु एवमाइयाओ
गंडियाओ आघविज्जंति । से चं गंडियाणुओगे । से चं अणुओगे ४ ।

११२. से किं तमित्यादि । ईकैककल्प्यताधीकारानुगता गण्डिका उच्यन्ते, तासामनुयोगः—अर्थकथन-
10 विधिः गण्डिकानुयोगः । तथा चाह—“गंडियाणुयोगे ण” मित्यादि । तत्थ कुलगरगंडियासु कुल्माराणं विमलवाहणा-
दीमं पुष्पजम्भ-गामादि कठिज्जइ । एवं सेसामु वि अभिधानवसतो भावेयव्वं, जाव “चिंततरगंडियाओ” चित्राः—
अनेकार्या अन्तरे—रूपभा-ऽजिततीर्थकरान्तरे गण्डिकाः—एककल्प्यताधिकारानुगताः, ततश्च ता अन्तरगण्डिकाश्च
चित्रान्तरगण्डिकाः । एतदुक्तं भवति—रूपभा-ऽजिततीर्थकरान्तरे तदंशजभूषतीनां शेषगतिगमनव्युदासेन शिवगति-
गमना-ऽनुचरोपधात्प्राप्तमतिपादिकाश्चित्रान्तरगण्डिका इति । पर्याप्तं परूक्त्वे पुत्र्यायरिहं इमो विही दिट्ठो—
15 आदिबजसार्हणं उसमस्स पउप्पए णरवतीणं । सगरमुताण सुबुद्धी इणमो संखं परिकहेइ ॥१॥

चोदस लक्खा सिद्धा णिवतीणको य होति सव्वट्ठे । एकेकट्टाणे पुण पुरिसजुगा हांतऽसंखेज्जा ॥२॥
पुणरवि चोदस लक्खा सिद्धा णिवतीण दोष्णि सव्वट्ठे । गुणठाणे वि असंखा पुरिसजुगा हांति णायव्वा ॥३॥
जाव य लक्खा चोदस सिद्धा पभास हांति सव्वट्ठे । पभासट्टाणे वि तु पुरिसजुगा हांतऽसंखेज्जा ॥४॥
एगुत्तरा उ टाणा सव्वट्ठे णेय जाव पभासा । एवकेकगट्टाणे पुरिसजुगा हांतऽसंखेज्जा ॥५॥१॥

20 विवरीयं सव्वट्ठे चोदस लक्खा उ णिव्वुतो एगो । स खेव य परिवाडी पभासं जाव सिद्धीए ॥६॥२॥
तेण पर दुलक्खादी दो दो टाणा य समय वव्वंति । सिक्वगति-सव्वट्ठेहिं इणमो तेसिं विही होइ ॥७॥
दो लक्खा सिद्धीए दो लक्खा नरवतीण सव्वट्ठे । एवं तिलक्व चउ पंच जाव लक्खा असंखेज्जा ॥८॥३॥
सिक्वगति-सव्वट्ठेहिं चिंततरगंडिया ततो चउरो । एगा एगुत्तरिया १ एगादिविउत्तरा त्रितिया २॥९॥
ततिएगादितिउत्तर ३ तिगमादिविउत्तरा चउत्थेयं ४ । पढमाए सिद्धिको दोष्णि य सव्वट्ठसिद्धम्मि ॥१०॥

25 तत्तो तिष्णि नरिदा सिद्धा चचारि हांति सव्वट्ठे । इय जाव असंखेज्जा सिक्वगति-सव्वट्ठसिद्धेहिं १॥११॥
ताहे विउत्तराए सिद्धिको तिष्णि हांति सव्वट्ठे । एवं पंच य सच य जाव असंखेज्जा दो वि चि २॥१२॥
एग चउ सच दसगं जाव असंखेज्जा हांति दो वि चि । सिक्वगति-सव्वट्ठेहिं तिउत्तराए मुणेयव्वा ३॥१३॥
ताहे—तियगाइविउत्तराए अउणचीसं तु तितग टावेहुं । पढमे णत्थि उ खेवो सेसेसु इमो भवे खेवो ॥१४॥
हुग पण णवगं तेरस सत्तरस दुवीस छ ष अट्टेव । चारस चोदस तह अट्टवीस छवीस पणुवीसा ॥१५॥

एकारस तेवीसा सियाल सतरि सतइत्तरी तह य । इग दुग सत्तासीई एगत्तरिमेव बावट्टी ॥१६॥
 अउणत्तरि चउवीसा छायालसयं तदेव छवीसा । एए रासीखेजा तिगअंतंता जहाकमसो ॥१७॥
 सिक्कगति-सव्वट्टेई दो दो ठाण विसमुत्तरा जेया । जाउणतीसट्टाणे उणतीसं पुण छवीसाए ॥१८॥
 विसमुत्तरा य पदमा एवमसंय विसमुत्तरा जेया । सव्वत्थ वि अंतिल्लं अन्नाए आदिमं ठाणं ॥१९॥
 अउणत्तीसं वारे ठावेउं णत्थि पदमए खेवो । सेसेसउडवीसाए सव्वत्थ दुगादिओ खेवो ॥२०॥
 सिक्कगति पदमादीए बितियाए तह य होति सव्वट्टे । इय एगंतरियाईं सिक्कगइ-सव्वट्टाणाईं ॥२१॥
 एवमसंखेजाओ चिचंतरगंडियाओ जेयच्चा । जाव नियसत्तुराया अजियजिणपिया समुपपभो ४॥२२॥४॥
 एवं गाहाट्टि चिचंतरगंडियाओ समत्ताओ । इमा य एयासिं ठवणा—

5

एत्तिया लक्खा सिद्धि गया	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
एत्तिया लक्खा सव्वट्टं पि गया	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५०

10

एवं जाव असंखा पुरिसजुगा सिद्धा । एसा पदमा १ । अओ परं—

सिद्धा एत्तिया लक्खा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५०
सव्वट्टम्मि गया एत्तिया लक्खा	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४

एवं पि असंखेजा पुरिसजुगा सिद्धा । एसा बीया २ । अओ परं—

सिद्धा एत्तिया लक्खा	२	३	४	५	६	७	८
सव्वट्टे वि गया एत्तिया लक्खा	२	३	४	५	६	७	८

15

एवं जाव असंखेजा आवलिया दुगाइएगुत्तरा दो वि गच्छंति । आवलिया दूरगमणओ पंचासइमे ठाणे चिट्ठंति । तइया गंडिया ३ । अतः परं चत्तसो गण्डिका एकोत्तरिकादिकाः प्रदर्शयन्ते—

शिवगतौ	१	३	५	७	९	एवं जाव असंखेजा
सर्वाथे च	२	४	६	८	१०	एवं जाव असंखेजा

20

चिचंतरगंडिया एगाइएगुत्तरिया पदमा जेया १ ।

सिद्धा एत्तिया	१	५	९	एवं जाव असंखेजा
सव्वट्टे एत्तिया चेव	३	७	११	एवं जाव असंखेजा

एगादिविउत्तरा बितिया चिचंतरगंडिया २ ।

सिद्धा एचिया	१	७	१३	एवं जाव असंखेजा
सन्वटे एचिया चेव	४	१०	१६	एवं जाव असंखेजा

चिचंतरगंडिया एगादितिउत्तरा ततिया ३ ।

ततधतुर्थी त्र्यादिका द्यादिविषमोत्तरमक्षेया एकोनत्रिंशत् त्रिकान् संस्थाप्य निदर्शयते—

श्रिनवती सिद्धा एचिया	३	८	१६	२५	११	१७	२९	१४	५०	८०	५	७४	७२	४९	२९
सन्वटे एचिया	५	१२	२०	९	१५	३१	२८	२६	७३	४	९०	६५	२७	१०३	०

पुणो वि—

सन्वटे	२९	३४	४२	५१	३७	४३	५५	४०	७६	१०६	३१	१००	९८	७५	५५
सिद्धा	३१	३८	४६	३५	४१	५७	५४	५२	९९	३०	११६	९१	५३	१२९	०

10 एवं पुनः पञ्चपञ्चाशदादी कृत्वा एकोनत्रिंशत् स्थानानि संस्थाप्य द्यादिप्रक्षेपकेण यावत् पश्चिमस्थाने एकाशीतिर्भवति । अनेन [क्रमेण] उत्तरा असहस्रयेयाश्चित्रान्तरगण्डिका नैयाः ४ । सेसं गाढाणुसारेणं नेयव्वं जाव असंखेजा ॥

शेषं निगदसिद्धं यावत् “से चं अणुओगे” ॥

११३. से किं तं चूलियाओ ? चूलियाओ आइलाणं वउण्हं पुव्वाणं चूलिया, अव-

15 सेसा पुव्वा अचूलिया । से चं चूलियाओ ५ ।

११४. दिट्ठिवायस्स णं परिता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेदा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ । से णं अंगट्टयाए दुवालसमे अंगे, एगे सुयक्खे, चोइस पुव्वा, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चुलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडि-
20 याओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइं पदसहस्साइं पदगेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परिता तसा, अणंता थावरा, सासत-कड-णिबद्ध-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परुविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति ज्व-
दंसिज्जंति । से एवंआया, एवंणाया, एवंविण्णाया, एवं चरण-करणपरुवणा आघविज्ज-
ति । से चं दिट्ठिवाए १२ ।

११३-१४. से किं तमित्यादि । चूडा इव चूडा, इह दृष्टिवादे परिकर्म-सूत्र-पूर्वानुयोगोक्ताऽनुक्तार्थ-सङ्ग्रहपर प्रथमपदत्वयश्चूडा इति । एताश्चाद्यानां चतुर्णामेव पूर्वाणां भवन्ति, न शेषाणामिति । अत एवाह-“आदिद्विगण”मित्यादि । सङ्ख्या तासां प्रतिपूर्वमित्यं ययासङ्ख्यम्—

चउ बारसङ्घ दस या इवंति चूडा चउण्ड पुव्वाणं । एए य चूलवत्थू सव्बुवरिं किल पदिज्जंति ॥१॥

शेषमा निगमनं सूत्रसिद्धमेव । नवरम्—“संखेज्जा वत्थु” चि पणुवीसुचराणि दो सयाणि । “संखेज्जा 5 चूलवत्थु” चि चउतीसं ॥ साम्पतमोघतो द्वादशाङ्गविषयमेव दर्शयन्नाह—

११५. इच्चेइयम्मि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा अणंता अभावा अणंता हेऊ अणंता अहेऊ अणंता कारणा अणंता अकारणा अणंता जीवा अणंता अजीवा अणंता भवसिद्धिया अणंता अभवसिद्धिया अणंता सिद्धा अणंता असिद्धा पण्णत्ता । संगहणिगाहा-

भावमभावा हेउमहेऊ कारणमकारणा चेव ।

जीवाऽजीवा भवियमभविया सिद्धा असिद्धा य ॥ ८२ ॥

10

११५. इच्चेयम्मि इत्यादि । इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटक इति पूर्ववत्, अनन्ता भावाः प्रज्ञप्ता इति योगः, तत्र भवन्तीति भावाः—जीवादयः पदार्थाः, एते च जीव-पुद्गलानन्तत्वाद् अनन्ता इति । तथा अनन्ता अभावाः, सर्व-भावानामेव पररूपेणासत्त्वात् त एवानन्ता अभावा इति, स्व-परसत्ताभावाऽभावोभयाधीनत्वाद् वस्तुतत्त्वस्य । तथाहि-जीवो जीवात्मना भावोऽजीवात्मना चाभावः, अन्यथाऽजीवत्वमसङ्गात्, अत्र बहु वक्तव्यं तसु नोच्यते, गमनिकामात्र-त्वादारम्भस्य । अन्ये तु ‘धर्मापेक्षया अनन्ता भावाः अनन्ता अभावाः प्रतिवस्त्वस्तिस्त्वन्नास्तिस्त्वाभ्यां प्रतिवद्वाः’ इति व्याचक्षते । तथाऽनन्ता हेतवः, तत्र हिनोति—गमयति जिज्ञासितधर्मविशिष्टानर्थानिति हेतुः, ते चानन्ताः, वस्तुनोऽनन्तधर्मात्मकत्वात्, तत्प्रतिबद्धधर्मविशिष्टवस्तुगमकत्वाच्च हेतोः, सूत्रस्य चानन्तगम-पर्यायात्मकत्वादिति । यथोक्तहेतुप्रतिपक्षतोऽनन्ता अहेतवः । तथाऽनन्तानि कारणानि—मृत्पिण्ड-तन्त्रादीनि घट-पटादिनिर्वर्चकानि । तथाऽनन्तान्यकारणानि, सर्वकारणानामेव कार्यान्तराकारणत्वात्, न हि मृत्पिण्डः पटं निर्वर्चयतीति । एवं भावाः 20 ऽभावाः हेत्वहेतवः कारणाऽकारणानि, जीवाः—प्राणिनः, तथा अजीवाः—द्रव्यगुणद्वयः, तथा भव्याः—अनादिपारिणात्मिकभव्यभावयुक्ताः, एतेऽनन्ताः प्रज्ञप्ताः । तथा अभव्याः—अनादिपारिणात्मिकाभव्यभावयुक्ताः एतेऽनन्ताः प्रज्ञप्ता इति योगः । तथा सिद्धा अनन्ताः, तथा अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञप्ता इति । इह भव्याऽभव्यानामानन्त्येऽभिहिते अनन्ता असिद्धा इति यत् पुनरभिधानं तत् सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वरूप्यापनार्थमिति ॥

साम्पतं द्वादशाङ्गविराधना-ऽऽराधननिष्पन्नं त्रैकालिकं फलबुध्पदर्शयन्नाह—

25

११६. इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए विराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिसु । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिति । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागते काले अणंता जीवा आणाए विराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिसंति ।

११६. 'इच्छेयमित्यादि । इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं अतीतकाले अनन्ता जीवा आह्वया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं "अणुपरियट्टिसु" चि अनुपरावृत्तवन्त आसन् । इदं हि द्वादशाङ्गं सूत्रार्थोभयभेदेन त्रिविधम्, ततश्च 'आह्वया' द्वात्रिंशत्तन्मिनिवेशतोऽन्यथापाठादिलक्षणया विराध्य अतीतकाले अनन्ता जीवाः 'चतुरन्तं संसारकान्तारं' नारक-तिर्यङ्-नरा-ऽमरविषयदृशजालदुस्तरं भवाटवीगहनमित्यर्थः; अनुपरावृत्ता आसन् ज्वालिवन्तः ।
- 5 अर्थाह्वया पुनरभिनिवेशतोऽन्यथाप्ररूपणादिलक्षणया गोष्ठामाहिलिवन्त, उभयाह्वया पुनः पञ्चविधाचारपरिज्ञानकरणोद्यतधुवादेशादिलक्षणया गुरुभक्त्यनीकद्रव्यलिङ्गभार्यनेकभ्रमणवत्, अथवा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावापेक्षयाऽऽगमोक्तानुष्ठानमेवाहा, एतद्विराधनयैवानुपरावृत्ता आसन् । उक्तं च—“सध्वाओ वि गतीओ अविरहिया णाण-दंसणधरोहि” [] इत्यादि । “इच्छेय”मित्यादि गतार्थमेव । नवरम्—“परित्ता जीवा” इति सङ्घेया जीवाः, वर्तमानविशिष्टविराधकमनुष्यजीवानां सङ्घेयत्वात्, “अणुपरियट्टितं” चि अनुपरावृत्तन्ते, भ्रमन्तीत्यर्थः । “इच्छेत्”-
- 10 मित्यादि, इदमपि भावितार्थमेव । नवरम्—“अणुपरियट्टिसंति” चि अनुपरावृत्तिप्यन्ते, पर्यटिप्यन्ति इत्यर्थः ॥

११७. इच्छेयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए आराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं वितिवइंसु । इच्छेयं दुवालमंगं गणिपिडगं पडुप्पणकाले परित्ता जीवा आणाए आराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं वितिवयंति । इच्छेयं दुवालमंगं गणिपिडगं अणागाए काले अणंता जीवा आणाए आराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं वितिवत्तिस्संति ।

- 15 ११७. “इच्छेत्”मित्यादि, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं अतीतकालेऽनन्ता जीवा आह्वया आराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं “वितिवइंसु” चि व्यतिक्रान्तवन्तः, चतुर्गतिकसंसारोलङ्घनेन युक्तमवाप्ता इत्यर्थः । “इच्छेय”मित्यादि गतार्थम् । नवरम्—“वितिवयंति” चि व्युत्क्रामन्ति । “इच्छेत्”मित्यादि गतार्थमेव । नवरम्—“वितिवयिस्संति” चि व्युत्क्रमिप्यन्ते, एतत्प्रभावात् सेत्स्यन्तीत्यर्थः ॥

यादिदमनिष्टेतरभेदभिन्नं फलं प्रतिपादितम् एतन् सदाऽवस्थायिन्वे सति द्वादशाङ्गस्योपजायत इत्यत्र आह—

- 20 ११८. इच्छेयं दुवालसंगं गणिपिडगं ण कयाइ णाऽऽसी ण कयाइ ण भवति ण कयाइ ण भविस्सति, भुवि च भवति य भविस्सति य, धुवे णिअए सासते अक्खए अव्वए अव-ट्टिए णिच्चे । से जहाणामए पंचत्थिकाए ण कयाति णाऽऽसी ण कयाति णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति, भुवि च भवति य भविस्सति य, धुवा णीया सासता अक्खया अव्वया अवट्टिया णिच्चा, एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयाइ णाऽऽसी ण कयाइ णत्थि ण
- 25 कयाइ ण भविस्सति, भुवि च भवति य भविस्सति य, धुवे णिअए सासते अक्खए अव्वए अवट्टिए णिच्चे ।

११८. इच्छेयमित्यादि । इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीद् अनादित्वात्, न कदाचिन्न भवति सदैव भावात्, न कदाचिन्न भविष्यति अपर्यवसितत्वात् । किं तर्हि ? “भुवि चो”त्यादि, अशुद् भवति भविष्यति च । ततश्चेदं त्रिकालभावित्वादचलत्वाद् ध्रुवम्, मेवादिवत् । ध्रुवत्वादेव नियतम्, पञ्चास्तिकायेषु

लोकवचनवत् । नियतत्वादेव शाश्वतम्, समया-SSवल्लिकादिषु कालवद् । शाश्वतत्वादेव वाचनादिप्रदानेऽप्यक्षयम्, गङ्गा-सिन्धुप्रवाहेऽपि पौण्डरीकहृदवत् । अक्षयत्वादेवाव्ययम्, मानुषोचराद् बहिः समुद्रवत् । अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थितम्, जम्बूद्वीपादिवत् । अवस्थितत्वादेव नित्यम्, आकाशवत् । साम्प्रतं दृष्टान्तमाह—“से जहाणामए”त्यादि, तद् यथानाम ‘पञ्चास्तिकायाः’ धर्मास्तिकायादयः न कदाचिन्नासन् न कदाचिन्न सन्ति न कदाचिन्न भविष्यन्ति, अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति च । “ध्रुवे” इत्यादि पूर्ववत् । “एवामेवे”त्यादि निगमनं निगदसिद्धमेव ॥ 5

११९. से समासतो चउव्विहे पणत्ते, तं जहा-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ । तत्थ दव्वओ णं सुयणाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । खेत्तओ णं सुयणाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ । कालओ णं सुयणाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ । भावओ णं सुयणाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ पासइ ।

११९. “से समासओ” इत्यादि । ‘तद्’ द्वादशाङ्गं समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तमित्यादि प्रायो गतार्थमेव । 10 नवरम्-द्रव्यतः श्रुतज्ञानी उपपुक्तः सन् सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यतीति, अत्राभिन्नदशपूर्वभरादिः श्रुतकेवली परिशुद्धते, तदारतो भजना, सा पुनर्मतिविशेषतो ज्ञातच्येति । अत्राह-ननु पश्यतीति कथम् ? कथञ्चन सकलमोचर-दर्शनायोगात्, अत्रोच्यते, प्रज्ञापनायां श्रुतज्ञानपश्यतायाः प्रतिपादितत्वात्, अनुचरविमानादीनां चाऽऽलेख्यकरणात्, सर्वथा चादृष्ट्याऽऽलेख्यकरणात् उपपत्तेः । एवं क्षेत्रादिष्वपि भावनीयमिति । अन्ये तु “न पश्यति” इत्यभिदधति ॥

साम्प्रतं सङ्ग्रहगाथा आह—

15

१२०. अक्कर १ सण्णो २ सम्मं ३ सादीयं ४ खलु सपज्जवसियं ५ च ।

गमियं ६ अंगपविट्ठं ७ सत्त वि एए सपडिवक्खा ॥ ८३ ॥

आगमसत्थग्गहणं जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं ।

चित्ति सुयणाणलंभं तं पुव्वविसारया धीरा ॥ ८४ ॥

सुसूसइ १ पडिपुच्छइ २ सुणेइ ३ गिण्हइ ४ य ईहए ५ यावि । 20

ततो अपोहए ६ वा धारेइ ७ करेइ वा सम्मं ८ ॥ ८५ ॥

मूर्यं १ हुंकारं २ वा बाढक्कार ३ पडिपुच्छ ४ वीमंसा ५ ।

ततो पसंगपारायणं ६ च परिणिट्ठं ७ सत्तमए ॥ ८६ ॥

सुत्तयो खलु पढमो, वीओ गिज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।

तइओ य गिरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥ ८७ ॥ 25

से तं अंगपविट्ठं । से तं सुयणाणं । से तं परोक्खणाणं ।

॥ से तं णंदी सम्भत्ता ॥

१२०. अक्स्वर सञ्जीत्यादि । इयं गताथैव । नवरम्-सप्ताप्येते पक्षाः सप्रतिपक्षाः । ते चैवम्-अक्षर-श्रुतमनश्रुतमित्यादि ॥८३॥ इदं पुनः श्रुतज्ञानं सर्वातिशयरत्नसमुद्रकल्पम्, तथा प्रायो गुर्वायत्तत्वात् पराधीनम्, अतो विनेयानुग्रहार्थं यो यथा चास्य लाभस्तथा दर्शयन्नाह—

आगम० गाहा । व्याख्या—आगमनागमः, आहो अभिविधि-मर्यादायत्ताद् अभिविधिना मर्यादया वा
 5 गमः—परिच्छेद आगमः । स च केवलमत्यवधिभ्रणोऽपि भवति अतस्तद्वचवञ्छिच्यर्थमाह—शास्यतेऽनेनेति शास्त्रं-श्रुतम् । आगमग्रहणं तु षष्टितन्त्रादिकुशास्त्रव्यवच्छेदार्थम्, तेषामनागमत्वात् सम्यक्परिच्छेदात्मकत्वाभावादित्यर्थः, शास्त्रतया च रूढत्वात्, तत आगमशास्त्रीं शास्त्रं च आगमशास्त्रं तस्य ग्रहणमिति समासः । गृहीतिर्ग्रहणम् । यद् बुद्धिगुणैर्वक्ष्यमाणलक्षणैः करणभूतैरष्टभिर्दृष्टं तद् भ्रुवते श्रुतज्ञानस्य लाभः श्रुतज्ञानलाभस्तं तदेव ग्रहणं भ्रुवते । के ? पूर्वेषु विशारदाः—विपश्चितः 'धीराः' व्रतानुपालने स्थिरा इत्यर्थः । अयं गाथार्थः ॥८४॥

10 बुद्धिगुणैरष्टभिरित्युक्तं ते चामी—

सुस्तृप्तसि० गाहा । व्याख्या—विनययुक्तो गुरुमुवात् श्रोतुमिच्छति श्रुषुषते । पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति, तत् श्रुतमशङ्कितं करोतीति भावार्थः । पुनः कथितं सच्छृणोति । ध्रुत्वा गृह्णाति । गृहीत्या च 'ईहते' पर्यालोचयति 'किमिदमित्यम् ? उतान्यथा ?' इति । 'वशब्दः' सम्यग्वायार्थः । अपिशब्दान् पर्यालोचयनं किञ्चित् स्वबुद्ध्याऽप्युत्प्रेक्षते । ततस्तदनन्तरं 'अपोहते च' एवमेतद् यदादिष्टमाचार्येणेति । पुनस्तमर्थमागृहीतं धारयति । करोति च सम्यक्
 15 तदुक्तमनुज्ञानमिति, तदुक्तानुज्ञानमपि च श्रुतप्राप्तिसिद्धेर्भवेति, तदावरणक्षयोपशमादिनिमित्तत्वात् तस्येति ।

अथवा यद् यदाज्ञापयति गुरुस्तत् सम्यगनुग्रहं मन्यमानः श्रोतुमिच्छतीति । पूर्वसन्दिष्टश्च सर्वकार्याणि कुर्वन् पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति । पुनरादिष्टः सन् सम्यक् शृणोति । शेषं पूर्ववत् ॥८५॥

बुद्धिगुणा व्याख्यातास्तत्र श्रुषुषतीत्युक्तम् । इदानीं श्रवणविधिप्रतिपादनायाह—

मूअं० गाहा । व्याख्या—'मूकमिति' मूकं शृणुयात् । एतदुक्तं भवति—प्रथमश्रवणे संयतगात्रसूपूर्णी
 20 स्वत्वासीत् १ । तथा द्वितीये 'हृङ्कारं च' ईषद्वन्दनं कुर्यादित्यर्थः २ । तृतीये 'वाहकारं कुर्यात्' वाहमेवमेतन्नान्य-
 येति ३ । चतुर्थश्रवणे गृहीतपूर्वा-ऽपरसूत्राभिप्रायो मनाक् प्रतिपृच्छां कुर्यात्, कथमेतदिति ४ । पञ्चमे तु मीमांसां
 कुर्यात्, मातुमिच्छा मीमांसा, प्रमाणजिज्ञासेति यावत् ५ । ततः षष्ठे श्रवणे तदुत्तराचरणप्रसङ्गपारगमनं चास्य
 भवति ६ । परिनिष्ठा सप्तमे श्रवणे भवति, एतदुक्तं भवति—गुरुवदनुभायत एव सप्तमे श्रवणे इति ७ ॥८६॥

एवं तावत् श्रवणविधिरुक्तः । इदानीं व्याख्यानविधिमभिधिन्मुद्राह—

25 सुत्तन्त्रो० गाहा । व्याख्या—सूत्रार्थमात्रप्रतिपादनपरः सूत्रार्थः, अनुयोग इति गम्यते । 'स्वल्'शब्दस्तु
 एवकारार्थः, स चावधारणे । एतदुक्तं भवति—गुरुणा सूत्रार्थमात्राभिधानलक्षण एव प्रथमोऽनुयोगः कार्यः, मा भूत्
 प्राथमिकविनेयानां मतिमोहः १ । द्वितीयोऽनुयोगः सूत्रस्पष्टिकनिर्णयिकमिश्रः कार्य इत्येवम्भूतो भणितो जिनैश्च-
 तुर्दशपूर्वधरेश्च २ । तृतीयश्च 'निरवशेषः' प्रसक्ता-ऽनुप्रसक्तमप्युच्यते एवंलक्षणां निरवशेषः कार्य इति ३ । 'एषः'
 उक्तलक्षणां 'विधानं विधिः प्रकार इत्यर्थः 'भणितः' प्रतिपादितो जिनादिभिः । क्व ? सूत्रस्य निजेनाभिधेयेन
 30 सार्धमनुक्त्वो योगोऽनुयोगः—सूत्रान्वाख्यानामित्यर्थः, तस्मिन्ननुयोग इति गाथार्थः । आह—परिनिष्ठा सप्तम
 इत्युक्तम्, त्रयश्चानुयोगप्रकाराः, तदेतत् कथम् ? इति, अत्रोच्यते, विनेयगणं विज्ञाय त्रयाणामन्यतमप्रकारेण सप्तवार-

करणादविरोधादित्योषविनेयविषयं तावत् सूत्रम्, न पुनः स एव नियमविधिः, उद्घटितहविनेयानां सकृच्छ्रवण
एवाशेषग्रहणदर्शनादलं विस्तरेण ॥८७॥

“से त्”मित्यादि तदेतत् श्रुतज्ञानमिति निगमनम् । “से त्”मित्यादि, तत् परोक्षमिति निगमनमेव ॥

॥ नन्वध्ययनविवरणं समाप्तम् ॥

यदिहोत्सन्नमज्ञानाद् व्याख्यातं तद् बहुश्रुतैः । क्षन्तव्यं कस्य सम्मोहश्छन्नस्थस्य न जायते ? ॥१॥

नन्वध्ययनविवरणं कृत्वा यदवाप्तमिह मया पुण्यम् । तेन खलु जीवलौको लभतां जिनज्ञासने नन्दीम् ॥२॥

॥ कृतिः सिताम्बराचार्यजिनभट्टपादसेवकस्याऽऽचार्यश्रीहरिभद्रस्येति ॥

॥ नमः श्रुतदैवतायै भगवत्यै ॥ ग्रन्थाम् २३३६ ॥

॥ समाप्ता नन्दिटीका ॥

गमो ह्यु णं समणस्स भगवओ महइमहावीरवद्वमाणसामिस्स

गमो अणुओगधराणं थेराणं

मलघारिओ-ओीचन्द्रसूरिचिनिर्मितं

याकिनीमहचराधर्मसंजुओीहरिमद्रुहरिप्रणीतायाः

नन्दिसूत्रवृत्तेः टिप्पणकम्

॥ गमो गंदीए भगवतीए ॥



[पृष्ठ १]

.....देरपि सम्भवात् । पं० ८. अनैकान्तिको अनैश्वयिकः । अनात्यन्तिकः व्यवच्छेदभाक् च ।

पं. ९. ऐकान्तिकः नैश्वयिकः । आत्यन्तिकोऽव्यवच्छेदपरः । पं. १२. श्रुतधर्मसम्पत्समन्विता एव प्राय इति 'माषतुषादिभिर्व्यभिचारो मा भूत्' इति प्रायोपह्रणम् ।

[पृष्ठ २]

5

पं. ३. यस्येति, इक्ष अश्च यं तस्य [यस्य] इत्यनेन इकारलोपः । पं. ४. नन्दन्ति समृद्धिमवानुबन्धनयेति नन्दी ॥ पं. ७. नन्दीति यत् कस्यचिद् नाम क्रियते सा नामनन्दी । अक्षादिषु स्थापिता स्थापनानन्दी ।

पं. ९. ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिरित्यादि, ज्ञातवान् ज्ञः, तस्य शरीरम्, तदेवानुभूतभावत्वाद् द्रव्यनन्दिः ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिः, नन्दिरिति यत् पदं तदर्थज्ञायकस्य यच्छरीरकं जीवविप्रमुक्तं तद् ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिरित्यर्थः । [भव्यशरीरद्रव्यनन्दिरित्यादि] विवक्षितपर्ययिण भविष्यतीति भव्यः, विवक्षितपर्यायार्हः, तथोभय इत्यर्थः, तस्य शरीरम्, तदेव भावनन्दिकारणत्वाद् द्रव्यनन्दिरभ्य- 10 शरीरद्रव्यनन्दिः, यो जन्तुर्नन्दिरिति पदमागामिकाळे शिक्षयते न तावच्छिक्षते तज्जीवास्थितं शरीरं भव्यशरीरद्रव्यनन्दिरित्यर्थः ।

पं. ११. भूत-भावद्रव्यनन्देर्लक्षणाभिधानायाऽऽह-भूतस्येत्यादि । तद् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः कथितम् । यत् कथम्भूतम् ? इत्याह-यत् 'कारणं' हेतुः । कस्य ? इत्याह 'भावस्य' पर्यायस्य । कथम्भूतस्य ? इत्याह-'भूतस्य' अतीतस्य 'भाविनो वा' भविष्यतः । 'लोके' आधारभूते । तच्च 'सचेतनं' पुरुषादि 'अचेतनं च' काष्ठादि भवति । एतदुक्तं भवति-यः पूर्वं स्वर्गादिष्विन्द्रादित्वेन भूत्वा इदानीं मनुष्यादित्वेन परिणतः सोऽतीतस्येन्द्रादिपर्यायस्य कारणत्वात् साम्प्रतमपि द्रव्यत 15 इन्द्रादिरभिधीयते, अमास्यादिपदपरिभ्रष्टामास्यादिवत् । तथाऽपि य इन्द्रादित्वेनोत्पत्स्यते स इदानीमपि भविष्यदिन्द्रादिपदपर्याय-कारणत्वाद् द्रव्यत इन्द्रादिरभिधीयते, भविष्यद्राजकुमाराजवत् । एवमचेतनस्यापि काष्ठादेरुत्-भविष्यत्पर्यायकारणत्वेन द्रव्यता भावनीयेत्यायर्थः ॥ पं. १५. भग्मा० गाहा सुगमा । नवरं 'भग्मा' अतिपृथुल्लक्षकाविशेषः । सुकुन्द-मर्दलौ तु सुरजविरोधौ । केवलमेकतः सङ्कीर्णोऽन्यत्र तु विस्तीर्णो सुकुन्दोऽभिधीयते, मर्दलस्तु उभयतोऽपि समः । 'कडम्बा' करटिका । 'तलिमा' तिउच्छिका । शेषं प्रतीतम् ॥

20

पं. १८. नोवागमतो भावनन्दिः पञ्च ज्ञानानि, वचनरूपं श्रुतमेवाऽऽगमः, न शेषज्ञानानि, तेनाऽऽगमस्य ज्ञानपञ्चकैक-देशत्वात् । नोशब्दो देशवचनः । अद्यवेति अत्राप्यागमैकदेश एवायं नन्वाप्ययन्म, शेषश्रुतार्णवापेक्षया हि देशवाप्येव नोशब्दः ।

[पृष्ठ ३]

पं. १. सञ्चिजेयादि, सञ्चित-शीत-संवृताश्च ता इतर-मिश्राश्चेति समासः । तत्रेतराः—अचितोष्णविवृताख्याः । सञ्चिता-ऽचित्तादिद्विरूपतया मिश्रवम् । एतत्स्वरूपं चोक्तं पूर्वमुक्तिभिः—

- मीसा य गम्भवसहो, संवुडवियडा य वंसपत्ताई । सीओसिणाहमेया अणेमहा जोगिमेया उ ॥१॥
 5 मिरस्ततं जोगीए सुकमचित्तं सचेयणं रुहिरं । अहवा सुकं रुहिरं अचेयण-सचेयणा जोगी ॥२॥ []
 एवं मिश्रत्वं तिर्यग्-मनुष्यस्त्रीयोनेः । तथा—

अञ्चिता खलु जोगी नेरह्याणं तदेव देवाणं । मीसा य गम्भवसहो, तिविहा जोगी उ सेसाणं ॥१॥

[जिन० संप्र० गा० ३५९, जीवस० गा० ४६]

- तिर्यग्-मनुष्यगर्भजन्यतिरिक्तानां सम्पूर्णजतिर्यग्-मनुष्याणां यथा गोहृम्यादीनां सञ्चित्त, काष्ठयुगादीनामचित्त,
 10 गोहृम्यादीनामेव केषाञ्चित् पूर्वकृतक्षते समुद्भवां मिश्रितं त्रिधात्वम् । तथा—

सीओसिणजोगीया सन्धे देवा य गम्भवकंती । उसिणा य तेउकाए, दुह नरए, तिविह सेसाणं ॥१॥

[जिन० संप्र० गा० ३६०, जीवस० गा० ४७]

- शीतोष्णयोनिकाः सर्वे देवा गर्भजास्तिर्यग्-मनुष्याश्च । तजःकायिका उष्णयोनिकाः । नारकाणां द्विधा योनिः—तत्राऽऽष-
 पृथिवीत्वयोत्तानां प्रकृष्टोष्णा, चतुर्थ्या कचिनरके उष्णा कचिच्छीता, अत्यगृध्वीन्ये तु शीता । सम्पूर्णजतिर्यग्-मनुष्य-गृधि-
 15 व्यादीनां कचिच्छीता कचिदुष्णा कचिमिश्रा । तथा संवृता प्रच्छन्ना, विवृता प्रकटा, गोमयादिका संवृतविवृता प्रच्छन्नप्रकाशा ॥
 तत्र—एगिदिय-नेरह्या संवुडजोगी हवंति देवा य । विगलिदियाण वियडा, संवुडवियडा य गम्भमि ॥१॥

[जिन० संप्र० गा० ३५८, जीवस० गा० ४५]

- नवरं नारकाः संवृतयोन्मयः, तदुत्पत्तिभूतानां निष्कृटानां संवृतगवाक्षकल्पत्वात् । देवा अपि संवृतयोन्मयः, “देवसयणिज्जसि
 देवदू संतरिए अंगुलस्त असंखेज्जमगामेत्तीए सरीरोगाहणाए उववण्णा” [] इत्यादिवचनतः पटप्रच्छादितेषु
 20 देवदायनीयेषु देवदूष्याभ्यन्तरे संवृतस्वरूपे तेषामुत्पादात् । एकेन्द्रियाणामपि केवलद्विष्टेन केनापि प्रकारेण ‘संवृतयोनिचं’
 गुणयोनित्वं भावनीयम् । ‘संवृतविवृता’ आश्रुता-ऽनाश्रुतस्वरूपा, गर्भजतिर्यग्-मनुष्याणामिति । अन्यत्र शङ्खावर्ता कुर्मोन्नता
 वंशीपत्रा चेति त्रिधा मनुष्यस्त्रीविषया स्यात् । तत्र च—

उत्तमनरमाऊणं नियमा कुम्मुन्नया हवइ जोगी । इयराण वंसपत्ता, संस्तावत्ता उ रयणस्त ॥१॥ []

त्ति वाच्यम् ॥

- 25 पं. १३. प्राणा द्वि-त्रि-चतुः प्रोक्ताः, भूतास्तु तरवः स्युताः । जीवाः पक्षेत्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः ॥१॥
 []

- न अज्जावेयम्भं ति, अज्जावणं-तज्जणं । न परिपेत्तज्जा सद्धनेन । परितापः—कृमः । उद्वणं-विणासो । ततश्चैष
 धर्मः ‘खिदो’ सर्वज्ञैः ‘लोकै’ जीवास्तिकायात्मकं ‘समेत्य’ विज्ञाय तत्पीडाभकरणतः प्रवेदितः । कीदः ? ‘ध्रुवः’ त्रिकालमावित्वाद्
 मेवाविद्वदचलः । ध्रुवत्वादेव नियः, नियतो वा पक्षास्तिकायाविलोकवत् । नियत्वादेव ‘शाश्वतः’ अक्षयः । पं. २४.
 30 ‘इज्ञाना’ संज्ञा ॥ पं. ३०. स्रकल्लुःखानां परमौषधमृतं यत् प्रवचनं—श्रुतं तस्यार्थतः प्रणेत्तुत्वाद् भगवतः ।

[पृष्ठ ४]

पं. ६. पशानुपूर्व्या अपश्चिम आधो महावीरः । पं. २२. यत् कर्मक्षयात् प्रभाजालं भगवच्छरीरात्तत्सुष्वापि दिक्षु निर्गच्छति तद् भ्रामण्डलमुच्यते, पृष्ठिभागे एव च तत् प्रदर्शयितुं शक्यते प्रतिमायाः ।

पं. ३०. ते पुण दुसमय० गाहा । 'ते' उपशाप्त-शीघ्र-समीगिर्बलिनः द्विसमयस्थितिकस्य सातस्य योगप्रत्ययिकस्य बन्धकाः, बन्ध-वेदानारूपद्विसमयस्थितिकस्येत्यर्थः । न पुनः 'साम्परायिकसातस्य' कथायनिमित्तस्य बन्धकाः, तेषां कथायामावात् ॥ 5

[पृष्ठ ६]

पं. २. बाष्ठा भ्रमिः चक्रधारा, नेमिसिन्धुः । पं. ३. चरकादिभिरिति, आदिग्रहणाच्चीरिकादिग्रहः । तत्र चाष्टिवाहकाः सन्तो ये भिक्षां चरन्ति ते चरकाः, यद्वा ये मुञ्जानाश्चरन्ति ते चरकाः । रथ्यापतितचीरपरिधानाः चीरिकाः, यद्वा येषां चीरमयमेव सर्वमुपकरणं ते चीरिकाः । सुप्रणिधानमेतदिति, सुपु-प्रकर्षेण नियते आलम्बने धानं-धरणं मनः-प्रयुतेरिति सुप्रणिधानं-मनःप्रवृत्तीनामेकाप्रताकरणमभिधीयते । पं. ११. "सञ्ज्ञायस्युनेमिधोसस्स" ति पाठापेक्षया 'नेमिनिर्घोषो वा' इत्युक्तवान् । पं. २४. कर्णिका बीजकोशरूपा पद्मसक्ता मध्यगण्डिकाशब्दवाच्या ।

[पृष्ठ ७]

पं. २. यथाशक्ति आ प्राणोपस्मात् तपश्चरति । पं. १५. कपिल-कणभसा-ऽक्षपादादीति, विशेषोऽय-मर्माषासुक्तः—

के वै शैवङ्गत्वानि, जैनैः पानां तु षोडश । क्रमेणाऽऽधारिका-भार्यधारिणस्त्रि-चतुःप्रमाः (?) ॥१॥ [15

कपिलः साङ्ख्यमतप्रणेता । पं. २४. धीबेल० ति [गा. ११] वेदिका-जलवोत्तरे बद्ध रमणं तल्लक्षणा जलवृद्धिलक्षणा वा वेदिकापर्यवसाना मर्यादा वा ।

[पृष्ठ ८]

पं. २३. चित्तकूडस्स ति [गा. १३] "चित्ती संज्ञाने" चित्तयते संज्ञायते वस्तु यैस्तानि चित्तानि ।

[पृष्ठ ९]

पं. ५. उदरिय ति [गा. १४] उदर्पिता इति व्याख्यातम् । पं. ११. गुहास्तु समवाया इति साधुवृन्दानि, श्रुतरनररूपणोपाध्याया वा गुहाः । पं. १३. संवरः प्रत्याख्यानरूपः स एव वरः उःसरः-निर्क्षरणं अन्धसां प्रसवः ।

[पृष्ठ १०]

पं. १८. 'रूपकं' नाम गार्थिकमात्रं छन्दोविशेषः । पं. २१. त्रिधि-प्रतिषेधद्वारेणेति, "जे जत्तिया उ हेऊ भवस्स ते जेव तत्तिया मोक्खे" [ओघनि० गा० ५३] इति वचनाद विधिः-आदरणीयः श्रेष्ठः पदार्थः मोक्षसाधकोऽपि भगवदादिकल्पः केषाञ्चिद् गुरुकर्मणां दूरत्वन्या-ऽभन्यानां गोशालक-सङ्गमादीनां संसारहेतुर्भवति । प्रतिषेधाश्रयोऽपि-अनादरणी-योऽपि कश्चिद् हरि-हरादिर्मिथ्यात्वगोचरः कस्यापि तदाचरणविमर्शादिना तपस्वियागेन मोक्षहेतुर्भवति इति निर्द्वैतमार्गहेतु-व्यतिरिक्तं न किञ्चिदस्ति ।

[पृष्ठ १४]

पं. २५. सुमुणियनिबा-ऽनिचमिति [४०] गाथायां यथा सक्त्सा धेनुरिति, धेनुदोग्धी तिर्यक्त्वा अजा-चडवादिः 30

१ कणाद । वैशेषिक । शंभ । इत्युत्पादि । जेट्टि० ॥ २ अक्षपाद । वैवायविक । पाण्डुपति । जेट्टि० ॥ ३ चर्ममय भोकन्द । क्लावाय जेट्टि० ॥ ४ काण्डमय, साऽपि क्लावायां भावते जेट्टि० ॥

सर्वाऽप्युच्यते । सचेतनस्य गुणाः पर्यायाश्च बाध्याः अचेतनस्य च । तत्र जीवद्रव्यस्य जीवत्व-चेतनत्वाद्यः सहवर्तित्वाद् गुणाः, नारकत्वादयश्च क्रमवर्तित्वात् पर्यायाः । अचेतनस्यापि वर्गाद्यः सहवर्तित्वाद् गुणाः, नव-पुराणादयश्च तस्य क्रमभाक्त्वात् पर्यायाः । तदुक्तम्—

सहवृत्ति गुणा क्रमवृत्ति पञ्चवा जीवत्सिगुण निरयाई । वण्णाइ पोगल्लुगुणा, पञ्जाया नव-पुराणाई ॥११॥ []

5

[पृष्ठ १५]

पं. ८. भाषामिधेया अर्था इत्यादि, सूत्रस्य हि त्रयो व्याख्याप्रकारा भवन्ति—भाषा विभाषा वार्तिकमिति । तत्र भाषा—
सुते जो जं सुत्तालावगनिष्कन्नं धात्वर्थमात्रमेव भाषते स भाषको भण्यते १ । जया तस्स सुत्तस्स जो दोहिं वा तिहिं
वा चडाहिं वा पगारेहिं अथपयाणि विभामइ सो विभासगो भण्णइ २ । जया सत्त्वपज्जवेहिं अर्थं भासइ तदा व्यक्तीकरण्णाद
वार्तिकफरोऽभिधीयते । अत एवोक्तम्—भाषामिधेया अर्थाः, अल्पभाषणविषया इत्यर्थः, बहुबहुनरभाषणविषयास्त्वितरे इत्यमीधामयं

10

विभागः । पं. १२. मुकुमालेत्यादिगाथा ४२—मुकुमालकोमलं—अतिमृदु तलं—चरणधोभागरूपं येषां ते तथा तान् ।
पादान् दूसगणिस्तकान् प्रणमामि । 'प्रशस्तलक्षणान्' चक्र-च्छत्र-पद्म-वज्र-चामर-पताका-शङ्ख-सीन-श्रीवत्स-मन्दर-स्वस्तिक-कलश-
वृषभ-सिंह-गज-प्रभृत्यन्तरसामुद्रिकशाखाभिहितलक्षणोपेतान् । प्रावचनिकाः—तत्कालोचितप्रकृत्यागमवेत्तारः मूर्यः तेषां सम्ब-
न्धिनः । ये पठनार्थमागतता अन्वयच्छीयास्साधवन्ते प्रतीकला अभिधीयन्ते, ते 'प्रणिपतितान्' प्रणतान्, अनेन बाहुश्रुत्यमुक्तम् ।
यदा तेषां प्रावचनिकानां दूसगणिनाम्नां मुकुमालादिबिरोधणविशिष्टान् पादान् प्रणमामीति देववाचक इदमाह ॥

15

[पृष्ठ १६]

पं. ४. अनुयोजयन्तोऽपि श्रुतादिनोपबुर्वन्तोऽपि अबोग्यं जनं दयालवो न खलु भवन्ति महीयांसः, कथममृताः
सन्तः ? न अवगतः परार्थसम्पादने उपायो यैस्तेऽनवगतपरार्थसम्पादनेोपाया सन्तः, येन हि परार्थसम्पादने उपायो ज्ञानो भवति
स एव दयालुर्भवति, नेतरः ॥ पं. ६. लापयं चाऽस्येति, 'लापयं' हीलां 'अस्य' अध्ययनश्रुतस्य असावयोग्यः सम्पा-
दयति, तच्च महतेऽनर्थाय । यत् उक्तम्—

20

अप्रशान्तमतौ शालसद्भावप्रतिपादनम् । दोषायामिनवोदीर्घे शमनीयमिव वद्रे ॥१॥
धर्मशास्त्रार्थवैतथ्यात् प्रत्यपायो महान् भवेत् । रौद्रदुःखीषजनको दुष्प्रवृत्तादिवीषधान् ॥२॥ []

पं. ८. आमेत्यादि । अल्पाधार पात्रं सिद्धान्तरहस्यं कर्तुं 'विनाशयति' धर्मादेर्भ्रंशयति, यथाऽपकषटनिश्चितं
जलं तमेव घटं 'विनाशयति' स्वरूपाद् भ्रंशयति ॥ पं. १०. तत्राधिकृतगाथायामिति, "सिल्वण-कुडग-चालणी"त्यादि
[गा. ४४] प्रागुपन्यस्ताम् । विनेयजनानुपह्राय चैनां सभास्यां व्याख्यानयाम् । सम्प्रयेव वयम् । तद्यथा—सेल्वण० गाथायां
25 'सेल' ति मुद्रसैलः पाषाणविशेषः, घन—मेघः, मुद्रसैलश्च घनश्च तदुदाहरणं प्रथमम् १ । 'कुट' घटः २ । 'चालनी' प्रतीता ३ ।
'परिपूणकः' सुषरीचिटिकागृहम् ४ । हंस-महिष-मेघ-मगक-जेटका-विडालयः प्रतीताः ५-१० । जाहकः—सेहुलकः ११ । गौः
१२ मेरी १३ आभीरी १४ चेति । योग्या-ऽयोग्यशिष्यविषयाणि चतुर्दशैताऽनुदाहरणानि इति प्रकृतगाथासङ्क्षेपार्थः ॥

उदाहरणं च द्विविधं भवति—चरितं कल्पितं च । तत्रेह प्रथमं कल्पितमुदाहरणम् । एतच्च भाष्यकारो विदुष्वन्नाह—

पं. १२-१३. उल्लेऊण न सक्को, गज्जइ इप मुग्गसेलओ रण्णे ।

30

तं संबट्टयमेहो गंतुं तस्सुप्परिं पडइ ॥ १ ॥

रषिउ सि ठिओ मेहो, उल्लो मि न व ति गज्जई सेलो ।

सेलसमं गाहिस्सं निव्विज्जइ गाहगो एवं ॥ २ ॥

इह कचिद्वरण्ये पर्वतासन्नप्रदेशे समन्तान्निविडो मुद्रवद् वृत्ताव-लक्षणात्वादिधर्मयुक्तः किञ्चिद् भूतले निम्नः किञ्चिदु
सप्रकाराधिककचिकायमानो बदरादिप्रमाणलघूपलरूपो **मुद्रशैलः** किलाऽऽसीत् । स च 'गर्जति' साक्षेपं जल्पति । कथम् ?
इत्याह—अहं 'आर्द्राकर्तु' जलेन मेतुं केनापि न शक्य इति । तत्र मुद्रशैलस्य सम्बन्धि गर्ववचः कुतश्चिन्मरदकल्पकूवा
संवर्तको नाम महामेघः 'तद्रवमवाहमपनयामि' इति सम्प्रधार्य तं **मुद्रशैलं** 'गत्वा' सम्प्राप्य तस्यैवोपरि 'पतति' निरन्तरं
मुशलप्रमाणघाताभिर्वर्षतीत्यर्थः । **संवर्तकमेघखोरसर्पिण्यां** शुभीभवति काले पूर्ववद्भूम्यान्नासनाथं वर्षतीत्यागमे प्रतिपाद्यते, तेन 5
भरतश्रेत्रस्य प्रचुरमपि सर्वमशुभानुभावं भूमिखस्ता-दाहादिकं प्रशस्तस्वकीयोदकेन संवर्धयति—नाशयतीति संवर्तक इत्युच्यते,
यतस्तस्य सम्बन्धि जलमतीव भूम्यादेर्द्राविकं वासकं च भवतीति विशेषतस्तस्येह ग्रहणम् । एवं च सत्ताहोरात्राणि महावृष्टिं
कृत्वा "ठिओ मेहो" ति 'स्थितः' इष्टेरुपरतोऽसौ मेघः । कया बुद्ध्या ? इत्याह—“खिल” ति 'श्रावित.' खण्डशो नीतो मयाऽसौ
मुद्रशैलः इत्यभिप्रायेणेत्यर्थः । पानीये चापसूते सुतरामुच्चलीभूतोऽसौ चिकचिकायमानो **मुद्रशैलः** पुनरपि गर्जति । कथम् ?
इत्याह—“उडो मि न व” ति आर्द्रोऽस्येह न वेति सम्यग् निरीक्षस्व भोः पुष्करावर्तक !, किञ्चित्येवमेव स्थितोऽसि ? तिलनुचत्रि- 10
भागमात्रमपि ममाघापि न भिद्यते इति । ततो लज्जितो विलक्षीभूतः स्वस्थानमुपाश्रितो मेघः ॥

तदेवं **मुद्रशैलोदाहरणमभिधायोपनयमाह—**

सेलसममित्यादि । यस्य वचनकाटिभिरपि चित्तं न भिद्यते, एकमन्यक्षरं तन्मन्यञ्च परिणमत्येत्यर्थः, स एवभूतः शैल-
समः—मुद्रशैलतुल्य इत्यर्थः । तं तथाभूतं शिष्यं ज्ञात्वाऽपि कश्चिद् प्राहयतीति प्राहको गुरुः—

आचार्यस्यैव तज्जाड्यं यच्छिष्यो नावबुध्यते । गावो गोपालकेनेव कुतीर्थेनावतारिताः ॥११॥ [] 15

'यथा तरोत्तं न शक्नुवन्ति ततो गोपालस्यैव तद् बाड्यम्, न तासाम्' इत्यादिभौकार्थविधिमितमतिगर्वाद् 'अहमसु प्राहयिष्ये'
इति प्रतिज्ञाय समागतः, महता च सत्सभेणाध्यापयितुमारम्भस्तथापि मुद्रशैलोपमः शिष्योऽक्षरमपि न गृह्णाति, न च मनागपि
स्वाग्रहप्रस्तवेन बुध्यते । ततश्चैवं यथा **पुष्करावर्तस्तथैव** सुचिरं ह्येगमनुभूय 'निर्विद्यते' परामन्यते, ततो विलक्षीभूतो लज्जितश्च
निवर्तते तदप्राहणादयमाचार्य इति ॥१॥२॥ एवभूतस्य च शिष्यस्य सूत्रार्थदाने आगमे प्रायश्चित्तमुक्तम् । कुतः ? इत्याह—

पं. १४. **आयरिण सुत्तन्मि य परिवाओ, सुत्त-अत्यपलिमंथो ।** 20

अनेसि पि य हाणी, पुट्टा वि न दुद्धया वंझा ॥ ३ ॥

एवं शैलसमस्यापि शिष्यस्य सूत्रार्थदानप्रवृत्ते आचार्यं 'सूत्रेऽपि च' आगमे 'परिवादः' अवर्णवादो लोकसमुद्यो भवति ।
तथा—अहो ! नास्य सूरैः प्रतिपादिका शक्तिः, नापि तथाविधं किमपि परिज्ञानम्, यतोऽमुमन्येकं शिष्यमवबोधयितुं न क्षमः;
आगमोऽयमीषां सम्बन्धी निरतिशयो युक्तिविकलश्च, इतरथा कथमयमेकोऽन्यस्याद् नावबुध्यते ? इत्यादि । तथा सूत्रार्थयोस्त-
रायसम्भवात् परिभन्धनं—मर्देन विनाशने सूत्रार्थपरिमन्धः, तच्छिक्षणप्रवृत्तस्य सूरैरान्नः सूत्रपठन-परावर्तन-व्याख्यानभङ्गो 25
भवतीत्यर्थः । अपरं च तदप्राहणप्रसक्ते सूरौ अन्येषां शिष्याणां सूत्रार्थहानि, तदग्रहणभङ्ग इत्यर्थः । न च बहुनाऽपि कालेन
तथाविधः शिष्यः किञ्चिदपि प्राहयितुं शक्यः । कुतः ? इत्याशङ्क्यात्रार्थे दृष्टान्तमाह—“पुट्टा वि” इत्यादि, नियमनेन नियन्त्र्य
स्तनेषु करैर्बहुधा स्पृष्टाऽपि बन्ध्या गौर्न खलु दुग्धदा भवति । यद्वा 'पुष्टाऽपि' शरीरोपचिताऽपि बन्ध्या गौर्दुग्धामना सती
दुग्धदा न भवतीति । एवं मुद्रशैलसमः शिष्योऽपि प्राहणकुशलनापि गुरुणा प्राग्भाषागोऽपि नाक्षरमपि गृह्णाति, तत्सत्ताहस्य
सूत्रार्थं न दातव्यौ, रेहिका-ऽऽमुष्मिककाप्लेशादिबहुदोषसम्भवात् । ददाति चेत् तर्हि समयोक्तप्रायश्चित्तमागिति । अत्राऽऽ- 30
ननु प्रोक्तोऽसौ मुद्रशैलद्वन्द्वः, केवलं न पाषाण-मेघादीनां जल्पोऽभिप्रायपूर्विकं च प्रवृत्ति-निवृत्ति इत्यलौकिकमेवेदम्, सत्यम्,
किन्तु पूर्वमुनिभिरैवात्रोक्तं प्रतिबिधानम्, तथा—

चरियं च कथियं चिय आहरणं दुविहमेव पण्णत्तं । अत्थस्स साहण्ट्ठा इंधणमिव ओयणट्ठाए ॥१॥ [पिण्डनि०गा० ६३०]
न वि अत्थियं न वि य होही उल्लावो मुगसेल-मेहाणं । उवमा खल्ल एस कया भवियज्जणविभोहणट्ठाए ॥२॥

[उत्तरा० नि० गा० ३०९, अनुयो० पत्र २३२]

इत्यलं प्रसङ्गेनेति ॥३॥ अथ मुद्रशैलप्रतिपक्षभूतं घनदृष्टान्तनाह—

5 पं. १५. **बुद्धे चि दोगमेहे न कण्हभोमाउ लोहए उदयं ।**
गहण-धरणासमत्थे इय देयमच्छित्तिकारिम्मि ॥ ४ ॥

यावता बृष्टेनाऽऽकाराविन्दुभिर्महती गर्गरी त्रियते ताकप्रमाणजलवर्षां भेषो द्रोणमेष उच्यते । तस्मिन् बृष्टेऽपि सति कृष्णा मूर्धिर्यत्र प्रदेशोऽसौ कृष्णभूमः प्रदेशस्तस्माद् 'न प्रलोठति' बह्वपि तद् मेवजलं पतितं न लुष्टिवाऽथत्र गच्छति, किन्तु तत्रैवान्तः प्रविशतीति भावः । एवं शिष्योऽपि स कश्चिद् भवति यो गुरुभिरुक्तं बह्वप्यवधारयति, न पुनरक्षरमपि पार्श्वतो गच्छतीति । एव-
10 भूते च सूत्रार्थग्रहण-धारणासमर्थं शिष्ये सूत्रार्थयोः शिष्य-प्रशिक्ष्यपरम्पराप्रदानेनाव्यवच्छेदकारिणि देवं सूत्रार्थज्ञातम्, नान्यस्मि-
नन्तराभिहितमुद्रशैलरूपे इति ॥४॥ अन्यथ-व्यतिरेकत्वकत्वादेकमेवेदमुदाहरणम् । अथ द्वितीयं कुटोदाहरणं विदृश्यन्नाह—

पं. १६-१८. **भावि्य इयरे य कुडा अपसत्थ-पसत्थभाविया दुविहा ।**

पुप्फाईहिं पसत्था, सुर-तेल्लाईहिं अपसत्था ॥ ५ ॥

वम्मा य अवम्मा वि य, पसत्थवम्मा उ ह्वीति उ अगेज्जा ।

15 **अपसत्थअवम्मा वि य, तप्पडिवक्खा भवे गज्जा ॥ ६ ॥**

कूपवयण-ओसण्णेहिं भाविया एवमेव भावकुडा ।

संविग्गेहिं पसत्था, वम्माऽवम्मा य तह चैव ॥ ७ ॥

कुटा—घटाः । ते च तावद् द्विविधा—एके आपाकोतीर्णा नूतना अग्याप्रियमाणत्वाद्वापि पुष्प-जल-नैलादिनाऽभाविताः,
अन्ये तु व्याप्रियमाणत्वाद् भाविताः । तत्र भाविता द्विविधाः—सुरभिपाटलाकुसुम-पट्वासादिप्रशस्तवस्तुभिर्भाविताः प्रशस्तभाविताः १
20 सुरा-तैलाद्यप्रशस्तवस्तुभावितास्त्वप्रशस्तभाविताः २ ॥५॥

प्रशस्तभाविताः पुनरपि द्विविधा—तद्वावं वमयितुं शक्या वाग्या, तद्विपरीतास्त्ववाग्याः । एवमप्रशस्तभाविता अपि
वाग्या-ऽवाग्यभेदद्वयादेव द्विविधाः । तत्र ये प्रशस्तवाग्या प्रशस्तभावं वमयितुं शक्यास्तेऽप्राह्या भवन्ति, अनादेयाः असुन्दरा
इति यावत् । तथा येऽप्रशस्तभावं वमयितुमशक्याः अप्रशस्तावाग्यास्तेऽप्यप्राह्या भवन्ति । "तपडिवक्खा भवे गज्जा" ति तेषां—
प्रशस्तवाग्यानामप्रशस्तावाग्यानां च ये प्रतिपक्षाः—प्रशस्तावाग्या अप्रशस्तवाग्याश्च ते 'प्राह्या' आदेयाः सुन्दरा भवन्ति ॥६॥

25 तदेवं द्रव्यकुटास्तावत् प्ररूपिताः । भावकुटा अपि प्रशस्ता-ऽप्रशस्तगुणजलाधारत्वात् शिष्यजीवा एवमेव भाविता-
ऽभावितादिभेदाद् द्रष्टव्याः । केवलमत्र पक्षे कुप्रवचना-ऽवसनादिभिर्भाविता अप्रशस्तभाविता उच्यन्त इत्यप्याहारः । ये तु
संविग्नैरेव साधुभिर्भावितास्ते 'प्रशस्ताः' प्रशस्तभाविता इत्यर्थः । "वम्माऽवम्मा य तह चैव" ति वाग्या-ऽवाग्यभावना यथा द्रव्य-
कुटपक्षे तथैव भावकुटपक्षेऽपि द्रष्टव्येत्यर्थः । सा चैवम्—प्रशस्तभाविता वाग्या अप्रशस्तभावितास्त्ववाग्याः एते उभयेऽप्यप्राह्याः,
उक्तविपरीतास्तु प्राह्या इति ॥७॥ तदेवमुक्तो भावितकुटपक्षः । अथाभावितकुटपक्षमधिकृत्याह—

30 पं. १९. **जे उण अभाविया ते चउन्विहा, अहविमो गमो अन्नो ।**

छिद्दकुड भिन्न खंडे सगळे य परूवणा तेसि ॥ ८ ॥

ये पुनरभाविताः कुटास्ते छिद्र-भिन्न-खण्ड-सकलमेदाद्यतुर्विधाः । अथवा कुटोदाहरणस्य भाविता-ऽभावितपक्षानिरपेक्ष
एवायमन्यद्विद्र-भिन्नादिको 'गमः' प्रकारो वर्तते । तमेवाह—"छिद्दकुडे"त्यादि, इह 'कुटः' घटः कोऽपि तावत् छिद्रः भवति, बुद्धे

सच्छिद्रो भवतीत्यर्थः १ अन्यस्तु 'मिनः' राजिमान् भवति २ तृतीयस्तु 'खण्डः' भग्नकर्णः ३ चतुर्थस्तु 'सकलः' परिपूर्ण एवेति ४ । एतेषां च चतुर्णामपि कुटुम्बानां दार्ष्टान्तिकमधिकृत्य प्ररूपगा स्वयमेव कार्या, यथा—कोऽपि शिष्यः श्रुतग्रहणमाश्रित्य छिद्र-घटकल्पो भवति, कश्चित् भिन्नघटकल्प इत्यादि वाच्यमिति ॥८॥ अथ कमप्राप्तं चालन्युदाहरणमभिधिसुम्नद्रशैल-च्छिद्रकुट-चालन्युदाहरणानां परस्पराभेदोद्भावकशिष्यमतं च निराचिकीर्पुराह—

पं. २०-२१. सेले य छिद्रु चालणि मिहो कहा सोऽमुद्रियाणं तु ।
छिद्रुऽऽह, तत्थ थिट्ठो सुमरिंसु, सरामि नेदार्णि ॥ ९ ॥
एगेण विसइ बीएण नीइ कणणेण, चालणी आह ।
धन्न त्थ आह सेलो, जं पविसइ नीइ वा तुज्झं ॥ १० ॥

5

शैल-च्छिद्रकुट-चालन्युदाहरणैः प्रतिपादिताः शिष्या अन्युपचारात् तथोच्यन्ते, तस्माद्भ्यात् । ततश्च शैल-च्छिद्रकुट-चाल-न्यभिधानानां शिष्याणां गुर्वन्तिके व्याख्यानं श्रुत्वोद्घायात्यत्र गतानां 'मिथः' परस्परं कथा समभवत् । कीदृशी ? इत्याह— 10
छिद्रैः। छिद्रघटकल्पच्छिद्रशिष्यः प्राह । किम् ? इत्याह—'तत्र' गुरुसमीपे उपविष्टस्तदुकमस्मार्षमहम्, इदानीं तु न किमपि स्मरामि । छिद्रघटोऽपि शेषैर्विध एव भवति, सोऽपि हि स्थानस्थितो मुद्रादिकं प्रक्षिप्तं धरति, अन्यत्र तूक्षिष्य नीतस्य तत्र प्राप्यते, अधर्निष्ठेण गलित्वा निःसृतत्वात्, अतस्तत्कल्पः शिष्योऽपीथमाहेति भावः ॥९॥

छिद्रकुटकल्पेन शिष्येणैवमुक्ते चालनीकल्पः प्राह—

एगेणेत्यादि । चालनीकल्पः शिष्यश्चालनी । स प्राह—मोः छिद्रकुट ! शोभनस्त्वं येन गुरुसमीपस्थेन त्वया तावद्वधरितं 15
तद्रचः पश्चादेव विस्मृतम्, मम तु गुर्वन्तिके स्थितस्यैकेन कर्णेन विशति द्वितीयेन तु निर्गच्छति, न पुनः किमपि हृदये स्थितम्, कणिकादिचालन्या अपि हि जलादिकमुपरिभागेन क्षिप्यते, अधोभागेन तु निर्गच्छति, न तु किमपि सन्तिष्ठते, अतस्तदुपमः शिष्योऽपीथमेवाऽऽहेति भावः । तदेवं छिद्रकुट-चालनीभ्यामेवमुक्ते मुद्रशैलः प्राह—धन त्येत्यादि, मुद्रशैलो वदति—धन्यावत्र युवाम्, 'यद्' यस्मात् कारणाद् युवयोस्तावत् कर्णयोर्गुरूक्तं किमपि प्रविशति निर्गच्छति वा, मम त्वेतदपि नास्ति, तदुकस्य सर्वथाऽपि मध्ये प्रवेशाभावात्, उपलस्यैर्विधत्वादेवेति भाव इति ॥१०॥ तदेवं चालन्युदाहरणस्य स्वरूपमुक्तम् । शैल-च्छिद्रघट- 20
चालन्युदाहरणानां परस्परं विशेषश्चाभिहितः । अथ चालनीप्रतिपक्षमाह—

पं. २२. तावसम्बरकरडिणयं चालणिपडिबक्वो, न सवइ दवं पि ।
परिपूणमम्मि उ गुणा गलंति, दोसा य च्छिट्ठं ॥ ११ ॥

चालनीप्रतिपक्षो भवतीति शेषः । किं तत् ? इत्याह—तापसानां भोजनादिनिमित्त उपकरणविशेषः खंउरकठिनकमुच्यते । तत्र किल वंशं शुम्भादिकं च द्रव्यमतिस्पर्शं कुट्टयित्वा कमठकाकारं कियते । इदं चातिनिविडवाद् 'द्रव' जलमपि प्रक्षिप्तं न 25
श्रवति, किन्तु सम्यग् धरति, एवं शिष्योऽपि यो गुरुरिग्राह्यतां सर्वमेव धरति, न तु विस्मरति स माहाः, चालनीसमस्त्वप्राहा इति भावः । अथ परिपूणकोदाहरणमाह—परिपूणेत्याद्युत्तरार्द्धम् । परिपूणको नाम—मुषरीचिट्टिकाविरचितो नीडविशेषः, तेन च किल घृतं गाल्यते, ततस्तत्र कचक्वमवतिष्ठते, घृतं तु गलित्वाऽधः पतति, एवं परिपूणकसदृशः शिष्योऽन्युपचारात् परिपूणकः । तत्र हि श्रुतसम्बन्धिनो गुणाः सर्वेऽपि घृतवद् गलन्ति, दोषास्तु घृतगतकचक्ववदवतिष्ठते, श्रुतस्य दोषानेव गृह्णाति, गुणास्तु सर्वथा परिहर्ति असौ, अतोऽयोमेव इति भावः ॥११॥ अत्र प्रेर्यमुच्यस्य परिहरन्नाह—

30

१ " बालिन्याः प्रतिपक्षस्तापसस्य भाजन खउरं विस्वरस-भाजातकरसाभ्यां लिमसाद् 'कठिन' अतिघ्रायेन घनम् " इति बृहत्कल्प-टीकायां मल्लविरयः १०३-४ पत्रे ॥

पं. २३. **सन्वणुप्यामन्ना दोसा हृ न संति जिणमए केह ।**

जं अणुवउत्तकहणं अपत्तमासज्ज व ह्वैजा ॥ १२ ॥

ननु 'सर्वज्ञप्रामाण्यात्' 'सर्वज्ञोऽस्य प्रवर्तकः' इति हेतोर्जिनमते दोषाः कचिदपि न सन्तीत्यर्थं, तत् कथमस्य कोऽपि दोषान् प्रहीष्यति? असत्त्वादेवेति भावः, सत्यम्, किन्तु यद्यपि जिनमते दोषा न सन्ति तथाप्यनुपयुक्तस्य गुरोर्वै कथनं—व्याख्याविधानं 5 तदाश्रित्य दोषा भवेयुरिति सम्बन्धः । अथवा 'अपात्रम्' अयोग्यं शिष्यमङ्गीकृत्य जिनमतेऽपि कुशित्योत्प्रेक्षिता दोषा भवेयुः, निर्दोषेऽपि हि जिनमतेऽपात्रमूताः शिष्या असतोऽपि दोषानुद्भावयन्त्येवेत्यर्थः । तथा च ते वक्तारो भवन्ति । तद्यथा—

पागयमासनिबद्धं को वा जाणह् पणीय केणेयं । किं वा चरणेणं तू दाणेण विणा उ ह्वइ ' नि ॥१॥

काया वया य ते बिय, ते चेव पमाय अणमाया य । मोक्खाहिगारियाणं जोइसजोगोहि किं कजं ? ॥२॥

[कल्पमाय्य गा. १३०३, ४९७९]

10 को आउरस्स कालो ! महल्लंवरभोयणे य को कालो ! । जह् मोक्खहेउ नाणं को कालो ! तस्सऽकालो वा ? ॥३॥

[निगीथमाय्य गा. १०] इत्यादि ।

असन्तश्च सर्वेऽप्यमी दोषाः,

बाल-श्री-मूढ-मूलाणां नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥१॥

पुत्र्यभणियं पि जं क्यु भणणं तत्थ कारणं अर्थि । पडिसेहो य अणुणा वयुविसंसेवल्लो वा ॥२॥

15 इत्यादिना शाब्दान्तरे विस्तरेण निराकृतत्वादिति ॥१२॥ अथ हंसोदाहरणव्याख्यामाह—

पं. २४. **अंथसणेण जीहाए कूचिया होइ ग्वीरमुदगम्मि ।**

हंसो मोत्तूण जल्ल आवियह पर्यं, तह सुसीसो ॥ १३ ॥

दुग्धं जलं च मिश्रयित्वा भाजने व्यवस्थाप्य कोऽपि हंसस्य पानार्थमुपययति, स च तन्मयं चञ्चुं प्रक्षिपति. तस्य च जिह्वा स्वभावत एवाम्ला भवति, तेन च जिह्वाया अम्लत्वेन हेतुभूतेनोदकमध्यगतं दुग्धं विनुल्लिवा 'कूचिका.' विन्दुरूपा बुदबुदा भवन्ती- 20 त्यर्थः; ततश्च जलं मुक्त्वा तद् बुदबुदीभूतं दुग्धमापिचति हंसः । तथा मुशित्योऽपि गुरोर्गल्लस्थानीयान् दोषान् पतिय्यस्य दुग्ध-स्थानीयान् गुणान् गृह्णातीत्यर्थ इति ॥१३॥ अथ महिषोदाहरणं विवृण्वनाह—

पं. २५. **सयमवि न पियह महिसो, न य जूहं पियह लोडियं उदगं ।**

विगगह-विगगहहि तहा अथकपुच्छाहि य कुसीसो ॥ १४ ॥

स्ययूथेन समं वनमहिषो जलाशये कचिद् गत्वा तन्मध्ये च प्रविश्योदतेन-परावर्तनादिभिस्तथा तजलमालोडयति यथा 25 फलफलितं सन्न स्वयं पिबति, नापि तसूयम् । एवं कुशित्योऽपि व्याख्यानमण्डलिकायामुपविष्टो गुरुणाऽप्येन वा शिष्येण सह विग्रहं-फलहं उदीरयति, विक्रयाप्रवृत्तं वा कञ्चिच्चालयति, सम्बद्धा-ऽसम्बद्धरूपाभिरनवरतमुपर्युपरिगृच्छामिष्य तथा कथञ्चिद् व्याख्यानमालोडयति यथा नाऽऽमनः किञ्चित् पर्यवस्यति, नापि शेषविनयानामिति ॥१४॥ मेघोदाहरणमाह—

पं. २६. **अवि गोपयम्मि वि पिबे सुडिओ तणुयत्तणेण तुंडस्स ।**

न करेइ कल्लुस तोयं मेसो, एवं सुसीसो वि ॥ १५ ॥

30 'अपि' इति सम्भावने । जलभृते कचिद् गोप्येऽपि "मुडिओ" ति सबुद्धितान्नः 'मेघः' उरूपकः पिबेजलम्, न च तत् फलघ्नं करोति । केन हेतुना ? इत्याह—'तनुकत्वेन' अग्रभागे श्लक्वात्वेन 'तुण्डस्य' मुखस्येति, अग्रपादाभ्यामवन्मय तीक्ष्णेन

मुखेन तथाऽसौ जलं पिबति यथा सर्वथैव कलषं न भवति । एवं सुशिष्योऽपि तथा गुरोः सकाशान्निभृतः श्रुतं गृह्णाति यथा तस्य परिषदो वा न कस्यचिन्मनोवाधादिकं काल्प्यं भवतीति ॥१५॥ मशक-जलूकोदाहरणद्वयविवृतिसमाह—

पं. २७. **मसउ ज्व तुदं जचाहएहिं निच्छुम्भए कुसीसो वि ।
जलुगा व अदूमैतो पियइ सुसीसो धि सुयनाणं ॥ १६ ॥**

यथा मशको जन्तून् 'तुदति' व्यथयति, ततश्च वलाञ्जलादिभिस्तिरस्कृत्य दूरीक्रियते, तथा कुशिष्योऽपि जात्यादिदोषोद्ध- 5
नैर्गुरुं 'तुदन्' व्यथमानो 'निष्कास्यते' परिह्रियत इति । जलुगा पुनर्थथाऽसूक् पिबति, न चासुगमन्तं व्यथयते, तथा सुशिष्योऽपि गुरुभ्यः श्रुतज्ञानं 'पिबति' गृह्णाति, न तु तान् जालुदधनादिना ढुनोतीति ॥१६॥ **विडाल्युदाहरणमाह—**

पं. २८. **छड्डुउं भूमिए खीरं जह पियइ दुट्टमज्जारी ।
परिसुद्धियाण पासे सिक्खइ एवं विणयभंसी ॥ १७ ॥**

यथा दुष्टमाज्जरी तथाविधस्वभावतया स्थाल्याः क्षीरं भूमौ छर्दयित्वा पिबति, न पुनस्तत्स्थम्, तथा च सति न तत् 10
तस्यास्तथाविधं किञ्चित् पर्यवस्यति । एवं विनयाद् भवत्यतीति 'विनयभंशी' विनयकरणमीकः कुशिष्यो गोष्ठाभाहिलवत् परिषदु-
त्थितानां विन्ध्यादीनामिव पार्श्वे 'छिच्छते' श्रुतं गृह्णाति, न तु गुरोः समीपे, तद्विनयकरणमवात् । इह च दुष्टमाज्जरीस्थानीयः
कुशिष्यः, भूमिकृपास्तु परिषदुत्थिताः शिष्याः, छर्दितदुग्धपासनसदृशे तु तद्रतयुतश्रवणमिति ॥१७॥ **जाहकोदाहरणमाह—**

पं. २९. **पाउं थोवं थोवं खीरं पासाइं जाहको ल्हिइ ।
एमेव जियं काउं पुच्छइ महमं, न खेएइ ॥ १८ ॥**

यथा भाजनमाते क्षीरं स्तोकं स्तोकं पीत्वा 'जाहकः' सेतुलको भाजनस्य पार्श्वानि लेडि, पुनरपि च स्तोकं तत् पीत्वा
भाजनपार्श्वानि लेडि, एवं पुनः पुनस्तावत् करोति यावत् सर्वमपि क्षीरं पीतमिति । एवं मतिमान् सुशिष्योऽप्रेतरं गृहीतं श्रुतं
जित-परिचितं श्रुत्वा पुनरप्यव गृह्णाति, एवं पुनः पुनस्तावद् विदधानि यावत् सर्वमपि श्रुतं गुरोः सकाशाद् गृह्णाति, न च
गुरुं खेदयतीति ॥१८॥ अथ **गोहृष्टान्त** उच्यते—

तत्र च केनापि यजमानेन वेदान्तगतप्रश्नविशेषोपाध्ययननिमित्तचरणशब्दवाच्येभ्यश्चतुस्र्यां ब्राह्मणविशेषेभ्यो गौः प्रदत्ता, 20
प्रोक्ताश्च तेन ते ब्राह्मणाः—वारकेणासौ भवद्विद्विगंधयेति । अन्येभ्योऽपि च चतुर्भ्यश्चरणद्विज्येभ्यो गौरैका तेन प्रदत्ता, तेषु च
तेन तथैवोक्ताः । तत्र च प्रथमद्विजानां मध्ये ज्येष्ठब्राह्मणेनैकेन गौः स्वगृहे नीत्वा दुग्धा, ततश्चारीप्रदानवेलायां चिन्तितं तेन ।
किम् ? इत्याह—

पं. ३०. **अन्नो दोज्जिह्मि कळुं, निरस्थयं किं बहामि से चारिं ? ।
चउच्चरणगवी उ मया, अवण्ण हाणी य बड्डयाणं ॥ १९ ॥**

तेनैतच्चिन्तितम्—हन्त । वारकप्राप्तोऽन्यो ब्राह्मणः कस्ये तावदेनां धेनुं धोक्ष्यति, तत् किमथ निरर्थिकामस्याक्षारी बहामि ?,
कस्येऽन्योऽपि हि तां दास्यति—इति विनिश्चयः न तस्याक्षारी प्रदत्ता । ततो द्वितीयदिने द्वितीयेनापि भिज्जानीयेन तथैव
कृतम् । एवं तृतीयदिने तृतीयेनापि, चतुर्थदिवसे चतुर्थेनापि तथैव चंपितम् । इत्थं च चारीविरहिता दुग्धमाना कतिपय-
दिनमध्ये चतुर्णां चरणानां सम्पन्निभनी सा गौर्धृता । ततश्च तेषां बट्टनां गोहत्या समभवत्, जने चावर्णवादो जातः । हानिश्च
तेषाम्, ततो यजमानादन्यस्माद्वा पुनर्गवादिनाभावाविति ॥१९॥

अन्यैस्तु यैश्चतुर्भिश्चरणैर्गोर्लक्ष्या तन्मध्ये प्रथमद्विजस्तां दुग्धा चारीप्रदानवेलायाम्चितयत् । किम् ? इत्याह—

[पृष्ठ १७]

पं. १. मा मे होज्ज अवण्णो, गोवज्झा वा, पुणो वि न दलेज्जा ।
वयमवि दोज्झामो पुणो, अणुग्गहो अण्णदुद्धे वि ॥ २० ॥

5 मा मूद् जनमध्ये ममावर्णवादः, गोहत्या वा मा भूत्, इतोऽस्याधारी प्रयच्छामि, यदि तु न दास्यामि तदा सञ्जात-
कलङ्केभ्योऽस्मत्स्यं पुनर्गवादिकं किमपि कोऽपि न दास्यति, अपरं चैतन्मै चारीप्रदाने को दोषः ? प्रत्युत गुण एव, यतधारी-
प्रदानपुष्टामेनां पुनरपि वारकेणाऽऽगतां वयमेव धोक्ष्यामः, यदि वाऽन्येनापि ब्राह्मणेन दुग्धायामेतस्यामस्माकमेवानुग्रह इति ॥२०॥

अथोपनयमाह—

पं. २. सीसा पड्डिच्छगणं भरो स्ति, ते वि य हु सीसगभरो स्ति ।
10 न करेति, सुच्छहाणी, अण्णन्थ वि दुल्लहं तेस्सि ॥ २१ ॥

गुरोर्विनयकर्मणि कर्तव्ये स्वगच्छदीक्षिताः जिन्यास्तावञ्चितयन्ति । किम् ? इत्याह—‘प्रतीच्छकानाम्’ उपसम्पन्नानामागन्तुक-
दिस्थानामस्यं गुरोर्विनयकरणलक्षणः ‘भरः’ आचारः, किमस्माकम् / किममेव साम्प्रतं बल्लभवादिति । तेऽपि च प्रतीच्छका एवं
सम्प्रधारयन्ति—निजदिस्थानामेवायं भरः, किमस्माकमागन्तुकानामथ समागतानामन्येषुत्रिगमिषुणाम् ? इति । एवं सम्प्रधार्थे
उभयेऽपि गुरोर्न किञ्चिद् विनयवैयार्ह्यादिकं कुर्वन्ति । ततश्च गुरुष्ववसीदसु तेषां मूत्रा-श्रद्धाति, अन्यत्रापि च गतानां ‘तेषां’
15 दुर्विनीतानां दुर्लभं सूत्रमर्थश्च । उपलक्षणवादन्त्येऽन्यवर्णवादादयो दोषाः स्वयमेवाभ्युद्धाः । अयं च दुर्विनीतजिन्योपनयः कृतः ।
सुविनीतविनेयोपनयस्तूकविपर्ययेण स्वयमेव कर्तव्य इति ॥२१॥ भेरीद्वहान्तमाह—

पं. ३-६. कोमुइया तह संगामिया य उब्भुइया य भेरीओ ।
कणहस्साऽऽसि ण्हु तथा, असिबोवसमी चउत्थी उ ॥ २२ ॥

मक्क पसंसा, गुणगाहि केसवा, नेमिवंद, सुणदंता ।
20 आसरयणस्स हरणं, कुमारभंगे य, पुयजुद्धं ॥ २३ ॥

नेहि, जिओ मि स्ति अहं, असिबोवसमीए संपयाणं च ।
छम्मासिय घोसणया पसमइ, न य जायए अन्नो ॥ २४ ॥

आगंतु वाहिस्वोभो, महिड्डिह मोल्लेण, कंध. दंङ्गया ।
अट्ठम आराहण, अन्न भेरि, अन्नस्स ठवणं च ॥ २५ ॥

25 आसां भावार्थः कथानकेनोच्यते—द्वारचत्यां नगर्यां वामुदेवस्य रात्र्यं पालयतो गोशर्षित्रीखण्डमथो देवतापरिगृहीतास्तिलो
भेर्भ्य आसन् । तद्यथा—कौमुदिकी साङ्ग्रामिकी औद्भुतिकीति । तयाऽऽप्य कौमुदीमहोत्सवाद्युत्सवज्ञापनार्थं वाद्यते, द्वितीया
सङ्ग्रामकाले समुपस्थिते सामन्तादीनां ज्ञापनार्थं वाद्यते, तृतीया पुनरुद्भूते आगन्तुके कस्मिंश्चित् प्रमोजने सामन्ता-ऽमात्यादि-
लोकस्थैव ज्ञापनार्थं वाद्यते । चतुर्थ्यापि गोशर्षित्रीखण्डमयी भेरी तस्याऽऽसीत्, इयं तु षट्पद्यमासपर्यन्ते वाद्यते, यश्च तच्छब्दं
श्रुणोति तस्यातीतमनागतं च प्रत्येकं पाष्मासिकमशिवसुपशाम्यति ॥२२॥ इयं च प्रकृतोपयोगिनी चतुर्था भेरीति तदुपचित-
30 लिख्यते—कदाचित् सौषर्मदेवलोके समस्तामरसमापुःसरमभिहितं शक्रेण—

पेच्छ अहो ! हरिपुमुहा सपूरिसा दोसल्लक्खमञ्जे वि । गिण्हंति गुणं चिय, तह न नीयजुञ्जेण जुञ्जंति ॥१॥

एयं असदहंतो कोहं सुरो चित्तए, किहं पु एयं । संबवइ ? जं अगहिंउं परदोसं चिट्टए, कोहं ॥२॥

इयं चित्तिञ्जा इहहं समागओ, तो विउत्थए एसो । वीमच्चकसणवण्णं अइदुत्तमंयं मयगमुत्तयं ॥३॥

तस्स य मुहं विउत्थइ कुंदुज्जलपवरदसणरिंछोळि । नेमिजिगवंदण्णं चळियस्स पहम्मि हरिणो य ॥४॥

तं उवदंसइ सुणयं, भगं गंवेण तस्स हरिसेणं । सयलं पि उत्थेणं बच्चइ, कण्हो उण सरूवं ॥५॥

विचिहं भावंतो पोगल्लाण बच्चइ पहेण तेणेव । ददूण सुणयरूवं पभणइ गरुयत्तणेणेवं ॥६॥

अइमसिगकसिगक्खं चले व्व बयणं इमस्स पेच्छ अहो ! । मुत्तावलि व्व रेहइ निम्मलजुहा दसणपंती ॥७॥

अहं चित्तियं सुरेणं, सब्बं जं अमरसामिणा भणियं । नूण सुणं चिय गरुया पेच्छन्ति परस्स, न हु दोसं ॥८॥

अहं अनदिणे देवो तुरयं अवहरइ वल्लहं हरिणो । सेनं च तस्स सयलं विणिजियं तेण कुढल्लगं ॥९॥

तो अप्पणा वि चिण्हू तुरयस्स कुदावयम्मि पडिल्लगो । अहं देवेणं भणियं, जिण्णित्तं घेयंति रयणाइं ॥१०॥

तो जुञ्जामो ति भणेइ केसवो, किंतु रहवेरं अहयं । तो गेण्ह तुमं पि रहं जेण समाणं हवइ जुञ्जं ॥११॥

नेच्छइ एयं देवो, तुरएहिं गयाइएहिं वि स जुञ्जं । जा नेच्छइ ता भणिओ हरिणा, तो भणसु तुममेव ॥१२॥

देवेण तओ भणियं, परम्मुहा दो वि होइऊण पुणो । जुञ्जामो पुयपाएहिं, भणइ तो केसवो देवं ॥१३॥

अहं एवं तो विजिओ अहयं तुमए, तुंगमं नेहिं । जुञ्जामि पुणो कहमवि न हु एरिसनीयजुञ्जेणं ॥१४॥

संजायपच्चओ सो पच्चक्खो होइऊण तो देवो । भणइ, अमोहं देवाण दंसणं, भणसु कं पि वरं ॥१५॥

अहं भणइ केसवो, असिक्खममणिं तो पयच्छ महं मेरिं । दिण्णा य सुरेगाऽऽमणवइयरं साहिंउं च गओ ॥१६॥

छहं छहं मासाण सा य वादज्जए, तहिं मेरी । जो सुणइ तीए, सदे पुत्तुपन्नाउ वाहीओ ॥१७॥

नम्सति तस्स, अवराओ तह य न हु होति जाव छम्मासा । अहं अनया कयाई वणिओ आगंतुओ कोहं ॥१८॥

दाहज्जेरं भणियं अभिमूलो मेरिरक्खयं भणइ । दीगारसयसहस्सं गेण्हसु महं देसु पल्लमेगं ॥१९॥

मेरीए छिदिऊणं दिण्णं तेणावि लोभवसणेणं । अणेण चंदणेण य मेरीए, थिम्मलं दिन्नं ॥२०॥

इयं अनया वि दिंतेण तेण कंधीकया इमा मेरी । अहं अनया य असिक्खे हरिणा ताडाविद्या एसा ॥२१॥

कथत्तणेण तंसे सदो मुखइ न हरिसभाए वि । कंधीकरणवइयरो विण्णाओ केसवेण तओ ॥२२॥

माराविओ य सो मेरिरक्खओ, तेण अट्टमं काउं । आराहिओ स देवो, अजं मेरिं च सो देइ ॥२३॥

अजो य केसवेणं कओ तहिं मेरिपालओ, सो य । रक्खइ तं जत्तेणं, लहइ य लामं च तो हरिणो ॥२४॥

इहं केयमुपनयोऽपि द्रष्टव्यः—यः शिष्योऽसिक्खोपज्ञमिकाभेरीप्रथमरक्षक इव जिन-गणधरप्रदत्तां श्रुतरूपां मेरी परम-

तादिधिगलकैः कर्थाकरोति स न योग्यः, यस्तु नैवं करोति स द्वितीयभेरीरक्षक इव योग्य इति ॥२३॥२४॥२५॥

अथाऽऽभीरीदृष्टान्तं विष्टवनाह—

पं. ७. **मुखं तथा अगहिए, दुपरिग्गहियं कयं, तथा कलहो ।**

पिट्ठण, अइच्चिर, विक्किय गएसु चोराऽऽय, ऊणऽऽयो ॥ २६ ॥

इहं च कथानकेन भावार्थं उच्यते । तपथा—कुतश्चिद् प्रामाद् गोकुलाद्या आभीरीसहित आभीरो घृतवारकाणां गन्त्री ३० भूत्वा विक्रयार्थं पत्तने समागतः । विक्रयस्थाने च गन्त्या अषस्ताद् भूमौ आभीरी स्थिता, आभीरस्तूपरि व्यबस्थितस्तस्या घृतवारकं समर्पयति । ततश्चानुपयोगेन समर्पणे ग्रहणे वा घृतवारके भग्ने आभीरी प्राह—भग्नाश ! नगरतरुणीनां मुखान्यवलोक्यमानेन त्वथा

धृतवारकोऽयं मयाऽग्रहीत एव मुक्तस्ततो भवनः । आभीरस्त्वाह—रण्डे ! नगरयूनां वदनानि वीक्षमागया त्वयैव दुष्परिग्रहीतोऽयं
 कृतस्ततो भवनः । इत्युभयोरेपि कण्ठ-समभवत् । विहिता च तेनाऽऽभीरी । कलहयतोश्च तयोस्त्यदापि घृतं बहु छर्चितम्, उद्धरित-
 शेषेण च घृतोत्स्रोऽस्योऽयूतो लब्धः । इतरेषु च सार्थकेषु घृतं विक्रीय गतेषु तयोरेकाकिनोर्गच्छतोर्धृतद्रम्मा गन्त्री बलीवदाश्च
 सर्वै तस्करैरपहृतमिति ॥२६॥ एवं दृष्टान्तमभिधायोपनयमाह—

5 पं. ८. **मा निण्हव इय दाउं, उचउज्जिय देहि, किं विचिंतेसि ? ।
 विचामेलियदाणे किलिस्ससे तं च हं चेव ॥ २७ ॥**

चिन्तनिकावस्थायां वितथं प्ररूपयन्वीयानो वा गुरुणा शिक्षितः शिष्यो जगाद—‘त्वयैव ममेथं व्याख्यातम्, पाठितो
 वा त्वयैवैवंविधमहम्, अतस्तवैव दोषोऽयम्, किं मां शिक्षयसि ? । आचार्य प्राह—न मयैवमुपदिष्टम् । कुशिक्षो ब्रवीति—हन्त !
 साक्षादेव मम पुत्रसारमिथं सूत्रमथ वा दुस्वा मूर् ! मा निहोपीस्त्वम् । इत्थमुक्त आचार्यः किमप्यन्तर्यायन् पुनरप्युक्तः शिष्या-
 10 भासेन—किं बलीवदात् पातित इव चिन्तयसि ! भव्यगत्या ‘उपयुज्य’ उपयुक्तो भूत्वा देहि सूत्रा-ऽर्थं, ‘व्याख्यावेदितदाने’ वितथ-
 सूत्रार्थप्रदाने केवलं त्वं अहं च क्लेशमेवानुभवाव । तद्विथं स्वदोषाप्रतिपन्नौ गुरुदोषोद्भावने वाऽऽभीरमित्युनस्येव गुरु-शिष्ययोः
 कलह एव प्रवर्तते । तथा च सति व्याख्याव्यवच्छिन्ति-सूत्रार्थहान्यादयो दोषाः ॥ अत्र प्रतिपक्षः स्वयमेव दृश्यः । तत्राहि—

अयोऽय्याभीरः किल सकलत्रस्त्यैव कापि नगरे घृतविक्रयार्थं गतः । कलत्रस्य च वारक रार्मापिने भग्ने च ‘अहो !
 मयाऽनुपयुक्तेन सर्मापिनेऽयम्’ इति बुवाणो भ्रमिति गन्ध्याः समुत्तरीयं करैरकैरुतं सवृणोति । भार्यापि ‘विम्व मयाऽनुपयुक्तया दुष्प-
 15 रिग्रहीतः कृतोऽसौ तेन भग्नः’ इति वदन्ती तथैव तत् सवृणोति । ततश्चाद्योन्यं कल्लेऽज्ञाते उभयसविख्या घृतं शीघ्रमेव विक्रीतम् ।
 सार्थकैश्च सह क्षेमेण स्वस्थानं जम्तुः । एवं गुरु-शिष्या अपि स्वदोषं प्रतिपद्यमाना पश्यते तु निहुवाना येऽद्योन्यं न विवदन्ते
 त एव सूत्रार्थप्रदान-प्रहणयोर्योग्या भवन्ति निर्गमदिलाभभागिनश्चेति ॥२७॥

तदेवं योग्याऽयोग्यान् गुरुन् शिष्यांश्चोपदेश्योपसंहारपूर्वकं तत्कलमाह—

पं. ९. **भणिग्या जोग्गा-ऽजोग्गा मीसा गुरवो य, तन्थ दोण्हं पि ।
 20 बेयालियगुण-दोमो, जोग्गो जोग्गस्स भासेज्जा ॥ २८ ॥**

भणिता योग्या-ऽयोग्या गुरु-शिष्याः । तत्र ‘दयोरीप’ गुरु-शिष्योर्विचारितगुण-दोषयोर्योग्यो गुरुर्योग्याय शिष्याय सूत्रा-ऽर्थं
 भाषेतेति ॥२८॥

पं. १६. ‘अञ्जिका’ परिज्ञानरहिता । पं. २१. पगर्हमुद्धेयादिगाथा—अञ्जिका प्रकृत्या मुग्धा भवति । कुतः प्रह-
 त्वा मुग्धा भवति ! ‘मित्यज्ञावय’ ति छागगण्डः सर्वत्र सम्बन्धते, ततो मुग-सिंह-कुक्कुटशाबं—लघु मुगावफयं तदुक्ता, अत्यन्तुल्लव-
 25 साप्यात् तसदृशी येत्यर्थः । सहजरत्नमिवासंस्कृता ‘मुखसंज्ञाया’ मुखप्रज्ञापनीया ‘पुणैः’ गुरुबहुमानादिभिः समृद्धा । अन्यच्च—
 जा खलु अभाविद्या कुम्सुईहि न य ससमण, गहियसारा । अक्किसेकग सा खलु बद्धं छकोडियुद्धं व ॥१॥

[कल्पभाष्य गा० ३६८]

पट्टकोणविशुद्धं ‘वज्रमिव’ हीरक इव विशुद्धा या सा खल्वज्ञायकपर्षदिनि वाक्यशेषः ॥

पल्लवप्राहिच्चादिकं च महतेऽनर्थाय, सम्पूर्णश्रुताभावात् । तदुक्तम्—

30 पल्लवप्राहि पाण्डिय, कयकीतं च मैथुनम् । भोजनं च फेयत्तं, तिष्ठः पुंसं विडम्बनाः ॥१॥

अज्ञः सुखमाराध्यः, सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः । ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि नरं न रञ्जयति ॥२॥ [भर्तृहरिविज्ञाती १.२]
अत्राऽऽपर्षदद्वयं योग्यम्, तृतीया त्वयोग्येति ॥

[पृष्ठ १८]

- पं. १. नाणमित्यादि । पं. २. सामान्य-विशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधो ज्ञानं **संविद्यु**च्यते । करणा-
ऽपादाना-ऽधिकरण-कर्तृसाधनोऽपि ज्ञानग्रन्थो व्युपाद्यः । नवरं कर्तृपक्षे ज्ञान-ज्ञानिनोः कथञ्चिदन्वयतिरकादात्मैव ज्ञानम्, जानाति 5
स्वं रूपं बाह्यमावाधेति ज्ञानम्, प्रदीपवत् स्व-परावभासिवाद् ज्ञानस्येति भावः । अत एवाऽऽह— पं. ३. **स्व-विषयेति**
स्व-विषययो—आत्म-बाह्यार्थयोः सवेदनं रूपं यस्येति विग्रहः ॥ पं. ७. क् च इ च इत्—अनुबन्धो यस्य प्रत्ययस्येति विग्रहः,
कानुबन्धे डानुबन्धे चैत्यर्थः । अजादिगणश्च अञ्ज अजाद्यत् तस्मात्, अजादीनां तद्व्याकारान्तानां च टापिति ज्ञियामा प्रवर्तते ।
पं. १०. **कुव्याख्येति**, 'विष इत्यकारान्तोऽयम्' इति **केचिदाहुः** तदस्य न सम्भतमिति रूपसिद्धिर्दार्श्यात् ॥
- पं. १२. **अस्यं** ० गाहा—इहोपचारादर्थप्रत्यायनहेतुत्वाच्छब्द एव खल्वर्थोऽत्र, ततः शब्दमेवार्थप्रत्यायकमर्हन् भाषते, न तु 10
साक्षादर्थम्, तस्याशब्दरूपत्वेनाभिलपितुमगम्यत्वात् । गगमृतोऽपि च शब्दात्मकमेव श्रुत ग्रन्थिति 'निपुणं' सूक्ष्मं बह्वर्थं वा ।
तद्व्युत्पन्नयोः कः प्रतिविशेषः / इति चेत्, उच्यते—स हि भगवान् विगिष्टमतिसम्पन्नगणपरापेक्षया प्रमूर्तार्थमर्थमात्रं स्वल्पमेवाभिधत्ते,
बीजमात्रतया, न वितरजनसाधारणं ग्रन्थगामिप्रति, प्रमूर्तार्थनीर्षकभाषितस्य गणपरैर्विस्तीर्णतया सूत्रकरणमिति विंशो इति
गाथार्थः ॥ पं. १८. **तत्रेति** ज्ञानपञ्चकम-ये । आभिनिबोधिकज्ञानमित्यस्यायमर्थः—अभिमुन-—योग्यदेशावस्थितायापित्री,
अर्थाभिमुखः अर्थबलायानलेन तस्मान्नीयकोद्भव इत्यर्थः । **'नियतः'** स्वस्वविषयापेक्षी, तेन श्रोत्र-चक्षुर-सना-घ्राण-स्पर्शानामाभि- 15
न्द्रियाणां शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शाः स्वविषया भावतया नियताः, न वितरस्य विषयमितरद् गृह्णाति यो बोधः सोऽभिनिबोधः,
अभिनिबोध एवाऽऽभिनिबोधिकम्, विनयादिपाठात् स्वार्थे इकणिति, यथा विनय एव वैनयिकमिति । यद्वा नात्र स्वार्थिकप्रायस्य
एव किन्तु यथाघटमानमन्थयाऽपि व्युपाद्यम् । पं. १९. **अभिनिबुध्यते** तदित्यादि, ननु कर्तरामन्तरं कर्म न भवति,
अभिनिबुध्यते तदित्यत्र तु मतिज्ञानं कर्मास्ति, न तु कर्ता, तत् कथमिदं घटते ' इत्याह— प. २०. **तस्य स्वसंविदित-**
रूपत्वादिति, स्वयमेव ज्ञानं नीलादिप्राहकत्वेनात्मानं व्यवच्छिनत्ति, न बाह्यो ज्ञानपरिच्छेदकः कर्ताऽन्वेषणीय इति भावः । ननु 20
'अोदनं पचति देवदत्तः' इत्यादियु भेदेनैव कर्म-कर्तृत्व्यवहारो दृष्टः, अत्र तु तदेव ज्ञानं परिच्छेदकं तदेव च परिच्छेद्यमिति भेदानावात्
कथं तदव्यवहारः ? इत्याशङ्क्याऽह—**भेदोपचारादिति**, तन्न प्रदीपवत् प्रकाशस्वभावबोधोपपत्त इत्यसन्नपि कर्तृ-कर्मभावेन भेद
उपचर्यते इति भावः । यथा ज्ञानं कर्तृ स्वं रूपमभिनिबुध्यते इत्येकस्यैव कर्तृत्वं कर्मत्वं स्यात् । तदेवमाभिनिबोधिकशब्दवाच्यं
ज्ञानमुक्तम् । अथवा ज्ञानं क्षयोपशम आत्मा वा तद्वाच्य इति दर्शयति—करणादिसाधनतया अभिनिबुध्यते घटादि वस्तु आत्मा
'**अनेन**' प्रस्तुतज्ञानेन तदावरणक्षयोपशमेन वाऽभिनिबोधः, स एवाऽऽभिनिबोधिकम् । पं. २१. अभिनिबुध्यते **'अस्मात्'** 25
प्रकृतज्ञानात् क्षयोपशमाद्वा । पं. २२. **'अभिनिबुध्यते'** अवगच्छति वस्तु आत्मा 'अस्मिन्' अधिष्ठानज्ञाने क्षयोपशमे वा
सति आभिनिबोधिकम् । पं. २३. यद्वा 'अभिनिबुध्यते' वस्तु अवगच्छति आत्मैवाभिनिबोधः, स एवाऽऽभिनिबोधिकम् ।
नन्वात्म-क्षयोपशमयोरभिनिबोधिकशब्दवाच्यत्वे ज्ञानेन सह कथं सामानाधिकरण्यं स्याद येन कर्मधारयो युज्येत ? सत्यम्, किन्तु
ज्ञानस्याऽऽस्मात्प्रत्ययत्वात् क्षयोपशमस्य च ज्ञानकारणावाद्युपचारात्तोऽत्रापि पक्षे आभिनिबोधिकशब्दो ज्ञाने वचते, ततश्च **आभिनि-**
बोधिकं च तद् ज्ञानं चेति कर्मधारयोऽऽहुः १ ॥ पं. २४. **भूयते**ऽसाविति श्रुतं शब्दः । नन्वभिलाषकविनार्थमहण- 30
प्रत्ययो लब्धिविशेषः श्रुतम्, तदेव च ज्ञानम्, तत् कथं शब्दः श्रुतं स्यात् ? इत्याह—**भावश्रुतेत्यादि**, श्रुतज्ञानकारणं शब्दोऽपि
श्रुतमुच्यते ।

- पं. २६. यदा श्रुणोतीति श्रुतमात्मैवोच्यते, ज्ञान-ज्ञानिनोः कथञ्चिदव्यतिरिक्तात् श्रुतोपयोगपरिणामयुक्तः श्रुतं भवति, तदत्रापि शब्दस्य श्रुतकारणात्वात् क्षयोपशमस्य च ज्ञानहेतुत्वाद् आत्मनश्च कथञ्चित् तदव्यतिरिक्ताद् उपचारतः श्रुतं च तद् ज्ञानं चेति समासो युज्यते २ । पं. २८. अवशब्दो अद्यःशब्दार्थः मर्यादार्थश्च । 'अवधीयते' अधोऽधो विलुप्तं परिच्छिद्यते रूपि वस्तु 'अनेन' ज्ञानेनेत्यवधिः । यदा अत्र-रूपिद्वयमर्यादाया धीयते-परिच्छिद्यते वस्तुनेनेत्यवधि । पं. २९. अव-
5 धीयते 'अस्माद्' ज्ञानाद् जीवेन साक्षाद् वस्तु इत्यवधिः । पं. ३०. अवधीयते जीवेनास्मिन् सति वस्तु इत्यवधिः । अवधानं वाऽवधिः-साक्षादर्थपरिच्छेदनम् । पं. ३२. पर्ययनं-सर्वतः परिच्छेदनं पर्ययः । क् पुनरसौ / इत्याह—

[पृष्ठ १९]

- पं. १. मनसीत्यादि, मनसि प्राथमे मनसो वा प्रादशस्य सम्बन्धी पर्ययो मनःपर्ययः । पं. ३. यदा मनःपर्यायज्ञान-
मित्युच्यते । तत्र "इण् गतौ" अयन आयो लानः प्राप्तिरिति पर्याया, परि.-समन्तादायः पर्यायः, मनसः पर्यायास्तेषु ज्ञानम् ।
10 यदा संज्ञिभिर्जीवैः काययोगेन गृहीतानि मनःप्रायोग्यवर्गणापुद्गलद्रव्याणि चिन्तनीयवस्तुचिन्तनव्यापुतेन मनोयोगेन मनस्त्वेन परिणमत्याऽऽलम्ब्यमानानि मनोऽसिःशुच्यन्ते । तत्रश्च जीवैर्वस्तुचिन्तने व्यापारितानि मनोऽसि पर्यति-परिच्छिन्नति मनःपर्यायम्, "कर्मोद्यण्" [पा. ३-२-१] तस्य कथञ्चित् कर्तुरनन्यत्वात् कर्तृत्वविवक्षा । कर्ता वा आत्मा यथोक्तानि मनोऽसि पर्यति अनेनेति मनःपर्यायम्, "अकर्तारि च" [पा. ३-३-१९] इत्यादिना घञ्, तत् पुनस्तदावरणक्षयोपशमञ्चो लब्धिविशेषस्तदुपयोगो वा विषय-
ग्रहणात्मकः । यैद्वाऽननं-गमने षेटनमित्यवः, परि.-समन्तादवः पर्ययः, मनसि मनसो वा पर्यया मनःपर्यया', तेषां तेषु वा
15 इदमित्यभूतमेनेन चिन्तितमित्येवंरूपं ज्ञान मनःपर्ययज्ञान मनःपर्यायज्ञानमिति वेति । इदं चेत्यादि, अद्वै तृतीयं येषां तेषु तृतीया द्वीपाः, ते च समुद्रौ चार्धतृतीयद्वीप-समुद्राः, तेषामन्तः-मयं तत् तथा, तत्र वर्तन्ते ये तेषु तृतीयद्वीप-समुद्रान्तर्वर्तिनः, ते च ते संज्ञिनश्च तेषां मनोगतानि-मनस्त्वेन परिणमत्य मुक्तानि यानि द्रव्याणि तैरेव तात्यालम्बन्ते-आश्रयति अर्थपरिच्छेदकतया यद् ज्ञानं तत् तदाऽलम्बनम् । प. ५. केवलमित्यादि, "केवलमेगं मुद्रे सकलमसाधारण अणनं च ।" [विशेषा. गा. ८४] इति वचनात् केवलशब्द एकार्थपञ्चकवृत्तिरिति क्रमेण व्याचष्टे । तत्र केवलमिति कोऽर्थः / असाहायम् इन्द्रियादिसाहाय्यानेपेक्षित्वा-
20 देकमित्यर्थः, तद्भावे शेषच्छाद्यस्थिकज्ञाननिवृत्तेर्वाऽसाहाय्यम् । अत एवाह-मन्यादिज्ञाननिरपेक्षम् । केवलं शुद्धं निर्मलमित्यर्थः, सकलावरणमलकलङ्कविगमसम्भूतत्वात् । सकलं वा केवलम्, परिपूर्णमित्यर्थं, सम्पूर्णद्रव्यादिश्रेयप्राप्तिहात् ।

पं. ६. तत्प्रथमतयैवेति, यो येन भावेन पूर्वं नासीद्विदानी च जातः स तेन भावेन तत्प्रथम उच्यते तेन प्रथमः, सा चासौ प्रथमता चेति वेति विग्रहः । असाधारणं नादशापरज्ञानाभावाद अनन्यसदृशम् । पं. ७. अनन्तं अप्रतिपातित्वेना-
विद्यमानपर्यन्तं ज्ञेयानन्तत्वाद्वा अनन्तं केवलमुच्यते ।

- 25 पं. ९. आह्वेत्यादि, एतेषु मध्ये आदौ मतिश्रुतोपन्यासः किमर्थः, उच्यते, स्वाम्यादिकारणपदकं प्रतीत्य मति-श्रुतयो-
रुपन्यासः, नवरामिनिबोधिकं क्षीयत्तिकायादिमतिप्रधानं बान्मनिरप्युच्यते । कालो द्विधा—नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च । स चायं द्विविधोऽन्यन्यस्तुल्य एव. नानाजीवापेक्षया द्वयोरपि सर्वकालमनुच्छेदात्, एकजीवापेक्षया तृभयोरपि निन्तरसात्तिक-
सागरोपमषट्पाटस्थितिकव्यनात्रैभिधाप्यमानत्वात् । कारणमपीन्द्रियमनोऽलम्बनं स्वावरणक्षयोपशमस्वरूपं च द्वयोरपि समानम् ।
उभयस्यापि "सम्बन्धं सम्मत्तं" [आव० नि० गा० ८३० विशेषा० गा० २७५१] इत्यादिना सर्वद्रव्यादिविषयत्वाद् विषय-
30 तुल्यता । पं. १६. तत्र आदेशत इति, आदेशः-प्रकारः, स च सामान्यतो विशेषतश्च । सामान्यतो द्रव्यजाति जानीते, विशेषतो धर्मास्तिन्कायादेरेव देशादिविभागं जानीते । पं. १७. इन्द्रियादिपरिनिमित्तत्वाद्बुधयोः परोक्षत्वसमता ।

पं. १८. ननु यथनयोः परस्परेभ्यं तुन्यता तर्होक्त्र द्वयोःस्युपन्यासोऽस्तु, आदावेष्वेव तु तदुपन्यासः कथम् ? इति, उच्यते, मति-श्रुतज्ञानसद्भावे एव शेषावध्यादिज्ञानलाभादादौ तदुपन्यासः, नहि स कश्चित् प्राणी भूतपूर्वोऽस्ति भविष्यति वा यो मति-श्रुतज्ञाने अनासाध प्रथममेवावध्यादीनि शेषज्ञानानि प्राप्तवान् प्राप्नोति प्राप्स्यति वेति भावः । तदुक्तम्—

जं सामि-काल-कारण-विसय-परोक्त्वत्तर्हेहिं लुछाईं । तन्भावे सेसांगि य, तेगाऽऽईए मह-सुयाईं ॥ [विशेषो ० गा ८५]
भवतु तर्हादौ मति-श्रुतोपादानम्, केवलं पूर्वं मतिः पश्चात् श्रुतमित्यत्र किं कारणम् ? उच्यते—मतिपूर्वैकरवाद्रित्यादि ।

पं. २०. मइपुव्वं० गाहा । व्याख्या—मतिः पूर्वं—प्रथममस्येति मतिपूर्वं 'येन' कारणेन श्रुतज्ञानं तेन श्रुतस्याऽऽदौ 5
मतिः तीर्थकर-गणधरैरुक्तेति शेषः, नखवप्रह्लादिरूपे मतिज्ञानं पूर्वमप्रवृत्ते क्वाप्यभिलाषलाविनार्थप्रहरणरूपश्रुतप्रवृत्तिरस्तीति भावः ।
“विसिद्दो वा मइभेभो चैव सुयं” इति यदि वा इन्द्रिया-ऽनिन्द्रियनिमित्तरांगोपजायमानं सर्वं मतिज्ञानमेव, केवलं परोपदेशादा-
गमवचनाच्च भवन् विगिद्यः कश्चिन्मतिमेद एव श्रुतम्, नाप्यन् । यतश्च विशिष्टमयंश्च एव श्रुतं ततो मूलभूताया मतेरादौ
विन्यासः, तद्वैदरूपं तु श्रुतं मतिमसमन्तरं भणितमिति गार्थार्थः ॥

पं. २३. मति-श्रुतज्ञानानन्तरमत्रैरुपन्यासः कालाद्रिचतुष्टयसाधर्म्यात्, नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च मति- 10
श्रुतान्यां सहावधेः समानस्थितिकालात् कालसाधर्म्यम् । पं. २४. प्रवाहापेक्षयेति, सर्वजीवानांश्रित्य सर्वाङ्गां एकजीवा-
पेक्षया सागरपटुपटि साधिका स्थितिकालः । पं. २५. यथा च मिथ्यात्वोदये मति-श्रुतज्ञाने अज्ञानरूपं विपर्ययं प्रतिपद्येते
नथाऽवधिरपीति विपर्ययसाधर्म्यम् । पं. २६. य एव मति-श्रुतयोः स्वामी स एवावधेरपीति स्वामिसाधर्म्यम् ।

पं. २७. लामेऽपि कदाचित् कस्यचिदमीषां त्रयाणामपि ज्ञानानां युगपदेव भवतीति लामसाधर्म्यम् ।

पं. २८. अवध्यन्तरं मनःपर्यायज्ञानस्योपन्यासः छद्मस्यादिकारणचतुष्टयात्, तत्र विषयसाधर्म्ये उभयोरपि 15
पुद्गलमात्रविषयतासाधर्म्यं यद्यपि सामान्येन तथाप्यस्य मनोवर्गणाविशेषतो विषयः । पं. ३२. सर्वज्ञानानामुपरि केवलस्यो-
पन्यासः तस्योत्तमत्वात्, सर्वोत्तमं हि केवलज्ञानम्, अतीता-ऽनागत-वर्तमानानिःशेषश्रेयस्वरूपावभासित्वात् । सर्वज्ञानानां
लामेऽवसान एवास्य लामादा अन्ते निर्देगः । विपर्ययाभावश्च साधर्म्यम् ।

[पृष्ठ २०]

पं. ९. अध्रुते—केवलद्युत्वचौ ज्ञानात्मना सर्वार्थान् व्याप्नोतीति उगादिनिपातनाद् अक्षः—जीवः । यद्वा अश्नाति 20
समस्तत्रिभुवनान्तर्गतानो देवलोकेसमृद्धादीनर्थान् पालयति भुङ्क्ते चेति निपातनाद् अक्षः—जीवः, अश्नातेर्भोजनार्थत्वात्, मुञ्छे
पालना-ऽप्यवहारार्थत्वादिति भावः; तमक्षं—जीवं प्रति साक्षाद् गतमिन्द्रियनिरपेक्षं वर्तते यद् ज्ञानं तन् प्रत्यक्षम् ।

पं. १०. अत एवोक्तम्—अपरनिमित्तमिति, न परम्—इन्द्रियादि निमित्तं यत्स्योत्पत्तौ अक्षं—जीवं विमुष्य तदपरनिमित्तम्,
अत एवातीन्द्रियमेतत्, अवध्यादित्रयस्यैव साक्षादर्थपरिच्छेदकत्वेन जीवं प्रति साक्षाद् वर्तमानत्वात् प्रत्यक्षव्यपदेशः ।

पं. ११. विचित्रतां चास्येति, अवध्यादिप्रत्यक्षस्य परेभ्योऽक्षस्य—जीवस्य यज्ज्ञानमुत्पद्यते तत् परोक्षम्, यस्माद् द्रव्ये- 25
न्द्रियाणि द्रव्यमनश्चाक्षस्य—जीवस्य पराणि वर्तन्ते, भिन्नानीत्यर्थः । कुतः परम् ? द्रव्येन्द्रिय-मनसोः पुद्गलमयत्वादिति । इदमुक्तं
भवति—अपौरुषलकत्वादमूर्तो जीवः, पौरुषलकत्वान्मूर्तानि द्रव्येन्द्रिय-मनसां, अमूर्ताश्च मूर्तं पृथग्भूतम्, ततस्तेभ्यः पौरुषलकैर्द्रव्य-
मनोभ्यः यन्मति-श्रुतलक्षणं ज्ञानमुपजायते तद् धूमादेरन्यादिज्ञानवत् परनिमित्तत्वात् परोक्षमुच्यते । यद्वा परैः—इन्द्रियादिभिः
उक्षा—सम्बन्धनं लिङ्गाजुमेये प्राह-प्राहकक्षणां अन्त्य ज्ञानस्य तत् परोक्षम् । पं. २४. द्रव्येन्द्रियमित्यादि,

अंतो-बहिर्निवृत्ती, तस्सत्तिसरूढां च उवगरणं । दर्विदियमियरं पुण लद्भुवओगेहिं नायन्वं ॥१॥ [

कर्णपेटिकादि वाह्यसंस्थानं बहिर्निर्वृतिः, कदम्बपुष्पगोलकाघाकृतिखान्तनिर्वृतिः, तच्छक्तिविशेषोपकरणम् । यथा स्वर्गो स्वर्गः तद्वारा तच्छेदनशक्तिश्चेति त्रयं व्याप्रियते, एवं द्रव्येन्द्रियगोचरं निर्वृत्तिद्वयं तच्छक्तिश्चेति त्रितयं ज्ञानं प्रति व्याप्रियते ।

पं. २७. नोद्न्द्रियप्रत्यक्षमिति, यत्रेन्द्रियं सर्वथैव न प्रवर्तते किन्तु जीव एव साक्षादर्थं पश्यति तद् नोद्न्द्रियप्रत्यक्ष-मवध्यादि ।

5

[पृष्ठ २१]

पं. ४. उपचारतः प्रत्यक्षमिति, इहेन्द्रियं श्रोत्रादि, तदेव निमित्तं सहकारिकारणं यस्योत्पिप्तोत्तदा ('द')लैङ्गिकं गन्ध-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शविषयज्ञानमिन्द्रियप्रत्यक्षम् । इदं चेन्द्रियलक्षणं जीवात् परं—यतिरिक्तं निमित्तमाश्रयोपघते इति धूमादग्निज्ञानमिव वस्तुतोऽर्थासाक्षात्प्रतिभावात् परोक्षमेव, केवलं लोकेऽस्व प्रत्यक्षतया रूढत्वात् सन्धवहारतोऽगपि प्रत्यक्षत्वमुच्यते, न परमार्थतः, परमार्थतोऽवध्यादिकमेव प्रत्यक्षम्, इन्द्रियाद्यनपेक्षत्वात् । कथं ज्ञायत इत्यादि, मुख्यतोऽपीन्द्रियप्रत्यक्षं किमिति न स्यादिति

10 वितर्कार्थं । पं. ६. न चेत्यादि, मति-श्रुते विमुच्येन्द्रियज्ञानमपरं न किञ्चिदिति यत् प्रगुणन्यायेन मुख्यतः प्रत्यक्षं भवेत् । इन्द्रियजज्ञानस्य मति-श्रुताभ्यां पार्थक्ये पदज्ञानप्रसङ्गः, नस्मादिन्द्रियजज्ञानस्य मति-श्रुतयोरैवान्वाभावः । मति श्रुते च परोक्षे अभिहिते, तत्परोक्षत्वे इन्द्रियजज्ञानस्यापि परोक्षत्वमेव पारमार्थिकम् । पं. ८. आहोत्यादि, धूमादग्निज्ञानवत्, न त्वक्षमिति भावः । इह यद्विद्यादि, हन्त ! इहापीन्द्रिय-मनोभिर्गृहीतं वापि धूमादौ लिङ्गेऽन्यादिविषयं यज्ज्ञानमुपयते तदेकान्तेन परोक्षम्, इन्द्रिय-मनसात्मनश्च नदमावाधैस्य एकान्तेन परोक्षत्वादिति भावः । पं. १०. यत् पुनरित्यादि, लिङ्गमन्तर्गणैव यदि-

15 द्रिय-मनसां वस्तुसाक्षात्कारित्वेन ज्ञानमुपजायते तत् तेषां प्रत्यक्षत्वाद्गोकरवहारमात्राद्यथा प्रत्यक्षमुच्यते, अलिङ्गत्वात्, अवध्यादिवत्, न त्वात्मनस्तत् प्रत्यक्षमिति शेषः । इन्द्रिय-मनोभवं ज्ञानमात्मनः परोक्षमेव, परनिमित्तत्वात्, धूमादग्निज्ञानवत् ।

पं. ११. यथैवं यद्विङ्गमन्तर्गणैव साक्षात्न्द्रिय-मनोनिमित्तं ज्ञानमुपपद्यते तत् परमार्थतः प्रत्यक्षमस्त्व, किं तदपि परोक्षत्वे-नेष्यते ? नैवमित्याह—इन्द्रियाणामपीत्यादि, इन्द्रिय मनोसि ज्ञानजनकत्वेनाऽऽत्मनो व्याप्रियन्ते इति ज्ञाननिमित्तत्वेन साक्षाद् व्याप्त्रियमाणत्वादुपचारतोऽक्षे—इन्द्रियं प्रति वर्तते इतीन्द्रियप्रत्यक्षमुच्यते, न तत्वनः; यतो यदिन्द्रिय-मनोनिमित्तं ज्ञानमुपपद्यते

20 तदव्यात्मनः, न त्विन्द्रियाणाम्, तेषामचेतनत्वात् । एतेन ये वैशेषिकादयो अक्षे—इन्द्रियं प्रति गत प्रत्यक्षमितीन्द्रियाणां साक्षाद् घटाद्यर्थोपलब्धेर्घटादिज्ञानं प्रत्यक्षमिच्छन्ति तत्र युक्तं इत्यावेदितम्, इन्द्रियाणामचेतनत्वेन ज्ञानायोगात् । तथाहि—यदचेतनं तत्र जानाति, यथा घटादि, अचेतनानि चेन्द्रियाणि, कृतस्तेषामुपलब्धिं प्रत्यक्षं भवत् । एवं मूर्तिनत्वात् स्पर्शादिमन्वाद्यं न जानन्ति । न च वाच्यम्— इन्द्रियाणि न जानन्तीति प्रत्यक्षविरोधोऽपि प्रतिज्ञा, तेषां साक्षात्कारेणार्थोपलब्धेरनुभवप्रत्यक्षेण प्रतिप्राणि प्रसिद्धत्वात् [इति], यतश्चक्षुरादीन्द्रिये करणतया व्याप्त्रियमाणे वस्तुतामुपलब्धा आत्मैव, न विन्द्रियम्, चक्षुरादीन्द्रियोपमेऽपि

25 तदुपलब्धात्तानुस्मर्त्तत्वात् । इह ये येषु परतत्त्वेपि तदुपलब्धानर्थाननुस्मरन्ति स तत्रोपलब्धा एहः, यथा गृहगवाक्षोपलब्धानामर्थानां तद्विगमेऽर्थानुस्मर्त्तां देवदत्तादि, अनुस्मरन्ति चेन्द्रियविगमेऽपि तदुपलब्धमर्थमात्मा, तस्मात् स एवोपलब्धा । यदि पुनरिन्द्रिया-प्युपलम्बकानि स्युस्तदा तद्विगमे कस्यानुस्मरणं स्यात्, न त्वन्येनोपलब्धेऽर्थेऽयस्य स्मरणं युक्तम्, अस्ति चानुस्मरणम्, तस्मान्न जानन्तीन्द्रियाणि । तत्रैवेन्द्रिय-मनोनिमित्तमात्मनो ज्ञानं परनिमित्तत्वात् परोक्षमिति-श्रुतान्तर्भावाच्चानुभववत् परोक्षं तत्त्वतः, सन्धवहारतस्तु प्रत्यक्षम् । पं. १२. अत एवाह—अत्र बहु वक्तव्यमित्यादि, मनोनिमित्तत्वापि ज्ञानस्य परनिमित्तत्वाद्-

30 नुमानवत् परोक्षत्वं ज्ञेयम् । न च वक्तव्यम्—'आगमेऽयं तत् परोक्षत्वं न कचिद् विशेषतोऽभिहितम्' [इति], यतो मति-श्रुतयोरगमे परोक्षत्वस्य विशेषतो भणनात्, मनोनिमित्तत्वापि च ज्ञानस्य तदन्तःपातित्वादिन्द्रियजज्ञानस्यैव परोक्षत्वं सिद्धमेवाऽह ।

पं. १६. अत एवाह—इह मनोज्ञानमपीत्यादि, योग-क्षेमो आक्षेप-परिहारो कृत्यावस्येन्द्रियज्ञानेन सहेति ।

पं. ३०. कायन्ति शब्दयन्ति योग्यतया तत्रेवुक्तमोपादानं ह्यर्थः ।

[पृष्ठ २२]

पं. ४. उदय० गाहा । व्याख्या—उदयः क्षयः क्षयोपशम उपगम इत्येते चकारः कर्मणोऽवस्थाविशेषाः 'यद्' यस्माद् भगिता एते प्रवर्तन्ते इत्यर्थः । कश्चम् ? इत्याह—'द्रव्यं क्षेत्रं कालं भवं च भावं च गन्धप्राप्य' इति द्रव्याद्यपेक्षाः सन्तः स्युः, न यतस्तत् इत्यर्थः । तत्र पीतमदिरस्य मक्षितहृत्पूरकस्य वा ज्ञानान्यथाऽव द्रव्याद् भवतीति प्रतीतम्, मण्डूक-ब्राह्मी-कङ्कुणीतैलादिपानादिना कञ्चित् कदाचिदज्ञाननिवृत्तिश्च भवति । देवताराधन-मन्त्रादिस्मरणतश्च सा भवतीति भावापेक्षाऽप्यसौ । एवं सक्-चन्दनाऽङ्गना- 5
ऽऽरोग्यवादिद्रव्य-भावापेक्षाः सात्ताद्युदयो भवति । तथा निद्रादिपक्षकोदयो मक्षितमाहिपदधि-वृत्ताकादिद्रव्यस्य जीवस्य तत्-
दद्रव्यमपेक्ष्य भवन् द्रव्यापेक्षः । सज्जलादिविद्ये प्राप्य स एवातिगयेन भवतीति क्षेत्रापेक्षः । निद्रोदयस्यैव रज्यादिकः कालः
विशेषतो ग्रीष्मो वा इति कालापेक्षः । स एवैकेन्द्रियादिभवं प्राप्य पृथिव्यादिवनस्पतीनां विशेषतो निद्रोदय इति भावापेक्षः । स एव
चित्तस्वास्थ्यादिभावमपेक्ष्य भवन् भावापेक्ष इति । एवं द्रव्यादयः परस्परं सत्यपेक्षाः सन्तः कर्मणामुदय-क्षय-क्षयोपशमोपगमरूपं
कञ्चित् कदाचिदवस्थाविशेषं जनयन्तीति क्षयोपशमजोऽप्यवधिर्देव नारकयोर्भवप्रत्ययो भवति, अवश्यं तस्य तत्र भावात् । तिर्यग्मनु- 10
ष्याणां भवे सत्यप्यसौ क्षयोपगमज एव, कञ्चित् कदाचिदेव भावाद् इति प्रकृतोपयोगि । अन्यच्च तृणाद्याहारस्तज्जप्रभृतोदहन-
सामर्थ्यं च तिरक्षां भवप्रत्ययं भवति । नारकाणां तादृशमारगान्तिकवेदनापिसहानसामर्थ्यं भवप्रत्ययं भवति, एवं वीर्यान्तराय-
कर्मक्षयोपगमात् केचिन्महासामर्थ्योपेता मनुष्या अपि दृश्यन्ते, केचित् प्रबलवीर्यान्तरायोदयात् तृणकुञ्जीकरणेऽप्यसमर्था इति ।
एवं सर्वत्र द्रव्याद्यपेक्षया उदयादयः प्रवर्तन्ते इति गाथार्थं ॥

अवधानमवधि—इन्द्रियाद्यनपेक्षमात्मनः साक्षादर्थग्रहणम् । अवधेयं ज्ञानमवधिज्ञानम् । अथवा अवधिः—मर्यादा, तेनाव- 15
धिना—रूपप्रत्यमर्यादात्मकेन ज्ञानमवधिज्ञानम् । तद् भवप्रत्ययं नारक-देवानाम्, गुणप्रत्ययं मनुष्य-निरश्चाम् ।

[पृष्ठ २३]

पं. १. तद् द्विविधं सन् षोढा आनुगामुकादिभेदात् । आ-अभिविधिना अनुगमनशीलमानुगामुकम्, यत्र उपपन्नं ततो
देशान्तरगतमपि ज्ञानिनं यदनुगच्छति लोचनवत् तदानुगामुकम् ? । यत्र क्षेत्रे उपपन्नं तत्रश्च एव पश्यति नान्यत्र गत इति,
यत् तद्देशस्थितस्यैव भवति स्थानस्थदर्शयत्, तत् तद्देशनिबन्धनक्षयोपशमज्जचाद् देशान्तरगतस्य तु भ्रंशाद् अनानुगामुकम् २ । 20
वर्द्धमानकं यदङ्गुलासंख्येयभागादिविषयमुपपन्नं पुनः वृद्धि-विषयविस्तरणात्मिकां याति यावदलोके लोकप्रमाणान्यसंख्येयानि
खण्डादीनि ३ । हीयमानकं यद् जघनेनाङ्गुलासंख्येयभागविषयम् उकर्षेण सर्वलोकेविषयमुपपन्नं स-संश्लेषशक्त क्रमेण हानि-
विषयसङ्कोचात्मिकां याति यावदङ्गुलासंख्येयभागस्ततोऽपि प्रतिपतति, येन त्वलोकस्य प्रदेशोऽपि दृष्टस्तस्य न हीयते ४ ।
प्रतिपाति क्रियन्तमपि कालं स्थित्वा ततो ध्वंसनस्वभावं यदित्यर्थः ५ । अप्रतिपाति आमरणान्तभावि यदित्यर्थः ६ । अत्र
चाप्रतिपाति ज्ञानमनुगाम्येव भवति, आनुगामुकं त्वप्रतिपाति प्रतिपाति च भवन्त्येवमभेदविशेषः । तथा प्रतिपाति प्रतिपत्त्येव, 25
पतितमपि च देशान्तरे गतस्य कदाचिज्जायते, न चेत्थमनानुगामुकम्, यत् इदं यत्र देशे निष्ठं समुपपन्नं तत्रैव निष्ठतश्चयत्ने
न वा, श्रुतमपि देशान्तरे पुनरप्युपपत्तिप्रदेशे समयातस्य भवतीति प्रतिपातयनानुगामुकयोर्भेदः । पं. १५. तच्च फड्ड-
कावधित्वादिति, अपवरकादिज्ञालकान्तरस्थप्रदीपप्रमानिर्मस्थानानीवाऽर्वापिज्ञानावगणक्षयोपशमजन्यान्वयविज्ञाननिर्गमस्थानानीह
फड्डकाप्युच्यन्ते, तानि चैकत्रैवैतस्य सत्येयान्यसंख्येयानि च भवन्ति, तैर्यदवधिज्ञानं जीवस्य तत् फड्डकावधीषुच्यते । तत्र सकल-
जीवोपयोगे सत्यपि साक्षादेकदेशेनैव दर्शनादात्मप्रदेशान्तर्गतमुच्यते ? । सर्वोऽभ्यप्रदेशक्षयोपशमभावे सत्ययौदारिकगरीरैकदेशेनैव 30
दर्शनादौदारिकशरीरान्तर्गतमुच्यते २ । एकदिगुपलम्भाद् ज्ञानोद्योतितक्षेत्रान्तर्बृत्तिरवधिमत एतद्विद्युद्योतितक्षेत्रान्तर्गतमुच्यते ३ ।

पं. १९. आत्ममध्यगतदिभेदेन मध्यगतमपि त्रिधा—तत्र सर्वात्मोपयोगे सत्यपि मध्य एव सर्वफड्डकविद्युद्विसङ्घावात्

साक्षान्मध्यभागेनोपलम्बेरात्ममध्यगतमभिधीयते ? । सर्वान्मनः क्षयोपशमयोगविशेषेऽप्यौदारिकशरीरमध्यभागेनैवोपलम्बेरौदारिक-
शरीरमध्यगतमुच्यते २ । सर्वदिगुपलम्भादवधिज्ञानप्रकाशितक्षेत्रमग्य एव ज्ञानिनः सद्भावतः क्षेत्रमध्यगतमभिधीयते २ ।

पं. २४. अन्तगत स्योऽपि पुरतोऽन्तगतादिभेदान् त्रिधा—पुरतः अग्नेनभागेऽन्तस्थितं प्रागुक्तामदेगादीनाम् । मार्गतः
पृष्ठतः । पासउ त्ति पार्श्वतः । पं. २९. उल्का दीपिका, हेजुल्लेति या प्रसिद्धा । मणि व त्ति प्रदीपशिखा मणिविशेषः,
5 आदिप्रहणादन्योऽप्येवंजातीयो प्राद्यः । प्रदीपः कलिकारूपः । मेरयन् मेरयन् आकर्षन् आकर्षन् ।

[पृष्ठ २४]

पं. २. नान्यत्रेति, पृष्ठि-पार्श्वयोः । पं. ५. मार्गतोऽन्तगतसूत्रे—उल्कादिकं अणुकड्डेमाणे अणुकड्डेमाणे
अनुकर्षन् अनुकर्षन् गच्छेत् । पं. ८. पार्श्वतोऽन्तगतसूत्रे—उल्कादिकं प्रदीपान्तं व्योतिर्वस्तु पार्श्वतः कृत्वा परिकड्डेमाणे
परिकड्डेमाणे त्ति परिकर्षन् परिकर्षन् गच्छेत् । पं. १३. मध्यगतसूत्रे—मत्सकस्थेन व्योतिर्वस्तुना यथा कश्चिद गच्छेत्
10 सर्वत्र तत्प्रकाशितमर्थं पश्येत्, एवं मध्यगतावधिज्ञानिन्यापि योग्यम् । पं. २४. विशुद्धफड्डकैरिति, विशुद्धक्षयोपशमजन्य-
फड्डकानि विशुद्धफड्डकान्युच्यन्ते, तैरित्यर्थः ।

[पृष्ठ २६]

पं. ७. द्रव्यछेदयोपरञ्जितमिति, तत्र—

कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात् परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं छेदश्याग्न्दः प्रवर्तते ॥१॥ []

15 साचिच्यं—साजिच्यम् । पं. ११. जावड्या० गाढा—त्रिसमयाहारक इति वाच्यम् । यदा आहारयतिर्याहारक, जीन
समयानाहारकसिसमयाहारक इति व्युत्पत्ति । पं. १९-२४. योजनेत्याचार्योपद्रुक्म्—यो मन्स्यो योजनसहस्रायामः स्व-
देहस्यैवैकदेशे उपचमानः स प्रथमे समये आयामं सद्द्विःपति । तं व सङ्क्षिपन् प्रतर करोति, कश्चभूतम् ' इत्याह—'सङ्ख्या-
तीताङ्गुलविभागवाह्यमानं' बाह्येनाङ्गुलासङ्ख्येयभागगूढमितिः । पुनरपि कश्चभूतम् ' इत्याह—स्वकेति, मन्स्यदेह-
विस्तीर्णम्, शरीरान्तःसम्बद्धत्वाद्भूवाधित्येकं च यावान् मन्स्यदेहस्य विस्तरस्तावांस्तज्जीवप्रदेशप्रतस्यापीत्यर्थः । एवं चाऽऽयामतो
20 विष्कम्भतश्च मन्स्यशरीरपृष्ठुक्तुत्योऽङ्गुलासङ्ख्येयमागवाह्यथायं प्रतरो भवतीत्येव प्रथमसमयव्यापारः, प्रतरमेतावन्मात्रं
करोति । द्विर्धेणापि, कुतः ? जीविसामर्थ्यात्, ततो द्वितीयसमये 'ने' प्रतग्मायामतो विष्कम्भतश्च संक्षिप्याऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग-
वाह्यथां मन्स्यशरीरपृष्ठुव्यायामां सूचिं करोति । ततस्त्वृतीयसमये या निजतनुपृष्ठुवेन दीर्घां सूचिं तामपि सूचिं सद्द्विःपत्याङ्गुला-
सङ्ख्येयभागमात्रावगाहने भूवा निजोणेमन्स्यभवान्युर्दानींरभवान्युश्चाविप्रहणत्या मन्स्यशरीरस्यैवैकदेशे 'पनकः' गूढमवनस्पति-
जीवविशेषो भवति । अस्मादुपादसमयात् तृतीयसमये यद् देहमानमङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रं पतस्य पनकस्य, तद् जष्यमवन्वेषिव-
25 भूतं 'क्षेत्रं' तज्जेष्यद्रव्यधातुम् । एतेन तज्जेष्यद्रव्यधातुनैव क्षेत्रमवन्वेषिव उच्यते, न तु साक्षात्, तस्यामूर्तत्वात्, अवधेस्तु मूर्त-
विषयत्वादिति । पं. २६. स एव चेत्यादि, यो हि योजनसहस्रायामो महाकायो मन्स्यखिमिश्च समर्थैरात्मानं सङ्क्षिपति
स किल प्रथमविशेषादतिस्वभावावगाहनां कुर्वते, नान्यः, अनेन 'किमिति मन्स्योऽतिमहान् शुद्धते ? तृतीयसमयसंक्षिप्तश्च'
इत्येतस्य द्वयस्योत्तरमदायि । दूरं च गत्वाऽन्यत्र यद्युपवने चिद्वेष्टेण च गच्छति तदा जीवप्रदेशः किञ्चिद् विस्तरं यान्तीयवगाहना
स्थूलतरा स्यादित्यविप्रहणत्या स्वशरीरदेशे एवोपादित इत्येतत् स्वमेव द्रष्टव्यमिति । पं. २७. किं त्रिसमयाहारको
30 गृह्यते ? अत्रोत्तरमाह—प्रथमेत्यादि । पं. २८. त्रिसमयाहारकविषये केचनाऽऽचार्या व्याचक्षते, यदुत—द्वौ तावन्म-
त्स्यस्य सम्बन्धिनी आषसमयो गृह्येते—आयामसंहरणेन प्रतरकरणमित्येकः, तसंसंहरणेन सूचिं यत्र करोति स द्वितीय इत्यायाम-

१ ऋद्धेति जे० ॥ २ मन्स्यशरीरपृष्ठुक्तुत्यायामो यस्याः जेटि० ॥

विक्रमभयोः संहरणसमयद्वयम्, तृतीयसमयस्तु सूचिसंहरण-पनकत्वेनोत्पादश्चेति त्रयम्, ततश्च त्रयः समया यस्यासौ त्रिसमयः, अत्रिग्रहणोपचाराहारकश्च; एवं च सति प्रत्युत्पत्तिस्त्वहमपनकध्वयं सिद्धो भवति, तथा च सति “तिसमयाहारगस्स पगगार्जवस्से”ति सूत्रकारवचनमार्षितं भवति, किञ्चेह यथा सूक्ष्मः सूक्ष्मतरोऽसौ भवति तथा कर्तव्यम्, एतच्चाम्निन् व्याख्यानं सविशेषं सिध्यति, उत्पादसमय एव यतो यस्मादसौ पनकजीवोऽतिजन्मयावागहनो भवति, न शेषसमयेषु, द्वितीयादिधोषमहत्त्वात्, जन्मयावागहनश्च सूत्रे प्रोक्तः, ततोऽतिसूक्ष्मत्वसिद्धेस्त्वय पनकदेहस्य समानमेव किलावधेर्विषयत्वं जन्मय क्षेत्रं भवतीति । न युक्तमिदं 5 **केषाश्चिद्** व्याख्यानम्, त्रिसमयाहारकत्वस्य पनकविशेषणत्वेनोक्तत्वात्, मत्स्यसमयद्वयस्य च पनकसमयत्वायोगात्; योऽपिश्चमपि जन्मयावागहानालमलक्षणे गुण उद्गाह्यते सोऽपि न युक्तः, यस्मान्नेहानिमूर्खेणातिमहता वा किञ्चित् प्रयोजनम्, किं तर्हि ? योग्येन, योग्यश्च स एव तद्वैतमिर्दो यो प्रथमं जन्मयावागहनः संस्तरिभजेन भजे समपत्रयमाहारं गृह्णाति ।

[पृष्ठ २७]

पं. ४. **सर्वबह्वग्निजीवाः** ‘निस्तरे’ सततं नैरन्तर्येणैत्यर्थः ‘यावदिति’ यत्रमाणं ‘क्षेत्रम्’ आकाशं वक्ष्यमाणविशिष्टसूची-
रचनया रचिताः सन्तः ‘भूतवन्तः’ व्यामवन्तः । पं. ५. **भूतकालनिर्देशश्चाजितस्वामिकाल** एव वक्ष्यमाणयुक्त्या प्रायः
सर्वबहवोऽनलजीवा भवन्त्यस्यामवसर्पिण्यामिःयस्यार्थस्य ल्यापनार्थः । अनलजीवोऽप्येतेर्मेहावृष्ट्यादिव्याघाताभावे समस्तभरतैरावत-
विदेहलक्षणपञ्चदशसु कर्मभूमिषु सर्वबहवो बादराग्निजीवा भवन्तीति । किमविशेषेण सर्वदेव एतारंते भवन्ति ? नैवम्, किन्त्व-
जितजिनेन्द्रकालं, अजितजिनेन्द्रस्थायुषलक्षणत्वादवसर्पिण्यां द्वितीयतीर्थकरकाञ्च अग्निजीवा बहवो भवन्ति ।

पं. १२. कुतः ‘**तदारम्भकपुरुषवाहुल्यादिति**, तेषां-बादराग्निजीवानां आरम्भकाः-उत्पादकाः सन्पुक्षण-त्वानाथा- 15
रम्भकरणात् तदारम्भका ये पुरुषास्तेषां बाहुल्यात् । कोऽर्थः ? सर्वेभ्योऽयत्ताना-ऽनागतैभ्यो बहवः प्रचुरा र्भजमनुस्थास्तदा
भवन्ति स्वभावादेवेति । आह-किमेतैरेव बादराग्निजीवैः सर्वबह्वग्निजोपरिमाणं पृथक् ? आहोश्चित् सूक्ष्माग्निः सह ९, यदि
तेसह तदा नेऽविशिष्टा अपि गृह्यन्ते ! आहोश्चित् केचिदेव विशिष्टाः ? इति, उच्यते-स्वभावाद यदा सूक्ष्माग्निजीवा अप्युत्कृष्ट-
पदिनः स्युः । इदमत्र हृदयम्-अनन्तानन्तान्स्ववसर्पिणीषु मन्थे स गव कश्चिद् द्वितीयतीर्थकरकालो गृह्यते यत्र सूक्ष्माग्निजीवा
उत्कृष्टपदिनः प्राप्यन्ते, ततश्च तैर्वादिः मूक्ष्माग्निजीवैरुत्कृष्टपदिनिर्मालितैः सर्वबह्वग्निजीवानां परिमाणं प्राहम् । अत एवाह-
20 **सूक्ष्माश्चेति । तत्रैवेति** तेष्वेव मन्थे गृह्यन्ते । पं. १३. तेषां चावस्थानं बहुतरक्षेत्रपूरकं बुद्धया पोढा यथापि सम्भवति
तथापि ‘पञ्चाऽनादेशाः षट्त्वादेशाः’ इति वक्तुमाह-तेषां चेति, अयमर्थः-तैः सर्वैर्याग्निजीवैः समचतुरस्रो घनो द्विभेदः स्थाप्यते,
कथम् ? इति, उच्यते-एकैकाकाशप्रदेशे एकैकाग्निजीवरचनया स्वावगाहे चाऽसङ्ख्येयाकाशप्रदेशलक्षणे एकैकाग्निजीवरचनयेति । अत्र
स्थापना ३३३ । एतेषां नवानामग्निजीवानां प्रत्येकमेकैकाकाशप्रदेशे व्यवस्थापितानामपत्तादुपरिष्ठात्वात्स्येऽपि नव नव जीवा इत्यमेव
व्यवस्थाप्यन्ते, एष कल्पनया सत्तार्विशया सद्भावतत्त्वसङ्ख्येयैरग्निजीवैरैकैकाकाशप्रदेशव्यवस्थापितैर्घनो मन्तव्यः । द्वितीयोऽपि 25

घन इत्येव द्वयस्य, केवलाभिहाससंख्येयाकाशप्रदेशेभ्यैकैकजीवो व्यवस्थाप्यते । एवमेकैकाकाशप्रदेशे एकैकजीवस्थापनया असङ्ख्येय-
प्रदेशात्मकस्वावाहास्थापनया च प्रतरोऽपि द्विभेदः, सूचिरपि द्विभेदः । तत्र घन-प्रतरपञ्चकुर्भेदः पञ्चमथैकैकाकाशप्रदेशस्थापितै-
कैकजीवलक्षणसूचिपञ्चोऽपि न प्राह्यः, दोषद्वयापुपङ्गात् । तथाहि-पञ्चविधयाऽयनथा स्थापनया स्थापिता अग्निजीवाः षट्त्वपि
दिव्यवधिज्ञानिनोऽसत्कल्पनया भ्रम्यमाणाः स्तोत्रमेव क्षेत्रं शृङ्खन्तीत्येको दोषः, एकैकाकाशप्रदेशे एकैकजीवस्थापनायामागम-
विरोधश्च द्वितीयो दोषः, असङ्ख्येयाकाशप्रदेशानन्तरेणाऽऽमे जीवावगाहनिषेधात् । पं. १५. असत्कल्पनया प्रतिप्रदेशा- 30
वगाहोऽप्यस्त्विति चेत्, नैवम्, कल्पनाऽपि सति सम्भवेऽविरोधिन्येव कर्तव्या, किं विरोधिन्या ? इत्यालोभ्याऽह-**षष्ठः ध्रुतादेश**
इति, असङ्ख्येयाकाशप्रदेशलक्षणे स्वावगाहे पङ्क्या एकैकजीवस्थापनेन यः सूचिलक्षणः षष्ठः पञ्चोऽयं ध्रुते आदिष्टत्वाद् प्राह्यः,

शेषास्तु पञ्च 'अनादेशा' सम्भवोपदर्शनमात्रेणोक्तत्वात् परिहार्या । इयं हि यथोक्ता सूत्रिकैकजीवव्याससङ्घेयाकाशप्रदेशावगाहे व्यवस्थापितत्वाद् बहुतरं क्षेत्रं दृग्गतीत्येको गुणः, अवगाहविरोधाभावात् द्वितीयः । ततश्चैवाऽग्निजीवसूत्रव्यभिज्ञानिनः षट्स्यपि स्त्रिवसत्कल्पनया भासिता सती अलोके लोकप्रमाणसङ्घेयव्यवधानि दृग्गतिः, अत एतावदुक्तक्षेत्रभाववैविषय इत्युक्तं भवति । आह—ननु 'रूपविद्व्याण्येवावधिः पर्यति' इति गीयते, क्षेत्रं स्वमूर्तवान् कथं तद्विषय 'इत्याशङ्क्योक्तं भाष्यकृता—

5

सामर्थ्यमेतमेयं, जइ दद्व्यं हवज पेच्छेजा ।

न य तं तत्त्वऽस्थि जओ, सो रूविनिवेषणो भगिओ ॥१॥ [विशेषावश्यकं गा. ६०५]

- यदवधेरतावत् क्षेत्रं विषय उच्यते तदेतत् तस्य सामर्थ्यमात्रमेव कार्यते । कोऽर्थः ' इत्याह—यथेतावति क्षेत्रे दृष्टव्यं किमपि भवेत् तदा पर्येदवधिज्ञानात्, न च तद् दृष्टव्यं तत्रालोके समस्ति, यतोऽयमवधिस्तीर्थिकर-नागपरै रूपिद्व्यनिवन्धनो भणितः, तच्च रूपिद्व्यमलोके नास्त्येवति । आह—यथेव लोकप्रमाणोऽवधिर्भूत्वा यस्य पुरतो विशुद्धिवगनो लोकाद् बहिरस्यसौ वदति तस्य
- 10 तद्बुद्धेः किं फलम् ' लोकाद् बहिरदृष्ट्याभावात्, अशोच्यते—लोकस्थमेव सूक्ष्मतरं सूक्ष्मतरं द्रव्यं पर्यति यावन्नैश्वर्यिकप्रमाणमूर्पाति तद्बुद्धेस्ताविकं फलम् ॥ पं. २.१. अंगुलमात्रव्याणं० गाहा । पं. २.३. उक्तं चोयादि, असस्त्येयानां समयानां समुदायः—समुदाय, स च तेषां विगणकितानामपि तत्राविवेदेवदनादीनामिव स्यादान उच्यते—समुदायस्य समिति—नैस्तर्पणं गीलन्त, सा च नैस्त्रयंशोऽवधिनापि गिगणकानामिव परस्परनिर्गन्नापामिव स्यादान उच्यते—तस्या. समुदायसमितेर्था समापमः—परस्परसङ्गतया विशिष्टैकपरिणामो भूत् भवद्-भक्तिरसमवप्रवाहं समापम, तेनैव-मूनसमयपरिणामा एका आव-
- 15 लिङ्गा भवति, जफय्युक्तासस्यानकप्रतिसमयमान आवलिङ्गाकालो भवतीति तावर्थम् । "अंगुलमात्रव्याणं" विधादिनाश्रात्रस्य [सूत्रगा. ४७-४९] तापदमिदम्—उपचारंग सर्वत्र द्रव्यमेव पर्यतीति विज्ञेयम् । तत्रच 'अङ्गुलमात्रसङ्घेयमागदिकं क्षेत्रं पर्यति' इति कोऽर्थः ' तत्रैवैतावति क्षेत्रे यानि प्रस्तुतावधिदर्शनयोग्यानि पुद्गलद्रव्यानि तास्येयामौ पर्यति । 'भावलिङ्गासङ्घेय-भागादिकं कालं पर्यति' इत्यत्रापि च कोर्थः ' तेषामिव पुद्गलद्रव्याणां ये प्रस्तुतावधिदर्शनयोग्याः पर्यायान्तात् भूतेऽनागते चैतावति कालेऽसौ वीक्षते इति । एतं सर्वत्र क्षेत्रे कालं चावधेर्विषयनेनोक्तयथासङ्घेयत्रेणगताति योग्यरूपिद्व्ययाणि काल्यानास्तु योग्यास्तस्यर्था-
- 20 यानायोजयेत्, क्षेत्रकालौ तु 'प्रभाः क्रोगति' इत्यादिस्थानेनोपचारंन एषोच्यते एति भावः । एव तावत् परिस्यूनायवह्रीकृय क्षेत्रवृद्धौ कालवृद्धिरनियता, यतो यथा क्षेत्रं वदति न तथा कालो वदति, मरुतयोपेतत्वा जम्बूद्वीपे महान्, कालस्तु न तथेति । कालवृद्धौ तु क्षेत्रवृद्धिर्भवेत्येति प्रतिपादितम् । पं. १.६. साम्प्रत द्रव्य क्षेत्र-कालभावापेक्षया यद्बुद्धौ यस्य बुद्धिर्भवति यस्य वा न भवत्यमुमर्थं प्रतिपादयन्नाह—

काले चउण्ट बुद्धौ, कालो भइयन्वो खेचबुद्धीण ।

25

बुद्धीण दव्व-पज्जव भइयन्वा खेत-काला उ ॥ [सूत्रगा. ५१]

- 'काले' अवधिगोचरे वर्द्धमाने सतीति गम्यते, "चउण्ट बुद्धिः" इति निगमात् क्षेत्रादीनां चतुर्गामपि बुद्धिर्भवति, कालान् सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतरमन्वान् क्षेत्र-द्रव्य-पर्यायाणात् । तथाहि—कालस्य समयेऽपि वर्द्धमाने क्षेत्रस्य प्रभूतप्रदेशा वर्द्धन्ते, तद्बुद्धौ चाऽवदसम्भावितो द्रव्यवृद्धिः, प्रत्याकाशप्रदेशे द्रव्यप्राचुर्यात् । द्रव्यवृद्धौ च पर्यायवृद्धिर्भवत्येव, प्रतिद्वयं पर्यायवहुन्यादिति । यथेवं 'काले वर्द्धमाने शेषस्य क्षेत्रादित्यस्य बुद्धिर्भवति' इति "काले निगमस्य बुद्धौ" इत्येव वक्तुमुचितम्, कथं चतुर्गामियुक्तम्, 30 सत्यम्, किन्तु सामान्यवचनमेतन् । तथाहि—यथा देवदत्ते सुभ्राने सर्वमपि कुटुम्बं सुखं इत्यादि, अन्यथा दात्रापि देवदत्ताच्छेषमपि कुटुम्बं सुखं इति वक्तव्यं स्यात् : यथा वा एकस्मिन् रसनेन्द्रिये जिने पञ्चापि जिज्ञानि भवन्ति; तथा अन्ये भोक्तुमाकारिते जन्द्रयमागच्छन्त्यादिवचनप्रसूतिदर्शनादित्यदापः । "कालो भइयन्वो खेतबुद्धीण" इति क्षेत्रस्य—अवधिगोचरस्य वृद्धौ—आधिक्ये सति कालः 'भक्तय' विकल्पनीयः, वर्द्धन्ते वा न वा, प्रभूते क्षेत्रे बुद्धिर्गते वर्द्धते कालः, न स्वल्पे इति भावः ।

अन्यथा हि यदि क्षेत्रस्य प्रदेशादिवृद्धौ कालस्य नियमेन समयादिवृद्धिः स्यात् तदाऽहं व्यात्रादिकेऽपि वर्धिते क्षेत्रे कालस्यासङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो वर्द्धेरन् । तथा च वक्ष्यति--“अंगुलसेढमिमेते ओसपिण्णिओ असंखेज्ज” इति अङ्गुलश्रेणिमात्रे क्षेत्रे यः प्रदेश-
राशिः स प्रतिसमयं प्रदेशाहारेणापह्रियमाणोऽसङ्ख्येयावसर्पिणीभिरपाह्रियते इति भावः, ततश्च “आवन्ध्या अंगुलपुहुत्त”मिथ्यादि
सर्वं विरुध्यते, तस्मात् क्षेत्रवृद्धौ कालवृद्धिर्भजनयैव, स्थूलत्वात् कालः स्याद वर्द्धते स्यान्निति । द्रव्य-पर्यायास्तु क्षेत्रवृद्धौ नियमाद्
वर्द्धन्त एवेति स्वयमेव द्रव्यम् । “बुद्धोद्दीण दन्व-पञ्चवे”त्यादि, द्रव्य-पर्याययोर्वृद्धौ सत्यां क्षेत्र-कालौ ‘भक्तयो’ विकल्पनीयौ, वर्द्धते 5
चा न वा । तथाहि—अवस्थिनयोरपि क्षेत्र-कालयोस्तथाविधशुभाभ्यवसायतः क्षयोपगमवृद्धौ द्रव्यं वर्द्धत एव, तद्वृद्धौ च
पर्यायवृद्धिरवश्यम्भाविन्येव, प्रतिद्रव्यं पर्यायानन्त्यात्, जघयतोऽपि चैकैकद्रव्यादप्यवधे पर्यायचतुष्टयलभादिति । पर्यायवृद्धौ
च द्रव्यवृद्धिर्भाष्या, भवति वा नवेति स्वयमेव द्रष्टव्यम् । अवस्थितेऽपि हि द्रव्ये तथाविधस्योपगमवृद्धौ पर्याया वर्द्धन्त एवेति
गाथार्थः ॥ पं. १८. वृत्तौ-समम्यन्तता चास्येति, खंत्तबुद्धीण इत्यस्य पदस्येत्यर्थः ।

पं. १९. सप्तम्या यथैकाग्रतथाऽहं-ए षोडश अयारंते० इत्यादिगाथा । व्याख्या—द्वितीयाबदुवचनात्तेऽकारान्तपदे पुल्लिङ्गे-
ऽभिधेये यत् तस्यैकारो भवति, यथा—“नामज्जा जिणवर्दि” [उपदेशमाला गा. १] इत्यादि । तथा तृतीयादिषु आदिशब्दात्
चतुर्थीपरिग्रहः, ततश्च “प्यामि” इति एकत्वे वर्तमानानां तृतीया-चतुर्थी-पठौ-सप्तमीनां स्थाने ‘महिल्ले’ इति खल्लिङ्गेऽभिधेये एकरो
भवति, तत्र तृतीयायां यथा—“मुंदरवुदीण कय” इत्यादि, चतुर्थीं यथा—“भावीण पुण दिन्ने तण पि मीरत्तणमुवेत्ति ।” इत्यादि,
षष्ठ्या. स्थाने यथा—“नीण पुण विमुदीण कागंणं होत्ति पडिमाओ ।” इत्यादि, सप्तम्याः रथाने यथाऽत्रैव । ननु ‘तृतीयादिषु’-
इत्यत्राऽऽदिशब्दान् किमिति न पञ्चमीपरिग्रहः ? नैवम्, तत्रस्थाने ओकारस्य दर्शनात्, तद्यथा—“इथीअ आवि सक्कण” इत्यादि, 15
अत एव चात्र “तद्वयाइमु छट्टी-सत्तमीण” इति व्यस्तनिर्देशः, अन्यथा ह्यादिशब्देन चतुर्थ्यादीनां सर्वांसामपि विभक्तानामनुरोधः
स्यादेवेति गाथार्थः ॥

पं. २५. ननु वस्तूनां नव-पुगाणादयः पर्यायाः कालक्रमेणैव भवन्ति, अतस्ते चेदुत्तरोत्तरकालक्रमवृद्धिभागे वर्द्धन्ते तदा
तद्वृद्धौ सिद्धैव कालवृद्धिः, अतः ‘पर्यायवृद्धौ कालो भजनीयः’ इति यदुक्तं तदसद्गतमित्याशङ्क्याऽहं—अक्रमवर्तिनामपि च
वृद्धिसम्भवादिति, इदमुक्तं भवति—यद्यत्तरोत्तरकालक्रमवृद्धिभागे नव-पुराणादय एव वस्तूनां पर्यायाः स्युस्तदा युज्येत भवद्भवः, 20
तत्र नास्ति, रूप-रस-गन्ध-स्पर्शतारतम्यादिपर्यायाणां मन्ददायोपगमावस्थाऽनुपलब्धानां विशिष्टशोपगमं सति कालक्रमवृद्धयभावे-
ऽपि बहूनां युगपदेव वृद्धिसम्भवादिति भावनीयम् । पं. २५. अत्रेयादि, क्षेत्र-कालयोः सम्बन्धिनो प्रदेशानां समयानां च
सङ्ख्यामाश्रित्य यन्माने तन् परस्परं किं तुल्यं हीनमधिकं वा भवेत् ? इति प्रश्नार्थः । पं. २७. सर्वत्रे यादिना प्रतिवियते ।

[पृष्ठ ३०]

पं. १५. “तेया-भासे”त्यादि, “गुरुलहुय अगुरुलहुयं तं पि य तेगेव निट्ठाह” इति उक्तादिम् ।

25

व्याख्या—तैजसं च भाषा च तैजस-भाषे, तयोर्द्रव्याणि तेषां तैजस-भाराद्रव्याणां ‘अन्तराद्’ अपान्तराले “प्लथ” इति
अत्रान्यदेव तदयोग्यं द्रव्यं ‘लभते’ परमिति ‘प्रस्थापक’ अवधिज्ञानप्रारम्भकः; अवधिप्रतिपत्तेति यावत् । किञ्चिदिदं तत् ? इत्याह—
‘गुरुल्लु अगुरुल्लु चेति गुरुल्लुपर्यायोपेतं गुरुल्लु, अगुरुल्लुपर्यायोपेतं त्वगुरुल्लु । तत्र तैजसद्रव्यासर्गं गुरुल्लु, भाषाद्रव्यासर्गं
त्वगुरुल्लु । तदपि चावधिज्ञानं तदावरणोदयात् प्रतिपत्तत् ‘तेनैव’ उक्तस्वरूपद्रव्येणोपलब्धेन सता निद्रां यति, प्रतिपत्ततर्थात् ।
अपिशब्देन चैतद् ज्ञापयति— प्रतिपत्तित्यवधिज्ञाने अयं न्यायः—आरम्भे यद् दृष्टं तद् दृष्टा प्रतिपत्ततीति । न चैतद्वक्ष्यं प्रतिपा- 36
त्येवेति भावः ॥

भावार्थः प्राक् प्रतिपादित एवेति । क्षेत्र-कालदर्शनमुपचारेणोच्यते, “मञ्चाः क्रोशन्ति” इति न्यायेन, यतो मूर्त्तद्रव्या-

लम्बनत्वादवधेरित्ययं भावार्थः । पं. २९-३०. “ओही०” गाहा [सू. २९ गा. ५३] “वधिओ एसो” ति पाठः, पाठान्तरे “वधिओ दुविहो” ति पाठः ।

[पृष्ठ ३१]

- पं. ५. नेरइय० गाहा [सू० २९ गा. ५४] । यस्य नैस्तयैग सर्वतोभाविनोऽवधेन्तद्वान् जीवोऽभ्यन्तरे कर्ते 5 सोऽभ्यन्तरावधिः । तथा च [आवयक] चूर्णिः—“अभंभतगावही नाम” जथ से छियस्स ओहिनाणं समुप्पज तओ टाणाओ आरम्भ सो ओहीनाणी निरंतरसवदं संखेजं वा असखेजं वा खेतं ओहिणा जागइ पासइ एस अभंभतगावही” [विभाग १ पत्र ६३] अवधिमत्तः ‘वहिः’ बाह्योऽवधिः । अयमर्थः—“जथ से छियस्स ओहिनाणं समुप्पजे तम्मि टाणे सो ओहिनाणी न किंचि पासइ, तं पुण टाणं जाडे अंतरियं होइ अंगुल-विहत्थिमाईहि संखेजेहि असंखेजेहि वा जेयणाहि ताहे पासइ, एस वाहिरावही” [आवयकचूर्णि विभाग १ पत्र ६२-६३] । एवं चावधेर्द्वये नारका देवास्तीर्थकराधावधिज्ञानस्याबाधा भवन्ति, 10 अव्युपलभ्यस्य क्षेत्रस्थान्तर्वर्तिते, अभ्यन्तरवर्तिन एव भवन्ति, अत एवाबाधावधय एवैने प्रतिपादन्ते, अभ्यन्तरावधय इत्यर्थ, अवधिप्रकाशितक्षेत्रस्य प्रदीपा इव निजनिजप्रभापटलस्य नैते वहिर्भवतीति भावः । तथाऽवधिना ‘पश्यन्ति’ अवलोकयन्ति, स्वल-शब्दस्यावधारणार्थत्वात् ‘सर्वत एव’ सर्वाम्बेव दिशु विदिशु च, न तु देशत इत्यर्थ । ‘शेषा’ तिर्थेषु मनुष्याः ‘देशेनेति’ एक देशेन पश्यन्ति, तत्र वाक्यावधारणविधेरिष्टत प्रथमे शेषा एव देशत पश्यन्ति, न तु शेषा देशत एवेति दृष्टव्यम् । शेषान्तिर्थेषु मनुष्याः सर्वतो देशतश्च पश्यन्तीति भावः । ननु ‘अवधेरबाधा भवति’ इत्यव्युपलभ्यक्षेत्रस्याभ्यन्तरे नारकादयो वर्तन्ते इत्युक्ते 15 सति ‘पश्यन्ति सर्वतः’ इति किमर्थे भण्यते ? ये त्वपधिप्रकाशितक्षेत्रस्य मन्थं वर्तन्ते तं सर्वतः पश्यन्त्येति यानर्थ-वादानिरिच्यते । अत्रोच्यते—यो ह्यसम्बन्धवत्याकारक्षेत्रप्रकाशनावधिर्भवति तद्वान् साक्षादिव-युपलभ्यक्षेत्रस्यान्तरे स्थितोऽपि न सर्वत पश्यन्ति, अन्तरालाददृशीनात, अतस्तदवच्छेदार्थं कर्तव्यं ‘पश्यन्ति सर्वतः’ इति ॥

अथवा पूर्वार्द्धमन्यथा व्याख्यायते—तत्र के नियतावधयः / के वाऽनियतावधयः / इति प्रश्ने नारक-देव-तीर्थकरा अवधेर-बाधा भवतीति । कोऽर्थ—अवधिज्ञानवन्त एवामी भवन्ति, अवधिज्ञानं नियमेनैषां भवतीत्यर्थः । तत्रापि किममी तेनावधिना सर्वतः 20 पश्यन्ति / देशतो वा / इति सशये सत्याह—“पासन्ति” इत्याद्युत्तरार्द्धम्, अस्य व्याख्या तथैवेति । तत्रैतत् स्यात्—“भवप्रत्ययो नारक-देवानाम्” [तत्त्वार्थ. अ. १ सू. २२] इत्यादिवचनात् तथा—“तिहि नागेहि समग्गा तिथयरा जाव होति गिहवासे ।” [आव० भाष्य गा. ११० पत्र १८७] इत्यादिवचनात् पारमविकावधिसमन्वागमत् सिद्धमेव नारक-देव तीर्थकराणां नियतावधिर्वि-तत् किमनेन / ‘पश्यन्ति सर्वत एव’ इत्येतद्वस्तु, नैवम् । भवप्रत्ययादिवचसा सिद्धेऽमीषां नियतावधिषु “ओहिस्सवाहिरा होंति” ति कालस्य नियमोऽयं विधीयते । इदमुक्तं भवति—भवप्रत्ययादिवचनात् सिध्यति नियमेन नारकादीनामवधिभवम्, परं न ज्ञायते 25 “किमाभवप्रत्ययमीषामवधिर्भवति / आहोस्मिन्तु कियन्तमपि कालं भूयाऽसौ प्रतिपत्तति / इति, ततश्च “ओहिस्सवाहिरा होंति” इत्यनेन कालनियमः कियते. ‘सर्वदा’ सर्वकालमपीषामवधिर्भवति, न त्वन्तरालेऽपि प्रतिपत्तति । आह—यथैवं तीर्थकृतां सर्वकाला-वस्थाशिवलभ्येर्बिह्व्यते, केवलोपत्तौ तदभावात्, न, तेषां केवल्योपनावापि वस्तुनस्तःपरिच्छेदस्यायनदृष्टत्वात् सुतारं केवलज्ञानेन सम्पूर्णान्तर्भामिकवस्तुपरिच्छित्ते. छत्रश्चकालस्य चाविवक्षितत्वाददोषः ॥ इत्यवधिज्ञानं समाप्तम् ॥

[पृष्ठ ३३]

- 30 अथ मनःपर्यवज्ञाने किञ्चिदुच्यते— पं. ७. उत्पत्तिस्वामीयादि. उपत्तेः स्वामी तस्य मार्गणा—अन्वेषणा ‘क्रीडक्षत्येदुमुपजायते’ इत्येवंरूपा तस्या द्वारं तेनेति विग्रहः । पं. १३. उक्तं चेत्यादि, अयमत्र सम्बन्धः—राज्ञोपनीतं

१-२ अभंभतरालद्धी इति पाठ. आव० चूर्णं ॥ ३ वाहिरलेभो आव० चूर्णं ॥

यत् सिंहासनं तत्रोपविष्टो भगवत्पादपङ्क्तिं बोपविष्टो ज्येष्ठोऽन्यो वा गणधरो द्वितीयपौरुष्यां सङ्गच्छयाऽर्जिता भवाः—असङ्गच्छेयास्तानपि कथयति, असङ्गच्छेयभवेषु यदभवत् यद् भविष्यति तत् सर्वं कथयति । 'यद् वा' यद् वस्तुजातं परः पृच्छेद् अभिलाष्यपदार्थगोचरं तत् सर्वं कथयति । किं बहुना ! 'न च' नैव "ण"मिति वाक्यालङ्कारे "अगाडसेसि" ति अनतिशयी अवस्थाथतिशयरहित इत्यर्थः विजानाति 'यथैष गणधरःछद्मस्थः' इति, अशेषप्रश्नोत्तरप्रदानसमर्थत्वात् तस्येति भाव इति गाद्यार्थः ॥ पं. १६. अत्रार्थे उत्तरत्रयमदायि । पं. २६. **त्रीणि योजनशतानीत्यादि**, हिमवांश्च शिखरी च हिमवच्छिखरिणी तयोः पादा इव पादाः— 5
अप्रभागास्तेषु प्रतिष्ठिताः—व्यवस्थिता एकोलकादयोऽन्तरद्वीपाः । **क्षेत्रसमासादिप्रन्थादेतत्स्वरूपं विज्ञेयम् ।** पं. २९. **एकेषां मते पुद्गलद्रव्योपचयार्थं यकाऽऽहारादिविषया शक्तिरूपथते सा पर्याप्तिरुच्यते ।** पं. ३०. सम्प्रति च—'तत्रेयादिना इत्येके' पर्यक्तेनापरमतेन पर्याप्तिस्वरूपमुक्तम् ।

[पृष्ठ ३४]

पं. ५. **आसां युगपदिति ।**

वेडेन्वा-ऽऽहाराणं सरीरं अन्तो उ ('अंतमुहु), पण इगिसमया । पिह पण अन्तमुहुत्ता, उरले आहार सामहया ॥१॥

पं. ११. ये मिथ्यात्वात् सम्यक्त्वस्य प्रतिपत्त्यभिमुखाः, न तु सम्यक्त्वस्य परित्यागामिमुखाः, ते जीवाः **सम्यगिमिथ्या-दृष्टयोऽन्तर्मुहूर्तमात्रं कालं भवन्ति ।** पं. १२. किमित्येवं तल्लक्षणं व्याख्यायते ! इत्याह—यत् उक्तमिति ।

मिच्छेता संकंती अवरुद्धा होइ सम्भ-मीसेमु । मीसाओ वा दोमु सम्भा मिच्छे न उण मीसं ॥ १ ॥

इति गाथा परिपूर्णा । यतः सम्यक्त्वयुञ्जाद् मिश्रयुञ्जगमनं निषिद्धमनयेति भावः । संयतस्य सर्वप्रभादारहितस्य विविधसिद्धिं 15
इदमुपपत्तेन, शेषश्च सम्प्रवृष्टिपर्याप्तकादिविशेषणकलापः सामर्थ्यलभोऽनुच्यते प्रपञ्चज्ञतिश्याक्वोद्यार्थम् । पं. २६. **अस्यां व्युत्पत्ताविति**, ऋञ्ची चासौ मतिश्चेति कर्मधारयरूपायाम्, यदा ऋञ्ची—साक्षात्तृतेषु मनोद्रव्येषु अनुमितेषु चार्थेष्वपतरविशेष-
विषयतया मुग्धा मति—विषयपरिच्छित्तिर्यस्य प्रमातुः स ऋजुमतिः । विपुलमतिरपि प्रमातैव ।

[पृष्ठ ३५]

पं. १२. **द्रव्यत् इत्यादि ।** अनन्तप्रादेशिकान् मनस्त्वपरिणतानन्तस्कन्धसमूहमयमनोद्रव्यरूपान् स्कन्धान् जानाति । 20

क्षेत्रतस्तु ऋजुमतेरद्भैतृतीयाङ्गल्लहानो मनुष्यलोको विषयः । स एव विपुलमतेः सम्पूर्णो निर्मलतरः । **कालतस्त्वेताविति** क्षेत्रे भूत-
भाविनोः फन्योपमासंख्येयभागयोरनीता-ऽनागतानि संज्ञिमनोरूपाणि मूर्त्तद्रव्याणि विषयः । **भावतस्तु** तत्पर्याया रूपादय-
श्चिन्तानुगुणा परिणतिरूपा ऋजुमतेर्विषयः । चिन्तनीयं तु मूर्त्तमूर्त्तं वा त्रिकालगोचरमपि बाह्यमर्थमनुमानादेवेति, 'यत् एत-
त्परिणतीत्येतानि मनोद्रव्याणिति एतद्रव्यथानुपपत्तेः अमुकोऽनेनार्थश्चिन्तितः' इति लेखादरदर्शनात् तदुक्तार्थमिवाप्रत्यक्षं मनोद्रव्य-
दर्शनाच्चिन्तयमर्थमनुमिमीते । विपुलमतेश्चायं विषयः स्फुटतरः बहुतरविशेषाभ्यासितत्वेन विमलतरोऽवसेयः । तेन मनोगतद्रव्यस्कन्धान् 25
तद्वत्चिन्तानुगुणान् सर्वपर्यायारभ्यन्तभागरूपाननन्तान् रूपार्दीन् पर्यायान् चिन्तनीयबाह्यघटादिवस्तुगतांश्च जानाति सविशेषान्,
पर्योपमासङ्ख्येयभागरूपे काले ये तेषां मनस्त्वपरिणमितमनोद्रव्याणां भूता अनागताश्च चिन्तानुगुणाः पर्यायास्तान् सविशेषान्

१ वैकित्या-ऽऽहाराकवोस्तु शरीरपर्याप्तिः अन्तर्मुहुत्तम्, पश् पर्याप्तयः एकैकसामयिकम् । औदार्यं के पश् पर्याप्तयः पृथग् आन्तर्माहृत्तिकम्-
आहारपर्याप्तिः एकसामयिकी ॥ इति भावार्थगर्भां छाया । अत्रार्थे एषाऽपि प्रवचान्तर्गता गाथाऽत्रयेया—वेडिक्व्य पजत्ती सरीर अंतमुहु, सेम
इगसमया । आहारे इगसमया सेसा, अतमुहु ओराले ॥ १ ॥ इति । **विचारससतिकायां** तु मतमेदेन पर्याप्तिस्वरूप इत्यन्ते—'उरल-
विडव्या-ऽऽहारे छण् वि पजत्ति जुगवनारंभो । तिण् वि पडसिगसमए, भीआ पुण अंतमोहुस्ती ॥ ४४ ॥ पिहु पिहु अषडसमदयअंतमुहुत्ता
उराल चउरो वि । पिहु पिहु समया चउरो वि ह्रिति वेडिक्व्या-ऽऽहारे ॥ ४५ ॥ छण् वि सममारंभे पडमा समए, वि अंतमोहुत्ती ।
ति टुरिअ समए समए सुरेडु, पण-छट्ट इगसमए ॥ ४६ ॥' इति ॥ २ इय गाथा **कल्पलघुभाष्य** ११४ गोपासमा ॥

- जानाति । पं. १५. “बज्जे” ति बाह्यान् चिन्तनीयघटादीन् प्रामुपदशितानुमानाजानाति, न तु साक्षादित्यर्थः । अनुमाना-
देव चिन्तनीयमूर्तमन्याकारादिकं वस्तु अवगच्छति, छप्रस्थश्चातूर्त्तं साक्षात् पश्यति क्लिष्टेन भावः । पं. १८. अथ मनः-
पर्यायदर्शनं भिन्नं नोक्तं कथं ‘पश्यति’ इत्युच्यते । सत्यम्, अचक्षुर्दर्शनाख्यं मनोरूपनोद्भिन्नं दर्शनेविषयमस्य द्रष्टव्यम्, तेनास्य
दर्शनसम्भवः । अयमर्थः—पश्य घटादिकमर्थं चिन्तयत साक्षादेव मनःपर्यायज्ञानी मनोद्रव्याणि तावजानाति, तान्येव च
5 मानसेनाचक्षुर्दर्शनेन विकल्पयति, अतो मानसाचक्षुर्दर्शनापेक्षया पश्यतीत्युच्यते । ततश्चैकस्यैव मनःपर्यायज्ञानिनः प्रमातुर्मनःपर्याय-
ज्ञानादनन्तरमेव मानस[म]चक्षुर्दर्शनेनमुपपद्यते इत्यसावेक एव प्रमाता मनःपर्यायज्ञानेन मनोद्रव्याणि जानाति, तान्येव चाचक्षुर्दर्शनेन
मानसेन पश्यतीत्यभिधीयते । पं. १९. एतदेवाऽऽह—एकप्रमात्रपेक्षयेति, ज्ञानानन्तरमाकिवाच मानसाचक्षुर्दर्शनेत्येति
कृत्वा सूत्रे पश्यतीत्युपपद्यस्तम् । ओषतो वेति, विशेषोपयोगापेक्षया जानाति, सामान्यार्थोपयोगापेक्षया पश्यतीत्युक्तम् ।
पं. २१. ऊर्वापस्तिर्यग्भेदात् त्रिधा मनःपर्यायज्ञानिनः क्षेत्रविषयो द्रष्टव्यः । तत्र ऋजुमतेरधोविषयोऽसुभ्या रत्नप्रभायाः
10 पृथिव्या उपरिमाधसुभ्यान् क्षुल्लकप्रतरान् यावन्नमनोभूतान् भावान् जानाति, ऊर्वा यावत्स्योतिश्चक्षुर्योपरितलम्, तिर्यक् च
मनुष्यलोकान्तम् । सोऽपि ऋजुमतेरर्द्धतृतीयाङ्गुलीनः, इतरस्य सम्पूर्णः । शेषद्रव्यादित्यर्थं कथितं सुगमं चेति समुदायार्थः ।
वैशाखरत्नस्य प्रसारितपादं कटिस्थकस्युर्मुखं पुरुषमिव लोकं व्यवस्थाप्य सर्वमिदं भावनीयमिति । पं. २३. प्राकृत-
वृष्यैशराणि च व्याख्येयानि एतदनुसारतः । रुचकामिधानात् तिर्यग्लोकमध्याद् अधो यावन्नव योजनशतानि रुचकादेव चोर्ध्वं
नव योजनशतानि यावत् स्योतिश्चक्षुर्योपरितलस्तावदेष समुदितोऽष्टादशशतयोजनमानान्तिर्यग्लोक इति । पं. २८. संवट्टो
15 कायञ्चो ति संवर्तः—सङ्कोचनम् ।

[पृष्ठ ३६]

- पं. ३. तिरियल्लोयमज्जात् ति रुचकामिधानात् तिर्यग्लोकमध्याद् अधो यावन्नव योजनशतानि तावदमुभ्या रत्नप्रभाया
उपरिमाः क्षुल्लकप्रतराः, क्षुल्लकत्वं च तेषामधोलोकप्रतरापेक्षया । तेभ्योऽपि येऽधस्तादधोलोकप्रामान् यावत् तेऽधस्तनाः क्षुल्लक-
प्रतराः । पं. ५. अह्व चि रयणप्यहपुढवीण इति न योज्यम् । पं. ६. अत्र पक्षे अण्णे इत्यादि ।
20 पं. ७. सव्वतिरियल्लोगवत्तिणो ति अष्टादशशतयोजनवर्तिनः । पं. ८. ताण च्वे चि नवयोजनगतमध्ववर्तिनाम् ।
इमं च चि अधोलौकिकग्रामेषु मनःपर्यवज्ञानवाधावत्, यत्तिर्यग्लोकस्यो मनःपर्यायज्ञानी पश्यतीत्यत्र मते आपन्नम् ।
अन्वयः—

अहलोहयगामेसुं तिथयरा केवली य विज्जंति । जाण विजयाण मज्जे मेरुस्य य पच्छिमदिसाण् ॥ १ ॥

- पं. १३. अपान्तरात्मातावत्पुत्रपतिस्थानमप्राप्तुवन्तोऽपि सङ्गिनोऽभिधीयन्ते, तदासुष्केति आगामिमवायुष्फोदयवशात् ।
25 पं. १४. तेऽपि चेति इन्द्रियपर्याया पर्यायत्वभावात् पक्षेन्द्रियव्यपदेशं लभन्ते, परं मनःपर्याया पर्याया एव पक्षेन्द्रिया
प्राप्ताः । पं. १६. हेतुवादीपदेशेनेति, हेतुः—निमित्तं कारणभियनर्थान्तरम्, तस्य बदनं—बादस्तद्विषय उपदेशः—प्ररूपणं
हेतुवादीपदेशः, तेन विकलेन्द्रियाः—द्वीन्द्रियादयः सचेष्टाकाः संज्ञिनः, पृथिव्याद्य एव निषेधा असंज्ञिनः । हेतुवाद्यश्चायम्—
संज्ञिनो द्वीन्द्रियादयः, हेयोपादेषु निवृत्ति-प्रवृत्तेः, देवदत्तादिकत्, तथा च तापादिस्तन्ताऽऽयासामश्रयणादि कुर्वन्तो इत्यन्ते ।
पं. १८. निपुल्लमतिर्ऋजुमतेः सकाशात् जानाति पश्यति क्षेत्रमायाम-विष्कम्भावाश्रियाभ्यधिकतरकम्, बाह्वन्यामाश्रिय
30 निपुल्लतरकम्, ‘विशुद्धतरं’ निर्मलतरं ‘वितिमिरतरकं’ तिमिरकल्पतदावरणस्य विशिष्टतरस्योपशमसद्भावात् ।
पं. २१. विशुद्धतरमित्यत्र दृष्टान्तपुरःसरं विशुद्धतरत्वं भावयति यथा चन्द्रेयादिना—कारणविशेषात् कार्यविशेषः क्लि
भवन्नुपलभ्यते, यथा चन्द्रकान्तादिविमलप्रकाशकद्रव्यविशेषाद् विमलप्रकाशयुक्तो द्रष्टा विमलं पश्यति, स एव चन्द्रकान्तादि-

विमलतरप्रकाशकद्रव्यविशेषाद् विमलप्रकाशशुक्लद्रष्टुः सकाशाद् विमलतरं पश्यति, एवं प्रकृतोऽपि तपश्चरण-विनय-ध्यानादि यः कारणभेदः ततस्तद्देशाद् विष्कम्भितोदयं यन्मनःपर्यायज्ञानस्थाऽऽवरणम्—आवारकं कर्म तस्य मन्द-मन्दतरविशेषभावो भवति । यस्य तपश्चरणाद्यन्तं तस्य मन्दस्तदावरणविष्कम्भितोदयविशेषः, यस्यान्त्यतरं तस्य सोऽपि मन्दतरः, यस्य तपश्चरणादिभेदः प्रकृष्टः तस्य विष्कम्भितोदयविशेषोऽपि विमलः, यस्य तपश्चरणादि प्रकृष्टतरं तस्य तदावरणविष्कम्भितोदयत्वमपि विशिष्टतर-मित्यक्षरगामनिका । पं. २३. उपशान्तं नाम विष्कम्भितोदयं यदावरणं तस्य विशेषादपि । तदावरणेति, तिमिरकल्पं 5 यत् तदावरणं तस्य क्षयेण सह उपशामः—उदीर्णानां कर्मणां क्षयेण वेदनकृतः अनुदीर्णानां चोपशमने विष्कम्भितोदयत्वेन क्षयो-पशमस्तस्य विशेषाद् 'वितिमिरतरं' आवरणवितिमिररहितम् । पं. २५. अथवेति प्राप्तवद् यत् तदावरणं कर्म तस्य क्षयोपशमः प्रागुक्तस्तस्य प्राधान्याद् विशुद्धतरम् । बन्धमानावरणस्य विशेषस्तारतम्येन यत्र तद् वितिमिरतरम् । पं. २६. अन्ये तु 'तदावरणस्य बन्धमानाभावेन वितिमिरं तदुच्यते' इत्याहुः । पं. २७. अथ 'वितिमिरादिविशेषणं क्षेत्रं जानाति पश्यति' इति कथमुच्यते ? क्षेत्रं ह्याकाशम् तस्य चामूर्त्तत्वात् कथं तद्विषये लक्ष्यस्थस्य पश्यतासम्भवः ? इत्याहाह— 10 तात्स्थ्यादिति, क्षेत्रस्यं द्रव्यमपि क्षेत्रमुच्यते । समर्थितं मनःपर्यायज्ञानम् ॥

[पृष्ठ ३७]

केवलज्ञानमधुना । तत्र— पं. १६. कर्मो सिष्ये य० गाहा । नाम-स्थापना-द्रव्यसिद्धद्रव्युदासने शेषाः कर्मसिद्धा-दयश्चतुर्दशमो सिद्धभेदाः । तत्र कर्मणि सिद्धः कर्मसिद्धः, कर्मणि निष्ठां गत इत्यर्थः । एवं शिल्पसिद्धादिवचि वाच्यम् । नवरं 15 कर्म-शिल्पयोर्विशेषोऽयम्—आचार्योपदेशाद् यद् न जातं तदनाचार्योपदेशजं सातिशयमनन्यसाधारणं कर्मोच्यते, यदाचार्योपदेशजं ग्रन्थनिबन्धाद् उपजायते तत् सातिशयं कर्मापि शिल्पमुच्यते । अयं वाऽनयोर्विभंगः—यत् किल पीठफलक-मञ्चादिनिर्माणं तस्मिन्नेव क्षणे प्रारब्धं तदैव निष्पाद्यतेऽकालहर्षं तत् कादाचिकिकं शिल्पम्, न पुनः प्रासादादिवन्नित्यं प्रतिदिनं यत् क्रियते, प्रासादादि-निर्माणगादिकं तु बहुदिनसाध्यावादाचार्योपदेशजत्वात् सातिशयं नित्यव्यापारत्वात् शिल्पमपि कर्मोच्यते । अत एव बुद्धिप्रस्ताषे 20 वक्ष्यति—“कादाचिकिकं वा शिल्पम्, नित्यव्यापारः कर्म” [पत्र ४७ पंक्ति २६] इति । कर्मसिद्धादिदृष्टान्तास्त्वावश्यकत्वाद् ज्ञेयाः । श्रीदेवताधिष्ठिता विद्या ससाधना च । पुरुषदेवताधिष्ठितो मन्त्रोऽसाधनश्च । योगोऽदृश्यीकरण-पादप्रलेपादिगोचरः । तत्र 20 योगसिद्धः पादलिप्ताचार्यवत्, आगमसिद्धो गौतमवत्, अर्थसिद्धो मम्मणवर्णिवत्, यात्रासिद्धो हनूमानवत्, अभिप्रायः—बुद्धिः तसिद्धः चाणक्या-ऽभयकुमारादिवत्, तपःसिद्धो वृद्धप्रहारिवत्, कर्मशयसिद्धो निरञ्जन-ऋषभादिवत् । पं. १९. सितं बद्धमिति, सेतनि-बन्नाति जीवमिति सितम् नाम्युपभवात् [कातत्र ४-२-५१] के सितम्, “षिञ्च बन्धने वा” भावे के सितमिति । पं. २८. सह योगेनेति—जीवव्यापारेण वर्तन्ते सयोगाः, योगा मनोवाकाया एव, तेऽस्य सन्तीति सयोगी । 25

[पृष्ठ ३८]

पं. ५. तत्प्रथमतयेति, यो येन भावेन पूर्वं नासीद् इदानीं च जातः स तेन भावेन तत्प्रथम उच्यते, तस्याप्राप्तपूर्वत्वात्, प्राप्तस्य पुनर्वासाभावात् । पं. ६. अन्यथा प्रतिपाद्यत इति, द्वैविध्यमिति शेषः ॥ पं. २७. अनन्तरभवगतो-पाधिभेदेनेति, अनन्तरभवगतत्वासाधुपाधिभेदश्च स तथा तेन । उपाधिः—विशेषणम् ।

[पृष्ठ ३९]

पं. १. अविच्ययशक्तिसमन्वितं च तद् अविशंसादि च तद् उडुपकल्पं च—नौकल्पं तत् तथेति समासः ।

पं. ४. तीर्थान्तरसिद्धा नाम ये सुविधिप्रभृतीनामष्टानां शान्तिनाथानानां जिनानामन्तरेषु जातिस्मरणादिनाऽवाप्तज्ञानादि-
सन्मार्गाः सन्तः सिद्धाः । तीर्थान्तरकालस्य च मानसिदम्—

चउभाग चउभागो तिन्नि चउभाग पलियमेग च । चउभाग चउभागो चउथभागो चउभागो ॥ १ ॥

[प्रवचन० गा. ४३१] ति ।

- 5 पं. ७. स्वयं—बाह्यनिमित्तमन्तरेण जातिस्मरणादिना बुद्धा. सन्तो ये सिद्धास्ते स्वयम्बुद्धसिद्धाः । प्रत्येकम्—अन्यान्थं
बाह्यं—वृषभादि कारणं दृष्ट्वा बुद्धा. सन्तो ये सिद्धास्ते प्रत्येकबुद्धसिद्धाः । पं. ११. उपधिः पुनः स्वयम्बुद्धानां
चोलषट्-मात्रकवर्जः पात्रादिद्वादशविधः । प्रत्येकबुद्धानां पुनर्जम्बुको रजोहरण-मुखवल्बिकारूपो द्विविध उपधिः, उक्कटतश्चोल-
षट्-मात्रक-कल्पत्रिकवर्जो नवविधः । पं. १२. स्वयम्बुद्धानां पूर्वाधीतं श्रुतं स्यादा न वा । प्रत्येकबुद्धानां पुनस्तनियमतो
भक्त्येव, जम्प्यत एकादशाङ्गानि, उक्कटतो भिन्नदशपूर्वाङ्गि । लिङ्गप्रतिपत्तिः स्वयम्बुद्धानां यदि पूर्वाधीतं श्रुतं नास्ति ततो
10 नियमाद् गुरुसमीपे भवति, अथ श्रुतं समस्ति ततो देवता लिङ्ग प्रयच्छन्ति गुरुसमीपे वा प्रतिपद्यन्ते । यदि चैकाङ्गिविहारयोग्यता
इच्छा च समस्ति तत एकाङ्गिन एव विचरन्ति, अन्यथा गच्छन्ति एवाऽऽसते । प्रत्येकबुद्धानां पुनर्लिङ्गं देवतैव प्रयच्छन्ति, लिङ्गवर्जिता
वा भवन्ति । यदुक्तम्—“रूपं पत्तयेनुहा” | आव० नि० गा० ११५१] इति । अत्र सहस्रधगाथा यथा—
सुरलिङ्गे पुत्रसुप्त, अनियय-नियया सबुद्ध-पत्तये । अनिमिनेययोही, वारस नव उवहिणो हुति ॥१॥ []

- पं. १६. तीर्थकरीसिद्धा स्तोका. १ तीर्थकरीतीर्थे 'नोतीर्थीसिद्धा.' तीर्थान्तरे सिद्धा ये प्रत्येकबुद्धसिद्धा इत्यर्थः. ते
15 सङ्ख्यातगुणाः २ तीर्थकरीतीर्थे 'नोतीर्थकरीसिद्धा' सामान्यकेवलसिद्धिः ताः सङ्ख्येयगुणाः ३ तीर्थकरीतीर्थे 'नोतीर्थकरीसिद्धाः'
सामान्यकेवलपुरुषास्ताभ्यः सङ्ख्येयगुणाः ४ । पं. १८. यथा तीर्थकरा. स्त्रीलिङ्गे भवन्त्येवं नृपुंसकलिङ्गेऽपि किं ते स्युः
इत्याशङ्क्याऽऽह—न तु नृपुंसकलिङ्गा इति, तीर्थकृतः स्युरिति वाक्यशेषः । प्रत्येकबुद्धा अपि स्त्री-नृपुंसकलिङ्गे न भवन्ति, किन्तु
पुंस्त्वेषु । तीर्थकर-प्रत्येकबुद्धवर्जः केचन नृपुंसकलिङ्गसिद्धा भवन्ति । रजोहरणादिलिङ्गधारिणो ये सिद्धास्ते स्वलिङ्गसिद्धाः ।
परिव्राजकादिलिङ्गसिद्धा अन्यलिङ्गसिद्धाः । नवरं यदाऽन्यलिङ्गिनामपि भावतः सम्यक्त्वादिप्रतिपत्तानां केवलज्ञानमुत्पद्यते तदैव च
20 कालं कुर्वन्ति तदेवम् । अन्यथा यदि दीर्घमायुरात्मनः पश्यन्ति तदा साधुलिङ्गमेव प्रतिपद्यन्ते । एवं गृहलिङ्गसिद्धा अपि
मरुदेवोपभृतयः इत्यमेव वक्तव्याः । सिद्धकेवलिनोऽपि गुणाष्टकं भवति । यदुक्तम्—

सम्मत्त १ नाग २ दंसण ३ वीरिया ४ ऽवाहा ५ तथा य अवगाहो ६ ।

अगुरुल्लह ७ मुहुमत्तं ८ अट्ट गुणा हुंति सिद्धस्स १ ॥ []

- पं. २२. बचीसा० गाहा । एतद्विचरणम्—यदा एकसमयेन एकादय उक्कषेण द्वारिगत् सिध्यन्ति तदा द्वितीयेऽपि समये
25 द्वारिगत्, एवं त्रैत्येण अष्टौ समयान् यावद् द्वारिगत् सिध्यन्ति, तत ऊर्ध्वमेवश्यमेवात्तं भवतीति । यदा पुनस्त्रयस्त्रिंशत्
आरभ्य अष्टचत्वारिंशदन्ता एकसमयेन सिध्यन्ति तदा निरन्तरं सप्त समयान् सिध्यन्ति, ततोऽप्यस्यमेवात्तरं भवति । एवं यदा
एकोनपञ्चाशत्तमादि कृत्वा यावत् षष्टिकसमयेन सिध्यन्ति तदा निरन्तरं षट् समयान् सिध्यन्ति, तदुपरि अन्तरं समयादि
भवति । एवमन्यत्रापि योऽयम् । यावद् अष्टगतमेकसमयेन यदा सिध्यन्ति तदाऽप्यस्यमेव समयात्तरं भवतीति । अन्ये तु
न्याचक्षते—अष्टौ समयान् यदा त्रैत्येण सिद्धिस्तदा प्रथमसमये जम्प्येनैकः सिध्यति उक्कटतो द्वारिगत्, द्वितीयसमये
30 जम्प्येनैक उक्कटतोऽष्टचत्वारिंशत्, तदेवं सर्वत्र जम्प्येनैकः समयः उक्कटतो गाथाश्लेषोऽयं भावनीय इति ॥

[पृष्ठ ४०]

पं. १३. क्रमोपयोगादाविति, आदिशब्देन एकोपयोगमतस्य परिग्रहः ।

पं. २९. इह्राऽऽई० गाहा । व्याख्या—ननु यथेकस्मिन् समये केवलज्ञानोपयोगोऽयस्मिन्स्तु समये केवलदर्शनोप-
योग इत्यते तदर्थैव क्रमोपयोगत्वे केवलज्ञान-दर्शनयोः 'सन्निभत्वं' प्रतिसमयं सान्त्वत्तं प्राप्नोति, तथा च सति तयो-
समयोक्तमपर्यवसितत्वं हीयते । अथवा यः कष्टरतातिन कृत्वा ज्ञानावरणादिक्रमो विहितः सः 'मिथ्या' निरर्थकः 'जिनस्य'
भगवतः प्राप्नोति, समयात् समयादूर्ध्वं केवलज्ञान-दर्शनोपयोगयोः पुनरप्यभावात् ; नह्यपनीतावरणौ द्वौ प्रदीपौ क्रमेण प्रकाश्यं
प्रकाशयतः क्रियतु युगपदेव । अथवा केवलज्ञान-दर्शनयोः 'इतरेतरावरणता' परस्परमावारकत्वं प्राप्नोति, कर्मरूपावरणमात्रेऽपि 5
अन्यतरसद्भावेऽन्यतरमावादिति । अथ इतरेतरावरणता नेत्यने तदीन्यतरोपयोगकालेऽयस्य निष्कारणमेवाऽऽवरणं स्यात्, तथा च
सति "नित्यं सत्वमसत्त्वं वा" [प्रमाणवार्तिके ३-३४] इत्यादि प्रसज्यत इति ॥ ४ ॥

[पृष्ठ ४१]

पं. ९. तथा एकतरस्मिन्—ज्ञाने दर्शने वा अनुपयुक्त एकतरानुपयुक्तः, तस्मिन् एकतरानुपयुक्ते केवलिनीष्यमाणे ज्ञानानु-
पयोगकाले तस्य केवलिनोऽसर्वज्ञत्वं प्राप्नोति, दर्शनानुपयोगकाले त्वसर्वदर्शित्वं प्रसजति, तद्भाससर्वज्ञत्वमसर्वदर्शित्वं च नेष्टं 10
ज्ञानानाम्, सर्वदैव केवल्यिनि सर्वज्ञत्व-सर्वदर्शित्वान्युपगमादिनि । सूरिराह—ननु छग्रश्चर्यापि दर्शन-ज्ञानयोरेकांतरे उपयोगे
सर्वमिदं दोषजालं समानमेव । अत्रापि हि शक्यते एवं वक्तुम्—ज्ञानानुपयोगे तस्याज्ञानित्वम्, दर्शनानुपयोगे पुनरदर्शित्वम्,
तथा मिथ्याऽऽवरणस्य इतरेतरावरणता वा निष्कारणावरणत्वं केव्यादि 'बहुविधिका' बहुविधा दोषा इत्यर्थः ॥ ५ ॥

पं. १३. भ्रणर्ह्यादिपाथा विवृता प्रथकृता किञ्चित्, मुगमाश्च ॥

[पृष्ठ ४२]

पं. ४. तदित्यं बुभुक्षिता नरद्रवीश्व बुशगृहं प्रविशन्ती निचिड्युक्किलगुडादितैर्निवार्यमाणाऽपि परस्य दुराग्रहबुद्धिर्न निव-
र्त्तते, ततश्चभ्रुषी निर्मास्य शृष्टयथा पुनरप्याह—तुल्ले उभयावरणे० गाहा । द्विविधोपयोगभावे इष्यमाणे जिनस्य प्रथमतर्
उद्भव—उत्पादः कस्य ? ज्ञानस्य ? दर्शनस्य वा ? इति, आवरणस्यस्य युगपद्भावात्, ततो जिनस्य द्विविधोपयोगाभावः
प्राप्नोति इति प्रश्नः, युगपद्भावनिधौ एकोऽपि न प्राप्नोति ॥ १३ ॥

पं. १४. अथैवं सूरि पर दुरभिनियोगमुच्चन्तमवलोक्य युगपदुपयोगद्वयपक्षं मूलत एवोऽमूल्यितं क्रमोपयोगसाधकं व्यक्त- 20
मेव सिद्धान्तोक्तमादर्शयन्नाह—

भणियं पि य पन्नत्ती-पन्नवणाईसु, जह जिणो समयं ।

जं जाणह न वि पासह तं अनु-रयणप्पभाईणि ॥ १६ ॥

ननु 'प्रज्ञप्त्यां' भगवत्यां प्रज्ञापनायां च स्फुटं 'भणितमेव' उक्तमेव, यथा—'जित.' केवली परमाणु-रूपप्रभादीनि
वस्तुनि "समयं जं जाणह" ति यस्मिन् समये जानाति "न वि पासह तं" ति तस्मिन् समये नैव पश्यति, किन्त्वयस्मिन् समये 25
जानाति अन्यस्मिन्स्तु पश्यति । इयमत्र भावना—इह भगवत्यां तावदष्टादशगतस्याष्टमोदेशके स्फुटमेवोक्तम्, तद्यथा—"छउमत्थे णं
भंते ! मणुस्से परमाणुपोगलं किं जाणह न पासह ! उदाहु न जाणह न पासह ! गो ! अथेगइए जाणह न पासह, अथेगइए
न जाणह न पासह, एवं जाव असंल्लेजपसिए ख्वे !" इह छग्रस्यो निरतिशयो गृह्यते । तत्र श्रुतज्ञानी उपयुक्तः श्रुतज्ञानेन
परमाणुं जानाति न तु पश्यति, श्रुते दर्शनाभावात् । अपरस्तु न जानाति न पश्यति । "एवं आटोहिए वि" आधोवधिकः—
न्यूनावधिकः । "परमाणुहिए णं भंते ! मणुस्से परमाणुपोगलं जं समयं जाणह तं समयं पासह ! जं समयं पासह तं समयं 30

जाणह ! नो इण्टु समट्टे । से केणट्टेणं भंते ! एवं बुबइ ! गो० । सागारे से नाणे भवइ, अणागारे से दंसणे भवइ, से तेणट्टेणं एवं बुबइयादि । केवल्ल णं भंते ! अण्णसे परमाणुपोगलं जं समयं जाणह तं समयं पासइ ! जं समयं पासइ तं समयं जाणह ! गो इण्टु० । से केणट्टेणं भंते ! एवं बुबइ ! गो० । सागारे से नाणे भवइ, अणागारे से दंसणे भवइ, से एणणट्टेणं एवं बुबइ” त्वादि [पत्र ७५५] । एवं प्रज्ञापनोक्तमपि द्रष्टव्यम् । तदेवं सिद्धान्ते स्फुटाक्षरैर्युगपत्पयोगे निधिद्वेऽपि किमिति सर्वानर्थमूलं 5 तदभिमानमुल्लङ्घ्य क्रमोपयोगो नेष्यते । इति ॥ १६ ॥

[पृष्ठ ४३]

पं. १५. सूत्रक्रमोद्देशत इति, नन्यादिमूत्रे इत्यमेव तस्य निर्देशात् । शुद्धित इति, केवल्लस्य हि सर्वावरणक्षयसम्भ-
वत्वेन सर्वोच्छ्रित्वात् सर्वोपरिवर्तिनी विशुद्धिः । लाभत इति, लामोऽपि केवल्लस्य शेषज्ञानानन्तरं पश्चादेव भवतीति मनःपर्याय-
ज्ञानादानन्तरं केवल्लज्ञानमुपन्यस्तम्, अतस्तदर्थमुक्तोऽयमशब्दः । ‘अथ’ अनन्तरं केवल्लज्ञानमुच्यते । कथम्भूतम् ? इत्याह—
10 सर्वाणि च तानि द्रव्याणि च सर्वद्रव्याणि—जीवादीनि, तेषां परिणमनानि परिणामाः—प्रयोग-विक्रसोभयजन्या उत्पादादयः सर्व-
द्रव्यपरिणामाः, तेषां भावः—सत्ता स्वलक्षणं वा तस्य विविधं विशेषेण वा ज्ञपने—प्रबोधनं विज्ञप्तिः, अथवा विविधे विशेषेण वा
ज्ञानम्—अवबोधः परिच्छिन्नविज्ञप्तिः, तस्याः केवल्लज्ञानादभेदेऽपि विवक्षितभेदयोः कारणं—हेतुविज्ञानिकारणम्, सर्वद्रव्य-क्षेत्र-
काल-भावास्तित्वपरिच्छेदकमित्यर्थः । तच्चानन्तज्ञेयविषयवैतानन्तपर्यायत्वादनन्तम् । गणझावात् शाश्वतम्, सततोपयोगमित्यर्थः ।
तथा ‘अप्रतिपाति’ अन्ययम्, सदाऽवस्थाधीत्यर्थः । समस्तावरणक्षयसम्भूतत्वाद् ‘एकविध’ भेदविमुक्तम् । ‘केवल्ल’ परिपूर्णम्,
15 समस्तज्ञेयावगमात्, मत्वादिज्ञाननिरपेक्षत्वाद् असहायं वा केवल्लम्, तच्च तद् ज्ञानं च केवल्लज्ञानमिति गार्थार्थः ॥

पं. ३०. केवल्लज्ञाने० गाहा । इह समुपनकेवल्लज्ञानस्तीर्थकगटिः ‘अर्थान्’ धर्मात्मिकायादीन् सूत्रां-सूत्रां-ऽभिल्या-
ऽभिल्यान् केवल्लज्ञानेनैव ‘ज्ञात्वा’ अवबुध्य, न तु श्रुतज्ञानेन, तस्य क्षायोपशमिकत्वात् केवल्लज्ञानावरणस्य सर्वथा क्षीणत्वेन
तत्क्षयोपशमाभावात् ; नहि सर्वविशुद्धे पदे देगविशुद्धिः सम्भवति, तद्विहापीति भावः । तन किम् ? इत्याह—‘तत्र’ तेषामर्थानां
मन्थे ये प्रज्ञापनायाः—प्ररूपगया योम्याः ‘तान्’ अभिल्यान् भाषते, नेतरानभिल्यान् । प्रज्ञापनीथानपि न सर्वांश्च भाषते.
20 तेषामनन्तत्वात्, आनुष्तु परिमितत्वात्, किं तर्हि ? योग्यानेव भाषते प्रहीनृगण्यपेक्षया, यो हि यावतां योग्य इति, यत्र
वाऽभिहिते शेषमनुक्तमपि विनोयोऽभ्यूहति । तदपि योग्यं भाषते, यथा ऋषभसेनादीनामुपादादिपदत्रयोपन्यासेनैव शेषगतिः ।
तत्र केवल्लज्ञानोपलभ्यार्थानिधायकः शब्दरगिभाष्यमाणस्तस्य मगवत ‘वहजोग’ चि वाययोग एव भवति, न तु श्रुतम्, नाम-
कर्मोदयजन्यत्वात् । तत्र नामकर्मैह भाषापयांसिसामर्थ्यं शरीरनाम वा, तस्योदयजन्यत्वाद् वाक्परिस्पन्दस्य, श्रुतस्य च क्षायोपशमि-
कत्वात् । ज्ञानमप्यस्य केवल्लिनः क्षायिकत्वात् केवल्लमेव. न भावश्रुतम् । आह—‘ननु वाययोगो वाक्परिस्पन्दो वाग्वार्यमित्यनर्थ-
25 न्तरम्, अर्थं च भवतु नामकर्मोदयजन्यः, भाष्यमागस्तु पुत्रलाभकः शब्दः किं भवतु ? इति चेत्, उच्यते—सोऽपि श्रोतृणां भाव-
श्रुतकारणत्वाद् द्रव्यश्रुतमात्रं भवति, न तु भावश्रुतम् । तर्हि किं तद् भावश्रुतम् ? इत्याह—‘सुये हवइ सेसं’ ति ज्ञानं यत् छत्रस्थानां
गणधरादीनां श्रुतप्रधानुसारी ज्ञान तदेव केवल्लज्ञानापेक्षया ‘शेषम्’ अन्यद् भावश्रुतं भवति, क्षायोपशमिकोपयोगात्, न तु
केवल्लिगतं ज्ञानम्, तस्य क्षायिकत्वादिति । अथवा ‘सुये हवइ सेसं’ इत्यन्यथा व्याख्यायते—तद् भयमानं शब्दमात्रं तत्काल
एव श्रुतं न भवति, किं तर्हि ? शेषं कालमिति वाक्यशेषः । इदमुक्तं भवति—तत् केवल्लिनः शब्दमात्रम्, श्रोतृणां श्रवणानन्तर-
30 लक्षणे शेषकाले श्रोतृगतज्ञानकारणत्वेनोपचारात् ‘श्रुते’ द्रव्यश्रुतं भवति, न तु भगनक्रियाकाल इति । अथवाऽन्यथा व्याख्यायते—
स केवल्लिनः सम्बन्धी वाययोगः श्रुतं भवति । कथम्भूतम् ? ‘शेषं’ गुणभूतमप्रधानम्, औपचारिकत्वादिति । अन्ये तु पठन्ति—
‘वहजोग सुये हवइ तैसिं’ ति, तत्र ‘तेषां’ भाषमाणानां सम्बन्धी वाययोगः श्रोतृगतश्रुतकारणत्वात् श्रुतं भवति, द्रव्यश्रुत-
मित्यर्थः । अथवाऽन्योर्थः—‘तेषामिति’ श्रोतृणां तानाश्रित्येत्यर्थः, भाषकगतं वाययोग एव श्रुतं वाययोगश्रुतं भवति, भावश्रुतका-

रणत्वाद् द्रव्यश्रुतमेवेत्यर्थः । अथवा तानर्थात् भाते केवली, वाग्योगक्षायां शब्दराशिरस्य माषमाणस्य भवति, तथा श्रुतुणां भावश्रुतकारणत्वात् श्रुतमसौ भवति । पदघटनाकृत एव विशेषः, अर्थः स एषेति गाथार्थः ॥

[पृष्ठ ४४]

पं. १४. अनयोश्चेत्यादि, 'मतिपूर्वकात्वात् श्रुतस्य विशिष्टमयंशरूपत्वाद्वा श्रुतात् प्रथमतो मतिज्ञानमेवोच्यते' इत्यादिकं प्रयोजनमुक्तम् [पत्र १९ पं. १८] । पं. २६. स्वामित्वादिभिर्विशेषाभावाद् मति-श्रुतयोरैकतैव प्राप्ता, न भेदः स्यात्, 5 तथा च सति न परोक्षद्वैविध्यसिद्धिः ज्ञानपञ्चकसिद्धिर्वा, धर्मभेदे हि वस्तुनां भेदः स्यात्, धर्माभेदे तु घट-तत्स्वरूपयोरिवाभेद एव श्रेयानिति पराशयः । अत्राऽऽचार्यः प्रत्युत्तरयति लक्षणभेदादित्यादिना, यथापि स्वामि-कालादिभिर्मति-श्रुतयोरैकत्वं तथापि लक्षण-कार्य-कारणभावादिभिर्नानात्वमस्येव, घटा-ऽऽकाश-धर्मा-ऽधर्मादीनामपि हि सत्त्व-प्रमेयत्वा-ऽर्थक्रियाकारित्वादिभिः साम्ये-ऽपि लक्षणादिभेदाद् भेद एव । यदि पुनर्बहुभिर्धर्मभेदे सत्यपि क्रियद्गर्मसाम्यमात्रादेवाथानामैकत्वं प्रेर्येत तदा सर्वं विश्वमेकं स्यात् । किं हि नाम तद् वस्तुवस्ति यस्य वस्तुवन्तरैः सह कैश्चिद् धर्मैर्न साम्यमस्ति, तस्मात् स्वान्यादिभिस्तुच्यन्तेऽपि लक्षणा- 10 दिभिर्मति-श्रुतयोर्भेदः । ते च मति-श्रुतभेदनिबन्धना लक्षणादयः सप्तिण्डयैकगाथयोच्यन्ते । सा चैवम् —

लक्षणमेया हेउ-फलभावोभेय इंदियविभाग । वाग-ऽक्खर-मूयग्रमेया मेभो महु-मुयाणं ॥१॥ [विशेषा० गा० ९७]

'लक्षणभेदाद्' भिन्नलक्षणत्वान्मति-श्रुतयोर्भेदः । तथा मतिज्ञानं हेतु श्रुतं तु तत्फलं-तत्कार्यमिति हेतु-फलभावात् तयो-र्भेदः । तथा "मेय" त्ति विभागशब्दो अत्रापि युज्यते, ततश्च भेदानां विभाग-विशेषो भिन्नत्वं भेदविभागस्तस्मादपि मति-श्रुतयो-र्भेदः । अवग्रहादिभेदादष्टाविंशत्यादिभेदं हि मतिज्ञानं वक्ष्यते, "अक्खर सण्णी सम्म"मित्यादिवक्ष्यमाणवचनाच्चतुर्दशादिभेदं 15 च श्रुतज्ञानमिति भेदविभागात् तयोर्भेद इति भावः । "इंदियविभाग" त्ति तत्त्वतः श्रोत्रविषयमेव श्रुतज्ञानम्, शेषेन्द्रियविषयमपि मतिज्ञानमित्येवं वक्ष्यमाणादिन्द्रियविभागाच्च तयोर्भेदः । "वागे"त्यादि, क्वक्ख अक्षरं च मूकं च वल्कादिप्रतिपक्षमूतानीतराणि च वल्का-ऽक्षर-मूकेतराणि तैर्योऽसौ भेदस्तस्मादपि मति-श्रुतयोर्भेद इत्यर्थः । तथाहि—

"अन्ने मज्जेति महुं वागसमा, सुंवरिसरयं सुत्तं ।" [विशेषा० गा० १५४] इत्यादिना ग्रन्थेन कारणत्वाद् क्वक्खसदृशं मतिज्ञानम्, शुम्भसदृशं तु श्रुतज्ञानम्, कार्यत्वादिष्वभिहितम् । तत्र क्वक्खः-पलाशादिवृत्तम्, शुम्भं तु इतरशब्देनेहोपात्तम्, 20 तज्जनिता दवरिकोच्यते । ततश्चायमभिप्रायः-यथा बलनादिसंस्कृतो विशिष्टावस्थाप्राप्तः सन् वक्त्रो दवरिकेत्युच्यते, तथा परो-पदेशाद्देहचनसङ्गतविशिष्टावस्थाप्राप्तं सद् मतिज्ञानं श्रुतमभिधीयत इत्येवं क्वक्खेतरभेदान्मति-श्रुतयोर्भेदः । तथा—

"अन्ने अणक्खर-ऽक्खरविसेसओ महु-मुयाइं भिदन्ति ।

जं महुनाणमणक्खरमक्खरमियरं च सुयनाणं ॥१॥" [विशेषा० गा० १६२]

इत्यक्षरेतरभेदात् तयोर्भेदः । तथा—

"स-परप्यच्चायणओ मेभो मूयराण वाऽमिहिओ ।

जं मूयं महुनाणं स-परप्यच्चायणं सुत्तं ॥१॥" [विशेषा० गा० १७१]

इति वचनान्मूकेतरभेदाद् मति-श्रुतयोर्भेद इति गाथार्थः ॥

[पृष्ठ ४५]

पं. १. तत्रानयोर्लक्षणभेदाद् भेदं तावत् सूत्रकारः प्राह 'अभिनिबुध्यते' इत्यादिना-यद् ज्ञानं कर्तुं वस्तु कर्मतापन्न- 30 मभिनिबुध्यते-अवगच्छति तद् ज्ञानमाभिनिबोधिकम्, मतिज्ञानं तदित्यर्थः, यज्जिवः शृणोति तत् श्रुतम् इत्येवं सूत्रोक्तलक्षण-भेदादनयोर्भेदः । यदि 'अदात्ता शृणोति तत् श्रुत'मिति श्रुतस्य लक्षणमुच्यते तर्हि शब्दमेव जीवः शृणोतीति सकल-

जगत्प्रतीकमेवेति स एव श्रुततां प्राप्नोति, नाऽऽत्मनः परिणामविशेषः, अत्रोच्यते, तत्त्वतो जीवः श्रुतम्, ज्ञान-ज्ञानिनोरभेदाद् जीवः शूणोतीति कृत्वा श्रुतकारणत्वात् श्रुतशब्दः स्यादुपचारतः । पं. २. प्रकारान्तरेणापि मति-श्रुतयोर्लक्षणभेदमाह एतदुक्तमित्यादिना—इन्द्रियाणि च मनश्च तानि निमित्तं यस्य तत् तथा, इन्द्रिय-मनोद्वारेण यद् विज्ञानमुपजायते तत् श्रुतम्, श्रुतज्ञानमित्यर्थः । इन्द्रिय-मनोनिमित्तं च मतिज्ञानमपि भवत्यतस्तद्द्वयवच्छेदार्थमाह—श्रुतग्रन्थानुसारिणेति, श्रूयते इति श्रुतं-शब्द उच्यते, स च सङ्केतयोरचरोपदेशरूपः श्रुतग्रन्थसम्बन्धेद् गृह्यते, तदनुसारेण यदुपजायते तत् श्रुतज्ञानम्, नान्यत् । एतदुक्तं भवति—सङ्केतकालप्रवृत्तं श्रुतग्रन्थसम्बन्धिनं वा घटादिशब्दमनुसृत्य वाच्य-वाचकभावेन संयोज्य 'घटो घटः' इत्याद्यतर्कपाका-स्मृतःशब्दोल्लेखान्वितमिन्द्रियादिनिमित्तं यद् ज्ञानमुदेति तत् श्रुतज्ञानमित्यर्थः । शेषमिन्द्रिय-मनोनिमित्तमश्रुतानुसारेण यद्वयमहादि ज्ञानं तन्मतिज्ञानमित्यर्थः । तदुक्तम्—

इदिय-मनोनिमित्तं जं विनाणो मुयागुसारेण । नियत्युत्तिसमर्थं तं भावमुये, मई सेस ॥१॥ [विशेषांगा १००]

- 10 सुगमा । नवरमिन्द्रियादिनिमित्तं यद् ज्ञानमुदेति तत् श्रुतज्ञानम् । तच्च कथम्भूतम् / निजकार्योक्तिसमर्थम्, अभिलाष्य-वस्तुविषयमित्यर्थः, स्वरूपविशेषमेतत्, शब्दानुसारिणो ज्ञानस्य निजकार्योक्तिसामर्थ्यायभिचारत् । अत्राऽऽह कश्चित्—ननु यदि शब्दोल्लेखसहितं श्रुतज्ञानमित्येते, शेषं तु मतिज्ञानम्, तदा वक्ष्यमाणस्वरूपोऽवग्रह एव मतिज्ञानं स्यात्, न पुनर्गिहा-ऽप्यादाय, तेषां शब्दोल्लेखसहितत्वात्, मतिज्ञानभेदत्वेन चैते प्रसिद्धा, मतिज्ञानभेदानां चेहाऽप्यादादीनां सामिन्नापत्तेन श्रुतज्ञानप्रतिषेध स्यादियुगमयलक्षणसङ्कीर्णता, अत्रोच्यते—यद्यपीहादयः सामिन्नापास्तथापि न तेषां श्रुतस्वभावात्, श्रुतानुसारेण एव सामिन्नाप-
15 ज्ञानस्य श्रुतत्वात् । अथावग्रहादयः श्रुतनिश्चिता एव सिद्धान्ते प्रोक्ता, तत्र, पूर्वं श्रुतपरिकर्मितमेतन्व नै ममुपजायते इति श्रुत-निश्चिता उच्यन्ते, न पुनर्व्यवहारकाले श्रुतानुसारित्वमेतन्वन्ति, तदा हि अभ्यासापटववशात् परपदेशमङ्गैतमगदानुसंगमन्त-रैषौभासारादिप्रवाचनं ईहादिप्रवृत्त्यनुपलक्षणात् कथं श्रुतानुसारित्वं तत्र सङ्गच्छते ! अनुकर्मिणः प्रप्ये एतद्विषयमिहितमित्येवं श्रुतग्रन्थानुसरणं विनाऽपि पदव्यास्यवशादानवन्तं विकल्पपरंपरपूर्वकविषयवचनप्रवृत्तदुर्गनाच्च । यत्र तु श्रुतानुसारित्वं तत्रे-
हादिषु श्रुतरूपताऽस्माभिरपि न निषिध्यते, तस्मात् श्रुतानुसारित्वाभावेन श्रुतत्वाभावादीहा-ऽप्याय-धारणानां मतिज्ञानवयमेव, न
20 श्रुतज्ञानवम् । किञ्च—नेह मति-श्रुतयोः परमाणु-कर्मिणोऽपि वाऽऽत्यन्तिको भेदः समन्वेषणीयः, यत् प्राग्निहोक्तम्—विभिद्य-कश्चिन्मति-विशेष एव श्रुतमिति क्लृप्तसदृशं मतिज्ञानं तज्जनिदवरिकारूपं श्रुतज्ञानम् । न च क्लृप्त-मुम्भवो परमाणु-कुस्रखद्यात्यन्तिको भेदः, किन्तु कारण-कार्यभावकृत एव, स चेहाप्यस्ति, मते. कारणत्वेन श्रुतस्य तु कार्यत्वेनाभिधायमानवान् । न च कारण-कार्ययोरै कारित्को भेदः; क्लृप्त-कुण्डलारिषु मुष्पिण्ड-कुण्डादिषु च तथाऽऽर्गनात् । तस्मात्तदग्रहापेक्षयाऽनभिलाष्यत्वाद् ईहाद्यपेक्षया तु सामिन्नापत्वात् सामिन्नाप-ऽनभिलाष्यं मतिज्ञानं अश्रुतानुसारि च. सङ्केतकालप्रवृत्तस्य श्रुतग्रन्थसम्बन्धिनो वा शब्दरूपस्य श्रुतस्य
25 व्यवहारकालेऽननुसरणात् । श्रुतज्ञानं तु सामिन्नापमेव श्रुतानुसारेण च, सङ्केतकालप्रवृत्तस्य श्रुतग्रन्थसम्बन्धिनो वा शब्दरूपस्य श्रुतस्य व्यवहारकालेऽननुसरणादिति स्थितम् ॥ पं. ५. इत्थं लक्षणभेदाद् भेदाऽभिहितः । सम्प्रति हेतु-फलभावाद-नयोर्भेदं दर्शयति "मइपुत्रं मुयं, न मई मुयपुत्रिव्या" इत्यनेन—यदि व्येक्येव मति-श्रुतयोर्भेदो तदा एतन्मनो नियमेन पूर्व-पश्चाद्भावो घट-तत्स्वरूपयोरिव न स्यात्, अस्ति चायम्, ततो भेद इति भावः । पू धातुः पालन-पूरणयोरर्थयोः पठ्यते, तस्य च पिपतीति पूर्वमिति निपात्यते । पूर्वशब्दथायमिह कारणपर्यायो द्रष्टव्यः, कार्यात् पूर्वमेव कारणस्य भावात्, सम्पन्नानुपूर्विका सर्व-
30 पुरुषार्थसिद्धिरित्यादौ तथादर्शनात् । ततश्च मतिपूर्वं श्रुतमिति कोऽर्थः / श्रुतज्ञानं कार्यं मतिस्तु तत्कारणम्, कार्य-कारणयोश्च मुष्पिण्ड-घटयोरिव कथञ्चिद् भेदः प्रतीत एव । पं. ६. किमिति पुनर्मतिः पूर्वं कारणस्य श्रुतस्य / इत्याह—तथा चेद-मित्यादि, अनुपेक्षादिकालेऽभ्यासाभूद्य श्रुतपर्यायवर्धनेन मयैव श्रुतज्ञानं पुर्यते—पोष्यते, पुष्टिं नीयत इत्यर्थः; तथा मयैवान्वयतस्तत् प्राप्यते—गृह्यतेऽन्यस्मै दीयते वा, न मतिमन्तरेणेत्यर्थः; तथा गृहीतं सदेतत् परावर्तन-चित्तनद्वारेण मयैव पात्यते—स्थिरीक्रियते,

अन्यथा मय्यभावे तद् गृहीतमपि प्रणयेदेवेत्यर्थः । श्रुतज्ञानस्थैते पूरण-प्रापण-पालनादयोऽर्था विशिष्टान्बुद्ध्युद्धारणादीन्तरेण कर्तुं न शक्यन्ते, अन्युद्धारदयश्च मतिज्ञानमेधेति सर्वथा श्रुतस्य मतिरेव कारणं श्रुतं तु कार्य इति कारण-कार्यरूपत्वाद् मति-श्रुतयोर्भेदः । पं. १२. भावश्रुतान्मतिर्नास्तीति, भावश्रुतपूर्विका मतिर्न भवतीत्यर्थः, द्रव्यश्रुतप्रभवा तु भवतु, को दोषः ? ।

पं. १४. यद्वेति, भावश्रुतान्मतिर्नास्ति, कार्यतयैव निश्चित्ये, न पुनः क्रमेणेति । क्रमशस्तु मतिर्नास्तीत्येवं न, किन्तु क्रमशो मतिरस्येव, क्रमेण जायमानां मतिं को निवारयति ? । तथाहि—मत्या श्रुतोपयोगो ज्ञयते, तदुपरमे तु निवकारणात् 5 प्रवृत्ता पुनरपि मतिरवतिष्ठते, पुनस्तथैव श्रुतं तथैव च मतिरित्येवं क्रमेण भवन्ती मतिरित्यत एव, यस्मात् श्रुतोपयोगात् श्रुतस्य मताववर्धितिर्भवति, श्रुतोपयोगोपरमे क्रमायातं मय्यवस्थानं न निवारयते, अन्यथा आमरणात् केवलश्रुतमात्रोपयोगप्रसङ्गात् ।

पं. १६. अथ श्रुतस्य परो मतिपूर्वतां विघटयन्नाह—

**नाणाणाऽण्णाणाणि य समकालाहं जओ मह-सुयाहं ।
तो न सुयं महपुञ्चं महनाणे वा सुयज्ञाणं ॥ १ ॥**

10

इह मति-श्रुते वक्ष्यमाणयुक्त्या द्विविधे—सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानस्वरूपे, मिथ्यादृष्टेस्त्वज्ञानस्वभावे । तत्र ज्ञाने अज्ञाने वैते प्रत्येकं समकालमेव भवतः, तत्संयोगशमलाभस्याऽऽगमे युगपदेव निर्देशात् । यतश्चैते ज्ञाने अज्ञाने च मति-श्रुते पृथक् पृथक् समकाले भवतः ततो न श्रुतं मतिपूर्वं युज्यते, नहि सममेवोपपन्नयोः सन्येतस्योविपागयोरेव पूर्व-पश्चाद्भावः सङ्गच्छते । अथोत्सूत्रोऽप्यसदा-ग्रहवशात् स पूर्व-पश्चाद्भावो न त्यज्यते इत्याह “महनाणे वा” इत्यादि । इदमुक्तं भवति—मतिज्ञाने समुत्पन्ने तत्समकालं च श्रुत-ज्ञानेऽन्युत्पन्नम्यमाने श्रुताज्ञानं जीवस्य प्रसज्यते, श्रुतज्ञानानुत्पादेषुपि तैदनिवृत्तेः, न च ज्ञाना-ज्ञानयोः समकालमवस्थिति- 15 रागमे कचिद्व्यनुमन्यते, विरोधात्, ज्ञानस्य सम्यग्दृष्टिसम्भावित्वात्, अज्ञानस्य तु मिथ्यादृष्टिभाक्त्वादिति गाथार्थः ॥ १ ॥

अत्र प्रतिविधानमाह—

पं. १७. **इह लद्धिमह-सुयाहं समकालाहं, न नृवओगो सिं ।
महपुञ्चं सुयमिह पुण सुओवओगो महप्पभवो ॥ २ ॥**

ननु ध्यात्व्यविवृम्भितमिदं परस्य, अमिप्रायापरिज्ञानात् । तथाहि—द्विविधे मति-श्रुते—तदावरणक्षयोपशमरूपलब्धितः उपयोग- 20 तश्च । तत्रेह लब्धितो ये मति-श्रुते ते एव समकालं भवतः, यस्त्वनयोरुपयोगः स युगपन्न भवत्येव, किन्तु केवलज्ञान-दर्शनयोरेव तथास्वाभाव्यात् क्रमेणैव प्रवर्तते । अत्र तर्हि लब्धिमहोद्भव मतिपूर्वता श्रुतस्योक्ता भविष्यतीति चेत्, नैवमित्याह—मतिपूर्वं श्रुतम्, इह तु श्रुतोपयोग एव मतिप्रभवोऽङ्गीक्रियते, न लब्धिरिति भावः । श्रुतोपयोगो हि विशिष्टमन्तर्कैपाकारं श्रुतानुसारि ज्ञानमभिधीयते, तच्चावग्रहहादीन्तरेणाऽऽकस्मिन् न भवति, अवग्रहादयश्च मतिरेवेति तत्पूर्वता श्रुतस्य न विरुध्यत इति गाथार्थः ॥ २ ॥

तदेवं मतिपूर्वं श्रुतमिति समर्थितम् । परस्तु मतेरपि श्रुतपूर्वताऽऽपादनेनाविशेषपुद्गावयन्नाह—

25

**सोऊण जा महं भे सा सुयपुञ्च सि तेण न विसेसो ।
सा दह्वसुयप्पभवा भावसुयाओ महं नत्थि ॥ ३ ॥**

परस्मात् शब्दं श्रुत्वा तद्विषया ‘भे’ भवतामपि वा मतिरूपघते सा ‘श्रुतपूर्वा’ श्रुतकारणैव, शब्दस्य श्रुतत्वेन प्रागुक्त्वात्, तस्याश्च भवेः शब्दप्रसभत्वेन भवतामपि सिद्धत्वात् । ततश्च “न विसेसो” ति अन्योन्यं पूर्वभावितायां मति-श्रुतयोर्नि विशेष इत्यर्थः, तथा च सति “न महं सुयपुञ्चिय” ति यदुक्तं प्राक् तदुक्तं प्राप्नोतीति भावः । अत्रोत्तरमाह—परस्माच्छब्दमाकर्ष्य या मति- 30

१ श्रुताज्ञान जेटि० ॥ २ श्रुत पूर्वं वस्याः जेटि० ॥

रूपवत्ते सा हन्त । शब्दस्य द्रव्यश्रुताक्रवाद द्रव्यश्रुतप्रभवा, न भावश्रुतकारणा, एतत्तु न केनापि वार्यते, किन्त्वेतदेव वयं ब्रूमः, यद्दुत-भावश्रुतात्मनिर्नास्ति, भावश्रुतपूर्विका मतिर्न भवतीत्यर्थः, द्रव्यश्रुतप्रभवा तु भवतु, को दोषः ? इति गाथार्थः ॥ ३ ॥

ननु भावश्रुतापूर्वै मतिः किं सर्वथा न भवति ? इत्याह—

पं. १९. काञ्चतया, न उ कमसो, क्रमेण वा को मइ निवारै ? ।

5

जं मत्यावत्याणं पुनस्स सुत्तोवओगाओ ॥ ४ ॥

भावश्रुतामतिः कार्यतयैव नास्तीत्यनन्तरोक्तगाथावयवेन सम्बन्धः । “न उ कमसो” ति क्रमशास्तु मतिर्नास्तीत्येवं न, किं तर्हि ? , क्रमशः साऽस्तीत्येतत् सर्वोऽपि मन्यते, अन्यथा आमरणवापि श्रुतामात्रोपयोगप्रसङ्गात् । यदि क्रमशः साऽस्ति तर्हि क्रमेण भवन्त्यास्तस्या भवन्तः किं कुर्वन्ति ? इत्याह—क्रमेणोपेयादि, वाग्भट्टः पातार्थ, सा च वृत्तैव, क्रमेण भवन्ती मतिं को निवारयति ? । मत्या श्रुतोपयोगो जन्यते, तदुपरमे तु निजकारणकलापात् सदैव प्रवृत्ता पुनरपि मतिरवतिष्ठते, पुनस्तथैव श्रुतम् तथैव च मतिरित्येवं क्रमेण भवन्त्या मतेर्निपेयका वयं न भवाम इत्यर्थः । किम् ? इत्याह—“यद्” यस्मात् कारणात् “तत्र” तस्यां मती ‘अवस्थानं’ स्थितिर्भवति श्रुतोपयोगात् च्युतस्य, ततः क्रमेण मतिं न निषेधयामः । इदमुक्तं भवति—यथा सामान्यमूनेन सुवर्णेन स्वविशेषरूपाः कङ्कणा-ऽङ्गुलीयकादयो जन्यन्ते अतस्ते तत्कार्यव्यपदेशं लभन्त एव, सुवर्णं स्वतज्जन्यत्वात् तत्कार्यतया न व्यवहियते, तस्य कारणान्तरस्यः काञ्चनोपेलादिस्य सिद्धत्वात् । कङ्कणादिविशेषोपरमे तु सुवर्णावस्थानं क्रमेण न निवार्यते, एवं मायाऽपि सामान्यभूतया स्वविशेषरूपः श्रुतोपयोगो जन्यतेऽतस्तत्कार्यं स उच्यते, मतिस्त्वतज्जन्यत्वात् तत्कार्यतया न व्यपदिश्यते, तस्या हेत्वन्तरात् तदावरणक्षयोपशमात् सदा सिद्धत्वात् स्वविशेषभूतश्रुतोपयोगोपरमे तु क्रमायातं मयवस्थानं न निवार्यते, आमरणान्तं केवलश्रुतोपयोगप्रसङ्गादिति गाथार्थः ॥ ४ ॥

पं. २१. लक्षणमेदाद् हेतु-फलभावाच्च भेदोऽनयोरभिहितः । सम्प्रति भेदविभागात् तमाह—इत्थञ्चेत्यादि,

पंचाह वि इंदिएहि मगसा अथ्योगहो सुण्ययव्वो । चक्खिदिय-मगरहियं वज्रणमीहाइयं उद्धा ॥१॥ [जीवसं०गा० ६२]

इत्थंष्टाविंशतिविधत्वम् ।

20

पं. २३. सोईदिओवलद्धी होइ सुयं, सेसयं तु महनाणं ।

मोत्तूणं दव्वसुयं अक्खरलंभो य सेसेसु ॥ १ ॥

इन्द्रः—जीवः, तस्येदमिन्द्रियम् । श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम्, तच्च तदिन्द्रियं चेति श्रोत्रेन्द्रियम्, उपलम्भनमुपलब्धिः— ज्ञानम्, श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरिति तृतीयासमासः, श्रोत्रेन्द्रियश्च वा उपलब्धिः श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरिति षष्ठीसमासः, श्रोत्रेन्द्रियद्वारकं ज्ञानमित्यर्थः, श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिर्यस्येति बहुव्रीहिणाऽऽयपरार्थे शब्दोऽप्यधिक्रियते, ततश्चाऽऽयसमासस्ये 25 श्रोत्रेन्द्रियद्वारकमभिलाषत्वात्तितोपलब्धिलक्षणं भावश्रुतमुक्तं द्रष्टव्यम्, बहुव्रीहिणा तु तस्यां भावश्रुतोपलब्ध्यावनुपयुक्तस्य वदतो द्रव्यश्रुतम्, तदुपयुक्तस्य तु वदत उभावश्रुतमभिहितं वेदितव्यम् । इह च व्यक्तेदफलत्वात् सर्वं वाक्यं सावधारणं भवति, इष्टतश्चावधारणविधिः प्रवर्तते, ततः ‘सैवो धनुर्द्वर एव’ इत्यादिविषेहायोगव्यवच्छेदेनावधारणं द्रष्टव्यम्, तथा—श्रुतं श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव, न तु श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतमेवेति । श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिस्तु श्रुतं मतिर्वा भवति, यथा धनुर्द्वरसैवोऽप्यो वेति, श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धेरवप्रद्वेहादिरूपाया मतिवत् श्रुतानुसारिण्यास्तु श्रुतवादिति । यदि पुनः ‘श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतमेव’ इत्यवधार्येत तदा 30 तदुपलब्धेर्मतिर्न सर्वथैव न स्यात्, इत्यते च कस्याश्चित् तदपीति भावः । यदि श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतं तर्हि शेषं किं भवतु ? इत्याह—“सेसयं तु” इत्यादि, श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिं विहाय ‘शेषकं’ यच्चक्षुर्द्वारिन्द्रियचतुष्टयोपलब्धिरूपं तद मतिज्ञानं भवतीति वक्ति । तुदम्भः समुच्चये, स चैवं समुच्चिनोति, न केवलं श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिर्मतिज्ञानं किन्तु श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिश्च काचिदवग्रहोऽहामात्ररूपा

मतिज्ञानं भवति, तथा च सत्यनन्तरमवधारणव्याख्यानमुपपन्नं भवति । “सेसयं तु महानाण”मिति सामान्येनैवैको शेषस्य सर्वस्या-
 प्फुससंगेण मतिवै प्राप्ते सत्यपवादमाह—“मोक्षंणं द्रव्यसुयं” ति पुस्तकादिलिखितं यद् द्रव्यश्रुतं तद् ‘युक्त्वा’ परित्यज्यैव शेषं मति-
 ज्ञानं द्रष्टव्यम्, पुस्तकादिन्यस्तं हि भावश्रुतकारणत्वाच्छब्दवद् द्रव्यश्रुतमेवेति कथं मतिज्ञानं स्यात् ? इति भावः । न केवलं
 श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुतम्, किन्तु यश्च शेषेषु चतुर्षु चक्षुरादीन्द्रियेषु श्रुतानुसारिसामिलापविज्ञानरूपोऽक्षरलाभः सोऽपि श्रुतम्,
 न त्वक्षरलाभमात्रम्, तस्येहा-ऽपायापालके मतिज्ञानेऽपि सद्भावादिति । आह—यदि चक्षुरादीन्द्रियाक्षरलाभोऽपि श्रुतं तर्हि यदाश्च 5
 गाद्यावयवे ‘श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतम्’ इत्यवधारणं कृतं तन्नोपपद्यते, अश्रोत्रेन्द्रियोपलब्धेरपीदानीं श्रुतत्वेन समर्थितत्वात्,
 नैतदेवम्, श्रोत्रेन्द्रियाक्षरलाभस्यापि श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरूपत्वात्, स हि श्रुतानुसारिसामिलापज्ञानरूपोऽत्राधिक्रियते, श्रोत्रेन्द्रियो-
 पलब्धिरपि चैव-मूतैव श्रुतमुक्ता, ततश्च सामिलापविज्ञानं श्रोत्रेन्द्रियद्वारेणाप्युपपन्नम्, योग्यतया श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव मन्तव्यम्,
 अभिलापस्य सर्वस्यापि श्रोत्रेन्द्रियग्रहणयोग्यत्वादिति । अत्राह—नु “सोऽइदिविओवल्दी होइ सुयं” तथा “अक्खल्लोभो य सेसेसु”
 इत्युभयवचनात् श्रुतज्ञानस्य सर्वेन्द्रियनिमित्ता सिद्धा, तथा “सेसयं तु महानाण”मिति वचनात् तुशब्दस्य समुच्चयाच्च मतिज्ञानस्यापि 10
 सर्वेन्द्रियकारणता प्रतिष्ठिता, भवद्विस्त्रिचन्द्रियविभागात्मनि-श्रुतयोर्भेदः प्रतिपादयितुमारभ्यः स चैवं न सिध्यति, द्वयोरपि
 सर्वेन्द्रियनिमित्तायास्तुत्येवप्रतिपादानादिनि, अत्रोच्यते, साधूकं भवता, किन्तु यथापि श्रोत्रेन्द्रियद्वारायातत्वात् तदक्षरलाभः
 श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिश्च्यते, तथान्यभिलापात्मकत्वाद्सो श्रोत्रेन्द्रियग्रहणयोग्य एव, ततश्च तत्त्वेन श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेवायम् । तथा च
 सति परमार्थः सर्वं श्रोत्रविषयमेव श्रुतज्ञानम्, मतिज्ञानं तु तद्विषयं श्रोत्रेन्द्रियविषयं च सिद्धं भवति, अत इत्यमिन्द्रियविभागाद्
 मति-श्रुतयोर्भेदो न विहन्यत इत्यलं विस्तरणेण 15
 पूर्वगतगाद्यासङ्क्षेपार्थः ॥

पं. २६. आवरणभेदाच्चेति, मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरणलक्षणकारणभेदात् तदावार्थस्यापि भेदः ।

[पृष्ठ ४६]

पं. ७. ननु यथा मति-श्रुतान्यां सम्म्यग्दृष्टिर्घटादिकं जानीते व्यवहरति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि, तत् किमिति तस्य सत्कं
 सर्वमप्यज्ञानमुच्यते ? इत्याशङ्क्याऽह—

सदसदविसेसणाओ, भवहेउ जदिच्छिओवलंभाओ ।

20

नाणफलाभावाओ, मिच्छदिदिसस अण्णाणं ॥ १ ॥

सच्च असच्च सदसती, तयोः अविशेषणं-अविशेषः तस्माद्भेदोः, मिथ्यादृष्टेः सम्बन्धि व्यवहारमात्रेण ज्ञानमपि निश्चयतोऽज्ञान-
 मुच्यते, सतो द्वास्तवेनासद् विशिष्यते, असतोऽपि च सत्त्वेन सद् भिद्यते । मिथ्यादृष्टिश्च घटे सत्त्व-प्रमेयत्व-मूर्तत्वादीन् सत्त्व-रम्भा-
 ऽभोरूहादिव्यावृत्तादींश्च पटादिधर्मान् सतोऽप्यसत्त्वेन प्रतिपद्यते, ‘सर्वप्रकारैर्घट एवायम्’ इत्यवधारणात् । अनेन द्वावधारणेन
 सन्तोऽपि सत्त्व-प्रमेयत्वादेवः पटादिधर्माः ‘न सन्ति’ इति प्रतिपद्यते, अन्यथा सत्त्व-प्रमेयत्वादासामान्यधर्मद्वारेण घटे पटादीनामपि 25
 सद्भावात् ‘सर्वथा घट एवायम्’ इत्यवधारणानुपपत्तेः । ‘कथञ्चिद् घट एवायम्’ इत्यवधारणे त्वनेकान्तत्वादानुपपत्तेन सम्म्यग्दृष्टित्व-
 प्रसङ्गात्, तथा घट-पुट-नट-शकटादिरूपं घटेऽसदपि सत्त्वेनायमन्युभाञ्छति, ‘सर्वैः प्रकारैः पटोऽस्त्येव’ इत्यवधारणात् ।
 ‘स्यादस्त्येव घटः’ इत्यवधारणे तु स्याद्वादाश्रयणात् सम्म्यग्दृष्टित्वप्राप्तेः । तस्मात् सदसतोर्विशेषाभावाद्-मत्तकस्येव मिथ्यादृष्टे-
 र्बोधोऽज्ञानम् । तथा विपर्यस्तत्वादेव भवहेतुत्वात् तद्बोधोऽज्ञानम् । तथा पञ्चवक्त्र-तिलादिदहन-जलावगगाहनादिषु संसारहेतुषु
 मोक्षहेतुत्वबुद्धेर्यथा-प्रशम-मन्त्रचर्चा-ऽऽकिञ्चन्यादिव तु मोक्षकारणेषु भवहेतुत्वाभ्यवसायतो यदच्छोपलम्भात् तस्याज्ञानम् । तथा 30
 चिरित्यभावेन ज्ञानफलाभावाद् मिथ्यादृष्टेरज्ञानमिति गार्थार्थः ॥

पुंस्वि सुयपरिकम्भियमहस्स जं संपयं सुवाइयं ।

तन्निस्सियमियं पुण अग्गिस्सियं महच्चकं तं ॥ १ ॥ [विशेषा० गा० १६९]

तत्रापि प्रायो वैनयिकीवर्जै द्रष्टव्यम्, तस्यां श्रुतनिश्चितवस्थापि भावात् । पं. १३. मतिज्ञानमेवाधिकृत्य
अश्रद्धाभावेति वदन् [४६] त्ने से किं तं आमिणिबोहियनाणं इति पाठोऽनुब्र इत्याचष्टे, किन्तु “से किं तं मइनाणं
५ इत्थयं भवति । पं. १९. आह—इदमपीत्यादि, कथं पुनरौपत्तिक्यादिवुद्धिचतुष्टयेऽप्रह्लादयः सम्भवन्ति ? तत्र यथा ते
भवन्ति तथा दर्शयते—

किह पडिक्कुडहीणो जुञ्जे ? विवेणऽवगहो, ईहा ।

किं सुसिल्लिट्ठमवाओ दप्पणसंकंतविंबं ति ॥ १ ॥ [विशेषा० गा० ३०४]

इह किलाऽऽग्ने—

10 भरहसिल १ मिढ २ कुक्कुड ३ तिल ४ वाडुय ५ हत्थि ६ अगड ७ वणसेठे ८ ।

पायस ९ अइया १० पते ११ खाडडिला १२ पंच पियरो य १३ ॥ [आव० नि० गा० ९४१]

इत्यादिना औत्पत्तिक्यादिवुद्धिनां बह्वनुदाहरणान्युक्तानि तन्मभ्याच्छेषोपलक्षणार्थं कुक्कुटोदाहरणमाश्रित्यौत्पत्तिक्यां बुद्धाव-
वप्रहादयो भाव्यन्ते—राज्ञा नटकुमारकस्य भरतस्य किल बुद्धिपरीक्षणार्थमादिष्टम्, यदुत—अयं मदीयः कुक्कुटो द्वितीयकुक्कुटमन्त-
रेणैक एव योधनीयः, ततस्तेन जिज्ञासितं मनसि—कथमयं ‘प्रतिकुक्कुटहीनः’ प्रतिपन्नभूतद्वितीयकुक्कुटवर्जितो युष्येत ? एतच्च

15 जिज्ञासमानस्य तस्य ज्ञानियेव स्फुरितं चेतसि । किम् ? इत्याह—‘विम्बेने’ति आग्नीयेन प्रतिविम्बेन पुरो वीक्षितेन दर्पाध्यात-
त्वाद्येव युष्यत इत्यवगृहीतमित्यर्थः । एतच्च किम् ? इत्याह—‘अवग्रह—’सामान्येनैव विम्बमात्रावग्रहादावग्रहः, मतिप्रथमभेद
इत्यर्थः । ईहा तर्हि का ? इत्याह—‘ईहा किं सुसिल्लिट्ठं’ इति किं पुनस्तत् प्रतिविम्बमस्य योधनाय ‘सुसिद्धं’ मुच्यु युष्यमानकं
भवेत् ? किं तडागपयःपूरादिगतम् ? आहोश्चिद दर्पणगतम् ? इत्यादिबिम्बविशेषान्वेषणार्थः । अपायमुपदर्शयति—
‘अवाओ दप्पणसंकंतविंबं’ ति कल्लोदिमिः प्रतिक्षणमपनीयमानवादास्पष्टत्वाच्च ज्ञादिगतविम्बमिह न युक्तम्, ततः स्थिर-

20 त्वेन स्पष्टादित्वेन च चरणाघातादिविषयत्वाद् दर्पणसङ्क्रान्तमेव तदत्र युष्यत इत्येवं विम्बविशेषनिश्चयोऽप्राय इत्यर्थः । एवमन्येष्वपि
बुद्धचुदाहरणेषु अवग्रहादयो भावनीयाः । तस्माद् बुद्धिचतुष्टयेऽप्येषां सद्भावान् श्रुतनिश्चितमिदमपीति पराशयः, अत्रापि श्रुत-
निश्चितानामवग्रहादीनां प्रदर्शितरीत्या सम्भवादिति ॥

पं. २५. औत्पत्तिकी नाम प्रतिभमिति हृदयम् ।

[पृष्ठ ४७]

25 पं. ४. वैनयिक्यां “भरनित्थरणे”ति अतिगुरुकार्यस्य निस्तरणे—पारप्रापणे या समथां । “उभओलोगफलवती”
इति तत्रेहलोके सक्कार-द्रव्यादिलाभः, परलोके स्वर्ग-मोक्षादिप्राप्तिरिति ॥

[पृष्ठ ४८]

पं. १०. “भरइसिल्ले”त्यादिद्वारगाथा । अस्याः सप्तदशोदाहरणानि, तवथा—“भरइसिल्ल” चि, भरतशिला ?
“पणिय” चि पणितं २ वृक्षः ३ “खड्डुग” चि मुद्रारत्नं ४ “पड सरड काय उच्चारे” इति पटः ५ सरडः ६ काफाः ७
30 उच्चारः ८ “गय घयण गोल खंबे” इति गजः ९ “घयण” चि अण्डः १० गोलः ११ स्तम्भः १२ “खुड्ढा मणिगिथि प्ढ
पुत्ते” इति झुल्लकः १३ मार्गः १४ खी १५ द्रौ पती १६ पुत्रः १७ इति । एतानि सप्तदशपि पदानि तत्तज्ज्ञातवृत्तानामवलोकनान्वेषेति
न सूक्ष्मेक्षिका कार्या ॥ तत्राऽऽपञ्चातस्य सङ्ग्रहगाथा— पं. २९. भरइसिल्लेत्यादि । भरतः— नटस्तद्वृत्तान्तमत्ता शिक्षा

भरतशिला १ 'भेण्डः' मेघः २ 'कुक्कुटः' ताम्रचूडः ३ 'तिल' ति तिलाः ४ 'वाल्गु' ति वाल्गुकायाः सम्बन्धिनी वरत्रा ५ हस्ती ६ 'अगडे' ति 'अवट' कूयः ७ वनखण्डः ८ पायसं ९ 'अइय' ति अजिकायाः—छगलिकायाः पुरीयोगलिकाः १० 'पते' इति पिप्पलपत्रम् ११ 'खाडहिल' ति तिल्लहडिका १२ 'पञ्च पितरश्च' तव राजन् ! पञ्च जनकाः १३ ॥ तथा—महुसिस्थेव्यादि । 'महुसिस्थ' ति 'मधुसिधकं' मदनं १ मुद्रिका २ अङ्कश्च ३ 'नाणकं' व्यवहारार्हं रूपकलक्षणम् ४ 'भिक्लु चेडगनिहाणे' इति भिक्षुः ५ चेटकनिधानं ६ शिवा च ७ अर्थः ८ शलं ९ 'इच्छा य महं' ति इच्छा च मम १० शतसहस्रः ११ । एवं चाऽऽयसङ्ग्रहाधायाः सम्बन्धिनी सप्तदश एतानि चैकादश मीलितान्यष्टौविंशतिर्मूलज्ञाताभ्योऽपत्तिभ्यां बुद्राविति ॥

भरहसिल पणित० गाधाण ताव—उज्जेणी नगरी । जगवण तत्थ गडाणं गामो । तत्थ एरास्स नइस्स भज्जा मया । तस्स य पुत्तो इहस्यो । नडेण अण्णा आणीया । सा तस्स दारास्स ण वइति विगय-भोयगाहए । तेण दारएण भगित्तं—ममं ण लुट्ठं वइसि जइ, तहा ते करेमि जहा मम पादेसु पडसि ति । तेण रत्ति पिता सहसा भणितो—एस गोहो ति गोहो ति । तेण गातं 'महिला विणट्ट' ति सिद्धिरागो जातो । सा भगति—मा पुत्त ! एवं । तेण भगित्तं—ण लुट्ठं वइसि । सा भगति—वइहामि । अहं पि लुट्ठं करीहामि । सा वइत्तुमारदा । अण्णदा छाहीए चेव 'एस गोहो गोहो' ति भगिते 'कहि ! ति पुट्टो नियदेहछाहि वरिसेति । ततो पिता से लज्जितो । 'सो वि एवविधो' ति तीसे घगरागो जातो । सो वि विसभितो पिताण, समं जेमेति । अण्णया पिताण, समं उज्जेणिं गतो, विद्रा नगरी । निम्गता पिता-पुत्ता । पिता पुणो वि अइगतो 'कि पि ठवियमं विसरितं' ति । सो **सिप्पाए** नदीए, पुल्लिणे नगरिं सन्वं आलिहति । तेण गगरी सचचरा लिहिता । ततो राया एति । तेण राया वारितो, भणितो—मा राउलमज्जेणं ण्हि ति । रणा कोउलहेणं पुच्छितो । सचचरा सत्त्वा कहिया । रणा भणितो—कहिं वससि ! ति । तेण भणितं—अमुगगामे । पिता से आगतो । ते गता । रायगो य एगुणगाणि पंच मंतिसयाणि, एणं मगतति 'जो य मन्वप्याहो होज्ज' ति चिंतियं—एस होज्ज ति । तस्स परिक्खगणमिच्चं इमाणि पेसेत्ति—

भरहसिल १ मंड २ कुक्कुड ३ तिल ४ वालुय ५ हत्थि ६ अगड ७ वणसंढे ८ ।

परमण्ण ९, पत्त १० लिङ्ग ११ खाडहिला १२ पंच पियरो य १३ ॥

लेहं विसजेति, जहा—तुभं गामस्स बाहिं महल्ली सिला तीए मंडवं करह । ते अदण्णा । सो दारओ रोहओ लुहा- 20 इओ, पिता से गामेण समं अच्छति, उस्सुरं आगतो । सो रोयइ—अण्ठे लुहाइया अच्छामो । सो भगति—तुमं सुहिओ सि । किह ! तेण से कहियं । भगति—वीसत्था अच्छह, हेट्टा खंभे ठवेत्ता थोवथोचं खणह भूमिं । खता, उवलवणकतोवथारं मंडवे स्सो निवेदितं । केण कयं ! । रोहगदारणं ? । ततो **मंडओ** पेसितो—एस पक्खेण अगूपाहियं एत्तिओ चेव पक्खिण्णोयव्वो । तेहिं भरहो पुच्छितो । तेण वि विरुक्खेण समं बंधावितो, जवस दिण्णं, तं चरंतस्स ण हायति बळं, विरुगं पेच्छंतस्स भण्ण ण वइदति ति २ । एवं **कुक्कुडो** अदाएण समं जुज्जावितो ३ । 'तिलसमं तेळं दायव्वं' ति तिला अदाएण मिया ४ । **वालुयाए**—वरहपडिछं देह 25 ५ । इरियमि—जुण्णाहत्थी गामे लूट्टो, हत्थी 'अप्याउओ मरिहिलि' ति अप्पितो, 'मतो' ति ण गिबेदियव्वं । हत्थी मतो । तेहिं निवेदितं—जहा ण चरति ण ऊससति न नीससति । रणा भणितं—मतो । तेहिं भणितं—तुभं भगह ति ६ । **अगडे**—आरण्णओ ण तीरह एक्कल्लतो आणेत्तं, गागरं अगडं देह ७ । **वणसंढे**—पुव्वपासे गतो गामो ८ । **परमण्णो**—करिसउग्हाए पला- २० ल्छ्हाए ति ९ । एवं परिक्खिज्जण समादिट्ठं—रोहणेणं आगतव्वं, तं पुण ण सुक्कपक्खे ण कण्हपक्खे, ण राइं न दिवा, न

१ अत्र वयापि टिप्पनकहृता "अर्थः ८ शकम् ९" इति पृथग् व्याख्याय "अष्टाविंशतिर्मूलज्ञानात्तन्वीरगणिकया बुद्धौ" इति निर्दिष्टमस्ति तथाऽनुदाहरणनिरूपणाद्यसरे पूर्वाकार्यव्याख्यापरम्परात्पारि "अर्थशास्त्रम्" इत्येकमेवोदाहरणमुपन्यस्तं वक्षते । तत् किमित्यत्र टिप्पनकहृता "अर्थः ८ शकम्" इति व्याख्याय उदाहरणसकृत्वां चाद्याविधिति निर्दिष्ट्यापि उदाहरणोक्तिव्रतानावसरे अर्थशास्त्रिकयमेवोदाहरण निरदिष्टम् ? इति विद्वद्भिचारधीयमिति ॥

- छायाए न उण्हेणं, न छलेणं न आगासेणं, न पादेहिं न जाणेणं, न पंयेणं न उप्येहेणं, ण ण्हाएणं ण मल्लिणेणं ति । पच्छा अंगोहली काऊग चक्कमञ्जुमीए, एडिक्को एणं पावं काऊग चाल्गणिहिउत्तमंगो संञ्जासमवमि अमावासाए आगतो । रण्णा पत्तित्तो "गेषव्वसुवत्तदो" इत्यादीमां गाथां स पपाठ । आसण्णे थ सोवित्तो । जामविउद्रेण रण्णा सदाइतो—सुतो ? जग्गसि ? । भणति—सामि ! जग्गामि । सो सुत्तो विसुद्धो उट्ठित्तो । रण्णा भणित्तो—जग्गसि / ति । जहा आगवेह । किं तुण्हिक्को अच्छसि ? ।
- 5 तेण भणित्तं—चित्तेमि । किं चित्तेसि ? । भणति—अस्सत्थपत्ताणं किं विट्ठो महल्लो ? उदाहु छिष्ठा ! । किह ते चित्तितं ? । भणति—दो वि समाणि १० । वित्तिप, जामे छाल्लियालिड्डियाओ वातेणं ११ । तए, खाडइला जत्तिया पंडरगा तेत्तिया काल्मा, जत्तियं च पुंछं तत्तियं सरिंरं पि आथामेणं १२ । चउप्ये जामे सदावित्तो वायं ण देति, तेण कंथियाए छित्तो उट्ठित्तो । भणति—किं जग्गसि ? सुवसि ? । भणति—जग्गामि । किं करंसि ? । चित्तेमि । किं चित्तेसि ? । चित्तेमि—कत्तिहिं सि तुमं जातो ? ति । कत्तिहिं ! । तेण भणित्तं—पंचहिं । केण केण ? । रण्णा वेसमणेणं चंडालेणं रयएणं विच्छिणं । तेण माया पुच्छिया, निव्वंघे कहियं
- 10 जहा—रायवीर्यपसूयत्तगओ रण्णा, उदस्स्ये वेसमणक्कलपडिमासव्वेगाल्लियगामिप्पायसंपायगाओ वेसमणेणं, उउण्हाणसमणंतरमेव चंडाल-रयगदंसणे तदमिलासभावो तजायत्तणमवि, तहा विच्छियमक्कणदोहले जाए कणिकामयस्म तस्स मक्कण्णेण तस्संपायगाओ विच्छिण वि । सो पुच्छित्तो—किह ते णायं ? ति । सो भणति—येन यथा न्यायेन रज्जं पालेसि तेण णज्जसि रायपुत्तो ति, वेसमणो दाणेणं, रोणेणं चंडालो, सव्वस्सहरणेणं रयओ, पुग जेग मम कथियाए धदिहसि तेण विच्छित्तो ति १३ । तुट्ठो गथा, सव्वेसि उवरिं ठवित्तो, भोगो थ से दिण्णो ? ।
- 15 पणियए—दोहिं पणित्तमं बद्धं । एगो भणति—जे एताओ लोमसियातो खानि तस्स तुमं किं देसि ? । इतरो भणति—जो जिप्पति तेण जो नगदारे मोदओ ण णीति सो दायव्वो । एगो जिओ । इतरो मग्गति । सो से ख्वंगं देति । इतरो णेच्छति । ताहे दोण्णि, जाहे सत्तेहिं वि ण नूसति ताहे तेग ज्यूकारा ओक्कयिता । बुदी दिण्णा । ताहे पूर्वतावगाओ एणं मोदयं गहाय इंदखीले ठवेति, भणित्तो—गीहिं मोदया ! । ण णीति । जित्तो २ ॥
- रुक्खे—फलाणि मक्कडा ण देति । पाहाणेहिं हना । तेहिं फला निवा ३ ॥
- 20 खड्डुए—पसेणती राया । पुत्तो से सेणिओ रायलक्खगसंणगो, तस्स किंचि ण देति 'मा मारिज्जिहि' ति । सो अद्वितीए निग्गतो वेण्णायद्धं आगतो एगस्स सिट्ठिस्स आवणे टित्तो । तस्स लओ तपमावेणं । सो भत्तं देति । धूताए, संपक्को । दिण्णा । रायाए ल्हो विसज्जित्तो । सो आपुच्छति । सा पत्तिभणति—तुव्वं कहिं ? । सो भणति—अन्धे पंडरकुड्डया रायणिहे गोवाला पसिद्धा । गतो । आवण्णसत्ताए, दोहलो देवलोगकुतस्स ; अमयं सुणेज्जामि । सेट्ठी दव्वं गहाय उवट्ठित्तो रण्णा । रण्णा गहित्तं, उण्णोसियं । पुत्तो जानो, अमओ ति णामं कत्तं । पुच्छति—मम पिना कहिं ? ति । ताए, कहियं । भणति—वच्चाओ ति ।
- 25 सत्थेण समं वच्चंति । रायणिहस्स बहिया टियाणि । गवेसंतो गतो । राया मंति मग्गति । मुक्खकूबे खड्डुग पाडित्तं—जो गेहति हत्थेणं तडे टित्तो तस्स राया विंसिं देति । अमएण दिट्ठं, छाणेण आहत्तं, मुक्खे पाणित्तं सुक्कं, तडे सतण्ण गहित्तं । रण्णो समीवं णीतो । पुच्छति—को तुमं ? । भणति—तुव्वं पुत्तो ति । किह वा ? किं वा ? । सव्वं परिकहित्तं । तुट्ठो, उच्छमि कत्तो । माता पवेसिज्जन्ती भंभेति । तेण वारिया । अमओ जातो ४ ॥

पडे—दो जणा ण्हायन्ति, एगस्स ददो पडो, एगस्स जुण्णो । जुण्णहत्तो ददं गहाय पट्ठित्तो । इतरो मग्गति । सो ण

- 30 देति । बवहारो । महिल्लातो कत्तावित्तातो । दिण्णो जस्स सो । अण्णे भणति—सीसाणि ओलिहित्ताणि, एगस्स उण्णापडतो, एगस्स सीत्तजो ५ ॥

सरदो—सण्णं वोसिरत्तस्स सरडा भंडता । एगो तस्स अहिट्टाणस्स हेट्टा विळं पविट्टो पुळेण छिळो । परं गतो अद्धितीए दुब्बलो जातो । बेजो पुच्छित्तो भणति—जति सत्तं देह । दिण्णं । तेण धडए सरदो छुट्टो लक्खाए विळिपित्ता विरैयणं दिण्णं । वोसिरियं, सरदो कप्परे दिट्टो, लट्ठीहत्तो ॥

बितितो सरदो—भिक्षुणा खुड्डतो पुच्छित्तो—एस सरदो किं सीसं चाळेति ? । तेण भणितं—तुमं जोएति, किं भिक्खू ? भिक्खुणि ? ति ६ ॥

कागो—तच्चण्णएण खुड्डतो पुच्छित्तो—अरहन्ताः सर्वज्ञाः ? । बाढं । तो केत्तिया इहं कागा ? ।

सट्ठिं कागसहस्सा इहइं वेष्णातुडे परिवसंति । जदि ऊगगा पवसिता, अन्वहिता तत्थ पाहुणगा ॥ १ ॥

बितितो—निहिम्मि दिट्टे महिलं परिक्वत्ति—रहस्सं धेति ? न व ? ति । सो भणति—ममं पंडरओ कागो अहिट्टाणं पविट्टो । ताए सहिज्जित्ताणं कहित्तं, जाव रण्णा सुत्तं । पुच्छित्तो । कहियं । रण्णा से मुक्कं, मंती य निउत्तो ॥

ततिओ—विट्टविक्खरणे भागवतो खुड्डं पुच्छति । खुड्डगो भणति—एस चित्तेति 'एथ विट्टू अथि ? एणथि ?' ति ७ ॥

उच्चारं—वेजानियस्स भज्जा तरुगी गामंतंरं निज्जमागी धुत्तेण समं लग्गा । गामे ववहारो । विभत्ताणि पुच्छिताणि 10 आहारं । विरैयणं दिण्णं, तिलमोदया । इतरो धाडितो ८ ॥

गतो—रह्थी महत्तिमहालओ । जो तोलेति तस्स सयसहस्सं देमि । णावाए, तोलेति । लंछिता णावा । उत्तारेऊग पाहाणाणं मरिया जाव सा रेहा । पाहाणा तोलिया । एत्तियं तुलति । जितो ९ ॥

घतणो—मंडो सव्वरहस्सितो । राया देवीए गुणे कहेति—गिरामयं ति । सो भणति—न भवति । किह ? । जता पुप्फाणि केसराणि वा ते दोएति तद् ति । विण्णासित्तं । णार हसित्तं । निब्बंघे कहियं । निब्बिसतो आगतो । उवाहृगाणं भारेण 15 उवट्टितो । उडाहमीयाए, रुद्धो १० ॥

गोलतो णक्कं पविट्टो जतुमतो । सलगमाए तावेत्ता कड्डितो ११ ॥

रंभो तलगमन्धे । जो तडे सटितो वंघति तस्स एत्तियं दिज्जति । तडे खीलं वंघिऊग परियंचिऊग बद्धो । जितो १२ ॥

खुड्डए—परिव्वाइया भणति—जो जं करंति तं मए कायञ्चं कुसलकम्मं । खुड्डतो गतो भिक्खवस्स । पड्डतो वारितो । 20 गतो राउळं । दिट्टा । सा भणति—कत्तो गिल्लामि ? । तेण सागारियं दाइत्तं जिता, काइएण य पउमं लिहियं । सा ण तरति । जिता १३ ॥

ममा ति—एगो भज्जं गहाय पवहणेण गामंतंरं वच्चति । सा सरीरचित्ताए ओत्तिण्णा । तीसे रूवेण वागमंतरी विल्लगा । इतरी रडति । ववहारो । दूरं हाथो पसारितो । णात्तं १४ ॥

इत्थि ति—भूलदेवो अप्पवित्तिज्जओ वच्चति । इतो य एगो पुरिसो समहिलो आगच्छतो दिट्टो । तीए रूवे मुच्छित्तो 25 एगन्ते उव्वत्तिऊग अच्छइ । तेण वितियएण भण्णति महिलहत्तो—मम महिला वितातुकामा, एयं विसज्जेहि ति । तेण विसज्जिता । सो तेण समं अच्छति । इतरी वि भूलदेवेण समं रमिऊग आगया ।

निगंतूया य तत्तो पडयं चेत्तण कंडरीयस्स । धुनी भणति हसंती पियं खु णे दारओ जातो ॥ १ ॥ १५ ॥

पति ति—दोण्हं माउगाणं एगा भज्जा । लोणे कोइ—दोण्ह वि समा । रण्णा सुत्तं, परं विसयं गतो । अमचो भणति—कतो एवं होहि ? ति, अवस्स विसेसो अथि । तेण लेहो दिण्णो, जहा—गामं गंतञ्चं । एगो पुत्थेण, एगो अंबरेणं भज्जाए अड्डी- 30 वितो । तीए जो पितो सो अवरं पेसियो, जो बेसो सो पुञ्चं पेसितो । वेसस्स आगच्छंतस्स वचंतस्स वि निडाळे सूरो । अस-

बहंसेसु पुणो वि षट्पुत्रिण्य समगं पुरिसा पंसिता । ते णं भगति-ते ददं अपडुगा । 'एसो मंदसंघयो' ति भणितुं तं चैव पक्कणा । एवं नातं १६ ॥

पुत्रे जाते एगो वाणियतो भज्जाहिं समं अचं रजं गतो । तथ मतो । तातो दो वि भगति 'पुत्रो' ति पुत्रनिमित्त-
व्यहारो न छिज्जति । अमच्चो भगति-द्वं विरिचित्तुं दारगं दो भागे करेह करकचणं । एगा भगति-एवं होतु । माता
5 भगति-एतीसेव पुत्रो, मा मारजउ । तीसेव दिण्णो १७ ॥

मधुसिस्थे-काइ कोलिगिणी उब्भामइलिया । तेणेव विहाणेण दरिसितं । गाता उब्भामइल ति १८ ॥

मुदियाए-पुरोहितो निक्खेवए चेतुं अण्णेसि न देति । अण्णदा दमण्ण ठविये । पडियागतस्स ण देति । सो पिसाओ
जातो । अमच्चो वीधीए जाति । भगति-देहि भो पुरोहित ! मम तं सहस्स । तस्स किवा जाता, रणो कहितं । रण्णा भणितं-
देहि । 'ण गेण्हामि' ति भगति । अण्णदा रायाए, समं जूयं रमति, नाममुदागहणं । रायाए, सल्लक्खणं गहाय मणूसस्स ह्ये
10 दिण्णा । [मजा से मग्गिया-] अमुगं कालं साहस्सो णउलओ दमण्ण ठवितो तं देहि, इमं अभिण्णणं । दिण्णो, आणितो ।
अण्णणं णउलणं मच्चो कतो । सो सदावितो । पच्चभिण्णगतो । पुरोहितस्स जिम्मा छिण्णा १९ ॥

अंके-तहेव एणेण निक्खिचं लंळेऊणं । इतरेण हेट्टा गहिचा उरिसिचिचा कूडरूवगाणं भरितो, पच्छा तहेव सीवियं ।
आगतस्स अडित्तो । सा मुदा उष्ठाडिया जाव कूडरूवगा । ववहारो । केतिया रूवगा । सहस्स । गणणे ऊगमं जातं ।
तहा तडियओ ण तीरति सिव्हेउं, एवं णातं २० ॥

15 षाणए-तहेव निक्खेवतो । एगा छुदा । आगतस्स दिण्णो णउलतो । एणे पुच्छा । राउले ववहारो । कालो को
आसि ! अमुगो । अहुणत्तगमा एए एगा । सो चिराणओ कालो । इंडिओ २१ ॥

भिक्खू-तहेव निक्खेवगं न देद । जूतकागा ओल्लगिता । तेहिं पुच्छिणेणं सन्भावो कहितो । ते रत्तवडगवेसेणं गता
सुवण्णगस्स खोहिताओ गहाय । अम्हे वच्चामो, चेडय वंदामो, इमं अच्छउ । सो य पुव्वमणितो एतस्मि अंतरे आगओ ।
तेण मग्गितं । ताहे लोभिउत्ताए दिण्णं । 'अण्णे वि भिक्खू एतगा, तो एगाए मंजूसाए चैव कज्जिहिति' ति निगयता २२ ॥

20 सेडगनिहाणे ति-दो मित्ता । तेहिं निहागगं दिट्ठं । कळे मुनक्खेसे णेहामो ति । एणेण रति उरस्सणिऊग इंगाला
छुदा । वितियदिवसे गता ईगाले पेच्छेति । सो पुत्तो भगति-अदो ! अम्हं मंदपुण्णता, इंगाला जाता । तेग णातं-हरियं,
न दरिसेति । तस्स पडिमं करेति, दो मकडग गेण्हति, तस्स उवरिं भत्तं देति । ते छुहाइया तं पडिमं चडेति । अण्णदा भोयणं
सज्जितं । दारगा तस्सच्चया आणिता संगोविता, ण देति, भगति-मकडगा जाता । आगतो एथ केय्पगट्टाणे उवैसावितो ।
मकडगा मुक्का, किलिकिलेता तस्स उवरिं विलयगा । णायं । दिण्णो भागो २३ ॥

25 सिक्खा अत्ये घणुव्वेए-एगो रायपुत्रो जघा सेणितो तथा हिंउंतो एगथ ईसरपुत्तए सिक्खावेति । द्वं विदत्तं ।
तेसि पितिमीसगा चित्तं-बहुतं दव्वं एतस्स दिण्णं, जडया जाहिति तइया मारोर्जिहिति । तेण णातं, सचारितं णायमाणं,
जहा-हं रतिं छाणपिंडए पदीए छुभीहामि ते लण्णज्जाह । तेण गोल्ला वल्लिता-एसा अम्हं विदि ति । तिहिपव्वगीसु दारएहिं
समं गदीये छुभति । एवं निव्याहेऊग नट्टो २४ ॥

अत्यसत्ये-एणेण पुतेण दो सबचीओ । ववहारो ण छिज्जति । इतो य देवी गुच्चिणी उज्जाणियं गता । ताओ उवट्टि-
30 ताओ । सा भगति-मम पुत्रो जो होहिति सो अत्यसत्यं सिक्खिहिति, एतस्स असोमस्स हेट्टा णिवेट्टो ववहारं छिदिहिति, ताव
दो वि अविसेसेणं स्साह पिपह ति । जसे ण पुत्तो सा चित्ति-एत्तियो ताव कालो लदो ति पडिस्सुतं । णाता-ण एसा २५ ॥

इच्छा—एगाए भत्तारो मतो । वडिइपउत्तं न उगमति । भित्तो भगितो—उगमेहि । तेण भणित्तं—मञ्ज वि भागं देहि । ताए भणित्तं—जं तुमं इच्छसि तं ममं देजसि । तेण उगमिन्तं, सत्तं दिण्णं । सा णेच्छति । बवहारो । आणावित्तं । दो पुंजका कता । कतरं तुमं इच्छसि ? । भणति—बडं । ताहे भणित्तो—एतं चेव इमं देहि—त्ति दवाचित्तो २६ ॥

सत्तसहस्सं ति—एगो परिभट्टओ । तस्स सयसाहस्सं खोरं । सो भगति—जो ममं अपुच्चं सुणावेत्ति तस्स एतं देमि । अण्णदा एगं नगरं गतो, तथ्य उगोसेत्ति । सिद्धपुत्तेण सुत्तं, भगति—

5

मञ्ज पितुं तुञ्ज पिता धारंति अण्णगं सयसहस्सं । जत्ति सुयपुच्चं तो देहि, अहं न सुयं सुयसु तो खोरं ॥ १ ॥

जितो २७ ॥ उप्पत्तिया गया ।

पं. २०, २२. **वैनयिक्या**मुदाहरणदर्शनाय “**निमित्ते**” इत्यादिगाथाद्वयम्—निमित्तं १ अर्थशास्त्रं च २ “**ल्लेहे**” इति लेखनं ३ गणितं च ४ कूयः ५ अन्नश्च ६ गर्दभः ७ लक्षणं ८ ग्रन्थिः ९ अगदं १० गणिका च रथिकश्चेति ११ शीता शाटी दीर्घा च तृणं अपसन्ध्यकं च क्रोश्रस्य इत्येकमेव १२ । नवरम्—अर्तामितायामपि शीता शाटीःयाहुः, शीतं ते कार्यम्, दीर्घं तृणं द्वाराभिसुखं कुर्वतां ‘गच्छ, दीर्घं मार्गं प्रतिपद्यस्व’ क्रोश्राप्रादक्षिण्येनोत्तारणं ‘प्रतिकूलं सम्प्रति ते राजकुलम्’ इत्युपाध्यायेनावगम्यते बुद्ध्या । नीमोदकं च १३ गोणः षोडशः पतनं च वृक्षादित्येकमेव १४ । एवं वैनयिक्यां सर्वांग्रेण चतुर्दश ज्ञातानि ।

निमित्ते—एगस्स सिद्धपुत्तस्स दो सीसगा निमित्तं सिक्खंति । अण्णदा तण-कट्टस्स वच्चति । तेहिं हथिपदा दिट्ठा, एगो भगति—हथिपिआयाए पदा, कहं ? काइएण । सा य हथिणी काणा, कहं ? एगपासेण तणाइं म्वादिताइं । तहा काइएणव पात्तं—जहा इत्थी पुरिसो य विल्लगाण । सो वि पात्तो [‘जुवाणो’ त्ति] । सा य ‘पुन्निवण’ त्ति पात्ता, हत्थाणि थंभित्ता उट्ठिता । 15 दारतो से भविस्सति, जेण दक्खिणपादो गुरू । पोत्ता रत्ता, दसिता रुक्खे ल्गमा । णदीतीरे एगाए धेरोए पुत्तो पवसियओ तस्स आगमणं पुच्छता । तथ्य य घडतो भिण्णो, तथ्य य एगो भगति—

तज्जातेण य तज्जायं, तन्निभेण य तन्निभं । तारूवेण य तारूवं, सरिस्स सरिसेण निदिसे ॥ १ ॥ [गणिविवाया. ७५]

‘मत्तओ’ त्ति परिणामेति । वित्तित्तो भगति—जहि बुद्धे ! सो धरं आगतेल्लओ । सा गता, दिट्ठो पुंवाताओ । सा जुवल्लयं रूवणं य गहाय आगता, सक्कारितो । वित्तियओ भगति—मम सम्भावं गुरू न कहिति । तेणं पुच्छता । तेहिं जहाभूत्तं 20 कहित्तं । एगो भगति—‘विवत्ती’ मरणं । एगो भगति—‘भूमिजो भूमि च्चव मिल्लित्तो’ एवं सो वि दारतो । भणित्तं च—“तज्जाएण त तज्जात्तं” सिल्लोगो ॥ १ ॥

अत्थसत्थे—कप्पओ दधिकुंडगा उच्छुकलावग एवमादि २ ॥

लेहे जहा—अट्टारसल्लिविजाणतो ॥ एवं **गणिण्** वि ॥ **अण्णे** भणन्ति—बडेहि रमंतेणं अक्खराणि सिक्खविता गणियं च । अयं भावार्थः—खटिकाभया गोलकास्तथोपाध्यायेन भूमौ पातितः कुमाराणामक्षरशिखणाय यथा भूमावक्षराण्युपपन्ते ३ । ४ ॥ 25

कूचे—स्वायजाणएणं पमाणं भणित्तं—जहा एहूर पाणित्तं ति । तेहिं स्वायं । तो बोलीणं तस्स कहित्तं । ‘पासे आहणह’ त्ति भणित्ता । थासगसरेण जलमुद्दाइत्तं ५ ॥

आसे—आसवाणियगा **बारवडं** गता । सन्वे कुमारा पुल्ले वडे य गिणहंति । **वासुदेवेण** जो डुब्बलो लक्खणजुत्तो सो गहित्तो ६ ॥

गइभे—राया तैरुणपित्तो । अण्णत्थ उद्दाइत्तो **सिणपल्लिण्** जारिसे । तिसाए पीडित्तो । धेरं पुच्छति । धोसावित्तं । एरेण 30

१ पूर्ववातः ॥ २ तरुणग्रियः ॥

पतिष्वितेण आणित्तो । तेण कहियं । थेरो भगति-मुयह् गदभे, जत्थ गदभा उस्सिधंति ल्हँति य तत्थ पाणितं । खइतं, पीता य । अण्णे अणंति-उस्सिधणाणं चैव कल्लासतगमणं ७ ॥

लक्ष्मणे-पारसविसए आसरक्खओ । धीताए, तस्स समं सपत्ती । ताए, भगितो-वीसक्खाणं धोलक्खमं पाहणाणं भरेऊणं रुक्खाओ मुयाहि, तत्थ जो ण उच्चसति तं लण्हि; पडह्यं च तालेहि, बुद्धावेहि य खस्खेरेणं, जो ण उच्चसति तं लण्हि । सो वेतण्णाकाले भगति-मम दो देहि अमुणं च अमुणं च । तेण भगितं-सब्बे गंहाहि, कि ते एतेहि । णेच्छति । भज्जाए, कहणं-धीता से दिज्जत । सा नेच्छति । सो तीसे वड्ढतिदारणं कहेति-लक्खणजुत्तेणं कुड्डवं परिवड्ढति ति-एगस्स मातुलण्णं धूता दिण्णा । कम्मं न करेइ । भज्जाए चोतितो दिवे दिवे अडवीओ रिक्खओ एति, छुट्टे मासे लद्धं । कुल्लो सतसहस्सेणं सेट्ठिणा लद्धो 'अक्खयणिहि' ति ८ ॥

गंधिमं-पाडलिपुत्ते नयेरे पालित्तगआयरिया अच्छंति । इतो य ज्ञाणएहि इमाणि विसज्जिमाणि पाडलिपुत्तं-सुत्तं 10 मोहियणं १ लट्ठी समा २ समुगओ ३ ति । केणह् ण गाताणि । पालित्तयआयरिया सदाविता-तुत्थं ज्ञाणह भगवं ! । ति । बाढं जाणामि । सुत्तं उण्होदये लूढं, मयणं विरायं, दिट्ठामि अग्गयाणि । दंडओ पाणिने छूटो, मूलं गरुवं । समुगओ जउणा धोल्लित्तो उण्होदए कडितो, उप्पाडितो य । तेण वि य छाउणं राहंऊग रयगाणि लूढाणि, तेगमासवग्गीणं सिक्खेऊग विमज्जितं । अभिदंता फेड्ह । ण सक्कितं ९ ॥

आगदे-परबलं णारं रोहेउं एति' ति रायाण 'पाज्जिताणि विणासिक्ख्याणि' । ति । विसकरा पाडितो । पुंजा कया । 15 वेज्जो भगति-सयसहस्सवेही । कहं ? । सीणाऊ ह्थी आगितो, पुंजवाओ उप्पाडितो, तंणं चैव बाल्लगणं तत्थ विस दिण्ण, विवणं करेत्तं चरंत्तं दीसति । एस्स सव्वो विस, जो वि ख्वाति एत्तं सो वि विस, एवं सतसहस्सवेही । अथि निवारगविधी ! । बाढं । तत्थेव अगदो दिण्णो, पसमंतो जाति १० ॥

रहियगणियाए एग चैव-पाडलिपुत्ते दो गणियातो-कोमा उवकोसा य । कोसाए, समं धूल्लभइसामी अच्छित्तओ आसी । पच्छा पच्छइतो । ताह् वरिसारत्तो तत्थेव कतो । साविगा जाता, अवंभस्स पक्खम्याति णअग्गथ गयाभियोगेणं । 20 रहिएण राया आराहितो । सा दिण्णा । सा धूल्लभइसामिस्स अभिक्खणं अभिक्खणं गुणं गण्हति, त ण तहा उवचरति । सो ताए अप्पणो विण्णाणं दस्सिउकामो । असो गणियाय मूमिं गतेण अंबपिडी खोडिता कंडपुंस्य अण्णोणं ताएतेण अब्बत्थास आणेत्ता अब्बचंदेण छिण्णा गहिता य । तहि वि ण तूसति, भगति-किं सिक्खित्तस तुकरं । भगति-पच्छ ममं' ति सिद्धध्वगरा-सिम्मि णच्चिया सूर्याण अगयम्मि य कणियायारपुक्कपाइयामु । सो आउओ । सा भगनि-

ण तुकरं तोडिय अंबपिडी, ण तुकरं णच्चिउ सिक्खित्तयाए ।

25 तं तुकरं तं च महाणुभागं, जं सो सुणी पमयवणम्मि कुत्थो ११ ॥

“ सीता साडी दीहं च तणं अवसव्वणं थ कौचम्म ” एग चैव-रायपुत्ता आयरिणं सिक्खविता । दव्वलोमी य सो राया तं भारेउं इच्छति । तो दारगा चित्ति-एतेणं अह्द विज्जा डिण्णा, उवाएण निक्खारेमो । जाहे सो जेमतो एति ताहे ण्हणसाडियं मगति । ते सुक्खयं भगति-अहो ! सीता साडी । बारसुहं तणं देति, भगन्ति-अहो ! दीहं तणं । पुवं कौचणं पदाशिणीकरेति, तस्सिक्ख अपयाहिणीकतो । परिगतं जहा-विरत्ताणि, पथो दीहो-सीताणं, तं ममं काउ मगंति-ति णट्टो १२ ॥

30 णेव्वोदये-वणियमज्जा चिरपउत्थे पतिम्मि दासीए सभ्भावं कहेति-पाहुणं आणेहि-ति भगिता । तीए पाहुणतो आणीतो, आियुस च से कारियं । रतिं पवेसितो तिसाइओ । नेव्वोदरां दिण्णं । मनो । देउल्लियाए उच्चितो । 'अहुणक्कय-

कम्मो' ति ष्हाविता पुच्छिता-केण आउसं कारितं । तेग(एगेग) भगितं-दासीए । सा पहाता । ताए कहितं । वाणिगिणी पुच्छिता । साहति सम्बावं । तथाविसे गोणसे ति चिट्ठो १३ ॥

गोण घोडग रुक्खपडणं च-एगो अकतणुगो जं जं करेति तं तं से विवज्जति । भित्तस्स जाएएहिं बइडेहिं हले बाहेति । विगाले आगिला बाडे छुदा । सो य मित्तो सं जेमेति, सो लजाए ण दुक्को । तेग वि दिद्धा । ते निम्फिडिता वाडाओ, हरिता । गहितो 'देहि' ति । राउलं निज्जति । पडिपहणं घोडगणं पुरिसो एति । सो तेग पाडितो आसेणं । सो 5
पाल्लेण भणितो-आहण ति । तेग मम्मे आहतो मतो । तेग वि ल्हओ । विगाले नगरस्स बाहिरियाए कुथा । तथ्थ लोमं-
थिय्या सुचा, इमे वि तहिं चेष । सो चित्तेति-जावजीववंदणो कीरिस्सामि, वरं मे अप्पा ओबद्धो । तेसु सुत्तेसु सो डंडिस्सवेणेण
तम्मि बडरुक्खं अप्पाणं उक्कलेवेति । तं दुब्बलं तुट्ठं । तेग लोमंथितमहतरो मारितो । तेहिं वि गहितो । पभाए करणं गीते तिहिं
वि कहितं जहावत्तं । सो पुच्छितो भणति-आमं ति । कुमारामच्चो भगति-तुमं बल्ले देहि, एतस्स अच्छीणि उक्खम्भंतु । बितितो
भणितो-एतस्स आसं देउ, तुच्च जीहा उक्खम्भउ । इनेरे भणिता-एस हेहा होउ, तुच्च एगो उब्बंथितुं निण्णडउ ति काउं 10
मंतिणा सुक्को १४ ॥ वेणतिया गता ॥

पं. २८. कर्मजबुद्धयुदाहरणेध्वियं गाहा-"हेरणिण." इत्यादि । 'हेरणियकः' सौवर्णिकः १ 'कर्पकः' कृषीबलः २
'कोलिय' ति कोलिकः-तन्नुवाय ३ "डोत्रे य" ति दर्बी-चष्टकश्च, परिवेपक इत्यर्थः ४ "सुत्ति" ति मौक्तिकप्रोता ५ "वय" ति
तृन्प्रज्ञेपक ६ एवक ७ "तुन्नाय" इति 'तुन्नवायः' तुन्न-तुटितं वयनि-सन्धिते यः स तथा ८ वर्देकि ९ "पूहण य" इति
'पृथिकः' कान्दविकः १० "घड-चित्तकारे य" इति घटकारः-कुम्भकारः ११ चित्रकार-चित्रकर्मविधाता १२ । एवं द्वादश 15
दृष्टान्ताः कर्मजायां मत्तौ ॥

हेरणिते अभिस्खज्जेणेण अंधकारे वि रूढवं जाणेनि हत्थपरामोसेणं १ ॥

करिस्तो अभिस्खज्जेणे जाणति फलनिष्फर्ति । तथ उदाहरणं-एणेणं चोरेणं खत्तं पउमगारेणं छिन्नं । सो जणवत्तं
निसामेति । करिस्तो भणति-किं सिम्भितस्स टुक्करं ? । चोरेणं सुत्तं । पच्छतो गेणुणं लुरियं अंछिज्जणं भणति-मारोमि ते । तेग
पउयं पत्थेत्ता वीधियाणं सुट्ठी भरितो, भणति-किं परम्महा पडंतु / ओरुम्महा / पासडिया ? । तदेव कत्तं । तुट्ठो २ ॥ 20

कोमित्तो सुट्ठिणा गहाय तंतू जाणति-एत्थियाण्हिं वा कंडण्हिं विज्जिहति च्चि ३ ॥

डोए बड्हई जाणइ-एत्थियं माहिति ४ ॥

मोत्थियं आधिणेन्तो आगासे उक्खिविचा तहा निक्खिवति जहा कोलवाले पडति ५ ॥

घत्ते-सगाढे सतओ जदि रुच्चति कुंडियाए णालणं लुहति धारं ६ ॥

पवेओ भगासे ताणि करणाणि करेति ७ ॥

तुष्णाओ पुब्बं थुल्लाणि पच्छा जहा ग ज्जति सतीए तत्थियं गेण्हति जत्तिणं सम्पत्ति । जहा सामिस्से तं दूसं
धीयैरेण कारितं ८ ॥

बड्हई अमवेऊणं देवकुलहाणं पमाणं जाणति ९ ॥

घडमारो पमाणेणं मद्धितं गेण्हति, भाणस्स वि पमाणं अमिणित्ता करेति १० ॥

पूविओ वि फगलपरिमाणं अमवेऊणं करेति ११ ॥

चित्रकारो पच्छा अमवेऊणं पमाणजुत्तं करेति, तत्थियं वा वण्णयं करेति जत्तिणं सम्पत्ति १२ ॥ कम्मया समत्ता ॥ 30

[पृष्ठ ४९]

पं. ५. पारिणामिकबुद्धाबुदाहरणानि यथा “अमए” इत्यादि । “अमए” इति अमयकुमारः १ “शेष्टि” सि काष्ठश्रेठी २ “कुमारः” इति झुलककुमारः ३ “देवी” पुष्यव्यभिधाना ४ उत्रितोदयो भवति राजा ५ साधुश्च “तन्दिपेगः” श्रेणिकपुत्रः ६ “वनदत्तः” सुंसुमापिता ७ श्रावकः ८ अमात्यः ९ क्षपकः १० अमात्यपुत्रः ११ चाणक्यश्चैव १२ स्थूलमदध १३ “नासिकसुन्दरीन्द” ति नासिकनामनि नगरे सुन्दरीन्दो वणिक् १४ “वहर” इति वैस्वामी १५ । “पारिणामिकी बुद्धिः” इत्यनेन वाक्येनात्र पारिणामिकीबुद्धियुक्ता ब्राह्मणी पुत्रिकाचतुष्टयस्य शिक्षादायिनी देवदत्ता च गणिका गृह्यते । इयं च चित्र-कर्मणा सर्वजनाभिप्रायग्राहिका १६ ॥

“चलगाहण” ति चलनाहननं १७ “आमंड” ति कृत्रिमामलकं १८ मणिश्च १९ सर्पश्च २० “खग्ग” ति खड्गः १२ स्तूपेन्द्रः २२-२३ पारिणामिक्यां बुद्धौ एवमादीनि भवन्त्युदाहरणानि । एवं च पारिणामिक्यां बुद्धौ सूत्रोपात्तानि 10 द्वाविंशतिजातानि ॥

अभयस्स कहं पारिणामिता बुद्धी!—जदा पज्जोओ गतो, रायगिहं रोहितं, तदा अभयेणं खंघावारनिवेशज्जाणणं पुब्बनिक्खित्ता कूडरूक्कमा नूमिता । कहियं च से जघा—भेदितो खंघावारो । दावितेमु णट्ठो एस ॥ अहवा जाहे गणियाहि कव-केणाऽऽगीतो बद्धो जाव तेसितो चत्तारि वारे । चितियं च गेण—मोनाथेमि अप्पाणं । वरं मगितो—अग्गि अतीमि ति सुक्को । ताहे भणति—अहं तुमे छ्लेण आगितो, अहं पुण ते दिवसतो ‘पज्जोओ हीरति’ ति कंदंते नमरमग्गेण नेनि । गतो रायगिहं । 15 दासो उभत्तओ कतो, गणियाओ वाणियदारियाओ, गहितो, रडंततो हियो । एवमादिगताो बहुतातो अभयम्मि पारिणामि-यातो बुद्धीतो १ ॥

सेट्टि ति—कट्टो णामं सेट्टी एगत्थ नगरे वसति । तस्स वज्जा णामं भज्जा । तस्म णेच्चट्ठो देवसम्मो वंभणो । सेट्टी विसाज्जाए गतो । भज्जा से तेण समं सपल्लया । तस्स य धरं तिण्णि पक्खी—सूतओ १ मय्यसलाइया २ कुकुडनो ३ । सो ताणि अप्पाहेत्ता गतो । सो धेज्जाइतो रत्ति अतीनि । मदणसलाइया भणति—को तायस्स ण बहिति । सूतओ वारंति— 20 जो अण्णियाए दइओ अहं पि पियल्लतो होइ । मदणसलाइया अगधियासित्ता धेज्जातियं परिस्सवति । तीणं मारित्ता । सूयओ ण मारितो । तीसे पुत्तो लेहसालाए पढति । अण्णदा तत्थ साधुणो भिक्खस्स अत्तिगता । तं कुकुडं पेच्छिअण एणो भणति—जो एयस्स सीसं स्वाति सो राया होइति ति । तं तेण धिज्जाइण्यं किह वि अंतरिणण सुतं । अविइयं भणति—मारिह, जाव स्वामि । सा भणति—अण्णं आणिज्ज, मा पुत्तभंडं व सवड्ढित्तओ । निब्बे मारिनो । जाव ष्हातो गतो ताव सो दारतो लेहसालाओ आगतो । तं च मंसं सिज्जति, सो रोवति, तस्स सीसं दिण्णं । इतरो आगतो—भागणं, छूदं, सीस मगति । 25 भणति—वेडस्स दिण्णं । सो रुट्ठो भणति—माए, पयस्स कजे मागवितो । पच्छा भणति—जति परं एत्तस्स दारगस्स सीसं स्वातेज्जा तो कत्तओ होज्ज । निब्बे ववसित्ता । दासीए सुतं । सा तं दारगं ततो चैव वेत्तुण फलया । अण्णं नगरं गताणि । तत्थ राया मरति । आसेणं परिक्खित्तो सो तत्थ राया जातो । इतरो वि सेट्टी आगतो जाव सडितं पासति । सा पुच्छित्ता न कहेति । सूएणं पंजरसुक्केण कहितो वंभणाभिसंबणो । सो तहेव चित्तेति—अहं एतीसे कतेग, एसा पुण एवं—ति एवइतो । इतराणि वि वंभणो वज्जा य तं चैव नगरं आगतानि सन्वं गहाय । अण्णदा बिहरंतो सो साधु तत्थाऽऽगतो तीणं पच्चमिण्णतो । 30 भक्खेण समं मासगा दिण्णा । पच्छा कूचितं । गहितो रायाए मूलं गीतो । धावीए नाओ । इतराणि निब्बिसयाणि आणत्ताणि । पिता भोगेहि निर्मिततो । नेच्छति । राया सड्ढो कतो । वरिसारते पुण्णे वचंत्तस्स अकिरियानिमित्तं धेज्जाइएहि दुअक्खरियाए परिमट्ठित्तारूवं कतं गुब्बिणीय । राया अणुज्जति । तीए गहितो । ‘मा पवयगस्स उड्ढाहो होइति’ ति भणति—जदि मज्जं चओ जोणीए णीतु, अह ण होति ममं तो पोहं भिदित्ता णीतु । एवमणिते पोहं भिण्ण । मता । वण्णो य जातो २ ॥

कुमारो—सुव्रगकुमारो जहा जोगेसंगहेहि ३ ॥

देवी—पुष्पभदे णगरे **पुष्पसेगो** राया, अगमहिंसी य **पुष्पवती** देवो । तीसे दो चेडरूवणि **पुष्पचूलो पुष्पचूला** य । ताणि अणुरत्ताणि भोगे मुंमंति । देवी पन्वइता देबलोगे उवक्कणा देवो जानो । सो देवो एवं चित्तेति—जति एताणि एवं मरंति तो नरग-तिरिण्णु उवक्कहिंन्ति । सुविण्णु सो देवो नरए देबलोए य उवदंसेति । सा भीता जाया पुच्छति पासंछिते । ते ण जाणंति । **अणियपुत्ता** तथ आवरिया ते सदाविता । तहेव सुत्तं कइदंति । सा भणति—किं तुम्मेहिं सुविण्णो दिट्ठो ? । 5 सो भणति—अम्हं एरिसं सुत्ते दिट्ठं । पन्वइता । देवस्स परिणामिता ४ ॥

पुरिमतालं नगरं । **उदितोदयो** राया । **सिरिकंता** देवी । दोण्णिग वि सावगणि । परिव्वाइया जिता । दासीहिं सुहमकडिताहिं वेळविता णिच्छुदा पदोसमावण्णा । **वाणारसीण धम्मरुई** राया । तथ गता कलथपडियाए रूवं **सिरिकंताए** लिहिकणं दाएति **धम्मरुयिस्स** रण्णो । सो अञ्जोवक्कणो दूतं विसज्जेति । पडिहतो निच्छुदो । ताहे सव्वबळेण आगतो णमरं रोहेति । सो सावगो चिन्तेति **उदितोदयो** राया—किं वण्णेणं जणक्खएणं ? ति उववास टिनो । **वेसमणेणं** देवेणं सनगरं 10 साधितो । **उदितोदयस्स** परिणामिया ५ ॥

साधु य णंदिसेणे चि—**सेणियपुत्तो नंदिसेणो** । सीसो य तस्स ओहागुण्णेही । तस्स **नंदिसेणस्स** चिंता—अगवं जति एज्जा तो देवीओ अण्णे वि य अतिसण पेच्छिऊग जदि थिरो होज्ज चि । भट्टारओ आगतो । **सेणिओ** सवंतेउगे णिति, अण्णे य कुमारा सणेगुग । **णंदिसेणस्स** अंतेपुंरं सेतवरवसणं, पउमिणमग्गे हंसीओ व्व ओमुक्काअमरणओ सव्वंसि छाये हंरंति । सो ताओ दट्टूणं चित्तेति—जदि भट्टारणं एरिसियाओ मुक्काओ, किंमरा ! पुण मग्ग मंदमग्गस्स असनाणं परिच्छइय- 15 ण्वियाण चि निव्वेगमावण्णो, आलोइय-पडिक्कतो थिरो जातो ६ ॥

धणदत्तो सुंमुमाते परिणामेति—जति एत ण स्वामो तो अंतरा मरामो चि ७ ॥

सावओ सावियवयंसियाण मुच्छितो । तीसे परिणामो जातो—मा अट्टवसदो मरिहि तो णरएणु तिरिण्णु वा उवक्कहिंति, ससार हिंडिहिंति । तीसे आभरणेहिं विणीतो । संवेगो कहुणं च ८ ॥

अमच्चो चि—**व्रधणुगपिता** जउपरे कते चित्तेति—एस कुमारो मारितो होति, बाहिं पि रक्खिज्जिति चि सुरंगते 20 णीणितो पळतो ॥ अण्णे भणंति—एगो राया, देवी से अतिपिया काल्यता । सो य मुद्धो । सो तीए जियोगदुक्खितो ण सरीर-ट्टिहं करेति । मंतीहिं भणितो—देव ! एरिसो संसारदुत्ति चि किं कीरउ ? । सो भणति—नाहं देवीए सरीरदुत्ति अकंतंथए करेमि । मंतीहिं परिचितियं—अण्णे उवाओ ? चि पच्छा भणितं—देव ! देवी सगं गता, तं तथदुत्तियाण, चेव से सव्वं पेसि-जउ, लट्टुकत्तदेविदुत्तिपउत्तीए पच्छा करेजसु चि । रण्णा पडिस्सुत्तं । माइट्टुणेण एगो पेसितो । अण्णो आगंतूण साहिति-कता सरीरदुत्ति देवीए । पच्छा राया करेति । एवं पदिदिणं करंताण कालो वक्कति । देवीपेसगववदसेण बहुं कडिसुत्तगादि खज्जिनयरा य । एगेण चितियं—अहं पि पवत्तं करेमि । पच्छा राया दिट्ठो । तेण भणितो—कतो तुमं ? भणति—देव ! सग्गतो । रण्णा भणितं—देवी दिट्ठु ? चि । सो भणति—तीए चेव पेसितो कडिसुत्तगादिनिमित्तं ति । दावियं से जहिंछियं किं पि ण संपइति । रण्णा भणियं—कदा मग्गस्सि ? । तेण भणितं—कळं ? । रण्णा भणितं—कळं ते संपाइस्सं । मंती आदिट्ठा—सिग्गं संपावेह । तेहिं चितियं—विणदुं कज्जं, को एथ उवाओ ? चि विसण्णा । एगेण भणितं—धीरा होह, अहं भल्लसामि । तेणं तं संपाइऊग राया भणितो—देवीए कइं जाहिंति ? । रण्णा भणितं—अने कइं जंतगा ? । तेण भणितं—अम्हे जं पट्टुवेत्ता तं जल- 30 णपवेसेणं, ण अण्णहा सगं गम्भति चि । रण्णा भणितं—तहेव पवेसेह । तहेव आदलो । सो विसण्णो । अण्णो य धुत्तो

बायालो रण्णो समक्कं बहु उवहसति तं विसन्नं—जहा देवि भगिज्जसि, सिण्हेहंतो ते राया, पुणो वि जं कज्जं तं संदिसेज्जसि, भण्णं च इमं च इमं च बहुविहं भणेज्जसि । तेण भणितं—देव ! णाहमेत्तिगमविगलं भणित्ता जाणामि, एसो खेव लट्ठो, पसिज्जत्ता । रण्णा पडिस्सुतं । सो त्थेव निज्जिउमादत्तो । इतरो मुक्को । इतरस्स माणुसाणि विसण्णाणि पल्लवंति—हा देव ! अन्हे किं करिज्जामो ? । तेणो भणितं—नियत्तुं दं रक्खेज्जह । पच्छा मंतीहिं खरिट्ठि मुक्का, मडगं दड्ढं । मतिस्स परिणामिता ९ ॥

- 5 **खमए—**खमओ चेट्ठण समं भिक्खं हिउत्ति । तेण मड्ढकलया मारिया । आलोयणवेवाए, णाऽऽजेणत्ति । खुड्ढएणं भणिओ—आलोएहं ति । सो रुट्ठो 'आहणामि' ति पघावितो खवं आवडिओ मओ । एगथ विगहितसामण्णाणं सत्थाण कुलं तथ उववण्णो दिट्ठिविसो सणो जानो । जाइस्सरणेण अवरोएपरं जाणंति, रत्ति चरंति 'मा जीये मारेहामो' ति, फामुगमाहारेत्ति । अण्णया रज्जो पुत्तो अहिणा खट्ठो मतो य । राया सत्थाणं पयोममावण्णो भणत्ति—ज्जो सणं मारंति तस्स दीणारं देमि । अण्णता आहिडिणं ताणं रेहातो दिट्ठोओ, तं बिलं ओसह्हीहिं धम्मति, सोसाणि नित्ताण छिट्ठति । सो अभिमुट्ठो ण णीति 'मा कंचि मारेहामि' ति जातिस्सरत्ताणं, तं निग्गयनिग्गतं छिट्ठति । पच्छा रण्णो उवगिताणि । सो राया णामदेवताए बोहिज्जति—मा मारेहि, नागदिण्णो ते कुमारो होहि ति । सो खमगसणो मतो समाणो तथ रायिणए पुत्तो जानो । उम्मुकबालभावो साधुं दट्ठुं जाति संभरित्ता पव्वतितो । सो य छुट्ठाट्ठो अभिग्गहं गेहत्ति—न मए रुसियथं वि । दोसीणस्स य हिउत्ति । तथ आय-रियस्स गच्छे चचारि खवमा—मासितो दोमासितो निमासितो चउमासितो । रत्ति देवता आगता ते अण्णे खमए अत्तिक्कमत्ता तं वंदति । खमएण निग्गएत्ती हएये गहिता, भणित्ता य—कउपूत्ते । एत्तं तिक्काभोड वंदमि, इमे मज्जानवस्सी ण वंदसि । सा
- 15 भणत्ति—अहं भावखमगं वंदामि. ण दव्वक्खमए ति गता । एमाए, दोसीणस्स गतो निमतंति । एयेण पातं गहाय वंजो छूट्ठो । सो भणत्ति—मिच्छा मि दुक्कउं जं मए. खेल्लमल्लयं तुभं णोवणीत्तं । एवं संसेहिं वि । जिस्सिउमारओ । तेहि वारितो । निव्वयमावण्णो । पंच वि सिद्धा विभासा १० ॥

अमच्चपुत्तो वरधणुओ । तस्स तेमु तेमु प्रयाज्जेणु परिणामिता । जहा—माता माताविता, सो पत्तावितो एवमादी सत्वं विभासियथ ॥ अण्णे मणत्ति—एणो मंतिपुत्तो कप्पडियरायकुमारण समं हिउत्ति । अण्णटा नेमिन्तिओ पाउत्तो । रत्ति देवकुडि

- 20 टिताणं सिवा रडति । कुमारण नेमिन्तिओ पुच्छित्तो—किं एसा भणत्ति ' ति । तेण भणितं—इमं भणत्ति, इमस्मि णदित्तिथंसि पूराणयं कलेवरं चिट्ठत्ति, एयस्स कडीण सयं पातंकाण, कुमार ! तुमं गेण्ढाहि, तुअ पायका. मम य कलेवरं ति, सुदिथं पुण ण सकुणोमि ति । कुमारस्स कोडं जातं, ते यंचिय एग्गागी गतो, त्थेव जातं । पायंके वेत्ता पघागतो । पुणो रडति । पुणो वि पुच्छित्तो । सो भणत्ति—वक्कविगाइत्तं । कहं / ति । एसा भणइ—कुमार ! तुअ वि पायंकसत्तं जातं. मज्ज वि कलेवरं ति । कुमारो तुसिणीओ जानो । अमच्चपुत्तेण चिन्थियं—पेच्छामु से सत्तं—किं किमिणत्ताण गट्ठितं / आहा सोडीरताए / जति किमिण-
- 25 चण्णेण कैत्तं, ण तस्स रज्जं ति वियत्तामि । पव्वुमं भणत्ति—वच्चह तुभे. मम पुण मल्लं कज्जति, न सकुणोमि गंतुं । कुमारेण भणितं—न जुत्तं तुमं मोत्तूण गंतुं किंतु कोइ एगथ जाणिहिंति तेण वच्चामो । पच्छा कुल्लपुत्तए नीतो, समपिंचं च सत्वं पेजा-मुल्लं दिण्णं । मंतिपुत्तस्स अवगयं जहा—सोडीरताए ति । भणितं च णेण—अथि मे विमंसो अतो गच्छामि । पच्छा गतो । कुमारेण रज्जं पत्तं । भोगा वि से दिण्णा । एतस्स परिणामिमी ११ ॥

चाणक्को—एगथ एणए ण पडति । पविट्ठो तिदंडिसेसए चाणक्को । वथुणि जेणत्ति, इंदकुमारियातो, तासि तणएणं

- 30 ण पडति । माताए णीणाविताओ, पडितं नगए । एवं दो वि साल्लि-रयणाइं मरिपऊण कोट्टुमारिणि साल्लोणं भरियाणि, रयणाइं गहभियादीणि तेण, जेण छिण्णाणि छिण्णाणि पुणो पुणो जायंति, आसा एगदिवसताता भणित्ता. एगदिवसितं णवगीत्तं मग्गियं । एसा परिणामिया चाणक्कस्स बुद्धी १२ ॥

धूलभद्रसामिस्स पारिणामिता-पितुस्मि मारिते कुमारो भण्णति-अमच्चो होहिं त्ति । सो असोगवणियाए चित्तेति-केरिसा भोगा वाउलणं' ति । ताहे पञ्चवितो । राया भणति-पेच्छह, मा कववणेणं जाएजा । गितस्स सुणगमडो वावणो, णासं ण ठएत्ति, वच्च पडिल्लहंतो । रण्णो कहितं-वित्तभोगो त्ति । **सिरित्तो** ठवितो १३ ॥

णासिक्कं णगरं, **वंदो** वाणियओ, **सुंदरी** सं भज्जा, **सुंदरिणंदो** से णामं जातं । तस्स माता पुञ्चपव्वतिततो सो सुणेति-जहा तीण अञ्चोवक्वतो । पाहुगतो आगतो, पडिलाहितो, भागं तेग गहितं । 'इह एथ विसजेहिति' त्ति उजाणे णीतो । 5
'मा भोगगिदो णरगे जाहिति' ति अहिगयरेणं उवप्पलोभेमि । सो य वेउत्तिवत्तल्लद्वग, मक्कडि दरिसत्ता पुञ्चत्ति-का सुंदरि ? त्ति । **सुंदरी** । पच्छा विज्जाहरीण, तुल्ला । पच्छा देवीण, 'देवी अतिसुंदरि' ति सुञ्चित्तो भणति-रुहं एसा ल्ळमति ? । 'धम्मणे' ति पञ्चहंतो । सायुस्स पारिणामिकी १४ ॥

वदरसामिस्स देवेहिं परिणामो, तओ माता णायुवत्तिया 'मा संघो अवमणिहिति' ति । **पाडलिपुत्ते** वेउत्तिव, 'मा परिभविति' ति । **पुरियाए**, 'पव्वयगओभावणा मा होहिति' त्ति सच्चं कहित्तव्व १५ ॥ 10

चत्तणाटणणे-राया तरुणेहिं कुमाहिज्जति-जहा थेरा कुमारामच्चा अवणिजंतु त्ति । सो तेसिं मतिपरिस्सखगनिमित्तं भणति-जो रायं संसे पाएण आहणति तस्स को देडो ? । तरुणा भणति-तिलं तिलं छिदियव्वतो । थेरा पुञ्चित्ता । 'चित्तमो' ति ऊसरिणा चित्तना 'णूणं देवीण को अण्णो आहणित्ति' त्ति आगता भणति-सक्कारेयव्वओ १६ ॥

आमल्लं किंनिमं । एणेण णातं-अकालो, विवं होहिति त्ति १७ ॥

मणिम्मि-सापो पक्खीणं अंडगणि खाति रुक्खं विलग्गित्ता । तत्थ गिद्रेग आलयं विक्रमो मारितो । तत्थ मणी 15 पाडितो । हेट्ठा कूवो. त पाणीयं रत्तीभूतं । कूवातो णीणियं सामावितं । दारणं थेरस्स कहितं । तेण विलग्गिऊण गहितं १८ ॥

साप्पो चंडकोसिओ चित्तेति-एरिसो महप्पा १९ ॥

खग्गो-सावगपुत्तो जोव्वगबलुम्मचो धम्मं नेच्छति । तत्तो खग्गेषु उववणो पटुस्स दोहि वि पासिहिं जहा पक्खरा तदा चम्माणि लंबंति । अडवीण चउम्मुट्टापहे जण मारंति । साहुणो य तेगेव पहेण अइक्कमति । वेणेण आगतो तेण्ण ण तरत्ति अल्लिनिट्ठं । चित्तेति । जानी समरिता । पक्कम्भाणं । देवलोमगमणं २० ॥ 20

धूमो-वेसालीए नगरीए. गगरनाभीए. **सुणिसुच्चयसामिस्स धूमो** । तस्स गुणेग कृणित्तस्स ण पडति । देवया आगासे कृणितं भणति-

समणं जदा **कूलशालयं**, **मागहिता** गणिया रमेहती । राया य असोगचंदए, **वेसालिं** नगारिं गहिच्छिती ॥ १ ॥

सो मणिज्जति । का तस्स उप्पत्ती ? । एगस्स आयरियस्स चेत्थओ अविगीतो । आयरित्तो अंबावेत्ति । वेरं वहति । अण्णया आयरिया **सिद्धसिल्लं** तेण समं चंदगा विलग्गा । ओयरंताणं वहाणं सिल्ला मुक्का । दिट्ठा आयरिणं, पादा ओसारिता, 25 इहरा मारितो होन्तो । सावो दिण्णो-दुशम्मन् ! इत्थीहितो विगस्सिहसि त्ति । 'मिच्छावादी भवतु' त्ति काउं तावसासमे अच्छति, णदीए कूले आयावेत्ति, पंथम्भासे जो सत्थो एत्ति तत्तो आहारो होद । णदीए कूले आयावेमागस्स सा नदी अण्णतो पव्वा तेण **कूलवारत्तो** जातो । तत्थ अच्छंतो आगमितो । गणियाओ सदाविताओ । एगा भणति-अहं आणेमि । कवड-साविगा जाता । सत्थेण गत्ता चंदति-उदागभोद्वग ष्हि, चेदयाई बंदाभि, तुम्भे य सुत्ता, आगता मि । पारुणेण मोदगा सजो-इया, अतिसारो जातो, पथोगेग ठविओ । उच्चतगादीहिं संभिण्णं चित्तं, आगितो, भणिओ-एण्णो वयणं करेहि । किं ? जहा 30 **वेसाली** वेपइ । धूमो णीगावितो । गहिया २१ ॥

इंदुकुमारियापओगाओ चाणके पुन्वभणितं । एसा परिणामिता २२ ॥

एए चउञ्चिहृद्विअक्खाणयासमत्ता ॥

- पं. १६. अवग्रह इत्यादि । 'किमपीदम्' इत्यव्यक्तज्ञानरूपार्थावग्रहादौऽव्यक्ततरं ज्ञानमात्रमित्यर्थः । 'किमपीदम्' इत्यव्यक्तज्ञानं वाऽर्थावग्रहः । व्यञ्जनाऽर्थयोरैवावग्रहणेन विषयद्वैविध्यादवग्रहस्य द्वैविध्यं भवति । पं. २४. तत्रापि 5 प्राप्यकारिचिद्विद्येषु व्यञ्जनावग्रहादनन्तरमेवाार्थावग्रहो भवतीति व्यञ्जनावग्रह आदौ निरूपितः । पं. २६. नयन-मनसो-रित्यादि, विषयमूतं वस्तु अप्राप्य-संश्लेषद्वारेणानासाद्य करोति-परिच्छिनत्ति चक्षुःकर्तुं विषयपरिच्छेदमित्यप्राप्यकारि तदुच्यते । अप्राप्यकारि लोचनम्, प्राज्ञवस्तुकृतानुग्रहोपघातशून्यत्वात्, मनोवत्, यदि हि लोचन प्राज्ञवस्तुना सह सम्बन्ध तत्परिच्छेदं कुर्यात् तदाऽन्यादिदर्शने स्पर्शनस्येव दाहाद्युपघातः स्यात्, कोमलनूत्याद्यवलोकेन त्वनुग्रहो भवेत्, न चैवम्, तस्मादप्राप्य-कारि लोचनम् । अथ प्रागुक्तोऽसिद्धो हेतुः, प्राज्ञवस्तुकृतानुग्रहोपघातदर्शनात् । तथाहि-जल-घृत-नीलवसन-वनस्पतीन्दुमण्डलाद्य- 10 बलोक्ते नयनस्य परमाद्यासलक्षणोऽनुग्रहः समीक्ष्यते, सूर-सितभित्त्यादिदर्शने तु जलविगल्नादिरूप उपघातः सन्दृश्यत इति, अत्रोच्यते, नहि बयमेतद् भ्रूमः-यदुत चक्षुषः कुतोऽपि वस्तुनः सकाशात् कदापि सर्वथैवानुग्रहोपघातौ न भवतः, किन्तु भवत एव, रविकरान् चिरमवलोकयतो द्रष्टुः चक्षुः स्पर्शनेन्द्रियमिव दक्षेत, शीतलं च शीतरश्मि-जल-घृतादिक वस्तु चिरमवलोकयतो-ऽनुग्रहं मन्येत चक्षुरित्येतावता अप्राप्यकारिचक्षुर्वादिनामस्माक न कश्चिद् दोषः, दृश्य बाधितुमशक्यत्वात् । केवलमिदमेवा- 15 स्माभिर्नियम्यते-यदुत विषयदर्शं गवा आदित्यमण्डलादिसमाक्रान्तेदंगं समाभिष्य चक्षुःकर्तुं न रूपं परिच्छिनत्ति, नाप्यन्यत-परिच्छेदानन्तरं तु पक्षाद्याप्येन केनाप्युपघातकेनानुग्रहाहेकेग वा मूर्तिमाना द्रव्येण चक्षुष उपघाताऽनुग्रहौ न निषिध्येत, विष-यार्कशादिभक्षणे मूर्च्छा-स्वास्यादय इव मनसः । पं. ३० परः प्राह-नयनाज्ञानाया रश्मयो निर्गम्य प्राप्य च रविचिन्-रश्मय इव वस्तु प्रकाशयन्तीति सूक्ष्मत्वेन तैश्चक्षुषेण च तेषां बह्यादिभिर्दाहाद्यो न भवन्ति, रविरभिगुय तथादर्शनादिति नय- 20 नस्य प्राप्यकारिताऽभिधीयते, तदयुक्तम्, महाञ्जालादौ प्रतिस्खलनदर्शनात् आदिग्रहणत तेषां प्रत्यक्षादिप्रमाणाद्यात्त्वेन 20 श्रद्धानुमनाक्यत्वात्, प्रमाणाप्राहास्याप्यस्तिकरूपनेऽतिप्रसङ्गादिति प्राहम् । तथाऽचेतनानयरश्मिनां वस्तुपरिच्छेदाद्युपगमे नस-दन्त-भालतलादिगतगरीररश्मिनामपि स्पर्शविषयवस्तुपरिच्छेदप्रसङ्गाच्चेति ।

[पृष्ठ ५०]

- पं. १०. "तस्स णं इमे" । इत्यादि पं. ११. एकार्थिकानि परमार्थत एकार्थविषयाणि नानाघोषाणि पृथग्भिन्नो- 25 दात्तादिस्वराणि नानाव्यञ्जनानि पृथग्भिन्नककाराद्यक्षराणि नामधेयानि पर्यायचनयः । यथाऽवग्रहस्य पञ्च नामधेयानि 25 एवमीहायाः षड्भेदायास्तथाऽप्राप्यस्य धारणायाश्च पञ्च नामधेयानि क्रमेण दर्शयिष्यति ।

पंचहिं चि इंदिएहि, मणसा अत्थोगाहो मुणेष्वो ।

चिक्खिदिय-मणहियं, वंजणमीहाइयं छदा ॥ ? ॥] जीवसमास गा० ६२]

- पं. २१. किं मन्द्र इति गम्भीरं तार उच्चैस्तरश्चनिमान् । पं. २२. यत्रेति नयन-मनसोर्विषये व्यञ्जनावग्रहो 30 नास्ति । तत्र चतुर्विधव्यञ्जनावग्रहविषये अवग्रहगता-उपधारणतालक्षणमेदद्वयस्याभावः । पं. ३०. ईहायां मार्गणतेति 30 किमयं स्थाणुः पुरुषो वा " इति वितर्कं 'बहुसुत्सर्पण-काकनिलयनादिधर्मदर्शनात् स्थाणुना भाव्यम्, नेतरेण, शिरःकण्डूयन-चलनादितदीयधर्मादर्शनात्' इत्येवं व्यतिरेकधर्मनिराकरणपरोऽव्ययधर्मकटनप्रवृत्तक्षापायाभिमुख एव बोध ईहा इति । एवमीहाया- 30 मेघां धर्माणां यदन्वेषणं सा मार्गणता ॥

[पृष्ठ ५१]

- पं. २. **सद्दमंनुगत** इति, सद्दमिणी-वस्तुनि अनुगतः सद्दमंनुगतः । पं. १३. **अप अयः**-सामल्येन परिच्छेदोऽपयः, मधुर-स्निग्धवादिगुणत्वात् 'शङ्खस्यैवायं शब्दः, न शृङ्खस्य' इत्यादि यद् विशेषविज्ञानं सोऽपयः ।
- पं. २२. अपायेन निश्चितेऽर्थे तदन्तरं यावदथापि तदर्थोपयोगे सात्क्येन वर्तते, न तु तस्मान्निवर्तते, तावत् तदर्थोपयोगाद् **अविच्छ्रुतिर्नाम धारणायाः प्रथमभेदो भवति** । पं. २५. यत् कर्मज्ञयोपशमवशाज्जीवस्य कालान्तरे इन्द्रियव्यापारादि-सामग्रीवशात् पुनरुत्पयाथावधारितोऽर्थः स्मृतिरूपेणोन्मीलति सा संस्काररूपा **वासना** नाम धारणाभेदः । कालान्तरे च वासना-वशात् तदर्थस्येन्द्रियैरुपलब्धस्याथवा तैरनुपलब्धस्यापि मनसि या स्मृतिराविर्भवति सा तृतीयस्तद्वेद' । पं. २७. अत्र मति-दौर्बल्यादिकारणकलापादप्रवहदादीनां दुर्विज्ञेयत्वेऽपि सर्वज्ञमतप्रामाण्यादवितथात्वमेव भावनीयमिष्यावेदयनाह-इह चेत्यादि ।
- पं. २९. **एकाधिकरणत्वाद्** एकाश्रयत्वात् ।

[पृष्ठ ५३]

10

- पं. ३. न पुनर्विज्ञत्वेत्यादि, विशतिदिनापेक्षया यथा अपान्तराल आसन्नो योऽसावागमनसमयः कालविशेषरूपस्तदिन-भावी अतिक्रान्तप्राचीनदिननिरपेक्षः पथिकस्य गृहप्रवेशकारणम्, न तथा प्रकृते प्राचीनसमयरहितचरमासंख्येयसमयप्रविष्ट-पुत्रलाशिरित्यर्थव्यवहकारणम्, किन्त्वादिन आरभ्य प्रतिसमयप्रवेशेन निरन्तरमसंख्येयसमयप्रविष्टाः पुत्रलाः शब्दविज्ञानजनकार्या-वग्रहेतवो भवन्तीति भावः । स्फुटशब्दविज्ञानहेतवश्च चरमसमयप्रविष्टा एव यद्यपि भवन्ति, नेतेर, तथापीतरे तत्साहाय्यभावेन व्यापियन्त इत्योपेतः सर्वेषां सामान्येन ग्रहणमुच्यते ।

15

[पृष्ठ ५४]

- पं. १. अथ 'केयं मल्लकट्टयान्तेन व्यञ्जनावग्रहप्ररूपगा' इति पृष्टे तां वक्तुमाह-तद् यथेत्यादिना । पं. ४. "मल्लेयं पनाहेहि" चि ग्राबयिष्यति । पं. ५. व्यञ्जनं पूरितं भवति तोयेन मल्लकमिव । पं. ६. **सम्बन्धो वेति** द्रव्य-इन्द्रिययोः सम्बन्धः । यद् द्रव्यं व्यञ्जनमिति, शब्दादिविषयपरिणतपुत्रलसमूहरूपम् । पं. ७. **स्वविषयव्यक्ताविति** स्वप्राहकज्ञानजनने । पं. ८. आभृतमिति, वासितमित्यर्थः । पं. ९. **नाम-जात्यादिकल्पनारहितमिति**, एतच्च "ताहे १० हुं ति करेह" इत्यस्य व्याख्यानम् । पं. ११. **अत्रार्थावग्रहान् पूर्वमिति** अन्तर्मुहूर्तैः द्रव्यप्रवेशादिरूप इत्यर्थः । पं. १२. इदानीं 'से जहानामए केह पुरिते अब्बत् सहे सुणेजा' इत्यादिकस्य बर्षयमाणस्य व्याख्यानाय समबतारं कुर्वन् पातनात्रयं करोति-अत्राहेत्यादिना आधेयम्, अथवा यदुक्तमित्यादिका द्वितीया, अथवा सुप्तेत्यादिना तृतीयेति । पं. १७. **अव्यक्तमिति अनिर्देश्यम्**, कोऽर्थः 'शब्दोऽयम्, रूपादिवा' इत्यादिप्रकारेण निर्देशुमशक्यमव्यक्तम् । **स्वरूप-नामादीति**, आदिशब्दाद् जाति-गुण-क्रिया-द्रव्यग्रहः । पं. १८. **तस्य चैति** अर्थावग्रहस्य । पं. १९. **आहेति** परो ब्रूते । पं. २३. **सम्बद्धमिति** युक्तमित्यर्थः । **नैतदेवमित्यादिना** सूरिः प्रतिविधत्ते । पं. २५. न तु शब्दबुद्धयेति 'शब्दोऽयम्' इत्यध्यवसायेनेति न । **तस्यैवेति**, अर्थावग्रहं विनैव 'तस्यैव' शब्दमात्रस्याप्रायसङ्गात् । पं. २८. तस्माद् व्यञ्जनापूरणे जातेऽव्यक्तमनिर्देश्यस्वरूपं शब्दापुल्लेखरहितमर्थमात्रमवगृह्णाति । एतदेवाऽऽह **भाष्यकारः**-अव्वत्तेत्यादि ।

30

सामण्णमणिहेसं सरूव-नामाहकप्पणारहियं ।

जह एव जं तेणं गहिए सदे' स्ति तं किह णु ? ॥ १ ॥

"अव्वत्तमनिहेस"मिति वृत्तौ पाठो दृश्यते । तत्र "अव्वत्ते" इति विवृणोति । **सामण्णमिति** । माद्यवस्तुनः सामान्य-

१ यद्यपि एतत् पद वृत्तौ न वर्तते तथापि "क्षेपं सुगमम्" इत्यादिना सूत्रगतमवबोधव्यम् ॥

- विशेषात्मकत्वे सत्यप्यर्थविग्रहेण सामान्यरूपमेवार्थं गृह्णाति, न विशेषरूपम्, अर्थावग्रहस्यैकसामयिकत्वात्, समयेन च विशेष-
ग्रहणायोगादिति । सामान्यार्थं च कश्चिद् ग्राम-नगर-वन-सेनादिशब्देन निर्देश्योऽपि भवति तद्गृह्यतेवार्थमाह—'अनिर्देश्यं' केनापि
शब्देनानभिधेयम् । कुतः पुनरेतत् ? इत्याह—यतः स्वरूप-नामादिकरूपनारहितम्, आदिशब्दाज्जाति-क्रिया-गुण-द्रव्यपरिग्रहः ।
तत्र रूप-रसाद्यर्थानां य आत्मीयश्चतुरादीन्द्रियगम्यः प्रतिनियतः स्वभावः नन् स्वरूपम् । रूप-रसादिकस्तु तदभिधायको ष्वनि-
नाम । रूप-रसत्वादिका तु जातिः । 'प्रतिकरमिदं-रूपम्, पुष्टिकरोऽयं रसः' इत्यादिकस्तु शब्दः क्रियाप्रधानत्वात् क्रिया ।
कृष्ण-नीलादिकस्तु गुणः । पृथिव्यादिकं पुनर्द्रव्यम् । एषां स्वरूप-नाम-जात्यादीनां कल्पना—अन्तर्जल्पारूपितज्ञानरूपा तथा
रहितमेवार्थमर्थावग्रहेण गृह्णाति यतो जीवः, तस्मादिर्देश्योऽयमर्थः प्रोक्तः, नत्कल्पनारहितत्वेन स्वरूप-नाम-जात्यादिप्रकारेण केनापि
निर्देश्युपशक्यत्वादिति । एवमुक्ते सति परः प्राह—'जइ एव'मित्यादि, यदि स्वरूप-नामादिकरूपनारहितोऽर्थोऽर्थावग्रहस्य विषय
इत्येवं व्याख्यायते भवन्नित्तिर्ह 'जं' ति यद् नन्ध्यध्ययनमूत्रे प्रोक्तम्, किम् ? इत्याह—'तेण गहिण सदे' ति, उपलक्षणवदित्थं
10 सम्युष्णं द्रष्टव्यम्—'पे जहानामए केह पुरिसे अब्बत्तं सद् सुणेजा, तेणं 'सदे' ति उगगहिण, न उण जाणइ 'के वेस सदाइ' ति
'तं किह तु' ति तदेतत् कथमविरोधेन नीयते ? पुनद्रात्रारूपानेन सह विरुध्यत एषेदमित्यर्थः । तथाहि—अस्मिन् नन्दिसूत्रेऽयमर्थः
प्रतीयते, यथा—अनेन प्रतिपत्त्राऽर्थावग्रहेण शब्दोऽवगृहीत इति, भवन्तस्तु शब्दाद्युल्लेखरहितं सर्वथाऽमुं प्रतिपादयति तत्कथं न
विरोधः ? इति भाव इति गाथार्थः ॥ १ ॥ अत्रोत्तरमाह—

पं. २९. सदे सि भणइ वत्ता, तम्मत्तं वा न सद्दुद्धीए ।

15

जइ होज्ज सद्दुद्धी तोऽवाओ चेव सो होज्जा ॥ २ ॥

- 'शब्दस्तेनावगृहीतः' इति यदुक्तं तत्र 'शब्दः' इति 'वक्त' प्रज्ञापकः सूत्रकारो वा 'भणति' प्रतिपादयति, अथवा 'तन्मात्रं'
शब्दमात्रं रूप-रसादिविशेषव्याख्याख्याऽनवधारितत्वाच्छब्दतयाऽनिश्चितं गृह्णातीति एतावतशेन शब्दस्तेनावगृहीत इत्युच्यते, न पुन
'शब्दबुद्ध्या' शब्दोऽयमित्यथ्यवसायेन तच्छब्दवस्तु तेनावगृहीतम्, शब्दोऽस्वस्यान्तर्माह्निकत्वात् अर्थावग्रहस्य लेकसामयिकत्वाद्-
सम्भव एवायमिति भावः । यदि पुनस्तत्र शब्दबुद्धिः स्यात् तर्हि को दोषः स्यात् ? इत्याशङ्क्य सूत्रकारः स्वयमेव दृषणान्तर-
20 माह—'जइ' इत्यादि यदि पुनर्थावग्रहे 'शब्दबुद्धिः' शब्दनिश्चयः स्यात् तदाऽपय एवासौ स्यात्, न त्वर्थावग्रहः, निश्चयस्यापाय-
स्वरूपत्वात् । ततश्चार्थावग्रहेहाभाव एव स्यात्, न चैतद् दृष्टमिष्टं वेति गाथार्थः ॥ २ ॥ अत्राह परः—ननु प्रथमसमय एव
रूपादिव्यपेक्षेन 'शब्दोऽयम्' इति प्रत्ययोऽर्थावग्रहत्वेनाभ्युपगम्यताम्, शब्दमात्रत्वेन सामान्यत्वात् ; उत्तरकालं तु प्रायो मायुर्थावग्रहः
शङ्कशब्दधर्मा इह पटन्ते, न तु शाङ्गधर्माः खर-कर्कशवादय इति विमर्शबुद्धिरीहा, तस्मान् 'शाङ्क एवायं शब्दः' इति तद्विशेषत्व-
पायोऽस्तु, तथा च सति 'तेणं सदे ति उगगहिण' इदं यथाश्रुतमेव व्याख्यायते, 'नो चेव णं जाणइ के वेस सदाइ ? तओ
25 इहं पविसइ' इत्याद्यपि सर्वमविरोधेन गच्छतीति । तदेतत् पणेतं मूरिः प्रत्यनुमाथ्य दृषयति, यथा—

पं. ३०. जइ सद्दुद्धिमेत्तयमवगगहो, तच्चिसेसणमवाओ ।

नणु सदेो नासदेो, न य र्वाइ विसेसोऽयं ॥ ३ ॥

- भोः पर ! यदि 'शब्दबुद्धिमात्रं' शब्दोऽयमिति निश्चयज्ञानमपि भवताऽर्थावग्रहेऽभ्युपगम्यते 'तद्विशेषणं तु' तस्य—शब्दस्य
विशेषणं—विशेषः 'शाङ्क एवायं शब्दः' इत्यादिविशेषज्ञानमित्यर्थः, 'अथायः' मतिज्ञानतृतीयभेदोऽङ्गीक्रियते, हन्त तर्हि अवग्रहलक्षणस्य
30 तदाऽभेदस्याभावप्रसङ्गः, प्रथमत एवावग्रहमतिक्रम्यापायान्युपगमात् । कथं पुनः शब्दज्ञानमपायः ? इति चेत्, उच्यते—तस्यापि
विशेषमाहत्त्वात्, विशेषज्ञानस्य च भवताऽप्यथायत्वेनाभ्युपगतत्वात् । ननु 'शाङ्क एवायं शब्दः' इत्यादिकमेव तदुत्तरकालमावि-
ज्ञानं विशेषमाहत्कम्, शब्दज्ञाने तु शब्दसामान्यस्यैव प्रतिभासनात् कथं विशेषप्रतिभासः ? येनापायप्रसङ्गः स्यात्, इत्याह—'नणु' !

इत्यादि, 'ननु' इति अक्षमायां परामन्त्रणे वा, ननु 'शब्दोऽयम्, नाशब्दः' इति 'विशेषोऽयं' विशेषप्रतिभास एवायमित्यर्थः, कथं पुनः 'नाशब्दः' इति निश्चीयते ? इत्याह—न च रूपादिरिति, चशब्दो हिशब्दाद्यै, आदिशब्दाद् गन्ध-रस-स्पर्शोपरिग्रहः । ततश्चेदमुक्तं भवति—यस्मान्न रूपादिरयम्, तेभ्यो व्यावृत्तत्वेन गृहीतत्वात्, अतो 'नाशब्दोऽयम्' इति निश्चीयते, यदि तु रूपादिभ्योऽपि व्यावृत्तिर्गृहीता न स्यात् तदा 'शब्दोऽयम्' इति निश्चयोऽपि न स्यादिति भावः । तस्मात् 'शब्दोऽयम्, नाशब्दः' इति विशेष-प्रतिभास एवायम् । तथा च सति अस्याप्यपायप्रसङ्गतोऽवप्रहामावप्रसङ्ग इति स्थितमिति गार्थार्थः ॥ ३ ॥

अथ परोऽवप्रहाऽपाययोर्विषयविभागां दर्शयन्नाह—

पं. ३१. **येवमियं नावाओ, संत्वाइविसेसणं अवाओ त्ति ।
तन्मेयावेक्खाए नणु थोवमियं पि नावाओ ॥ ४ ॥**

'इदं' शब्दबुद्धिमात्रकं शब्दमात्रस्तोकविशेषावसायित्वात् 'स्तोकं' स्तोकविशेषावप्रहाकम्, अतोऽप्रायो न भवति, किन्त्ववग्रह एवायमिति भावः । कः पुनस्तर्थापायः ? इत्याह—“संत्वाइ” इत्यादि, 'शाब्दोऽयं शब्दः' इत्यादिविशेषणविशिष्टं यद् ज्ञानं तदपायः, 10 नूहद्विशेषावसायिकादिति हृदयम् । हन्त यदि यद् यत् स्तोके तत् तद् नापायस्तीर्हं निवृत्ता साम्प्रतमपायज्ञानकथा, उत्तरोत्तरार्थ-विशेषग्रहणापेक्षया पूर्वपूर्वार्थविशेषाध्यवसायस्य स्तोकात्वात् । एतदेवाह—“तन्मेये” इत्यादि तस्य—शाब्दशब्दस्य ये उत्तरोत्तरभेदा मन्द-मधुरत्वादयः तरुण-मध्यम-वृद्ध-की-पुरुषसमुद्भवत्वादयश्च तदपेक्षया तदपेक्षायां सत्यमिदमपि 'शाब्दोऽयं शब्दः' इति ज्ञानं ननु 'स्तोकं' स्तोकविशेषग्राहकमेवेति नापायः स्यात् । एवमुत्तरोत्तरविशेषग्राहिणामपि ज्ञानानां तदुत्तरोत्तरभेदापेक्षया स्तोकात्वा- 15 पयत्वाभावो भावनीय इति गार्थार्थः ॥ ४ ॥

तदेवं “से जहानामण केइ पुरिसे अब्बत्तं सई सुणेजे” इत्यादिसूत्रानुरोधेन शब्दमाश्रियावग्रहादयो भाविताः ।

[पृष्ठ ५५]

प. ७. अथ सूत्रकारणैव यदुक्तम्—“एवं एणं अभिप्रायेणं अब्बत्तं रूवं रसं गंधं फास”मित्यादि तत्चेतसि निधाय भाष्य-कारोऽप्यनिदेशमाह—

**सेसेसु वि र्वाइसु विसएसुं ह्णुति सूवलक्खाइं ।
पायं पक्खासन्नसणेणमीहाइवत्थूणि ॥ १ ॥**

20

यथा शब्द एवं शेषेष्वपि रूपादिषु विषयेषु साक्षादनुक्तान्यपि 'सूफल्लयाणि' कथितानुसारप्रसरत्प्रज्ञानां चतुरचेतसां सुज्ञेयानि भवन्ति । कानि ? इत्याह—ईहादीन्यामिनिबोधिकज्ञानस्य भेदवस्तुनि । केन सूफल्लयाणि ? इत्याह—प्रायः प्रत्यासन्नत्वेन चक्षुरादिना गृह्यमाणस्य स्थापवादेस्तत्रागृह्यमाणेन पुरुषादिना सह प्रायो बहुभिर्धर्मैर्यत् प्रत्यासन्नं—या प्रत्यासत्तिः सादृश्य-मिति यावत्, तेनेहादीनि ज्ञेयानि, न पुनःस्यन्तवैलक्षण्यस्थापवादेरुष्टादिना सहेयार्थः । इदमुक्तं भवति—अवग्रहे तावत् सामा- 25 न्यमात्रग्राहकत्वाद् द्वितीयवस्त्वपेक्षाऽपि न विधत्ते, ईहा पुनरुभयवस्त्ववलम्बिनी, तत्र पुरोदस्यमानस्य वस्तुनो यत् प्रतिपक्षभूतं वस्तु तत् प्रायो बहुभिर्धर्मैः प्रत्यासन्नं प्राब्रम्य, न पुनःस्यन्तविलक्षणम्; पुरतो हि मन्दमन्दप्रकाशो दुराद् दृश्यमाने स्थापवादौ 'किमयं स्थाणु ? पुरुषो वा ? इत्येवमेवेहा प्रवर्त्तते, ऊर्ध्वस्थाना-ऽऽरोह-परिणाहतुल्यतादिभिः प्राप्तेः, बहुभिर्धर्मैः पुरुषस्य स्थाणुप्रत्यासन्नत्वा-दिति, 'किमयं स्थाणुः ? उच्छो वा ? इत्येवं तु न प्रवर्त्तते, उच्छस्य स्थाणुपेक्षया प्रायोऽप्यन्तविलक्षणत्वात् । अत एव सामान्य-मात्रमाही अवग्रहोऽनाऽऽदौ न कृतः, किन्तु 'ईहादीनि' इत्येवमेवोक्तम्, उभयवस्त्ववलम्बित्वेनेहा एव “पायं पक्खासन्नसणेण-” 30 ति विशेषणस्य सफलत्वात् । अपायस्यापि 'स्थाणुरेवायम्, न पुरुषः' इत्यादिरूपेण प्रवृत्तेः किञ्चिद् विशेषणस्य सफलत्वादादि-

शब्दोऽप्यनिरुद्ध इति गाथार्थः ॥ १ ॥ इह 'किं शब्दः' अशब्दो वा ' इति श्रोत्रेन्द्रियस्य [प्रत्यासन्नवस्तूपदर्शनं कृतमेव । अथ शेषचक्षुरादीन्द्रियाणां विषयभूतानि] प्रत्यासन्नवस्तूनि क्रमेण दर्शयति—

पं. ८. धाणुपुरिसाइ-कुटुम्पलाइ-संभियकरिल्लमंसाई ।
सप्पुप्यलनालाइ व समाणरूवाइविसयाई ॥ २ ॥

- 5 "ईहादिवस्तूनि सुपलक्याणि" इत्युक्तम् । कथंभूतानि सन्ति पुनस्तानि सुपलक्याणि ? इत्याह—समानः—समानधर्मा रूप-रसादिर्विषयो येषामीहादीनां तानि समानरूपादिविषयाणीति पूर्वगाथायां सम्बन्धः । कः पुनरमीषां समानधर्मा रूपादिविषयः ? इत्याह—स्थाणु-पुरुषादिवदिति, पर्यन्ते निर्दिष्टो विषयोपदर्शनाभिधोतको वच्छब्दः सर्वत्र योज्यते, ततश्चशुत्रिन्द्रियप्रभवस्येहादेः स्थाणुपुरुषादिवत् समानधर्मा रूपविषयो द्रष्टव्यः, आदिशब्दात् 'किमियं शुक्तिका रजतखण्डं वा' 'मृगपुष्पिकाः पयःपूरो वा' रजः विषधरो वा ?' इत्यादिपरिग्रहः । प्राणेन्द्रियप्रभवस्येहादेः कुट्टेपलादिवत् समानगन्धो विषयः, ततः कुट्टं—गन्धिकहट्टविकेयो
- 10 वस्तुविशेषः उत्पलं—पथं अनयोः किल समानो गन्धो भवति तत ईदृशेन गन्धेन 'किमिदं कुट्टम्' 'उत्पलं वा' ' इत्येवमीहाप्रवृत्तिः, आदिशब्दात् 'किमत्र सप्तच्छद्राः मतकारिणो वा ? कस्तूरिका वनगजमदो वा ?' इत्यादिपरिग्रहः । रसनेन्द्रियप्रभवस्येहादेः सम्भूत-तकरील-मांसादिवत् समानरसो विषयः, तत्र सम्भूतानि—संस्कृतानि सन्धानीकृतान्यरिथेतानि यानि वंशजालिसम्बन्धीनि करीलानि तथा मांसम्, अनयोः किलाऽऽस्वादः समानो भवति, ततोऽन्धकारादावन्धतरसिन्धु निह्नाप्रपदत्ते भक्त्येवम्—'किमिदं सम्भूत-वंशकरीलम् ? आमिषं वा ?' इति, आदिशब्दात् 'गुडः खण्डं वा' 'मृद्वीका शुष्कराजादनं वा' इत्यादिपरिग्रहः । स्पर्शनेन्द्रिय-
- 15 प्रभवस्येहादेः सपौलपलनालादिवत् समानस्पर्शो विषयः, सपौलपलनालयोश्च तुन्यस्पर्शनेहाप्रवृत्तिः सुगमैव, आदिशब्दात् 'कूपुरुष-लेट्टूपलादिसमानस्पर्शवस्तुपरिग्रह इति गाथार्थः ॥ २ ॥ अथ यदुक्तं सूत्रे "क्षे जहानामग, केइ पुरिसे अब्बनं मुमिणं पासेज्जा" इत्यादि, तदनुसृत्य स्वने मनसोऽप्यवपहादीन् दर्शयन्नाह—

पं. ९. एवं चिय सिमिणाइसु मणसो सहाइएसु विसएसु ।
होतिन्दियवावाराभावे वि अवग्गहाईया ॥ ३ ॥

- 20 'एवमेव' उक्तानुसारेणेन्द्रियव्यापाराभावेऽपि स्वनादियु, आदिशब्दात् दत्तकपाट-सान्धकारापवरकादीनीन्द्रियव्यापाराभाव-वन्ति स्थानानि गृह्यन्ते, तेषु केवलस्यैव मनसो मन्यमानेषु शब्दादिविषयेषु 'अवग्रहादयः' अवग्रहेहा-ऽप्राय-धारणा भवन्तीति स्वयमन्युह्याः । तथाहि—स्वनादौ चित्तोपेक्षामात्रेण श्रूयमाणे गीतादिशब्दे प्रथमं सामान्यमात्रोपेक्षायामवग्रहः 'किमयं शब्दः ? अशब्दो वा ?' इत्याद्युपेक्षायां त्वीहा, शब्दनिश्चये पुनरप्रायः, तदनन्तरं तु धारणा । एवं देवतादिरूपे, कर्पूरादिगन्धे, मोदकादि-रसे, कामिनीकुचकलादिस्पर्शे चोपेक्षमाणेऽवग्रहादयो मनसः केवलस्य भावनीया इति गाथार्थः ॥ ३ ॥

- 25 मतिज्ञानमिदं द्रव्यादिभेदाच्चतुर्विधम् । यदाह भाष्यकृत्—

तं पुण चउन्विहं नेपभेयओ तेण जं तदुवउत्तो ।
आएसेणं सव्वं दब्बाह चउन्विहं मुणह ॥ १ ॥

- 'तत् पुनः' आमिनिबोधिकज्ञानं 'चतुर्विधं' चतुर्भेदम् । नन्ववग्रहादिभेदेन भेदकथनं प्रागस्त्य कृतमेव, किमिह पुनरपि भेदो-पन्यासः ? सत्यम्, ज्ञेयमेवह द्रव्यादिभेदेन चतुर्भेदम्, ज्ञानस्य तु ज्ञेयभेदादेव भेदोऽत्राभिधीयते, सूत्रे तथैवोक्तत्वात् । तच्चेदं
- 30 सूत्रम्— "तं समासओ चउन्विहं णणत्तं, जं जहा—दब्बओ सित्तओ कालओ भावओ । दब्बओ णं आमिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदब्बाई जाण्ह न पासई" इत्यादि । ज्ञेयभेदादपि तत् कथं चतुर्विधम् ? इत्याह—"जं तदुवउत्तो" इत्यादि, 'यद' यस्मात् कारणात् 'तेन' आमिनिबोधिकज्ञानेन सर्वं द्रव्यादि सुणतीति सम्बन्धः । कथंभूतम् ? इत्याह—'चतुर्विधं' चतुर्भेदं द्रव्य-क्षेत्र-काल-

भावभेदमित्यर्थः । कथम्भूतः सन् सुगतिः ? इत्याह—तस्मिन्नेव—आमिनिबोधिकज्ञाने उपयुक्तः तदुपयुक्तः । केन ? इत्याह—
आदेशेनेति ॥ १ ॥ कोऽयमादेशः ? इत्याह—

पं. २८. **आएसो स्ति पगारो, ओहादेसेण सव्वद्ववाइं ।
धम्मत्थियाहयाइं जाणह, न उ सव्वभेएणं ॥ २ ॥**

इह 'आदेशो नाम' ज्ञातव्यवस्तुप्रकारः । स च द्विविधः—सामान्यप्रकारो विशेषप्रकारश्च । तत्र 'ओघादेशेन' सामान्य- 5
प्रकारेण द्रव्यजातिसामान्येनेत्यर्थः, सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति, 'असंख्येयप्रदेशात्मको लोकव्यापकोऽमूर्त्तः प्राणिनां
पुद्गलानां च गत्युपलब्धेर्तुर्धर्मास्तिकायः' इत्यादिरूपेण क्रियत्यर्थायविशिष्टानि षडपि द्रव्याणि सामान्येन मतिज्ञानी जानातीत्यर्थः ।
अनभिमतप्रकारप्रतिषेधमाह—'न तु सर्वभेदेन' न सर्वैर्विशेषैर्न सर्वैरपि पर्यायैः केवलद्विष्टैर्विशिष्टानि तानि द्रव्याण्यसौ जानातीत्यर्थः,
केवलज्ञानगम्यत्वादेव सर्वपर्यायाणामिति भावः ॥ २ ॥

धर्मास्तिकायादिभेदेन कथितं सामान्येन द्रव्यम् । अथ क्षेत्रादिस्वरूपं विशेषतः प्राह—

10

[पृष्ठ ५६]

प. १. **खेत्तं लोगालोमं, कालं सव्वद्धमहव तिबिहं पि ।
पंचोद्धयाइणं भावे, जं नेयमेवहयं ॥ ३ ॥**

क्षेत्रमपि लोका-ऽलोकस्वरूपं सामान्यादेशेन क्रियत्यर्थायविशिष्टं सर्वमपि जानाति, न तु विशेषादेशेन सर्वपर्यायैर्विशिष्टमपि ।
एवं कालमपि सर्वाङ्गारूपम्, अतीता-ऽनागत-वर्तमानभेदतन्निविष्टं वा इत्येक एवार्थः । भावतस्तु सर्वभावानामनन्तभागं 15
जानाति, औद्द्यिकौपशमिक-क्षाधिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकान् वा पञ्च भावान् सामान्येन जानाति, न परतः । कुतः ?
इत्याह 'यद्' यस्मादेतावदेव ज्ञेयमस्ति, नान्यदिति । इह क्षेत्र-कालौ सामान्येन द्रव्यान्तर्गततावैव, केवलं भेदेन रूपादव पृथगुपा-
दानमवसेवमिति ॥ ३ ॥ आदेशस्य व्याख्यानान्तरमाह—

पं. २. **आएसो स्ति व सुत्तं, सुओवलजेसु तस्स महानाणं ।
पसरइ तवभावणया विणा वि सुत्ताणुसारेण ॥ ४ ॥**

20

अथवा आदेशः सूत्रमुच्यते । तेन सूत्रादेशेन सूत्रोपलब्धेष्वर्थेषु 'तस्य' मतिज्ञानिनः सर्वद्रव्यादिविषयं मतिज्ञानं प्रसरति ।
ननु श्रुतोपलब्धेष्वर्थेषु तद् ज्ञानं तद् श्रुतमेव भवति, कथं मतिज्ञानम् ? इत्याह—'तवभावणयोऽयादि, तद्भावणया श्रुतोपयोग-
मन्तरेण तद्वासनामात्रत एव यद् द्रव्यादिषु प्रवर्तते तद् सूत्रादेशेन मतिज्ञानमिति भावः । एतच्च पूर्वमपि—

पुत्रं सुयपरिकम्मियमइस्स जं संपये सुयाईये ।

तन्निरिसयमियं पुण, अणिरिसयं महच्चउक्कं तं ॥ १ ॥ [विशेषा० गा० १६९]

25

इत्यादिप्रक्रमे प्रोक्तमेवेति गाथाचतुष्टयार्थः ॥ ४ ॥

पं. ५. अत्र श्रुतनिश्चितानवप्रहादीस्तावदाह—

उग्गहो ईह अवाओ य धारणा एव होंति चत्सारि ।

आभिणिबोहियणाणस्स भेयवत्थु समासेण ॥ सू. गा. ७२ ॥

रूप-रसादिभेदनिर्देश्यस्य अन्यकस्वरूपस्य सामान्यार्थस्थावग्रहणं—परिच्छेदनमवग्रहणं । तेनावग्रहीतस्यार्थस्य भेद- 30
विचारणं वक्ष्यमाणत्वात् विशेषान्वेषणमीहा । तथा ईहितस्यैवार्थस्य व्यवसायः—तद्विशेषनिश्चयोऽप्यायः । चरन्दीऽवग्रहादीनां पृथक्

पृथक् स्वातन्त्र्य प्रदर्शनार्थः, तेनैतदुक्तं भवति—अवग्रहादेरीहादयः पर्याया न भवन्ति, पृथग्भेदवाचकत्वादिति । निश्चितस्यैव वस्तुनोऽविच्युत्यादिरूपेण धरणं धारणा । एवकारः क्रमद्योतनपरः, अवग्रहादीनामुपन्यासस्यायमेव क्रमः, नान्यः, अवग्रहीतस्य-वेहनात्, ईहितस्यैव निश्चयात्, निश्चितस्यैव धारणादिति । एवमेतान्यामिनिशोधिकज्ञानस्य चत्वार्येव भेदवस्तूनि 'समासेन' सङ्क्षेपेण भवन्ति । विस्तरतस्त्वादिशस्यादिभेदभिन्नम् । इदं प्रागुक्तमेवेति भावः । तत्र भिन्नते परस्परमिति भेदाः—विशेषाः त एव वस्तूनि भेदवस्तूनीति समास इति गाथार्थः ॥ अथ सूत्रकार एवावग्रहादीन् व्याख्यानयन्नाह—

पं. ७. अस्थाणं उग्राहणं अवग्रहं, तह वियालणं ईहं ।

ववसायं च अवायं, धरणं पुण धारणं वेति ॥ सू. गा. ७३ ॥

- 'अर्थाणां' रूपादीनां प्रथमदर्शनानन्तरमेव 'अवग्रहणं' अवग्रहं भुवत इति सम्बन्धः । तथा 'विचारणं' पर्यालोचनम्, अर्थानामिति वर्तते, ईहंनमीहा तां भुवते । इदमुक्तं भवति—अवग्रहादुत्तीर्णोऽप्यायात् पूर्वं सङ्गतार्थविशेषोपादानामिमुखोऽसद्वृत्तार्थ-विशेषस्यागसम्मुख 'प्रायः काकानिलयनादयः स्थाणुधर्मा अत्र निरीक्ष्यन्ते, न तु शिरःकण्ठयनादयः पुरुषधर्माः' इति मतिविशेष ईहेति । विशिष्टोऽवसायो व्यवसायः—निश्चयलं व्यवसायम्, अर्थानामितंहापि वर्तते, अपायमवायं वा भुवते । एतदुक्तं भवति—स्थाणुरेवायमित्यवधारणात्मकः प्रत्ययोऽप्यायोऽप्यायो वेति । चरन्द एवकारार्थः, व्यवसायमेव अवायमप्यायं वा भुवते इत्यर्थः । धृतिर्धरणम्, अर्थानामिति वर्तते, अपायेन विनिश्चितस्यैव वस्तुनोऽविच्युति-स्युति-वासनारूपं धरणमेव धारणं भुवत इत्यर्थः । पुनःअन्दस्यावधारणार्थत्वाद् भुवत इत्यनेन शास्त्रस्य पारतन्त्र्यमुक्तम्, इधं तीर्थक-ग-गधरा भुवत इति । अन्ये त्वेवं पटन्ति—
- 15 "अस्थाणं उग्राहणमि उग्राहो" इत्यादि तत्रार्थानामवग्रहणे सति अवग्रहो नाम मनिभेद इत्येवं भुवते । एवमीहादिष्वपि योज्यम् । भावार्थस्तु पूर्ववदेव । अथवा "प्राकृतशैल्याश्चैवशाद् विभक्तिपरिणाम" इति सप्तमी द्वितीयाथैः दृश्येति गाथार्थः ॥

अथैतदेवावग्रहादिवस्वरूपं भाष्यकारेण विवृतं यथा—

सामण्यथावग्रहणमोग्रहो, भेयमण्यमग्रेहा । तस्सावगोऽवाओ, अविबुद्धे धारणा तस्स ॥ [विशेषा० गा० १८०]

- अन्तर्भूताशेषविशेषस्य केनापि रूपेणानिर्देश्यस्य सामान्यस्यार्थस्यैकसामर्थिकमवग्रहणं सामान्यार्थवग्रहणम्, अववा सामान्येन—सामान्यरूपेणार्थस्थावग्रहणं सामान्यार्थवग्रहणमवग्रहो वेदितव्यः । अथानन्तरमीहा प्रवर्तते । कथंभूतेयम् ? इयाह—'भेदमार्गणं' भेदाः—वस्तुनो धर्मान्तेषां मार्गणं—अन्वेषणं विचारणं 'प्रायः काकानिलयनादयः स्थाणुधर्मा अत्र वीक्ष्यन्ते, न तु शिरःकण्ठयनादयः पुरुषधर्माः' इत्येवं वस्तुधर्मविचारणमीहा इत्यर्थः । तस्यैव ईहया ईहितस्य वस्तुनस्तदनन्तरमवगमनमवगमः 'स्थाणुरेवायम्' इत्यादिरूपो निश्चयोऽप्यायोऽप्यायो वेति । तस्यैव निश्चितस्य वस्तुनोऽविच्युति-स्युति-वासनारूपं धरणं धारणा, सूत्रेऽविच्युतेरुपलक्षणत्वादिति गाथार्थः ॥

- 25 तत्राध्यामिदं स्वरूपम्—अप्यायानन्तरमवगतमर्थमविच्युत्याऽअथयोःकृष्टमन्तर्मुहूर्तमात्रं कालं धारयतो धारणाऽविच्युत्या-ख्या । तमेवार्थमुपयोगात् स्युतं अफयेनान्तर्मुहूर्तादुःकृष्टनोऽसंख्येयकालात् परतः स्मरतः धारणा स्मृत्याख्या । अप्यायवधा-स्तिमेवार्थे पूर्वा-ऽपारलोचितं ह्रदि स्थापयतो धारणा वासनाख्या । नवरं संख्येयवर्षाद्युक्तं संख्येयं कालं स्मृति-वासनारूपा धारणा भवति, असंख्येयवर्षाद्युक्तमसंख्येयं कालं स्मृति-वासनारूपा धारणा भवति, असंख्येयवर्षाद्युक्तमसंख्येयं कालं द्विरूपा-ऽप्येयं धारणा भवति ॥

- 30 पं. ११. पुट्टं [सूत्र गा. ७५] गाहा । श्रोत्रेन्द्रियं कर्तुं, शब्दं कर्मतापलं शृणोति । कथंभूतम् ! इयाह—स्मृत्यत इति स्मृत्यतं स्मृत्यम्, तनौ रेणुवदालिङ्गितत्वात्प्रमेयेथः । इदमुक्तं भवति—स्मृत्यमात्रण्येव शब्दद्रव्याणि श्रोत्रमुपलभते, यतो ब्राह्मण-श्रोत्रियविषयभूतद्रव्येभ्यः तानि रूग्नाणि बहूनि भावुकानि च, पटुतरं च श्रोत्रेन्द्रियं विषयपरिच्छेदे प्राणैन्द्रियादिगणदिति ।

श्रोत्रेन्द्रियस्य चेह कतुचं शब्दश्रवणान्यथानुपपत्तेर्लभ्यते । एवं प्राणेन्द्रियादिष्वपि बाध्यम् । तानि पुनः कथं गन्धादिकं गृह्णन्ति ? इत्याह—गन्धत्वं इति गन्धस्तसुपलभते प्राणेन्द्रियम्, रस्यत्वं इति रसस्तं च गृह्णाति रसनेन्द्रियम्, स्पृश्यत्वं इति स्पर्शस्तं च ज्ञानाति स्पर्शनेन्द्रियम् । कथम्भूतं गन्धादिकम् ? इत्याह—“बद्धस्पृष्टं” तत्र स्पृष्टमिति—पूर्ववेदेव, बद्धं तु—गाढरमाकण्ठे आत्मप्रदेशैस्तोयव-दासीकृतस्त्रियर्थः । ततश्च गन्धादिद्रव्यसमूहं प्रथमं स्पृष्टम्—आण्डित्तं ततश्च स्पर्शनानन्तरं बद्धम्—आत्मप्रदेशैर्गाढतरमागृहीतमेवो-पलभते प्राणेन्द्रियादिकमित्येवं व्यागुणीभ्यात् प्रज्ञापकः, यतो प्राणेन्द्रियादिविषयभूतानि गन्धादिद्रव्याणि शब्दद्रव्यापेक्षया 5 स्तोकाणि बादराणि अभावुकानि च, विषयपरिच्छेदे श्रोत्रापेक्षयाऽपट्टनि च प्राणादीनि, अतो बद्धस्पृष्टमेव गन्धादिद्रव्यसमूहं गृह्णन्ति, न पुनः स्पृष्टमात्रमिति भावः । ननु यदि स्पर्शनानन्तरं बद्धं गृह्णाति तर्हि “पुट्टबद्धं” इति पाठो युक्त इति चेत्, उच्यते—विचित्रत्वात् सूत्रगतैरित्यं निर्देशः, अर्थतस्तु यथाऽऽवयोक्तं तथैव द्रष्टव्यम् । अपरस्त्वाह—यद् बद्धं तत् स्पृष्टं भवत्येव, विशेष-बन्धे सामान्यबन्धस्यान्तर्भावात्, ततः किं स्पृष्टग्रहणेनेति, तदयुक्तम्, सक्रमश्रोतृसाधारणत्वाच्चत्वारम्भस्य प्रपञ्चितज्ञानप्रहार्य-मर्थापत्तिगम्याश्रमिधानेऽप्यदोषादिति । चक्षुरिन्द्रियं त्वप्राप्तमेव विषय गृह्णातीत्याह—“रूचं पुण पासर्हं अयुट्टं तु” इति रूपं 10 कर्मतापन्नं चक्षुः “अस्पृष्टम्” अप्राप्तमेव पश्यति । पुनःशब्दस्य विशेषार्थत्वाद्स्पृष्टमपि योग्यदेशस्थमेव पश्यति, नायोग्यदेशस्थं सौधमादि कटकुक्यादिव्यवाहितं वा घटादीति गाथार्थः ॥

पं. १३. आमासमसेदीओ सह जं सुणइ मीसयं सुणइ ।

बीसेदी पुण सहं सुणेइ नियमा पराघाए ॥ सू. गा. ७६ ॥

भाष्यत इति भाषा, वक्त्रा शब्दतयोःसूत्र्यमाना दध्यसंहतिरित्यर्थः, तस्याः समाः—प्राञ्जलाः श्रेणयः—आकाशप्रदेश- 15 पट्टक्तयो भाषासमश्रेणयः, समग्रहणं विशेषिण्यवच्छेदार्यम्, भाषासमश्रेणिपु इत गतः स्थित इत्यनर्थान्तरं भाषासमश्रेणीतः । इदमुक्तं भवति—भाषकस्यान्यस्य वा भेदादिः समश्रेणिण्यवस्थितः श्रोता यं “शब्दं” पुरुष-अथ-भेदादिसम्बन्धितं ध्वनिं शृणोति तं मिश्रकं शृणोतीत्यतन्वयम्, भाषकाद्युत्पन्नद्रव्याणि तद्वासितापान्तरालस्थद्रव्याणि चेत्त्येवं मिश्रं शब्दद्रव्यराशिं शृणोति, न तु वासकमेव वास्यमेव वा केवलमित्यर्थः । “बीसेदी पुणे”त्यादि “मज्जाः कोऽगन्ती”ति न्यायाद् विशेषिण्यवस्थितः श्रोताऽपि विशेषिण्युच्यते, स विशेषिः पुनः श्रोता शब्दं “नियमाद्” नियमेन ‘पराघाते’ वासनायां सत्यां शृणोति । इदमुक्तं भवति—यानि 20 भाषकौःसुत्पन्नानि शब्दद्रव्याणि भेदादिशब्दद्रव्याणि वा तैः ‘पराघाते’ वासनाविशेषे सति यानि वासितानि समुपनशब्दपरिणामानि द्रव्याणि ताव्येव विशेषिण्यः शृणोति, न तु भाषकाद्युत्पन्नानि, तेषामनुश्रेणिगामित्वेन विदिग्गमनासम्भवात् । न च कुड्यादि-प्रतिघातस्तेषां विदिग्गतिनिमित्तं सम्भवति, लेट्टादिवादरद्रव्याणामेव तत्कुड्यादिप्रतिघातसम्भवात्, एषां च सूदमत्वात् । न च वक्तव्यम्—द्वितीयादिसमयेषु तेषां स्वयमपि विदिक्षु गमनसम्भवात् तत्स्थस्यापि मिश्रशब्दश्रवणसम्भव इति, निसर्गसमयानन्तरं समयान्तरेषु तेषां भाषापरिणामेनानवस्थानात्, “भाष्यमागैव भाषा भाषा, समयानन्तरं भाषा अभाषैवे”ति वचनात् । यदपि 25 “चउर्हि संमर्णहि लोमो भासाए निरसं त्तु होइ पुडो” इति वक्ष्यति, तत्रापि द्वितीयादिसमयेषु भाषाद्रव्यैर्वासितात्वात् तेषां भाषात्वं द्रष्टव्यम् । अत्राह—ननु यदिवक्तुनिसुत्पन्नानि भाषाद्रव्याणि प्रथमसमये दिव्श्वेव गच्छन्ति, समयान्तरं नावतिष्ठन्ते, तर्हि तद्वासित-द्रव्याणि द्वितीयसमये विदिक्षु गच्छन्ति, ततश्च दिग्-विदिग्भवस्थितयोः समयभेदेन शब्दश्रवणं प्राप्नोति, अविशेषेण च सर्वोऽपि शब्दं श्रुष्वन्नुपलभ्यते, नैष दोषः, समयादिकाण्येदस्यातिसूक्ष्मत्वेनालक्षणादिति । भवत्वमेव, तथापि “भाष्यमागैव भाषे”ति वच- 30 नान्निसर्गसमयवर्तिन्येव भाषा, ततो विशेषिण्यो द्वितीयसमयेऽभाषां शृणोतीत्याथात्तम्, नैतदेवम्, भाषाद्रव्यैर्वासितानामपि द्रव्याणां भाषाऽविशेषाद् भाषात्वं न विरुध्यते, अत एव “बीसेदी पुण सहं”मित्यत्र पुनरपि यत् शब्दग्रहणं तत् पराघातवासित-

१ शब्दप्रग्रहणमित्यर्थः । अयं भावः—गाथायां “सहं जं सुणइ मीसयं सुणइ” इत्यत्र सहत्वं सह इति पदे उहीतेऽपि यत् पुनरपि “बीसेदी पुण सहं” इत्यत्र ‘सहं’ इति पदं उहीतं तादिस्याद्यमे सम्बन्धः ॥

द्रव्याणामपि तथाविधशब्दपरिणामलभ्यापार्थं कृतमिति तावद् वयमवगच्छामः, तत्त्वं तु बहुश्रुतादयो विदन्तीति । प्राणादीन्-
पीन्द्रियाणि गन्धाद्विद्रव्याणि मिश्राण्याददत्ते, तेषां चानुश्रेणिगमननियमो नास्ति, नादरवात् . वातायनेपलभ्यमानेऽनुबदिति
इददीकाकार इति गाथार्थः ॥

पं. १५. ईहा अपोह वीमंसा मग्गणा य गवेसणा ।

5

सण्णा सई मई पण्णा सत्त्वं आभिणिबोहिंयं ॥ सू. गा. ७७ ॥

“ईह चेष्टायाम्” ईहनमीहा—सतामन्वयिनां व्यतिरेकिणां चार्थानां पर्यालोचना । अपोहनमपोहः—निश्चयः । विमर्षणं
विमर्षः—अपायात् पूर्वः ईहायाश्चोत्तरः ‘प्रायः शिरःकण्ठयनादयः पुरुषधर्मा इह घटन्ते’ इति सम्प्रत्ययः । तथा मार्गीणम्—अन्वय-
धर्मान्वेषणं मार्गीणा । ‘चशब्दः’ समुच्चयार्थः । गवेषणं—व्यतिरेकधर्मालोचनं गवेषणा । तथा सज्ञानं संज्ञा—अवग्रहोत्तरकालभावी
मतिविशेष एव । स्मरणं स्मृतिः—पूर्वानुभूताथालम्बनः प्रत्ययः । मननं मतिः—कथञ्चिदर्थपरिच्छिन्नावपि सूक्ष्मधर्मालोचनरूपा
10 बुद्धिः । तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा—विशिष्टक्षयोपशमजन्त्या प्रभूतवस्तुगतयथावस्थितधर्मालोचनरूपा मतिः । सर्वमिदमभिनिबोधिकम्,
कथञ्चित् किञ्चिद् भेददर्शनेऽपि तत्त्वतः सर्वं मतिज्ञानमेवेदमित्यर्थः इति निर्युक्तिः श्लोकार्थः ॥

अत्रैतद्व्याख्यानाय भाष्यम्—

होह अपोहोऽवाओ, सई धिई, सत्त्वमेव मद्-पण्णा ।

ईहा सेसा, सत्त्वं इदमभिनिबोहिंयं आण ॥ १ ॥ [विरोपा० गा० ३९७]

15

अपोहस्तावत् किमुच्यते ? इत्याह—अपोहो भक्षयपाय, योऽयमपोहः स मतिज्ञानतृतीयभेदोऽप्रायो निश्चय उच्यते इत्यर्थः ।
स्मृतिः पुनः ‘धृतिः’ धारणोच्यते, धारणाभेदत्वेनावयवे समुदायोपचारादिति । ‘मति-प्रज्ञे’ मति-प्रज्ञाशब्दाभ्यां सर्वमेव मति-
ज्ञानमुच्यते । “ईहा सेस” ति ‘शेषाभिधानानि तु’ ईहा-विमर्ष-मार्गीणा-गवेषणा-संज्ञा-लक्षणानि सर्वोपपत्ति ईहा’ ईहान्तर्भावानि
द्रष्टव्यान्तीत्यर्थः । एवं विशेषतः कथञ्चिद् भेदसद्भावेऽपि सामान्यतः सर्वमिदमभिनिबोधिकज्ञानमेव जानीहि । इदमुक्तं भवति—
प्रदर्शितेहा-ऽपोहादयोऽवग्रहादयोऽपि च सर्वेऽपि मतिज्ञानस्य पर्यायाः, अवग्रहीतस्येहादिसम्भवात् । ततोऽवग्रहशब्दोऽवग्रहण-
20 लक्षणेनाथेन सर्वमभिनिबोधिकं सङ्गृह्णाति, ईहाशब्दस्तु चेष्टालक्षणेन, अपायस्त्ववगमनलक्षणेन, धारणा तु धरणलक्षणेन सर्वं सङ्गृ-
ह्णाति । समर्थितं मतिज्ञानम् ॥ श्रुतज्ञानमुच्यते—

[पृष्ठ ५८]

पं. २८. अक्षरश्रुतमित्यादि, अक्षरादीनि सप्त द्वाराणि अनसरादिप्रतिपक्षसहितानि चतुर्दश भवन्तीति चतुर्दशभेदं
श्रुतं भवति ।

25

[पृष्ठ ५९]

पं. ९. तत्र सङ्क्षेपतः स्वरूपमिदम्—अक्षरश्रुतं त्रिविधम्—संज्ञा-व्यञ्जन-लक्ष्यभेदात् । पं १२. संज्ञाक्षरं नाम—
लेख्यलिपिरूपम्, यथा घटाकृतिः टकार इत्यादि । लिपिभेदतोऽनेकस्वरूपमकाराक्षरं संज्ञाक्षरमुच्यते । पं. १६.
भाष्यमाणः शब्दो व्यञ्जनाक्षरम्, तदेतद् द्वितयमज्ञानात्मकमपि श्रुतकारणत्वावुपचारेण श्रुतमुच्यते । पं. २४. लक्ष्यक्षरं
तु—शब्दश्रवण-रूपदर्शनादेरर्थप्रत्यायनमार्गोऽक्षरोपलब्धिः, यस्तदावगणक्षयोपगमो यः श्रुतज्ञानोपयोगश्च एतौ द्वावपि लक्ष्यक्षरम् ।
30 ततश्च श्रोत्रेन्द्रियलक्ष्यक्षरवत् श्रोत्रेन्द्रियविषयाऽक्षरोपलब्धिपरि श्रुतम्, घट-कर्पूर-शर्करा-हंस-रूततूलीरूपे विषयोपलम्भे एतद्वाच-
काक्षरोपलम्भसद्भावात् । मनः प्रति च यद् दृष्टं स्वप्ने रूपादि तदक्षरोपलब्धिप्राज्ञा ।

[पृष्ठ ६०]

पं. ८. अनक्षरश्रुतं श्लेडित-शिरःकम्पादिनिमित्तमाह्वयति वारयति वेत्यादिरूपमिप्रायादिप्रज्ञानम् । पं. १०. "ऊससियं" गाहायां शेटितादि चानक्षरश्रुतमिति आदिष्वहणात् पूरुत-सीकारादिष्वहः । पं. १४. ध्वनिमात्रत्वादिति शब्दमात्रत्वात्, शब्दश्च भावश्रुतस्य कारणमेव, यच्च कारणं तद् द्रव्यमेव भवति । भवति च तथाविधोच्छ्वसित-निःश्वासितादि-श्रवणे 'सशोकोऽयम्' इत्यादि ज्ञानम् । एवं चेष्टामिसन्धिपूर्वकनिष्ठज्ञान-कारित-क्षुतादिश्रवणेऽध्यात्मज्ञापनादि अन्यं प्रति ज्ञानं वाच्यम् । पं. १५. सर्व एव व्यापार इति उच्छ्वसितादिकः । तद्भावेन श्रुतविज्ञानोपयुक्तजन्तुभावेन । आहृत्यादि, यथेवं गमना-ऽऽगमन-चलन-स्पन्दन-शिरोधनन-करचालनादिकाऽपि चेष्टा व्यापार एकेत्येषाऽपि श्रुतं किं न भवति ! हन्त प्राप्नो-त्यनेन न्यायेन साऽपि श्रुतम्, किन्तु रूढयेति शाब्दज्ञलोकप्रसिद्धा रूढिरियम्-यदुतोच्छ्वसिताथेव श्रुतं रूढम्, न चेष्टा, श्रूयत इति श्रुतमित्यन्वयवशात्, चेष्टा तु दृश्यत्वात् कदापि न श्रूयत इति कथमसौ श्रुतं स्यात् ? । पं. १७. अनुस्वारोत्यादि, अकारादिवर्णा इवेति भावः । पं. १९. समनस्कस्य मनःसहायैरिन्द्रियैर्जेनितं साम्बिलपमर्थसंवेदनं यत् तत् संज्ञिश्रुतम् । 10 अमनस्कस्येन्द्रियजं मनोरहितं यत् संवेदनं चलनादिचेष्टालिङ्गितं तद् असंज्ञिश्रुतम् । से किं तमित्यादि, संज्ञिनः सम्बन्धि श्रुतं संज्ञिश्रुतम् । संज्ञी चोच्यते यस्य संज्ञाऽस्ति । सा च त्रिविधा दीर्घकालिकोपदेशादिमेदात् । त्रिविधसंज्ञायोगात् संज्ञिश्रुतं त्रिधा । पं. २०. तत्र प्रभूतमतीतमर्थं स्मरति 'कथमेतत् कर्तव्यम् ?' इति भावि च विद्युशति 'इदमकार्षम्, इदं करिष्ये' इत्यादिचिन्तामाश्रित्य यस्यां दीर्घः कालो भवति सा दीर्घकालिकी ।

[पृष्ठ ६१]

15

पं. ८. प्रयुक्ताः सन्तः प्रतिहता उपाया यस्य स प्रयुक्तप्रतिहतोपायस्तत्त्येति विग्रहः । पं. ९. अयं चेत्यादि, अयं दीर्घकालिकसंज्ञी विज्ञेयो यो मतिज्ञानविषयकमनोज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमाद् मनोलम्बिसम्पन्नः मनोयोगयाननन्तान् स्क्न्धान् मनोवर्गणाभ्यो गृह्णात्वा मनस्त्वेन परिणमय्य मन्यते चिन्तनीयं वस्त्विति, स च गर्भजतिर्यच्च मनुष्यो वा देवो नारकश्चेति, नान्यः, सोऽयं कालिक्रयुपदेशेन सञ्ज्ञिश्रुतयुपदेश इति वाच्यशेषः । पं. २०. कृम्यादीनां प्रायो वर्तमान एव काले दृष्टा-ऽनित्येषु प्रवृत्ति-निवृत्ती स्तः, न त्वतीता-ऽनागतदीर्घकालावलम्बितया ते स्तः, असञ्चिन्त्य वा । तथाहि-संज्ञिनो द्वीन्द्रियादयः, सञ्चिन्त्य 20 सञ्चिन्त्य हेयोपादयेषु निवृत्ति-प्रवृत्तेः, देवदत्तादिवदिति । तदेवं हेतुवादिनोऽभिप्रायेण निषेधाः पृथिव्यादय एवासंज्ञिनः । पं. २९. आह-संज्ञादशकयोगात् पृथिव्याथेकेन्द्रिया अपि संज्ञिनः किं नेष्यन्ते ? इति प्रेरणया प्रतिविधत्ते इहोपसंज्ञा स्तोका-त्वादित्यादिना, उपयोगमात्रमोषसंज्ञा, इयं च वृत्त्याचारोहणतो बल्यादिषु प्रतीता, इयं च स्तोका-अतिस्त्वया ततोऽत्र नाधि-क्रियते, न तथा संज्ञी वक्तुं युज्यत इति भावः, न हि कार्षापणमात्रास्तित्वेन लोके धनवानुच्यते । आहार-अभ्य-मैथुनादिसंज्ञामिका 35 म्यस्यपीह नाधिक्रियते, तामयाश्रित्य न संज्ञी वक्तुं युज्यते, अनिष्टत्वाद् अशोभनत्वात्, मोहोदयजन्यत्वेन नासौ विशिष्टैःत्यर्थः । न चाविशिष्टया संज्ञया संज्ञैर्यभिधातुं युज्यते, नहि लोकेऽप्यविशिष्टेन मूर्त्तमात्रेण रूपवानित्यभिधीयते । तर्हि क्रीडस्या संज्ञयाऽत्र संज्ञी प्रोच्यते ? इत्याह- पं. ३०. किन्तु यथेत्यादि, महती शोभना चेति, ज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमजन्यमनोज्ञानसंज्ञैव संज्ञी व्यपदिश्यते । संज्ञानं संज्ञा-मनोविज्ञानं स्पष्टा-ऽस्पष्टरूपं तदस्ति येषां ते संज्ञिनः, नान्ये एकैन्द्रियाः, अमनस्कत्वात् । तदुक्तं नन्दिसूत्रिण्युक्ता—

कृमि-क्रीट-पतङ्गाद्याः समनस्का जङ्गमाश्चतुर्भेदाः । अमनस्काः पञ्चविधाः पृथिवीकायादयो जीवाः ॥ १ ॥ [पत्र ४८] 30 इति । अयमत्र परमार्थः-यथा मूर्त्तित्वादीनां सर्वेष्वन्वयैकव्यक्तमेव ज्ञानं भवत्येवमतिप्रकृष्टावरणोदयादेकेन्द्रियाणामपि, ततः शुद्धतरं शुद्धतरं च द्वीन्द्रियादीनां आ पञ्चेन्द्रियसम्पर्कजन्यः, ततः सर्वं स्पष्टतरं संज्ञानामिति । पं. ३२. आह-कुतः पुनश्चेतन्ये समानेषु जन्तूनामिदमुपलम्बिनानावम् ? उच्यते-सामर्थ्यमेदात्, स च क्षयोपशमवैचित्र्यात्, यथा तुल्येऽपि छेदकभावे चक-
दी० २०

वर्तिचक्ररत्नस्य यत् छेदनसामर्थ्यं तदन्येषां खड्ग-दात्र-शर-क्षुरिकादीनां छेदकत्वतूनां न भवयेव, किन्तु क्रमशो हीयमानमेव तत्
तेषु स्यात्, एवं चैतन्ये तुयेऽपि मनोविषयिणां संज्ञिनामवग्रहैर्हादिषु या वत्त्वबोधपरदृता भवति सा तथाविधक्षयोपशमविकलानां
यबोक्तदीर्घकालिकसंज्ञारहितानां सम्मूर्च्छजपञ्चेन्द्रिय-विकलेन्द्रियैकेन्द्रियाणामसंज्ञिनां न भवयेव, क्रमशो हीनत्वादिति । अत
एवोक्तम् अलं विस्तरेणेति ।

5

[पृष्ठ ६२]

पं. ४. दृष्टिवादीपदेशेन क्षायोपशमिके ज्ञाने सम्यग्दृष्टिरेव वर्तमानः सञ्ज्ञी, विशिष्टसञ्ज्ञायुक्तत्वात् । मिथ्यादृष्टिस्तु असंज्ञी,
विपर्यस्तत्वेन वस्तुतः संज्ञारहितत्वात् । यदि सम्यग्दृष्टिरेव सञ्ज्ञी तर्हि क्षायिकज्ञानेऽप्यसावस्तु ! किं क्षायोपशमिके ज्ञाने वर्तमा-
नोऽसावित्यते ? उच्यते—क्षयिकज्ञानं केवलिनो भवति, स च संज्ञी असञ्ज्ञी वा नोच्यते, यत् सञ्ज्ञानं संज्ञोच्यते, अतीतार्थस्य स्मरण-
मनागतस्य च चिन्तनम्, एतच्च तस्य नास्ति, सर्वदा सर्वांशवभासकत्वेन केवलिनो स्मरण-चिन्तावतीतत्वादिति क्षायोपशमिक-
10 ज्ञान्येव सम्यग्दृष्टिः संज्ञीति । यथेवं मिथ्यादृष्टिर्यैहिकावर्षविषयकहिता-ऽहितविभागज्ञानात्मकस्य संज्ञासमन्वित एव दृश्यते तत्
किमित्यसौ प्रकृतसंज्ञया संज्ञी न भवति ' उच्यते—अशोभनसंज्ञोपेतत्वात् सत्याऽपि तयाऽसंज्ञी प्रोच्यते, मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानमन्यज्ञानमेव ।

जह दुन्वयणमवयगं, कुञ्चियसीलं असीलमसईगं ।

भण्णह, तह नाणं पि हु मिञ्छरिट्टिरुस अजाणं ॥ १ ॥ [विशेषा० गा० ५२०]

कुत्सितं वचनं सदपि अवचनम्, एवं संज्ञाऽप्यसंज्ञोच्यते इति भावः, "सदसदविसिप्ताभो" इत्यादिप्रगुक्तवचनात्, अतो
15 नेह देवादिरपि मिथ्यादृष्टिः संज्ञीति भावः । त्रिविधसंज्ञामध्ये कस्य जन्तोः का भवति ' इति निरूप्यते—

पंचगृह्मृहसना, हेऊसना विइंदियाईणं । सुर-नारय-गन्धुम्बवज्जीवाणं काल्मिा सना ॥ १ ॥

छउमथाणं सना, सम्मदिट्टीण होइ सुयनाणं । मइवावारविमुक्का सनाईया य केवल्लिणो ॥ २ ॥

[विशेषा० गा० ५२३-२४]

'पञ्चानां' पृथिव्यादीनां 'ऊहसज्ञा' वृथाधारोहणामिप्रायरूपा ओषसज्ञा भवति, एकैन्द्रियाणां सञ्ज्ञात्रयनिषेधेन ऊहसज्ञैव
20 भवति, न तु हेतुवादादिसंज्ञेति भावः । ऊहसंज्ञायां चासभ्येयेति प्रागेवोक्तम् । नन्वाहागदिका अपि संज्ञा एकैन्द्रियाणामभिहिताः
सूत्रे, कथमेकैवोहसंज्ञाऽज्ञोच्यते ? सत्यम्, कस्यादिविषयं व्यक्तबोपलभ्यते किञ्चिदिति शोषोपलक्षणमेवेति । पं. १७ अत्रा-
हेत्यादि, अयमर्थः—अविशुद्धत्वात् प्रथमं हेतुवादसंज्ञा, ततो विशुद्धत्वात् कालिकसंज्ञा, ततोऽपि विशुद्धतरत्वाद् दृष्टिवादसंज्ञेयेवं
यथोत्तरविशुद्धयम् क्रमं सुकृत्वा किं कालिकसंज्ञोपदेश आदौ निर्दिष्टः ' उच्यते—आगमे योऽयं संभयसंज्ञीति व्यवहारः स सर्वोऽपि
प्रायः कालिकोपदेशेनैव क्रियते, तेनाऽऽज्ञी स एव कालिकोपदेशः वृतः । तथाहि—यः स्मरण-चिन्तादिदीर्घकालिकज्ञानसहितः
25 समनस्कपञ्चेन्द्रियः स संज्ञीति व्यवह्रियते । ततोऽसंभयपि पर्युदासाश्रयणादमनस्कः सम्मूर्च्छजपञ्चेन्द्रिय एवाऽऽगमे प्रायो व्यवह्रियते ।

[पृष्ठ ६३]

पं. ६. बड्वक्ष कौश्रिदिप्यन्ते इति अनादिसशुद्धा इति बहुवचनम् । पं. ८. इङ्गनेति संज्ञा । पं. १८. तुल्य-
तामवशङ्क्य आह वेति, अर्हद्विः सह तेषां तुल्यतानिषेधायाऽऽहस्यर्थः । पं. १९. नातस्त्वमसि नो महानिति, 'अतः'
एतेभ्यो देवागमादिकारणभ्यः 'नः' अस्माकं त्वं पूज्योऽसि इति न, यत एते हेतवः सुगतादिष्वपि मायाविषु तुल्याः । पं. २३.
30 न निहाणोऽयादि, ये 'भ्रमाः' अतिक्रान्तास्ते न निधानगताः सन्ति, न चानागतेषु पुञ्जः समस्ति, येऽपि च वार्त्तमानिकास्तेऽपि न
'निर्हताः' त्वस्वार्त्तान्ति, किं तर्हि ? आराग्रे सर्षपा इव भावाः—यथा द्वारारे सर्षपाणामुपरि क्षिप्यमाणानां नावस्थितिः एवं भावा-
नामपि, किन्तु स्वकारणादुपपन्ते विनश्यन्ति चेति तत्रम्, न पुनरतीतोऽनागतो वा तेषां कश्चित् सङ्गबोऽस्ति, नाशा-ऽनुपस्था ।

[पृष्ठ ६४]

पं. १३. सम्यग्दृष्टेरर्ह्यप्रणीतशालमितरदा श्रुतं यथास्वरूपावगमात् सम्यक्श्रुतम् । तदेव मिथ्यादृष्टैर्मिथ्याश्रुतम्, अन्य-
थावगमात् ।

[पृष्ठ ६५]

पं. १०. सत्यादय इवेति सम्प्रदायगम्यं संविधानकम् । अथ कियता श्रुतेन सम्यग्दृष्टिः स्यात् / कियता मिथ्यादृष्टिः ? 5
यदा कियत् सम्यक्श्रुतमेव भवति ? कियच्च मिथ्याश्रुतम् ? शेषस्य च मत्यादिज्ञानचतुष्टयस्य मध्ये मिथ्यात्वोदयात् कस्य विपर्यासो
भवति ? कस्य च न ? इत्याशङ्क्योच्यते—

चोदस दस य अभिणेन नियमा सम्मं तु, सेसए भयणा ।

मह-ओहिद्विवजासे वि होइ मिच्छं, न उण सेसे ॥ १ ॥ [विशेषा० गा० ५३४]

चतुर्दशपूर्वैः समारम्भ यावत् सम्पूर्णदशपूर्वाणि तावन्नियमात् सम्यक्श्रुतमेव भवति, न मिथ्याश्रुतम्, एतावच्छ्रुतसद्भावे 10
सम्यग्दृष्टिरेव भवति न मिथ्यादृष्टिरिति भावः । “सेसए भयण” त्ति ‘शेषे’ भिन्नदशपूर्वादिके सामायिकपर्यन्ते श्रुते ‘भजना’
विकल्पना, एतच्छ्रुतसद्भावे कोऽपि सम्यग्दृष्टिः कश्चित्तु मिथ्यात्वोदयाद् विपर्यस्तो मिथ्यादृष्टिरपि भवति । ततश्चैतच्छ्रुतं सम्यक्त्व-
परिग्रहात् सम्यक्श्रुतम्, मिथ्यात्वोदयाद् मिथ्याश्रुतमपि स्यादिति भावः । न केवलं चतुर्दश-दशपूर्व-सम्पूर्णश्रुतादन्यत्र मिथ्यात्वोदयः,
किन्तु मायवधिविपर्ययसि ‘मिथ्यात्व’ मिथ्यात्वोदयो भवति, न पुनः ‘शेषे’ मन-पर्याय-केवलज्ञानद्वये । इदमुक्तं भवति—मिथ्यात्वोदया-
न्मतिज्ञानं विपर्यस्तं सद मत्तज्ञानं भवति, अवधिरपि तदुदयाद् विपर्यासमापन्नो विभङ्गव्यपदेशं लभते, मनःपर्याय-केवलज्ञाने तु 15
कदाऽपि मिथ्यात्वोदयाद् विपर्यासं न गच्छतः, तद्भावे मिथ्यात्वोदयस्यैवासम्भवात्; मनःपर्यायज्ञानं हि चारित्रिण एव भवति,
केवलज्ञानं तु क्षीणघातिचतुष्टयस्येति कुतस्तद्भावे मिथ्यात्वोदयः ? इति । एतच्चेह गाथोत्तरार्द्धोक्तमर्थजातं मिथ्यात्वोदयसम्भवा-
सम्भवप्रस्तावादनुषङ्गत एवोक्तम्, प्रस्तुतं पुनरत्र सम्यग्-मिथ्याश्रुतमेवेति ॥ अत्र किल परः किञ्चित् प्रेरयति—

ततावगमसहावे सह सम्म-सुयाण को पहविसेसो ? । जह नाण-दंसपाणं मेओ तुल्लेज्वबोहम्मि ॥१॥

नाणमवाय-धिंओ. दंसणमिट्ठं जहोग्गहोहाओ । तह तत्तर्हई सम्मं रोइज्जह जेण तं नाणं ॥२॥ 20

[विशेषा० गा० ५३५-३६]

उभयत्रापि तत्त्वावगमस्वभावे तुल्ये सति कः सम्यक्त्व-श्रुतयोः प्रतिविशेषः ? येनोच्यते ‘सम्यक्त्वपरिग्रहात् सम्यक्श्रुतम्’
इति । एतदुक्तं भवति—‘रामादिदोषरहित एव देवता, तदाज्ञापारतन्त्र्यवृत्तय एव गुरवः, जीवादिकमेव तत्त्वम्, जीवोऽपि
नित्या-ऽनित्याघनेकत्वभावः कर्ता भोक्ता मिथ्यात्वादिहेतुभिः कर्मणा बन्धते, तपः-संयमादिभिस्तु ततो मुच्यते’ इत्यादि बोधात्मकमेव
सम्यक्त्वमुच्यते, श्रुतमन्येवमाद्यभिलाषात्मकमेव, तदनयोः को विशेषः ? येनोच्यते ‘सम्यक्त्वपरिग्रहीतं सम्यक्श्रुतम्’ इति । अत्रो- 25
त्तरमाह—“जहे”त्यादि, यथा बत्त्वबोधस्वरूपे तुल्येऽपि कथञ्चिद् ज्ञान-दर्शनयोर्भेदस्तथा तत्त्वावगमस्वभावे तुल्येऽपि सम्यक्त्व-
श्रुतयोरिहापि कथञ्चिद् भेदः ॥ १ ॥ कथं पुनर्ज्ञान-दर्शनयोरन्यत्र तावद् भेद उक्तः ? इति चेत्, इत्याह—

“नाणे”त्यादि । यथा अपायश्च धृतिस्वापान-धृती, एते वचनपर्यायमाहृक्त्वेन विशेषावबोधस्वभावात् ज्ञानमिष्टम्, अव-
ग्रहश्चेहा चार्थपर्यायविपर्ययत्वेन सामान्यावबोधाद् दर्शनम्, तथाऽत्रापि जीवादितत्त्वविषया रुचिः—अद्भानं सम्यक्त्वं भण्यते, येन
पुनस्तद् जीवादितत्त्वं ‘रोच्यते’ अद्भियंते तद् ज्ञानम् । अयमत्राभिप्रायः—दर्शनमोहनीयकर्मज्ञयोपशमदिना या तत्त्वअद्भानाभिका 30
तत्त्वचरित्ररूपजायते तथा तत्त्वअद्भानात्मकं जीवादितत्वरोचकं विशिष्टं श्रुतं जन्मते, ततस्तत् श्रुताज्ञानव्यपदेशं परिच्छेद्य श्रुतज्ञानसंज्ञां
समासादयति, एवं च सति परो मन्यते—विशिष्टतत्त्वावगमस्वरूपं श्रुतमेव सम्यक्त्वम्, न पुनस्तत् श्रुतं सम्यक्त्वादतिरिक्तं किञ्चिदुप-

लभ्यत इति कथमुच्यते 'सम्यक्त्वपरिग्राह्यत्वं सम्यक्श्रुतम्' ! इति । सिद्धान्तवादी तु मन्यते—यथा ज्ञान-दर्शनयोर्वैकल्यबोधरूपतया एकत्वेऽपि विशेष-सामान्यप्राहकत्वेन भेदस्तथाऽत्रापि शुद्धतत्त्वावगमरूपे श्रुते तत्त्वश्रद्धानांशः सम्यक्त्वम्, तद्विशिष्टं तु तत्त्वोचकं श्रुतज्ञानमित्यनयोर्भेदः । एतयोश्च सम्यक्त्व-श्रुतयोर्गुणगण्यत्वेऽपि कार्य-कारणभावाद् भेदः । उक्तं च—

कारण-कञ्जविभागो दीव-पगासाण जुगवजम्मे वि । जुगवुप्यं पं पि तथा हेऊ नाणस्स सम्मचं ॥१॥

5 जुगवं पि समुप्यं सम्मचं अहिंगमं विसोहेइ । जह कयमंजणाइं जल-दिट्ठीओ विसोहिंति ॥२॥ []

अतो युक्तमुक्तं सम्यक्त्वपरिग्राह्यत्वं सम्यक्श्रुतम्, विपर्ययात्तु मिथ्याश्रुतमिति गाथाह्वयार्थः ॥२॥ गतं सप्रतिपक्षं सम्यक्श्रुतम् ॥

पं. १५. अधिकारवशादिति प्रतिपक्षसम्बन्धवशादित्यर्थः । पं. १६. पर्यायास्तिक-द्रव्यास्तिकनयाभ्यां साधनादि-

श्रुतविचारोऽभिधीयते—व्यवच्छिन्नित्यस्यानित्यवादिनः पर्यायास्तिकस्य मतेन सादि सपर्यंत च श्रुतम्, अनित्यत्वात्, जीवस्य नारकादिगतिपर्यायवत् । तथाहि—श्रुतज्ञानानां निरन्तरमपरापरे द्रव्याद्युपयोगाः प्रसूयन्ते प्रलीयन्ते च, न च तेभ्योऽन्यत् किमपि श्रुतमस्ति, श्रुतकार्यमूतस्य जीवादितत्त्वावबोधस्य श्रुतज्ञानरहिते वस्तुनि अदर्शनादिति, द्रव्यादिषु च श्रुतोपयोगः सादि सपर्य-

वसित एवेति । पं. १९. अव्यवच्छिन्नित्यस्य नित्यवादिनो द्रव्यास्तिकस्याभिप्रायेणोद्भूतं अनादि अपर्यंतं च, नित्यत्वात्, पञ्चास्तिकायवत् । तथाहि—यैर्जीवद्रव्यैः श्रुतमिदमधीतम् यान्यधीयन्ते यानि चाप्येप्यन्ते तानि तावच्च कदाऽपि व्यवच्छिद्यन्ते इति तेषामनादिताऽन्येन्तता च । ततः श्रुतस्यापि जीवद्रव्यपर्यायमूतस्य तदेव्यतिरेकान्तिव्यक्तपतैव, नहि सर्वथाऽसत् कायुप्ययते, सिक्तास्त्वपि तैलाद्युपत्तिप्रसङ्गात्; नापि सतो निरव्ययनाशोनात्यन्तोच्छेदः, सर्वैक्यतापत्तेः, तस्मान् श्रुताधारद्रव्याणां सर्वदेव 15 सत्त्वात् तदव्यतिरेकिणः श्रुतस्यापि द्रव्यरूपतैवेति स्थितम् ।

[पृष्ठ ६६]

पं. ३. अथवा नयविचारमुत्सृज्य द्रव्यादिचतुष्टयमाश्रित्याधिष्ठितमेवार्थं साधादिस्वरूपं चिन्तयति—तत्र द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेः श्रुतं सादिकमनादिकं साप्तमनन्तं च भवति । इह च द्रव्यतः श्रुतमेकं बहूनि च पुरुषद्रव्याप्याश्रित्य चिन्तनीयम् । तत्रैकपुरुषद्रव्यमङ्गीकृत्य सादि सनिधनं च श्रुतं भावयति कथमिःश्यादिना—यो येन भावेन पृथ्वी नासीद् इदानीं च जातः स तेन 20 भावेन तत्प्रथमो भवति, सम्यक्त्ववतः श्रुतस्य पाठस्तत्प्रथम इति सादिः, सम्यक्त्वात् च्युतस्य पुनर्मिथ्यात्वप्राप्ती सपर्यवसितत्वम्, सति वा सम्यक्त्वे श्रुतलाभात् सादित्वम्, कारणान्तराद्वा [न] प्रतिपाते सात्त्वत्वम् । पं. ४. ताभ्येवाह—प्रमादेति, इहभवेऽपि प्रमादात् श्रुतस्य नाशो भवति, अपरस्य ग्लानावस्थायां नश्यति, कस्याचित् सुरलोकात्स्यभवांतरगमनेन नश्यति । किल कश्चि-

च्चतुर्दशपूर्वपरः साधुर्भूत्वा देवलोकां गतः, तत्र देवत्वे तत् पूर्वोर्ध्वं श्रुतं न स्मरति सर्वमपि, देशेन त्वेकादशाङ्गलक्षणेन कश्चित् स्मरत्यपि इति सम्पूर्णं भवान्तरगमनान्नाशयति । केवलोपत्तौ च कस्यचिदिहभवेऽपि श्रुतं नश्यति, “नद्रुमि तु छाउमश्चिण् नाणे” 25 [आव० नि० गा० ५३९] इति वचनात्, ततो लाभकाले तस्य सादित्वम्, प्रतिपाते तु सात्त्वत्वम् । पं. ५. एक-

जीवद्रव्यापेक्षया चिन्तितं सादि-सपर्यवसितत्वम् । नानाजीवद्रव्यापेक्षया तु तदेव चिन्तयति—बहून्नित्यादि, द्रव्यविषये नानापुरुषान् नारक-तिर्थेह्-मनुष्य-देवगतात्, नानासम्यग्दृष्टिजीवानाश्रित्य सम्यक्श्रुतं सततं वर्त्तते, अभूद् भवति भविष्यति च, न तु कदाचिद् व्यवच्छिद्यते, ततस्तानाश्रित्येदमनाद्यपर्यवसितं भवति । पं. ६. अथ क्षेत्रत एकद्रव्यं प्रतीत्य प्रथममङ्गं निरूपयति—क्षेत्रत इति, क्षेत्रे चिन्तयमाने भरतैरात्रतक्षेत्रेण प्रथमतीर्थकरकालं सुपमदुःस्माररूपे तद् भवतीति सादित्वम् । चरमतीर्थकृतीर्धन्ते त्ववश्यं 30 व्यवच्छिद्यत इति सपर्यवसितत्वम् । पञ्च महाविदेहक्षेत्राणि प्रतीत्य श्रुतज्ञानं सततं सर्वदेव वर्त्ततेऽतोऽनाद्यपर्यवसितम् । सामान्येन हि महाविदेहेशःसर्पिण्यवसर्पिण्यभावरूपनिजकालविशिष्टेषु द्वादशाहश्रुतं कदापि न व्यवच्छिद्यते, तीर्थकर-गणधरादीनां तेषु सर्वदेव

भावात् । पं. ८. काले त्वधिक्रियमाणे उक्तसंक्रियवसर्पिण्यौ समाश्रित्य भरतैरावतेषु द्वयोरपि समयोत्तृतीयारके प्रथमं भावात् सादित्वम्, असर्पिण्यां चतुर्थस्याऽऽदौ अवसर्पिण्यां तु पञ्चमस्यान्तेऽन्वयं व्यवच्छेदात् सपर्यवसितत्वम् । पं. १२. कालचक्रगाथाख्योविंशतिसंख्याः सुगमाः । पं. १८. नवरम्-तुडिताहेषु सङ्गीतं भवति, तत्र प्रेक्षाथै गीतवार्थं सङ्गीत-मुच्यते । षुटितानि-बाहुरक्षकादीन्याभरणानि च । पं. २०. अण्डकेषु वृत्ति अनागम्येषु । पं. २१. अक्षेषु यत्ति दशतिरिक्तेषु । भवियपुण्यभवरहित्येति युगलधार्मिकत्वमनुभूय मृत्वा भूयोऽप्यनन्तरभावेन युगलधार्मिका न भवन्ति, किन्तु देवत्वेनोपघन्ते, असंक्रिष्टपरिणामयोगात् ।

[पृष्ठ ६७]

पं. ७. भावत्रो णमित्यादि, भावे पुनर्विचार्यमाणे प्रज्ञापकं गुरुं श्रुतप्रज्ञापनीयांश्चार्थानासाद्य सादिसपर्यवसितं स्यात् । पं. १२. कथम् ? प्रज्ञापकसम्बन्धयुपयोग १ स्वर २ प्रयत्न ३ आसनविशेषतः ४, उपयोगः-आन्तरः श्रुतपरिणामः, स्वरः-ध्वनिः, प्रयत्नः-तात्वादिव्यापारविषयो यत्नः, आसनविशेषश्च-स्थानविशेषः । ततश्च 'प्रज्ञापके' गुरौ व्याख्यानादि कुर्वन्ति । सत्येते भावा भवन्ति । एते च प्रतिक्षणमन्यथाभवन्तोऽनित्यत्वात् सादि-सपर्यवसिताः । ततश्चेतानाश्रित्य वक्तुरनन्यत्वात् श्रुतमपि सादि-सपर्यवसितं भवति । पं. १४. एतदर्थमिधायिनी [उपयोगसर०] गाथा मुगमैव । पं. १६. अथचेत्यादिना प्रज्ञापनीयार्थगतान् भावानाह । तत्र अण्वादीनां गत्यादिप्रतिपादानात् सादि-सान्तत्वम् । नवरं गतिः-अण्वादीनां गमन-परिणामः, स्थितिः-तेषामेवावस्थितिपरिणामः, वर्णः-कृष्णादिः, आदिशब्दाद् भेद-सद्भात-शब्द-सन्-गन्ध-स्पर्श-संस्थानादिपरिग्रहः । नवरं भेद-अण्वादीनामेवान्यसयुक्तानां विघटनम्, सद्भातस्तु-अन्यैः सह सयोगः, शब्दः-मन्द्र-मधुरादिः, रसाद्य-प्रतीताः । 15 एते गतिस्थित्यदयो भावाः पर्याया धर्मा प्रज्ञापनीयार्थेषु परमाण्वादिषु भवन्ति, अनित्यत्वाच्चासौ सादि-सपर्यवसिताः, एते श्रुतस्य प्राणाः । प्राहकं च प्राणनिबन्धनं भवति, प्राणं यत्स्वरूपं किल गृह्यते प्राहकं तत्स्वरूपं ततो भवति, अतः श्रुतमपि सादि-सपर्यवसितम् । क्षायोपशमिकभाव-भावश्रुतभावापेक्षयाऽनाद्यनन्तत्वं श्रुतस्य । पं. १८. यद्वा श्रुतस्य साद्यादिप्ररूपणायां सादि-सपर्यवसानपदद्वयोःश्चा चतुर्भङ्गा सम्भवति-सादिसपर्यवसितमित्यादिकेति । क्रमेण भावयति- पं. २३. द्वितीयस्तु प्ररूपणमात्रम्, असम्भवात् । विवक्षया सम्भवति वा, तामेवाऽऽह-अभ्यस्येत्यादि, वर्तमानकालापेक्षया सादित्वम्, 20 अनागताद्वापेक्षयाऽप्यवसितत्वम् । इह किल सम्पृग्-मिथ्याभावेनाविशेषितं श्रुतसामान्यमात्रं प्राह्यम्, अत एव भयस्य एतत् श्रुतमात्रम्, भयत्ववत्, अनादिकालादारभ्य भावादानादि, केवलोत्पत्तौ न भविष्यतीति सपर्यन्तम् । अभ्यस्यस्य त्वभव्यत्ववद् जीवत्ववद्वा नियतं अनाद्यपर्यन्तम्, अभ्यस्यस्य कदाचिदपि श्रुतमात्राव्यवच्छेदात् । पं. २६. अथ तृतीय-चतुर्थमङ्गौ श्रुतविषये भव्याऽभ्यस्यौ प्रतीत्यामिहितौ । मतेः श्रुताविनाभूतायास्तर्हि का वार्ता १ इयाशङ्काऽऽह-इह चेत्यादि, एवमेव द्रष्टव्य इति । भव्याऽभ्यस्यद्वारेण तृतीय-चतुर्थमङ्गद्वयं अनादिमित्येवोपि योऽयम्, अनादिमित्येवः सपर्यवसितः अनादिमित्येवोऽप्यवसितः 25 भव्याऽभ्यस्यौ प्रतीत्य । लभकाले तस्य सादित्वम्, प्रतिपाते तु साम्त्वमिति सादिसान्तात् । कथं पुनस्तत्प्रतिपातसम्भवः ? यदि जीवात् तत् श्रुतं भिन्नं तदा श्रुतस्य युज्येत नाशः, नाभिन्नस्य; अथ भिन्नमेव तत् तस्मात् तर्हि भिन्नश्रुतसद्भावेऽपि जीवोऽज्ञान्येव नित्यं स्यात्, श्रुतस्वभावहित्वाच्छ्रुतप्रकाशमर्थं न परयेत्, यथाऽप्यः आत्मन्यतिरिक्तेन हस्तगतेनापि प्रदीपेन न तत् प्रकाशमर्थं परयति । अत्रोच्यते-हन्त ! श्रुतज्ञानं नियमाजीवस्वभावमेव, नाजीवस्वभावम्; जीवः पुनः श्रुतमेव केवलं न भवति, किन्त्वसौ श्रुतज्ञानं भवेत् श्रुताज्ञानं वा, प्रतिज्ञानं मयज्ञानं वा, विभङ्गोऽप्यवि-मनःपर्याय-केवलज्ञानं वेति । यदि 'श्रुतज्ञानं 20 जीवस्वभावमेव' इतीत्येते तर्हि 'जीवात् तदभ्यतिरिक्तम्' इति स्वत एवाभ्युपगतप, युक्तं चैतत्, एवं हि सति युज्यते जीवस्य श्रुतकृतत्वत्ववोपाद् ज्ञानित्वम्, केवलं श्रुतस्य नाशे जीवस्य नाशः स्यात्, तदभ्यतिरिक्तात्, यद् यतोऽभ्यतिरिक्तं तस्य विनाशो तद् विनश्यत्येव, यथा घटस्वरूपविनाशे घटत्वस्थिति, तदयुक्तम्, अस्तु श्रुतस्य नाशे जीवस्य तत्पर्यायविशिष्टतामात्रान्वितस्य नाशः,

न पुनः सर्वात्मना पर्यायान्तरविशिष्टस्यापि जीवस्य नाशः । यस्मादसौ जीव उत्पाद-व्यय-श्रीव्ययमार्गजन्तपर्यायश्च वर्तते । ततो यदैवाऽसौ श्रुतपर्यायेण विनश्यति तदैव श्रुताज्ञानादिपर्यायेणोत्पद्यते, सचेतनत्वा-ऽमूर्तत्व-सर्व-प्रमेयत्वादिभिरनुमानैरन्यव्याहृतैश्चान्तैः पर्यायैर्विशिष्टोऽसौ सर्वावस्थास्ववतिष्ठते; अतः कथं श्रुतपर्यायमात्रविनाशो जीवस्य सर्वथा विनाशः स्यात् ? । यदि हि तस्यायमैवैकः पर्यायो भवेत् तदा तद्विनाशो तस्य सर्वनाशः स्यात्, एतच्च नास्ति, श्रुतपर्यायमात्रेण विनष्टस्यापि तस्य श्रुताज्ञानादि-
 5 पर्यायेणोत्पादाद् यथोक्तैश्चान्तपर्यायैः परस्याहृतादिरूपैर्विशिष्टस्य सर्वदैवावस्थानादादिति न किञ्चिद् दृग्गणमापतति । तदेवं सादिश्रुतं ज्ञानात्मकं सम्पद्यष्टेः, अज्ञानात्मकं वा सादि सम्पक्त्वाच्च्युतस्य जन्तोर्मिथ्याष्टेः सतः । अलक्षपूर्वसम्पक्त्वस्य तदेवानादिश्रुतम् । सपर्यवसितं मय्यानाम्, केवलोत्पत्तौ ध्रुवं पर्यवसानात् । अपर्यवसितममय्यानाम्, केवलोत्पादानर्हवादिनि साधादिभावार्थः ।

[पृष्ठ ६८]

पं. ३. पर्यायाग्राह्यं निरूपयते इत्यादि, यथपीह केवलसर्वाकाशप्रदेशपर्यायराशिप्रमाणमक्षरपर्यायमानमुक्तं तथापि

- 10 धर्मास्तिकायादिपञ्चद्वयपर्याया अत्यक्षरस्य पर्यायमानतया द्रष्टव्याः, अत एवोक्तं सर्वद्वयपर्यायपरिमाणमिति भावार्थ इति । यद्येवं धर्माऽधर्माऽऽकाश-पुद्गलास्तिकाय-क्लालक्षणसर्वद्वयपर्यायराशिप्रमाणं अक्षरपर्यायमानं सूत्रकृता किमिति नोक्तम् ' इत्याह-
 स्तोक्तत्वाच्चेति, सूत्रे धर्मास्तिकायादीनां पञ्चद्वयानां पर्याया नामिहितास्साक्षात्, आकाशपर्यायिभ्यः स्तोका अनन्तभागवर्तिनस्त इति कृत्वा, किन्तु य एव तेभ्यो अतिबहवोऽनन्तगुणास्त एव सर्वाकाशपर्यायाः साक्षात्तुक्ताः, अर्थस्तन्तु धर्मास्तिकायादिपर्याया अपि स्वीकृता एव द्रष्टव्याः । एवं च सर्वाकाशप्रदेशानां यावन्तः सर्वेऽपि पर्यायाः सर्वद्वयपर्यायाश्च तावदेकस्याक्षरस्य पर्यायमानं
 15 भवति । अथ किमिति सर्वाकाशप्रदेशां सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणमुक्तम् / उच्यते-यत् एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे अनन्ता अगुरुलघु-पर्यायाः सन्ति अत इदमुक्तम् । अयमर्थः-इह निश्चयनयमतेन बादं वस्तु सर्वमपि गुरुलघु, सूक्ष्मं त्वगुरुलघु, तत्रागुरुलघुवस्तु-सम्बन्धिनः पर्याया अत्यगुरुलघवः समयेऽभिधीयन्ते, आकाशप्रदेशाधारागुरुलघवोऽस्तत्पर्याया अत्यगुरुलघवो भण्यन्ते, तेषांऽऽकाशप्रदेशेषु प्रत्येकमनन्ताः सन्ति अतस्तैरनन्तगुणमुक्तम् । पं. ९. अथेदं सर्वद्वय-पर्यायपरिमाणार्थं कीदृशम् / इत्याह-
 इह चेत्यादि, न क्षरति-न चलयन्तुपर्येष्टेऽपि न प्रथयत इत्यक्षरम्, स च चेतनाभावः, जीवस्य ज्ञानपरिणाम इत्यर्थः ? । तज्ज्ञेय-
 20 मिति तस्य-ज्ञानस्य ज्ञेयं-घट-व्योमादि तज्ज्ञेयम्, साभिलापज्ञानविषयभूतपटाघभिलाप्यार्थरूपं ज्ञेयमध्यक्षरमुच्यते । कथम् / इति चेत्, यतो घट-व्योमापभिलयं द्रव्यार्थतया न क्षरति-स्वरूपान् चलति नियत्वादिः यक्षरम् ? । तथा अकारादीन् अर्थान् अभि-
 वेधान् क्षरति-संशब्दयतीति निरुक्तविधिना अर्थ-कारलोपादक्षरम्, 'अकारादि' वर्णरूपम्, वर्णश्च वर्ण्यते-प्रकाशतेऽर्थोऽनेनाकार-
 ककारादिनेति वर्णः अकारादिरेव ? । त्रिविधेऽप्यक्षरे गृह्यमाणेऽदोषोऽत्र । नन्वेतत् सर्वपर्यायपरिमाणार्थं किं सर्वमपि ज्ञानावरण-
 कर्मणा आविश्यते ? न वा ? इत्याह-अस्य चे-त्यादि, अस्य च सामान्येनैव सर्वपर्यायपरिमाणार्थस्यानन्तभागः 'नित्योद्घाटितः'
 25 सर्वदैवानावृत्त एवाऽऽस्ते, केयम् ? सर्वजीवानामाप, चकारात् केवलिवर्तनमिति दृश्यम्, तत्रक्षरस्य सर्वमनोद्घाटात् । स च ज्ञप्य-सम्यक्तोऽहंमेदादनेकविधः । पं. १०. तत्र सर्वज्ञप्यस्याक्षरानन्तभागस्य स्वरूपमाह-तत्रेत्यादि, सर्वज्ञक्यो-
 ऽक्षरानन्तभाग आत्मनो जीववनिष्कथनं चैतन्यमात्रं उक्तुष्टावरणेऽपि सति जीवस्य कदाचिदपि नाऽऽभिव्यते, जीवत्वाभावात्, अन्यथाऽजीवत्वप्रसहात् । यथा सुप्तवपि जलदृच्छ्वाक-चन्द्रप्रकाशो दिन-रात्रिविभागाविबन्धनं किञ्चिद्व्यभामात्रकारि भेदेन नाऽऽभिव्यते, एवं जीवत्वापि चैतन्यमात्रं कदापि नाऽऽभिव्यते । केयं पुनरसौ सर्वज्ञप्यः प्राप्यते ? उच्यते-स्यानर्हमहानिद्रोदब-
 30 सहितोऽहंज्ञानावरणोदायादसौ सर्वज्ञप्योऽक्षरानन्तभागः पृथिव्याथैकेन्द्रियाणां प्राप्यते, ततः क्रमविशुद्ध्या द्वीन्द्रियादीनामसौ क्रमेण क्रमेण वर्धते । अथोऽहंमेदो मध्यमक्षाक्षरानन्तभागः केयं भवति ? अत्रोच्यते-उक्तुष्टोऽसातुकुष्ठश्रुतविदः स्यात्, सम्पूर्णश्रुत-
 ज्ञानस्य द्वादशाङ्गविद इति भावः । नन्वस्य कथमक्षरानन्तभागः ? यावता श्रुतज्ञानाक्षरं सम्पूर्णमन्यस्य प्राप्यत एव ? सत्यम्, किन्तु संललितसामान्यश्रुतकेवलाक्षरापेक्षयैव समस्तश्रुतविदोऽक्षरानन्तभागो विवक्षितः, सामान्ये चाक्षरे विवक्षिते केवलाक्षरापेक्षया

सम्पूर्णश्रुतविदोऽक्षरस्थानन्तभागवर्तिचिह्नं युज्यत एव, केवलज्ञानस्वपर्यायेभ्यः श्रुतज्ञानस्वपर्यायाणामन्तभागवर्तित्वात्, श्रुतज्ञानस्य परोक्षविषयत्वेनास्पष्टत्वाच्च । यच्च समुदितस्य-परपर्यायापेक्षया श्रुत-केवलाक्षरयोस्तुल्यत्वं तदिह न विवक्षितम् । विधमध्याक्षरानन्त-भागकोष्ठकृष्टश्रुतज्ञानविदः सकाशादवशेषाणां पृथिव्याथेकेन्द्रिय-सम्पूर्णश्रुतज्ञानिनोर्मैत्र्ये वर्तमानानामन्तमागादिषट्स्थानपतितानां प्रायेणासौ भवति । प्रायोभ्रूणाद् विवक्षितादेकरुमादुकृष्टश्रुतज्ञानिनोऽवशेषाणामपि केषाञ्चिदुकृष्टश्रुतज्ञानवतां तत्तुल्य एवाक्षरानन्तभागो भवति, उक्तं इत्यर्थः, न तु विनध्यमः । 'त्रिविधेऽव्यक्षरे गृह्यमाणेऽविरोधः' इत्युक्तम् । 'अक्षरस्य चान्तभागः सर्व-जघन्यश्चेत्-यमात्रम्, स च पृथिव्याथेकेन्द्रियादीनामसंज्ञि-संज्ञिभेदानां सर्वजीवानामपि च सर्वदेवानावृत एवाऽऽस्ते' इति चोक्तम् । 'अपर्यवसितश्रुताधिकारादकाराथैव चाक्षरं न्यायानुपाति' इति चोक्तम् । अत्राऽऽचष्टे—पुरुष-स्त्री-नपुंसक-वृट्-पटादिवर्णविज्ञानरूपो-ऽक्षरलाभः 'संज्ञिनां' समनस्कृजीवानां भवतु, एतत् श्रद्धभेदे, 'असंज्ञिनां तु' अमनस्कानां वर्णविज्ञानरूपोऽसौ न युज्यते, अक्षरलाभस्य परोपदेगन्तवात्, मनोविकलानां तु तदसम्भवात् ; न च वाच्यम् 'मा भवत्यसौ तेषाम्' इति, यतोऽसावेकेन्द्रियाथसंज्ञिनामपि वर्णविज्ञानाक्षरलाभोऽभिहितः, श्रुताज्ञानाक्षरस्य तेषामपि श्रुते भणनात् ; तदेतत् कथमुपपद्यते । अत्रोच्यते—यथा 'चैतन्यं' जीवत्व-मकृत्रिममाहारादिसंज्ञाद्वारेणासंज्ञिनामवगम्यते तथा लब्ध्याक्षरामकृष्टज्ञानमपि तेषामवगन्तव्यम्, स्तोत्रत्वेनास्पष्टत्वात् स्थूलदृशि-भिस्तद्गृह्यज्ञानं नोपलभ्यते, पृथिव्याथेकेन्द्रियाणां जीवत्वमिव । यद्यपि परोपदेगजन्मक्षरस्योच्यते तदपि संज्ञा-व्यञ्जनाक्षरयोस्त्वंसेयम् । लब्ध्याक्षरं तु क्षयोपशमैकेन्द्रियादिनिमित्तमसंज्ञिनां न विरुध्यते, तदेव च श्रुतज्ञानाधिकारे सुल्यतः प्रस्तुतम्, न तु संज्ञायञ्जनाक्षरे । किञ्च गौपि शकला-बहुलादिशब्देनाऽऽकारिता सती त्वनाम जानीते. प्रवृत्ति-निवृत्त्यादि च कुर्वती दृश्यते । न चैषां गवादीनां तथाविधः परोपदेगः समस्ति । अथ चाऽस्ति लब्ध्याक्षरम्, नरादिविज्ञानसद्भावात्, पुलींश-बाल-नोपालादीनामनक्षराणामपि वा 15 यथा तदस्ति एवमसंज्ञिनामपि किमपि तदेष्टव्यम् । तदेवं साधितमेकेन्द्रियादीनामपि यच्च यावच्च लब्ध्याक्षरम्, इन्द्रिय-मनोनिमित्तं श्रुतप्रस्थानुसारि विज्ञानम्, श्रुतज्ञानोपयोग इत्यर्थः, यच्च तदावरणकर्मक्षयोपगमः, एतौ द्वावपि लब्ध्याक्षरमिति भावार्थः ।

पं. १६. अत्राहत्यादि, 'अत्र' अस्मिन् प्रकृते नन्दिसूत्रे 'अविशेषितं' सामान्येनैव 'अक्षरं' ज्ञानमुक्तम्, अविशेषाभिधाने च केवलज्ञानस्य महत्वात् तदेवात्राक्षरं गम्यते, इह तु श्रुतज्ञानविचाराधिकारात् श्रुताक्षरमकाराथैवाक्षरसद्वद्वाच्यतया प्रकृतम्, तद् अकारादिश्रुताक्षरं कथं केवलपर्यायमानतुल्यं भवेत् ' न कथञ्चिदित्यर्थः ; अयमभिप्रायः—केवलस्य सर्वद्रव्यपर्यायत्वेत्त्वाद् भवतु 20 सर्वद्रव्यपर्यायमानता, श्रुतस्य तदेनन्तभागविषयत्वात् कथं तत्पर्यायमानतुल्यता ' इति । अत्रोच्यते—नन्वत्रापि "अस्त्वर सञ्जी सम्भं सार्द्धं खलु" इत्यादिप्रक्रमेऽपर्यवसितश्रुते विचार्यमाणे "सञ्वागासपप्रसम्गं" [सूत्र ७६] इत्यादिसूत्रस्य पाठात् श्रुताधिकाराद-क्षरमकाराथैवात्र गम्यते, न तु केवलाक्षरम् । पं. १८. अथ ब्रूये—"सञ्चजीवाणं पि य गण"मित्यादिद्वितीयसूत्रात् केवलाक्षरं प्रथमसूत्रे गम्यते, न तु श्रुताक्षरम्, श्रुताक्षरपक्षे हि सकलद्वादशाङ्गविदां सम्पूर्णस्थापि श्रुताक्षरस्य उदघाटसद्भावात् 'सर्वजीवा-श्रितोऽक्षरस्थानन्तभागो नित्योदघाटः' इति नोपपद्यते । पं. २०. अत्रार्थे यथेवमित्यादिना सुरिभूते—हन्त ! एवं सति 25 केवलाक्षरमपि तत्र नोपपद्यते, केवलानां सम्पूर्णस्थापि केवलाक्षरस्य सद्भावात् 'सर्वजीवानामक्षरस्थानन्तभागो नित्योदघाटः' इत्य-स्थार्थस्यानुपपत्तिरेव, न अतस्तदिति, तत् सूत्रोक्तं केवलाक्षरमपि नोपपद्यत इत्यर्थः । अथ मनुष्ये—तत्राविशेषेण सर्वजीवग्रहणे सत्यपि प्रकरणाद् अपिगन्दाद्वा केवलिनो विहायान्येषामेवाक्षरस्थानन्तभागो नित्योदघाट इति केवलाक्षरग्रहणेऽविरोधः, हन्त ! तदेतच्छ्रुताक्षरग्रहणेऽपि समानम्, यतस्तत्राविशेषेण सर्वजीवग्रहणे सत्यपि प्रकरणाद् अपिगन्दाद्वा समस्तद्वादशाङ्गविदो विहायान्ये-षामेवास्मदादीनामक्षरस्थानन्तभागो नित्योदघाट इतीहापि शक्यत एव वक्तुम् । यस्मात् प्राकनसूत्रे केवलाक्षरम्, द्वितीये चाऽका- 30 राथक्षरमपि च भवतु, न कश्चिद् दाषः । पं. २३. न च श्रुताक्षरस्य सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणता विरुध्यते इति वाच्यम्, स्व-परपर्यायभेदादुभयस्यापि तदुपपत्तेः । उभयं श्रुताक्षरं केवलाक्षरं केचर्यं । तथाऽप्यत्रेत्यादि, 'तत् पुनः' अकाराथक्षरमेकैकमथ-

- नन्तपर्यायम् । इदमुक्तं भवति—इह समस्तत्रिभुवनवर्तीनि यानि परमाणु-द्रव्यगुफादीनि, एकाकारप्रदेशादीनि च यानि द्रव्याणि, ये च सर्वेऽपि घणास्तदभिधेयाश्चाद्याः, तेषां सर्वेषामपि पिण्डितो यः पर्यायराशिर्भवति स एकैकस्याप्यकाराण्यक्षरस्य भवति, पिण्डित-राशिमन्थ्ये ह्यकारस्य केचित् स्तोकाः स्वपर्यायाः, ते चानन्ताः, शेषास्वन्तानन्तगुणाः परपर्याया इत्येवं सर्वसङ्ग्रहः । अयं च सर्वोऽपि सर्वद्रव्यपर्यायराशिः सद्भावतोऽनन्तानन्तस्वरूपोऽप्यसत्कल्पनया किल लक्ष्यं, पदार्थाध्याकारेकारादयो धर्मास्तिकायादयः
- 5 सर्वाकारप्रदेशसहिताः सर्वेऽपि किल सहस्रम्, तत्रैकस्याकारपदार्थस्य सर्वद्रव्यगतलक्षणपर्यायराशिमच्यादास्तित्वेन सम्बन्धाः किल शतप्रमाणाः स्वपर्यायाः, शेषास्तु नास्तित्वेन सम्बन्धाः सर्वेऽपि परपर्यायाः । एवमिकारादे परमाणु-द्रव्यगुफादेथैकैकद्रव्यस्य वाच्यम् । पं. २५. आह—के पुनः स्वपर्यायाः ? के च परपर्यायाः ? यद्देशानन्तपर्यायता स्यादिति दर्शयति—**उदात्ता-ऽनुदात्तेयादिना ।** पं. २६. **एवं यावत्** इति यानुदात्ता-ऽनुदात्त-सानुनासिक-निर्मुनासिकादीनामगताम् पर्यायान् 'केवलः' अन्यवर्णेनास्युक्तोऽप्यवर्णसहितो वा [अकारो] 'लभते' अनुभवति ते तस्य स्वपर्यायाः प्रोच्यन्ते, अस्तित्वेन
- 10 सम्बन्धत्वात्, ते चानन्ताः, तद्व्याप्तस्य विष्णुपरमाण्वादिद्रव्यस्थानन्तत्वात् । यस्मात् सङ्ख्येयानामन्यक्षरणागमभिधेयं पञ्चास्तिकायागोचरमन्योर्बविलक्षणमनन्तम् । तथाहि—परमाणोः प्रारभ्य क्रमशः प्रदेशवृद्ध्या पुनरास्तिकायेऽपि सर्वद्वैवान्तानि भिन्नरूपाणि द्रव्याणि प्राप्यन्ते, भिन्नाभिधानानि भवन्ति । यथा—परमाणुः द्रव्यगुफः स्युगुफः चतुरगुफो यावदन्तप्रदेशिगक इति । प्रत्येकं चानेकाभिधानान्येतानि, तथा—अणुः परमाणुः मिश्रो निर्भेदो निरवयवो निष्प्रदेशोऽप्रदेश इत्यादि । तथा द्रव्यगुफो द्विप्रदेशिको द्विभेदो द्रव्यवयव इत्यादि सर्वद्रव्य-पर्यायेष्वायोक्तीयम् । पं. २७. यतोऽभिधेयमनन्तं
- 15 भिन्नरूपं भिन्नाभिधानं च तेन यपरिमाणमभिधेयं त-परिमाणमभिधानमपि भवति, अभिधेयभेदेनाभिधानस्यापि भेदात् । न हि येनैव स्वरूपेण घटादिशब्देऽकारादिवर्णाः सयुक्तास्तेनैव स्वरूपेण पटादिशब्देऽपि, अभिधेयैकवचनसङ्गात्, एकस्वरूपशब्दाभिधेयत्वात् पटतत्स्वरूपवदिति, अतोऽभिधेयाऽस्तन्यादभिधानाऽस्तन्यमित्येनमर्थं वक्तुमाह **अभिज्ञाप्येयादिना ।** पं. २९. **साङ्के-तिकेयादि**, शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः साङ्केतिक एव, पृथुबुभोदराकारे ह्यर्थे षटशब्दः सङ्केतितो व्यवहाराय, न पुनस्तास्तिकः शब्दस्य कश्चिन्निजाभिधेयोऽर्थः समस्ति, एवं कुटादिशपीति, एतत् **साङ्केतिकशब्दार्थवादितम्** । तदेतदयुक्तम्, घटः कुटः
- 20 कुम्भ इत्यादयो हि शब्दा भिन्नवृत्तिनिमिताः भिन्नार्थगोचराः । तथाहि—घटनाद् घटः, विशिष्टचेष्टावान्धो घटः; तथा "कुट कौटिल्ये" कुटनात् कुटः, कौटिल्ययोगात् कुटः, "उभ उम्भ पूणे" कौ उम्भनात् कुष्ठितपूरणात् कुम्भः निपातनादिति । एवं निजाभिधेयमर्थं प्रतिपादयतां शब्दानां वाच्य-वाचकभावः शब्दार्थयोरस्ति सम्बन्धः, न तु सङ्केतमात्रम् । **शेषास्तिकायादि**, शेषास्तिकाकारादिसम्बन्धिनो घटादिगताश्वास्य परपर्यायाः, तेषां तत्राभावात् तेभ्यो व्यावृत्तया नास्तित्वेन सम्बन्धात् । एवमिकारादीनामपि भावनीयम् । इदमुक्तं भवति—अकारेकाराण्यक्षरे घटादिपर्याया अस्तित्वेन सम्बन्धा इति तेषां परपर्यायव्यपदेशः,
- 25 यतो घटादिपर्याया अस्तित्वेन घटादित्वेन सम्बन्धा इत्यक्षरस्य ते परपर्यायाः, केवलमक्षरव्यावृत्तेन रूपेण तेऽपि सम्बन्धा एव, इत्यतस्तेषामपि परपर्यायाणां व्यावृत्तरूपतया पारमार्थिकं स्व-परपर्यायत्वं न विरुध्यते । द्विविधं हि वस्तुनः स्वरूपम्—अस्तित्वं नास्तित्वं च, ततो ये यत्रास्तित्वेन प्रतिबद्धान्ते तस्य वस्तुनः स्वपर्याया उच्यन्ते, ये तु यत्र नास्तित्वेन सम्बन्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्रतिपाद्यन्ते, अतोऽक्षरे घटादिपर्याया अस्तित्वेन सम्बन्धा इति परपर्याया उच्यन्ते, न पुनः सर्वथा ते तत्र न सम्बन्धाः, नास्तित्वेन तत्रापि सम्बन्धात् ।

30

[पृष्ठ ६९]

पं. १. आह्वेयादि, ये घटादीनां पर्यायान्ते कथं 'तस्ये'ति अक्षरस्य सका भवति ? तेषामक्षरेऽसम्बन्धत्वादिति पराशयः । अत्रोच्यते—देवदत्तस्वन्नवदक्षरेऽसम्बन्धा अपि घटादिपर्याया अक्षरस्य पर्याया भवन्ति । कुतः ? इत्याह— पं. २. **स्वपर्याय-विशेषणोपयोगात्** स्वपर्यायाणां विशेषणेन—विशेष्यवस्थापकत्वेन परपर्यायाणाम्युपयोगात्, परपर्याया अन्यक्षरस्थोपयुच्यन्ते

इत्यर्थः । पं. ४. तानन्तरेणेत्यादि, नहि परपर्यायेष्वसत्तु स्वपर्यायाः केचिद् भेदेन सिष्यन्ति, स्व-परशब्दयोरारोपेनिक-
स्वात्; अन्यथा तदक्षरं घटादिभ्यो व्याहृतं न सिष्येत् । प्रयोगशब्दापरोऽपि—घटादिपर्याया अन्यक्षरपर्यायाः, तत्र तेषामुपयुज्यमान-
त्वात् । इह यद् यस्योपयुज्यते तद् भेदवृत्त्यै तस्येति व्यपदिश्यते, यथा देवदत्तादेः स्वधनम्, उपयुज्यन्ते च स्वपर्यायविशेषण-
भावेन घटादिपर्याया अन्यक्षरस्य, अतस्ते तस्यापि भवन्ति । एवमक्षरपर्याया अपि घटादेर्वाच्याः । तथा वस्तुस्थित्याऽपि चेत्यादि-
प्रथमो भावितार्थ एव । पं. ८. “जे एयं जाणइ” इत्यादि, एतदुक्तं भवति—एकं किमपि वस्तु सर्वैः स्व-परपर्यायैर्युक्तं 5
जानन्—अवबुध्यमानः ‘सर्वै’ लोका-ऽलोकगतं वस्तु सर्वैः स्व-परपर्यायैर्युक्तं जानाति, सर्ववस्तुपरिज्ञानानन्तरीकत्वादेकवस्तुज्ञानस्य ।
यश्च ‘सर्वै’ सर्वपर्यायोपेतं वस्तु जानाति स एकमपि सर्वपर्यायोपेतं जानात्येव, एकपरिज्ञानाविनाभावित्वात् सर्वपरिज्ञानस्येति । अतः
सर्वै सर्वपर्यायोपेतं वस्तु अजानानो नाऽकाररूपमक्षरं ‘सर्वथा’ सर्वप्रकारैः सर्वपर्यायोपेतं जानाति । तस्माच्छेषसमस्तवस्तुपर्यायैः
परिज्ञातैरेव एकमक्षरं ज्ञायते, नान्यथेति भाव । अक्षरविचारस्येह प्रकान्तत्वादेकैकमक्षरं सर्वैरव्यपर्यायाराशिमानमुच्यते, अन्यथाऽ-
न्येषामपि परमाणु-द्रव्यणुक-घटादिद्रव्याणामिदमेव पर्यायमानं द्रष्टव्यम्, एतद् वक्तुमाह— पं. ११. ततश्चास्मात् सूत्रादि- 10
त्यादि । पं. १५. असौ अनन्तभागो नित्योद्घाटोऽकारादिश्रुताक्षरस्य तज्जन्थज्ञानस्य वा द्रष्टव्यः, न शेषज्ञानानामित्यर्थः ।
पं. १८. भिन्नेऽर्थेजाते यत् सदृशाक्षरालापकं तद् गमिकम् । असदृशं त्वगमिकम् । अन्यच्च गाथा-श्लोक-वेदकाद्यसदृश-
पाठान्मकवाद्गमिकम् । पं. २४. अत्राहेत्यादि, अज्ञा-ऽनज्ञप्रविष्टभेदद्वयस्य प्राधान्यरूपस्यापनार्षम् । पं. २७. गायद्गान्दं 15
तु इति, पूर्व-पश्चिम उरः-गृष्टिरूपम् । पं. ३०. गणहरक्यं गान्हा, अज्ञा-ऽनज्ञप्रविष्टश्रुतयोरिदं नानात्वम् । किम् इ इत्याह—
गणधरा—गौतमस्वाम्यादयः तद्भूतं श्रुतं द्वादशाक्षररूपमज्ञप्रविष्टमुच्यते । स्थविरा—भद्रबाहुस्वाम्यादयस्तैः ‘यत् कृतं’ 15
यद् इत्थं श्रुतमावश्यकनित्युत्पत्तिकं तद् ‘अज्ञबाह्वम्’ अनज्ञप्रविष्टमुच्यते । द्वितीयं भेदकारणमाह—निययमित्यादि, सर्व-
तीर्थकर्तारिभ्यु ‘निययं’ निश्चयभावि यत् श्रुतं तदज्ञप्रविष्टमुच्यते, द्वादशाक्षमित्यर्थः । यत् पुनः ‘अनियतम्’ अनिश्चयभावि
प्रकारिकादिकं श्रुतं तदज्ञबाह्वं भणितम् । आह—ननु प्रथमं पूर्वाण्येवोपनिबध्नाति गणधर इत्यागमे श्रूयते, पूर्वकरणदेव चैतानि
पूर्वाण्यभिधीयन्ते, तेषु च नि.शेषमपि बाह्वमयमवतरति, अतश्चतुर्दशपूर्वात्मकं द्वादशमेवाज्ञमस्तु, किं शेषाङ्गविरचनेन ‘अज्ञबाह्व-
श्रुतरचनेन वा’ इति, अत्रोच्यते—यथापि दृष्टिवादे सर्वस्यापि बाह्वमयस्यावतारोऽस्ति तथापि दुर्मेघसां तदवधारणाययोग्यानां 20
मन्दमतीनां तथा श्रावकादीनां स्त्रीणां चानुग्रहायै विशेषश्रुतस्य पूर्वैभ्यो विभिन्नत्याङ्गबाह्व-शेषाङ्गरूपस्य विरचना कृतेति । स्त्रीणां
दृष्टिवादे अधिकार एव नास्ति । यदुक्तम्—

तुच्छा गारवबहुला चर्लदिया दुब्बला धिईए य । एण्ण कारणेणं भूतावाओ य नो थीणं ॥१॥ ति

[विशेषा० गा० ५५२]

अशेषविशेषान्वितस्य समग्रवस्तुत्तोमस्य भूतस्य—सद्भूतस्य वादः—अणनं यत्रासौ ‘भूतवादः’ दृष्टिवादोऽभिधीयते । दीर्घत्वं 25
तकारस्याऽऽर्षत्वात् ।

[पृष्ठ ७०]

पं. ९. सावज्जं गान्हा । सावथयोगविरतिरथाधिकारः सामायिकस्य १ । जिनगणोत्कीर्त्तनं चतुर्विंशतिस्तवत्याधिकारः २ ।
गुणवतः प्रतिपत्तिर्वन्दनकर्याथाधिकारः ३ । स्वलितस्य निन्दा प्रतिक्मणस्याथाधिकारः ४ । नगचक्रिसाऽथाधिकारः कायो-
स्तरस्य ५ । गुणधारणा च प्रत्याख्यानस्याथाधिकारः ६ । इति गाथाधारायमात्रम् ॥ पं. १५. यदिह दिवस-निशा- 30
प्रथम-चरमपौरुषीलक्षण एव काले कालग्रहणपूर्वकं पठ्यते, नान्यत्र, तत् कालिकम् उत्तराध्ययनादि । यत्तु काल्वेलामात्रवर्जं
शेषकालानियमेन पठ्यते तद् उत्कालिकम् आवश्यकादि । अन्यच्च तन्दुलविचारणादिप्रकीर्णेषु स्वाध्यायप्रस्थापनं योगो-
त्क्षेपकायोत्सर्गश्च न क्रियते ।

[पृष्ठ ७१]

- पं. १. महाकर्मन्धनप्रभवासावधिप्यातथासौ दुःस्वानलश्च तस्य ज्वालकलापस्तेन परीतं—व्याप्तं संसारवासगृहं पश्यन् यत् क्रियानुष्ठानविशुल एवाऽऽस्ते सत्त्वः स प्रमाद इति योगः। पं. ९. जातौ इति जन्मनि। पं. १५. दृष्ट्वाऽप्या-
लोकात्मिति 'भौ यौ पद्माऽथैवं च देवीति नाम्ना' [जयदेवच्छन्दः ० अ० ६ सू० ३७] इति वैश्वदेवीदं छन्दः। आलोकयते—
5 ज्ञायतेऽनेनैत्यालोकः—मायादिज्ञानचतुष्टयं छात्रस्थिकम्, तं 'दृष्ट्वा' लब्धाऽपि विश्रम्भः—विश्वासो न विषेयः, यदतु 'लब्धं मया यल्लब्धव्यम्' इति ततो धर्मं प्रति मन्दादरो भवेयमिति। यतो हि तीर्थं नीताऽपि 'आभ्यते' इतस्ततः प्रेर्यते व्यापुष्टयते वा नौवतितेन। तथाहि—ब्रह्मदत्तोऽत्र दृष्टान्तः 'नरेशः' चक्री चित्रसम्भूतज्जमनि सम्भूतपर्याये वर्तमानः लब्धा वैराग्यं संयमानुष्ठानहेतुं 'प्रमादाद्' विषयव्यामूढचित्तैर्न निदानकरणाद् अष्टयोगोऽजनि, ततः 'व्यावृत्तः' व्यापुष्टितो धर्मात्। चित्रमनेकशो भग्यमानोऽपि चक्रिभवे वाऽनेकशः साधुना भग्यमानोऽपि धर्माद् अष्टयोगोऽजनि इति प्रमादफलमिदम्। पं. २०. अङ्गुल्याष्टावि-
10 त्वादि। तनुकम्—
अट्टेगसद्विभागा पददियहं अंगुलसस बद्धदति। उत्तरअयणमि पुणो ते स्त्रिय हायंति पददियहं ॥१॥ []
पं. २५. तत्राविशेषेऽपीति ज्ञानस्य सामान्यशिक्षणेऽपि अयं विशेषः—ज्योतिषं च निमित्तं च तयोर्ज्ञानं सूरैः प्रमाजनादिकार्ये उपपुष्यते इति तिथि-करणदि च ज्योतिष्कविषये ज्ञातव्यम्। तदप्यथा विवाहादिविषयव्यापारो 'दोष' आरम्भादिसमुद्यः।
[पृष्ठ ७२]
15 पं. २. संलेखनाश्रुतमिति, संलिख्यतेऽनया देहा-ऽऽत्मादीनि संलेखना, शरीराद्यपकर्षणरूपा संलेखना। सा च किल त्रिविधा—जफया षाण्मासिकी १ मध्यमा संवसरप्रमाणा २ उच्छ्रिता तु द्वादशवर्षरूपा ३। सा चैवम्— पं. ४-५-६. चचारि० गाहा, नाडविगिहो य० गाहा, वासं० गाहा। प्रथमं चचारि वर्षाणि यावद् 'विचित्रं' चतुर्थं पष्टा-ऽष्टम-दशम-द्वादशादिकं तपः करोति, पारणके च विकृतीर्गृह्णाति न केचनियमः। अपराग्नि तु चचारि वर्षाणि तपस्तथैव विचित्रमेव करोति, पारणके तु सर्वथा विकृतिवर्जमज्ञिषुं भुङ्क्ते। अन्यत्तु संवसरदिकं एकान्तरितमाचाम्लं विदधानि-चतुर्थं कृत्वा आचाम्लेन पारयति, पुनश्चतुर्थं
20 कृत्वा आचाम्लेनैव पारयतीत्यर्थः, एवं पुनः पुनर्यावद् वर्षद्वयम्। एकादशस्य तु वर्षस्याऽऽथान् षण्मासान् 'नानिविकृष्टं' नातिगाढं तपः करोति, चतुर्थं षष्ठं वा विधत्ते, नाष्टमादिकमित्यर्थः। पारणके तु 'परिमितं' किञ्चिदुनोदरनासम्पन्नमाचाम्लं करोति। अपरास्तु षण्मासान् 'विकृष्टम्' अष्टम-दशम-द्वादशादिकं तपः करोति, पारणके त्वाचाम्लमूनोदरतया न करोति, किन्तु ध्रुवेणेत्यर्थः। द्वादशं तु वर्षं कोटीसहितं निरन्तरमाचाम्लं करोतीत्यर्थः। चतुर्थं कृत्वा आचाम्लेन पारयति, पुनश्चतुर्थं विधायऽऽचाम्लेनैव पारयतीत्यादीन्यापि मतान्तराणि द्वादशवर्षविषयाणि दृश्यन्ते। इह च भोजनं कुर्वन् प्रतिदिवसमूनोदरतां तावत् करोति यावदेकं क्वलमाहा-
25 रयति, तमप्येक-द्वि-त्र्यादिसिन्धोर्न तावदाहारयति यावदेकमेव सिन्धुं भुङ्क्ते। अपरं चेह द्वादशवर्षस्य पर्यन्तवर्तिनश्चतुरो मासान् यावदेकान्तरिकेण पारणकदिवसेषु मुचिर तैलमण्डूपमसौ मुषे धार्यते, ततः खेलमल्लके भरसमये प्रक्षिप्य मुषवमुणोदकेन गोषयति। यदि पुनस्तैलमण्डूपविधिं न कार्यते तदा वायुना मुसलीनसम्भवे पर्यन्तसमये नमस्कासुच्चारयितुं न शक्नोति। तदेवमुच्छ्र-
संलेखनानुसारो जफय-मध्यमे अपि कार्ये। तदन्ते च भक्तप्रत्याख्यानादिमृगणानामन्यतरत् प्रतिपद्यते, अत एवाह—गिरिकन्द-
मिथ्यादि। पं. ११. गिरिगणं किरियार्थं ति उथानादिक्रियाकरणासमर्थं ज्ञात्वा। पं. १२. [सञ्चद्वय]द्वायण-
30 याए चि सर्वद्वयदर्शनेन। निचण्डस्स चि भक्ते विगततृणस्य। पं. २९. आवलिकाप्रविष्टेऽय इतरविमानानि पुष्पावकीर्णकानि।

[पृष्ठ ७३]

- पं. ४. उवउते समाणे ति उपयुक्तः सन् श्रमणः 'परिवर्त्तते' गुणयति। पं. ७. ओवयइ ति आकाशाद् 'अवपतति' अवतरति अंतद्विष्टं चि 'अन्तर्हित' आकाशस्थः। पं. ११. सिगनाइपकजेसु चि, शृङ्गज्ञातेन तुन्यानि शृङ्गज्ञातीयानि,

तानि च तानि कार्याणि चेति विमहः । यथा गवि स्थितं शृङ्गं सर्वजनप्रकटं भवति, एवं यत् सर्वजनविदितं महदद्भुतं किञ्चिच्चैत्य-
गुरु-सद्वादिविषयमनर्थरूपं प्रत्यनकिन क्रियमाणं भवति तत् शुकृज्ञातीयमुच्यते इत्येके । शुकृज्ञादित्कार्यमित्यपरं, तत्र तादृशो
कार्ये उपने शृङ्गनादः—शृङ्गापूरणपूर्वकं सद्धमिलनलक्षणः स सज्जातो यत्र तच्च तत् कार्यं चेति व्याचक्षते । ज्ञातीयं शुकृ-
कार्यमुच्यते इति तात्पर्यम् । पं. १२. आशुरुहः रुष्टः, अत एव 'अप्रसन्नलेख्यः' अप्रशस्तचित्ताध्यवसायः । पं. १७.
सल्लयं ति सलीलं यथा भवति एवमागत्य स्वस्थाने निवसति । पं. २३. जाणि कप्पविमाणानि ति देखुपत्ति- 5
विषयाणीत्यर्थः ।

[पृष्ठ ७४]

पं. १३. अणे ह्य्यादिः उसभाईणं संधरणं ति जीवतामित्यर्थः । पं. १४. पवाहेण ति निर्हेतानां पुनरेकैक-
तीर्थं बहूनि द्रष्टव्यानि । पं. २०. तच्छिष्यभाव इति शासनप्रणेतृतीर्थकशिश्यभावः प्रत्येकबुद्धानामप्यदुष्टः ।
पं. २१. अनियोगत (न तु नियोगत) इति न त्वन्यम्भावेनेत्यर्थः । पं. २६. अज्ञेषु प्रविष्टम्—अन्तर्गतमङ्गप्रविष्टं 10
श्रुताचारादि ।

[पृष्ठ ७५]

पं. १०. बाह्याऽभ्यन्तरग्रन्थरहितानामिति, तत्र बाह्याः—धन-धान्यादिकः प्रतीतः, अभ्यन्तरञ्च—मिथ्यात्वं नव नोकषायाः
क्रोधादिकवायचतुष्टयं चेति चतुर्दशविधः । पं. १७. इह च यत्रेत्यादि आचार-भोचर-विनयेत्यादौ सूत्रे । पं. २३.
निस्संक्रियं गाहा, 'निःशङ्कितः' निर्गतशङ्को जीवादिषु । 'निष्काङ्कितः' निर्गतकाङ्कोऽप्यतीर्थिकमतेषु । 'निर्विचिकित्सः' निः- 15
सन्देहोऽनुष्ठानफलं । अमूढदृष्टिः कुनीशिकविधादिदर्शनैः । 'च' समुच्चये । एवं गुण-गुणिनोः कथञ्चिदभेदावेदनद्वारेण दर्शना-
चारमभिदधता तददभिधानमुलेनाऽसावुक्तः, अतस्तं गुणिनो भेदेनाप्याह—उपबृंहणमुपबृंह्या—गुणवस्तुतिरूपा । 'स्थिरकरणं' धर्मे
चलाचलस्य स्थिरत्वापादनलक्षणम् । तथा 'वातसत्यं' कसलभावः, साधर्मिकाणामाहारादिभिरुपष्टम्भकरणमित्यर्थः । तथा प्रकर्षेण
भावना—त्रिनशासनमाहात्म्याविष्करणरूपा । अष्टावमी दर्शनाचारा इत्यर्थः । पं. २५. प्रभावकानष्टावुद्धिदानाह—अइसेसं 20
गाहा, व्याख्या—अतिशोषाः—अवधिज्ञानादयः, ते तैवां ऋद्विर्यस्याऽसावतिशोषादिः, भिन्ने वा पदे, तदन्तौ दृश्यौ ? । 'आचार्यः' 20
प्रावचनिकः २ । 'वार्ता' वादलम्बिमन्त्र ३ । 'धर्मकर्था' धर्मकथालम्बियुक्तः ४ । 'क्षपकः' विकृष्टतपःकर्ता ५ । 'नैमित्तिकः' मुनि-
श्रितातीतादिनिमित्तवेदी ६ । विधेयुपलक्षणत्वाद् विधावान् ७ । 'रात्र-नाणसम्भताः' पृथिवीपति-महाजनादिबहुमताः, स्थानद्वयमिदं
एकं वा ८, अतिशोषदर्शकविवक्षायाम् । 'तीर्थं' प्रवचनं स्वसमृद्ध्या 'प्रभावयन्ति' मध्यस्थप्राणिनां बहुमानगोचरीकुर्वन्तीति
गाथार्थः ॥ पं. २८. प्रणिधानं—चित्तौकाप्रत, तेन मनो-बाक्वायेषु योगेषु युक्तः—तत्निग्रहपरः । पं. ३२. न इहलोक-
धर्ममाजीवति तपसा यः सोऽनाजीवी । 25

[पृष्ठ ७६]

पं. ७. 'वेदाः' छन्दोविशेषाः 'एकार्थप्रतिबद्धवचनसङ्कलिकेत्यर्थः' इत्यन्ये । पं. ९. प्रव्याथभ्युपगमाः प्रतिपत्तयः,
मत्तान्तराणीत्यर्थः । सूत्रादथो गरीवान्, अत एव सूत्रधरादर्शपरः प्रधान इत्युच्यते । पं. ११. स्थापनामित्यादि, रचना-
पेक्षया तु द्वादशमङ्गं प्रथमम्, पूर्वगतस्य पूर्वं प्रवचनात् पूर्वं क्रियमाणत्वात् पूर्वाण्युच्यते । स्थापनामधिकृत्य च आचारः प्रथम-
मङ्गम् । पं. १३. सत्यपरिक्षेयादिगाथायामत्र चतुर्थपादो महापरिभोवहाणमुपमिति वक्ष्यमाणव्याख्यानेनायमेवात्र 30
पाठः । अन्यत्र च "उवाहणस्यैव महपरिक्षे"ति पठ्यते तच्चेह नोपपद्यते, उद्देशनकालसंख्याया विषट्नात्, महापरिभवास्तात्र
प्रथममुपादानात् पश्चादुपधानश्रुतस्येति । प्रथमश्रुतस्फन्धो नवाध्ययननिष्पन्नो भवति । पिंडेसणैःयादिना द्वितीयश्रुतस्फन्धाध्य-
यनषोडशकम् । तत्र—

पं. १५. पिडेसण १ सेजिरिया ३ भासजाया य ४ कथ ५ पाणसा ६ ।

उगहपडिमा ७ सतेकसत्तया १४ भावण १५ विमुत्ती १६ ॥१॥

पं. १९. श्लुपरिज्ञादिपु पञ्चविंशत्यध्यायेषु क्रमेणैते उदेशनकाला यथा—एवं सत्यपरिष्ठाए हत्यादिना कथयतीति ।

पं. २५. सच य छ षेयादिगाथापूर्वाद्धेनाऽऽद्यश्रुतस्कन्धे कालाः ५१, एकारेत्यापुतराद्धेन द्वितीयश्रुतस्कन्धगोचरकालाः

३४ अविहिताः, सर्वे ८५ । पं. २७. जइ दो सुयक्खंधा इत्यादि एयं विरुञ्जइ ति, श्रुतस्कन्धयादिके उच्यमाने

“नवबंधचेरमइउ” ति एयं विरुञ्जइ, यतोऽनेन एक एव श्रुतस्कन्धो नवाध्ययनात्मक आचारस्य प्राप्नोति । पं. २८. सूरीहा—

एत्थ वि ति आचारनिर्युक्तावेवोक्तम् । तदेवाह— पं. २९. “हवइ य सपंचनूलो” नि द्वितीयश्रुतस्कन्धे पञ्च वृद्धाः । यद्वा

आचारस्य यदयं वृद्धादिकं तसहितस्य श्रुतस्कन्धयादिकं परिमाणमुच्यते, नवाध्ययनमयस्य चाष्टादशपदसहस्राण्येव परिमाणम् ।

[पृष्ठ ७७]

10 पं. ५. अणंता पज्जव ति, पर्यवाः पर्याया धर्मा इत्यर्थः, तेऽनन्ता, एकैकस्याप्यकाराद्यक्षरस्य तदभिधेयस्य जीवाशिवस्तुनः

प्रत्येकमनन्तपर्यायत्वात् स्व-परभेदभिल्लेखेन । पं. ६. त्रसाः परीत्ताः, नानन्ताः, एवंरूपवादेव तेषाम् । पं. ७.

सासयकडेयादो निकाइय ति निकाचिताः—प्रतिष्ठिता इत्यर्थः । प. ९. भावाः पदार्थाः, अन्येऽप्यजीवादयः आच-

विज्जंति ‘आख्यायन्ते’ सामान्य-विशेषार्थां कथ्यन्ते जिनोक्ता भावाः । पञ्चविज्जंति प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदतः । प्ररूप्यन्ते

नामादिस्वरूपकथनेन, यथा “पर्यायानभिधेयं च नामे”त्यादि । दइर्यन्ते उपमावाचतः, यथा गौस्तथा गवय इत्यादि । निद-

इर्यन्ते हेतु-दृष्टान्तोपन्यासेन । उपदइर्यन्ते उपनय-निगमनार्थां सकलनयाभिप्रायान्तो वा । इयं सर्वत्र व्याख्या वाच्या ।

पं. २७. छयगडेयादि रूढोच्यते इति, मृत्कृतशब्देन द्वितीयमेवाहङ्गमुच्यते, नान्यत् । पं. २९. व्यूहं कृत्वेति

तिरस्कारं विधाय ईश्वरकारणिन इति, तथा च पठ्यते—

अज्ञो जन्तुरनिशः स्यादात्मनः सुख-दुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् श्रवं वा स्वर्गमेव वा ॥१॥ [] इति ।

[पृष्ठ ७८]

20 पं. १०. क्रिया पूर्ववदिति ‘व्यूहं कृत्वे’त्यादिकम् । अनवस्थितस्येति क्षणिकत्वेनानवस्थितत्वम् । पं. २१.

लपुत्वात् प्रक्रमस्येति, प्रक्रमः ‘लपुः’ अल्पाक्षरो यथा भवति तथा कार्यम्, मन्वर्थायिन चाक्षगभिस्याद् गुरुः स्यात्, अतो

मन्वर्थायात् ‘प्रागेव’ आदित एव बहुव्रीहिणा अज्ञाना इति वक्तुमुचितम्, तदसत्, बहुव्रीहिणा हि अज्ञानिकशब्दवाच्योऽर्थो न

प्रतीयते, किन्तु न ज्ञानं यस्येति ज्ञानाभाव एव प्रतीयते, न चेदमिष्टम्, किन्तु नवा कुसार्थैर्दृष्टिनाऽज्ञानमभिव्यक्तिदिष्टं ज्ञानान्तर-

मेव प्रतीयते, कुलिसत्त्वं च तस्य मिथ्यादर्शनसमन्विनत्वात्, अतो मन्वर्थादोऽय युक्तः । पं. २२. यथा गौरस्वरवदरण्य-

25 म्नित्रय श्वापदविशेषो गौरस्वरः, तदुपेतमण्यम् । अत्र जातिशब्दत्वाद् बहुव्रीहिणोकार्थवेऽपि मन्वर्थायः प्रवृत्तः एवं प्रकृतेऽपि ।

पं. २३. असञ्चित्यकृतः—अज्ञाततया कृतो जीवेन योऽसौ बन्धः तस्य वैफल्यादयः—विकलत्वादयः उदयपरिशाटादयः तेषां

प्रतिपत्तिः सैव लक्षणं येषां ते तथा । पं. २५. सत्त्वमि-यादि एत एव सत् सदादयः जैनमते स्यात्पदत्रयान्धिताः सप्तभङ्गीति

व्यपदेश्या भवन्ति । सर्वं वस्तु सप्तभङ्गीस्वभावम् । ते चामी—स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावापेक्षया स्यादस्ति १ । परद्रव्यापेक्षया

स्यानास्ति २ । तथा कस्यचिदंशस्य स्वद्रव्यापेक्षया विवक्षितत्वात् कस्यचिदंशस्य परद्रव्यापेक्षया स्यादस्ति च नास्ति चेति ३ ।

30 सदसत्तेषु धर्मयोर्योगपथेनाभिधामुत्तमशक्यत्वात् स्यादवकल्प्यम् ४ । तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्यापेक्षयाऽपरस्य तु सामस्येन स्व-

परद्रव्यापेक्षया विवक्षितत्वात् स्यादस्ति चावकल्प्यं चेति ५ । तथैकंशस्य परद्रव्यापेक्षयाऽपरस्य तु योगपथेन स्व-परद्रव्यापे-

पेक्षया स्यानास्ति चावकल्प्यं चेति ६ । तथैकंशस्य स्वद्रव्यापेक्षया परद्रव्यापेक्षयाऽन्यस्य तु योगपथेन स्व-परद्रव्यापेक्षया

विवक्षितत्वात् स्यादस्ति च नास्ति चावकल्प्यं चेति ७ । इयं सप्तभङ्गी । पं. २७. अज्ञानिकास्तु ‘को जानाति जीवः

सन् ?' इत्याद्यज्ञानवादाभ्युपगमपराः इत्यथवादिवात् प्रतिज्ञेपार्हाः । पं. ३१. अनवधृतम् अनियतं लिङ्गमाचारः
शास्त्रं च येषां ते तथा । विनयप्रतिपत्तिरेव लक्षणं येषाम् । पं. ३२. अवयवः लघुः । सूत्रे [पत्र ७७ पंक्ति ३०]
तेत्तीसं उद्वेसनकालं ति—

चउ तिय चउरो दो दो एकारस चेव हुंति एगसरा । सत्तेव महञ्जयणा एगसरा बीयमुयखंवे ॥१॥

[सर्वे ३३ । 5

[पृष्ठ ७९]

पं. ५. ठाणद्धञ्जे सुगमम् । पं. ९. नवरम्— एक उत्तरो येषु इचादिषु तानि एकोत्तराणि । पं. २५.
समवायद्धञ्जे सुगमम् । पं. २८. नवरम्— ठाणगसयविबद्धिद्वयाणं ति स्थानकगतं यावद् विवर्धितानाम् । पं.
२९. पल्लवगे समासिज्जइ ति पर्यवारिमाणम्— अभिधेयादि-तद्धर्मसंख्यानम्, यथा—परित्ता तसा इत्यादि । पर्यङ्कः पल्यङ्कः
इत्यादिवत् पल्लवनिर्देशः प्राकृतत्वात् पर्यवगच्छदस्यैव । यद्वा “पल्लवा इव पल्लवाः—अवयवास्तदधे—तत्परिमाणं ‘समासिज्जइ’ 15
प्रतिपाद्यते” इति समवायाङ्गवृत्तौ व्याख्यातम् [पत्रं ११३—२] ।

[पृष्ठ ८०]

पं. २४. केयं व्याख्येति, व्याख्यायन्ते जीवादयोऽर्था यस्यां सा व्याख्या, पञ्चममङ्गं रूढया उच्यते । पं. १८.
सूत्रे एगे साइरेगेऽञ्जयणसए ति पदं चिरन्तनवाचनागम्यमिदम्, नेदानीम् । सम्प्रतिवाचनायामेकचकारिणसङ्गचगतानि
सन्ति । शतशब्देन अध्ययनसंज्ञा । पं. २६. यद्वा ज्ञातानि च धर्मकथाश्च ज्ञाताधर्मकथाः । तद्योगाद् प्रथोऽपि तथोच्यते । 15
पदममुयखंवे नायाणि एगूणवीस । नायाणं नगराई इत्यादिमूत्रम् । उद्यानानि पुष्प-फल-आयुष्योपगवृत्तेशोभितानि ।
यद्वा यत्र बलाबलहृत्तदेहाः सन्निहिताशनायाहारा लोका येषु क्रीडन्ति तानि उद्यानानि । पं. २७. चैत्यानि व्यन्त-
रायनानि । वनपण्डाः अनेकजातीयैरुत्तमैर्वृक्षैरुपशोभिताः । समवसरणानि तीर्थंकरादीनां धर्मदेशनाभूयः । ऐहलौकिका
ऋद्धिविशेषाः अनेककोटीसङ्ख्या इत्यादिसम्प्रद्विशेषाः, पारलौकिकाश्च स्वर्गादिसमृद्धिरूपाः । भोगपरित्यागाः व्रतग्रहणेन ।
मन्त्रजयापर्यायाः व्रतपरिपालनकालमानरूपाः ।

20

[पृष्ठ ८१]

पं. १. पाभोगमणगाई ति पादपोपगमाभिधानमनशनम्, तत्प्रतिपत्तयः । प्रेय जिनधर्मप्रसिर्वोथिलायः । पं.
२. भवापेक्षया अन्त्याश्च ताः क्रियाश्च अन्त्यक्रियाः, ताश्च शैलेत्यवस्थाया गृहन्त इति । एवं नगरादीन्व्याख्यायन्ते । पं.
१८. द्वितीयश्रुतस्कन्धस्वरूपमाह—विद्युप्यादि । तन्निवसेसणविसिद्धेयादि तन्त्राश्राधिकारसम्हात्मकान्यथयनान्पेव दश वर्गा
द्रव्याः । पं. २३. इगवीसं कोहिसयं गाहा । अस्थानयनम्— ५४०×९ अनेन प्राचीनस्य गुणेने ४८६० जातम्, 20
अस्य च पञ्चशतैर्गुणेने २४३०००००, अस्यापि पञ्चशतैर्गुणेने १२१५०००००० आपन्नम् । एवं टिए समाणे ति प्रथम-
श्रुतस्कन्धवक्तव्यतायां भगितायां अहिगयमुत्तस पत्थावो ति प्रथमश्रुतस्कन्धकथानकसङ्ख्यात्वात्मानन्तरं द्वितीयश्रुतस्कन्ध-
कथानकमेदप्ररूपणाय प्रस्तावः दसधम्मकहाणं वग्गेत्यादिकस्य । तदेवाह— पं. २५. तं जहेयादि । पं. २८.
पणुवीसं कोहिसयं गाहा । अस्य दशकस्य १० पञ्चशतगुणेने ५०००, अस्यापि पञ्चभिः शतैर्गुणेने २५००००००, अस्यापि
च पञ्चशतैर्गुणेने १२५००००००० जातम् । “समलक्षणमतिगच्छन्ति” इति समलक्षणगतिगानि ज्ञातानि यस्मात् सन्ति ततस्तानि 30
शोध्यन्ते इमाओ रासीउ ति १२५००००००० एतस्मादयं राशिः १२१५०००००० विशोध्यः ऊर्वाधोभावेन द्वावपि
विन्यस्य $\frac{1250000000}{1215000000}$ । ततो भवतीदं ३५०००००० सङ्ख्यानम् ॥

[पृष्ठ ८२]

- पं. ७. उवासागदस ति दशाध्ययनात्मिका उपासकसमाचारोचरा ग्रन्थपद्धतयः । अत्र श्रमणोपासकानामानन्द-
कामदेवादीनां नगरादीनाख्यायन्ते । पं. ९. सीलव्ययेत्यादि, शीलव्रतानि-अयुक्तानि, गुणाः-गुणव्रतानि, विरमणानि-
रागादिविरतयः, प्रत्याख्यायनं-नमस्कारसहितादि, पौषधोपवासः-पर्वदिनोपवसनं आहारादित्यागरूपः, एतेषां प्रतिपादनानि-
5 प्रतिपत्तयः ताव्याख्यायन्ते । “पडिमाउ” ति एकादशोपासकप्रतिमाः ऋयोःसर्गा वा । ‘उपसर्गाः’ देवतादिकृतोपद्रवाः ।
“पाञ्चोवगमणाइं” ति पादपोषगमनेनेव यदनशानं तदत्र ब्राह्मणम्, न पुनः श्रावकाणां साक्षात् पादपोषगमनप्रतिपत्तिरस्ति, अक-
परिहृतैव तन्मरणाभ्युपगमात् । यदुक्तम्—

सन्वा वि य अजाओ सन्वे वि हु पढमसंपयगवज्जा । सन्वे वि देसचिरया पच्चक्खाणेण उ मरति ॥१॥

[मरणसमाधि गा. ५४१]

- 10 प्रत्याख्यानं नाम भक्तपरिज्ञोच्यते । पं. २३. अंतगाडदशासुं युगमम् । पं. २५. नवरम् भोगपरि-
भोगो इति पदम्, तत्र “परिहरणा होइ परिभोगो” [] ति वचनाद् भोगविषयः परिभोगो-पशियाग एवोच्यते ।

[पृष्ठ ८३]

- पं. ११. अत्र सञ्चानि अञ्जयणाणि जुगत्रमित्यादि, अन्यथनसमुहान्मको बगो यतो युगपदुद्दिश्यते, अतः सर्वा-
ण्येकवर्गगतानि युगपदुद्दिश्यन्ते ॥

15

[पृष्ठ ८४]

- पं. ४. पण्ठावागरणाइं इत्यादि । प्रश्नानां च व्याकरणानां च योगात् प्रश्नव्याकरणानि तेष्विति, बहुवचनं बहुत्वात्
स्यात् । अट्टुत्तरमित्यादि, तत्राङ्गुष्ठ-बाहुप्रश्नादिका मन्त्रविद्याः प्रश्नाः । याः पुनर्विधिना जयमाना अगृष्टा एव शुभा-ऽशुभं
कथयन्त्येता अप्रश्नाः । तथा अङ्गुष्ठादिप्रश्नभावं तदभावं च प्रतीक्ष्य या विद्याः शुभा-ऽशुभं कथयन्ति ता ‘प्रश्नाप्रश्नाः’ उभयरूपा
ज्ञेयाः । तथाऽप्ये ‘दिव्याः विचित्रा विद्यातिगयाः’ स्तम्भ-स्तोम-वगीकरण-विद्वेषीकरणोच्चारनादयः अङ्गुष्ठा-बाहु-आदर्शकादि-
20 सम्बन्धिनीमिः प्रश्नविद्याभिः अङ्गुष्ठादीनामावेशनान् शुभाऽशुभं कथ्यते । ‘नाग-सुपर्णैः’ सह भवनपतिविशेषेः उपलक्षणवाद् यक्षादि-
भिश्च सह साधकस्येति गम्यते ‘दिव्याः’ तात्विकाः ‘सवादाः’ शुभा-ऽशुभगताः संलापा आख्यायन्ते, नागादयोऽवतारिताः स्मृता
वा सन्त आगम्य शुभा-ऽशुभं कथयन्ति । पं. ९. नवरम्- यद्यपीहाध्ययनानां दशत्वाद् दशैवोद्देशनकाला भवन्ति, तथापि
वाचनान्तरापेक्षया पञ्चचचारिंशदिति सम्भाव्यते इति पणयालीसमित्याथविरुद्धम् । पं. २०. फलत्रिवाग इति,
फलरूपो विपाकः फलविपाकः स आख्यायते ।

25

[पृष्ठ ८५]

पं. १७. प्रायो व्यवच्छिन्नमिति, प्रायोग्रहणेन प्रथमानुयोगमात्रस्यास्तित्वं तत्काले सूचयति ।

[पृष्ठ ८६]

पं. २३. उत्तरभेयओ तेयासीतिविहं ति, मूलभेदसप्तसु मध्याद्वाद्यद्वयस्य प्रत्येकं चतुर्दशभेदत्वात् २८, तृतीयादिशेष-
भेदपञ्चकस्य प्रत्येकमेकादशभेदत्वात् ५५, सर्वभेदाः ८३ च्यशीतिर्भवन्ति ।

30

[पृष्ठ ८७]

पं. ६. नयचित्ताए वि चि नयचिन्तायामपि । पं. २१. सुत्तं छिन्ने ति अपरनिरपेक्षम् । पं. ३०. चउरो
बावीसाउ ति छिन्नच्छेदनय २ अच्छिन्नच्छेदनय २ त्रिकनय २ चतुष्कनया २ रमिप्रायतः चतस्रः ।

[पृष्ठ ८८]

पं. २५. सन्वेसि आयारो तित्थस्स पवलणे पढमयाण् । सेसाइं अंगाइं एक्कारस आणुपुञ्जीए ॥१॥

35

[आचाराङ्गनि० गा० ८] इति सम्पूर्णगाथा ।

किंतु सा ठवण ति स्थापनामाश्रय निर्युक्त्वाभिहितं प्रथमम् । अक्षररचनया तु पूर्वं पूर्वाणि रच्यन्ते ।

[पृष्ठ ८९]

पं. ८. अन्ते कम्मप्पवायपुञ्चे पयइ-ठिइ-अणुभाग-पएसइएहिं ति एतस्वरूपं यथा—
स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्ता, स्थितिः कालावधारणम् । [एतद्रसोऽणुभागः स्यात्, प्रदेसो ऽ(ब्)शकल्पनम् ॥१॥

यद्वा—

ठिइबंधु दलस्स ठिई, पएसबंधो पएसगहणं जं । ताण रसो अणुभागो, तस्समुदाओ पगइबंधो ॥१॥

5

[पञ्चसङ्ग्रह गा० ४३२]

पं. १४. बारसमे अन्ने य पाणा वन्निय ति, इन्द्रियादयः । पं. १६. तेरसमे छंद-किरियाविहाणा य ति,
पचविययाणि तन्पय्या(१)शार्दूलादिरूपाणि छ्दासि क्रियाश्च—करोति-भक्त्यादय एतासां विधानानि वर्धन्त इति क्रियाविशालम् ।
[पत्र ८८ पं. ४] उप्पायपुञ्जस्स णमित्यादि । नवस्—‘वस्तु’ नियतायांशिकारप्रतिबद्धो प्रथविशेषः, अध्ययनवत् । पं. २६.
‘समत्समुयानाणिणो’ चउदसपुञ्जधरा । पं. २०. एकवक्तव्यतायांशिकारानुगता वाक्यपदतयो गण्डिका उच्यन्ते । 10

[पृष्ठ ९०]

पं. ५. दसारंहियाउ नि दशार्हाः—समुद्रविजयादयो दश वसुदेवान्ताः तत्प्रतिबद्धा गण्डिका दशार्हगण्डिकाः ।

पं. १५. आइच्चजसाईणमित्यादि । ऋषभनिर्दिष्टिप्राप्त्यनन्तरं ऋषभस्य पओप्पण, आदिन्ययश्चःप्रभृतीनां नरपतीनां सङ्घां
सिद्धि-सर्वांशिसिद्धिगमनविषयां सगरमुतानामप्रभः सुवृद्दिनामाऽमात्यः परिकथयति । पं. १६. नृपतीनां चतुर्दश लक्षाः
सिद्धाः, एको लक्षः सर्वांशे, एवमेकैकस्थाने पुरुषयुगान्थसङ्घेयानि भवन्ति । तदनन्तरं चतुर्दश लक्षाः सिद्धाः द्वौ लखौ सर्वांशे, 15

१ अत्र ऋषाचानुलोम-प्रतिलोमसिद्धगण्डिकायुगले श्रीमलयगिरिसूरिविचितनन्दिसूत्रवृत्ति-श्रीदेवेन्द्रसूरिनिर्मितसिद्धदण्डिका-
प्रकरण-तद्वचुरी-श्रीशिवयज्जियोपध्यायरचितलोकप्रकाशादिषु एक-द्वि-त्रि-चतु-पञ्च-षाडशशास्त्ररूपा वर्तन्ते, न तु एकलक्ष-
द्विलक्ष-त्रिलक्षादिका, यथा श्रीमङ्गलासगणिवचकविहितसुखदेवद्विगण्डीप्रथमब्रह्मज्ञानमंगलसिद्धगण्डिकायां [पत्र ३०१] श्रीशिवनास-
गणिमहत्तरनिर्मितनन्दीसूत्रचूर्णितसिद्धगण्डिकायां [पत्र ७८] श्रीहरिभद्रसूरिविचिनन्दिसूत्रलघुवृत्तिपरसिद्धगण्डिकायां [पत्र ९१]
च आद्यानुलोम-प्रतिलोमसिद्धगण्डिकायन्त्रयुगले दृश्यन्ते । अत एव तदनुसारेण श्रीश्रीबन्दास्वार्थपद- अत्रायानुलोम-प्रतिलोमसिद्धगण्डिका-
युगले एकलक्ष-द्विलक्ष-त्रिलक्षादिव्याख्यान कृतमस्ति ।

अपि च— एतद्व्याख्यानभेदविषये एतदप्यत्रापेयमस्ति यत्— सिद्धगण्डिकास्वरूपावेदकोपरिनिर्दिष्टचूर्ण-वृत्त्यादिसर्ववन्धेषु सिद्धगण्डिका-
स्वरूपावेदकोशिविस्तगाथाकदम्बकावलोकनेन केवलैक-द्वि-त्रि-चतु-पञ्च-षाडशशास्त्ररूपांस्वरितसिद्धि-सर्वांशेगमनप्रतीतिरेवोपजायते, न लक्षा-
नन्तरिप्रतीतिरिति । तथा वसुदेवद्विगण्डि-नन्दिसूत्रि-नन्दीलघुवृत्तिषु सिद्धगण्डिकास्वरूपावेदकनामानां व्याख्यान स्पटीकरण वा
लेखनोऽपि न वर्तते, किन्तु गाथाभाषावेदकानि यन्त्रकाण्येव केवल वर्तन्ते । तेषु च अनन्तरिक-द्विकादिसर्वानेषु लक्षनिर्देश एव वर्तते ।
किञ्च-श्रीमलयगिरिनन्दीसूत्रौ सिद्धदण्डिकाप्रकरणे लोकप्रकाशे च चूर्णि-वृत्तिरुदात्तुल्लिखितसिद्धगण्डिकास्वरूपावेदकनामानां
व्याख्यान यन्त्रकाणि चापि वर्तन्ते, तत्रानन्तरिक-द्विकादिसर्वानिर्देश एव वर्तते, न लक्षनिर्देश इत्यत्र तात्त्विकनिर्णयविषये
बहुधृताः प्रमाणम् ।

अथा च द्वितीयप्रतिलोमसिद्धगण्डिकाविषयेऽपि एतद्व्याख्यानमस्ति, यत्— चूर्णि-लघुवृत्ति-वृहद्वृत्ति-सिद्धदण्डिकाप्रकरणाव-
चुरी-लोकप्रकाशादिसर्वेषामेषु प्रतिलोमसिद्धगण्डिकायन्त्रकं मुद्रितस्वरूपमेवोपलभ्यते, किन्तु चूर्णिहृद्-लघुवृत्तिरुदात्तुल्लिखितप्रतिलोम-
सिद्धगण्डिकास्वरूपावेदकगाथासु तथा श्रीमलयगिरिवृत्ति-सिद्धदण्डिकाप्रकरण-तद्वचुरी-लोकप्रकाशेषु च “ ततोऽनन्तरं
(अनुलोमसिद्धगण्डिकासमाप्त्यनन्तरं) चतुर्दश लक्षा नरपतीनां निरन्तरं सर्वांशिसिद्धे एकः सिद्धो, भूयश्चतुर्दश लक्षाः सर्वांशे एकः सिद्धौ,
एव चतुर्दशलक्षानन्तरित एकैकः सिद्धो तावद् वक्तव्यो भावत् तेष्वेकका असंख्येया भवन्ति ” इत्यादि निर्दिष्ट वर्तते, किञ्चात्र निर्देशे
अनुलोमगण्डिकाचरमपभाशास्त्रांशिसिद्धान्तनरं प्रतिलोमसिद्धगण्डिकाप्रारम्भश्च चतुर्दशलक्षसर्वांशेर्णनेन किञ्चेत तदा प्रतिलोमगण्डिकाप्रारम्भः
सम्बन्धा न प्रतीतिमायाति, एवमेव द्वितीयप्रतिलोमगण्डिकाचरमपभाशास्त्रसिद्धिगमनानन्तरं तृतीयसमसंख्यगण्डिकाप्रारम्भश्चेत् सिद्धिदेवैव
आवेत् तत्रापि तृतीयगण्डिकाप्रारम्भो न सम्बन्ध प्रतीतिमायाश्चेति इति यन्त्रकानुसारी व्याख्यानमेव सङ्गतिमङ्गलम् । किन्तु तथाव्याख्यानं

अत्रापि पुरुषध्यान्यसङ्घेयान्यतिकात्तानि अनया रीत्या । नवरम्—एकौ य होइ सञ्चद्रे इत्यादि, गाथानु सर्वत्र सञ्चद्रेऽश्वेन विजय्यैश्वर्यात्तादिकं विमानपञ्चकमपि ज्ञेयम्, न पुनर्मध्यवर्षैकम्, अन्यथा तस्य लक्ष्योन्नतप्रमाणतया कथमेतावत्तस्तर्मान्ति ?

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कवाच सर्वेषामपि अ्यवनकालोऽपि न क्षटियंवास्ति तेषाम् । न च मध्यवर्षैव रूढं सर्वार्थशब्देनेति वाच्यम्, इह विमानपञ्चकाधारस्य तत्रस्तटस्थ सर्वार्थानाम्ना रूढत्वादिति सर्वत्र गाथास्वनुचरविमानाधारः प्रस्तो द्रष्टव्यः, तस्य-

5 विमानेषुयन्ते देवा इति सम्प्रदायः, देवेन्द्रनरकैन्द्रकशास्त्रे पञ्चोत्तरविमानप्रस्तटस्थ सर्वार्थशब्देन भणनात् । तानि चासङ्घेय-
योजनकोटिप्रमाणानि सन्तीति न कश्चिद् विरोधः । पं. २०. विवरीयं० गाथा । चोदस लक्ष्वा सञ्चद्रे एगो लक्ष्मो सिद्धीण ।
एयाण परिवाडीण ताव नेयं जाव सिद्धीण पलास लक्ष्वा, सञ्चद्रे चोदस लक्ष्वा ॥ पं. २३. चिचंतरगंडिया तभो चउरो
त्ति, प्रथमा एकाधिकोत्तरा । नवरम्—परस्परापेक्षया एकाधिकोत्तरत्वं वाच्यम्, अथ-उपरिभावेन १ । द्वितीयायां गण्डिकायामप्यथ

उपरि च एकाद्विकोत्तरम् २ । तृतीयायामेकाद्विचतुस्रस्वमथ उपरि च कार्यम् ३ । चतुर्थ्यां पंचिक्रयेन ऊर्वा-ऽधोभावेन
10 एकृतीस दिगा मंडेयन्वा, सा च त्र्यादिका द्वाचदिविषमोत्तरा ४ । पं. २६. जाव असंखेज्ज दो वि त्ति, ष्टं सिद्धि-
सर्वाश्रमने असङ्घेयपुरुषयुगारूपेण वाच्ये एकाद्विचतुस्रगायां चित्रान्तरगण्डिकायाम् २ । तृतीयायामेकाद्विचतुस्रगायां गण्डिकाया-
मेकः शिवगतौ चत्वारः सर्वार्थे उपचरन्ते । अनया रीत्या द्वावपि राशौ एकाद्विचतुस्रस्वरूपेणामङ्घेयपुरुषयुगानि यावद् भवत् ३ ।

पं. २८. त्र्यादिकायां द्वाचदिविषमोत्तरायां चतुर्थगण्डिकायां सेसेमु इमो भवे खेत्रो ति राशिद्वयभावेन एकोनत्रिंश-
तसङ्घस्थापितत्रिकेष्वार्थं विमुच्य शेषेष्वष्टाविंशतिसङ्घेष्वचस्तनोपरितनेषु त्रिकेष्वर्थं द्विकादिको वक्ष्यमाणगाथात्रयोक्तोऽङ्घक्षेपे कार्यः,

15 ततोऽधस्तनत्रिकमध्ये द्विकक्षेपे जाताः पञ्च १, उपरितनत्रिकमध्ये पञ्चक्षेपे जाता अष्टौ २, अनया रीत्या सर्वं वाच्यम् । याव-
देकत्रिंशत्सङ्घा (१ यावद्दष्टाविंशतिसङ्घा) धस्तनत्रिकस्य शतक्षेपे जानं १०३, उपरितनत्रिकस्य च मध्ये षड्विंशत्या त्रिनयाऽप्ये
जाता एकोनत्रिंशत् । एवमियमाथा गण्डिका विषमोत्तरा । अनया दिगा असङ्घा अन्या विषमोत्तरा ज्ञेया । परं सर्वस्यामप्यन्यथा
गण्डिकायां प्ररूप्यमाणार्था यदन्त्यम् । इत्थानं किञ्चिन् प्राचीनायामागतं तदेकोनत्रिंशत्सङ्घाचाराः स्थाप्यम्, ततः प्रथमं स्थानं
विमुच्य शेषामु एकोनत्रिंशत्स्वष्टाविंशतिसङ्ख्यामु “दुग पण नवग”मित्यादि प्रागुक्तगाथात्रयोक्तो द्विकाषट्क्षेपेः अथ उपरि च

20 प्रागर्था कार्यः । पञ्चाशच्छा सागरोपमकोटीनां किल ऋषमा-ऽजितयोस्तरम्, एतावदन्ते च प्रमृत्कालस्वरूपे प्रभृता-
सङ्घेयासङ्घेयसङ्घचानेन एतावन्तः सिद्धाः सर्वार्थे च गता इति सगरपुत्राणां सुबुद्धिर्जागद ।

पूर्णिक्कादिनिर्दिष्टा “विवरीय सञ्चद्रे चोदस लक्ष्वा उ निवृत्तो एगो ” इत्यादिगाथा सामान्यनिर्देशरूपीव प्रयेतव्या, न क्रमावेदिकेति
बोद्धव्यम् । यद्यप्यस्मिन् व्याख्याने श्रीमत्सूरिगिरिस्त्वि-श्रीदेवेन्द्रसूरि-श्रीविनयविजयोपाध्यायिव्याख्यानने सह स्पष्ट एव विरोधस्तथापि
तेरेव लिखितग्रन्थेण सहानुगतौ विरोधोऽपि स्पष्ट एवैत्यापि विचार्यमस्ति ।

अपरं च—श्रीदेवेन्द्रसूरिस्त्वितिचैत्यवन्दनभाष्यसकृश्रमंघोषसूरिद्विरचितसंथाचारीकाया रत्नसारकथाया सिद्धगण्डिकाव्या-
ख्यने सिद्धगण्डिकाप्रकरणगाथा एषोद्गता स्मिति । तत्र सहानुचारवृत्तिरचनासमये नः स्मृतश्रीदेवेन्द्रसूरिस्त्विति एव गाथा यथाव-
दुद्गताः किन्तु सङ्घत्तिपुनःप्रमाणसमये उपर्युक्तगण्डिकान्त-प्रारम्भाप्रतीतिदोषमुद्भाव्य यन्त्रकानुसारेण सिद्धगण्डिकाप्रकरणगत-
गाथायाः परावृत्तिः स्वव्याख्याया कृताऽस्ति । सा चैवम् —

आद्भ्रजसादं सिधे चउदस लक्ष्वा उ, एगु सञ्चद्रे । एव जा इक्किा असंख, इय दुग-तिगाई ति ॥

जा पञ्चानमसला १, तो सञ्चद्रेमि लक्ष्वाचउदसग । एगो सिधे, तहेव य अस्मका जाव पण्णासं ॥

अत्र द्वितीयगाथाया “तो सञ्चद्रेमि लक्ष्वा ” इत्यादिगाथापाठस्थाने श्रीमंघोषसूरिपादः “तो सिधे इगु चउद लक्ष्वा सञ्चद्रे ।
एगु इगु सिधे तहेव य० ” इति अंत्युपसृक्तापाठराष्ट्रतिर्विहितऽस्ति । यद्यपि जेसलमेठ-पसनादिस्थितताडपत्रीयादिप्रतिषु नास्तीय
पाठराष्ट्रानिः किन्तु स्तम्भतीर्थीश्रीशान्तिनाथताडपत्रीयाभाष्यगारे संशोधित-परिर्वधितादर्शं इय सुसज्जा पाठराष्ट्रप्रतिदम्ब इति ।
प्रतिधेय तदन्तः प्रतिपत्र तथा स्थाने स्थाने नवीनपरिवर्धितानेकग्रन्थे पुत्रादिविषयकानेकमतान्तरचर्चायुक्तेन बृहद्दृष्टिप्रतिपत्त्या जाताऽस्ति,
अतीवोपयोगिनी चाप्यस्ति ॥

[पृष्ठ ९३]

पं. ५. पणवीशुचराणि दो सयाणि त्ति, इहोत्पादादीनां बिन्दुसारपर्यन्तानां चतुर्दशानां पूर्वाणां “दस चोदस अट्टुट्टारसेव बारस दुवे य कथूणि” । [सू. १०९ गा. ७९-८०] इत्यादिना प्राक् सूत्रोक्तगाथाहयेनाभिहितदशादिपञ्च-
विंशत्यन्तानामङ्कानां मीछने पञ्चविंशत्युचरशतद्वयं भवति । पं. ६. चउतीसं त्ति “चउ बारस अट्टु य दस हवंति” [पंक्ति
४] इतिगाथोक्तचतुःप्रभृतीनां मीछने ३४ भवति । पं. १२. इच्चैयम्मि इत्यादि । पं. १६. अन्ये तु— 5
धर्मापेक्षया अनन्ता भावाः प्रतिवस्त्रस्तिवत्प्रतिबद्धाः, कोऽर्थः—एकस्यैव वस्तुनोऽनुवृत्तिरूपाः [भावाः] धर्मा
अनन्ताः सन्ति, तदारम्भकाणामणूनामनन्तगुणकृष्णादिधर्मयुक्तत्वात् । अनन्ता अभावा प्रतिवस्तु नास्तिवत्प्रतिबद्धाः, एकस्यापि
वस्तुनैवैलोक्यव्यावृत्तत्वादिभ्यभावानामनन्तत्वम् । पं. २३. सिद्धा अनन्ताः निष्ठितार्था लोकान्तवर्तिनः । असिद्धास्तु
संसारिणस्तेऽप्यनन्ताः, असिद्धसर्वजीवराशेः सिद्धराशेपेक्षया अनन्तगुणव्यवस्थापनार्थमित्यर्थः ।

[पृष्ठ ९४]

10

पं. ५. उभयाग्रया पुनरिति सूत्रार्थोभयैर्विराष्य । पं. ६. अथवेत्यादि एतद्विराधनेयेति, आज्ञाऽकरणेनेत्यर्थः ।
पं. ९. वर्त्तमाने विशिष्टविराधका ये मनुष्यजीवास्तेषाम् । पं. १६. विद्वद्भ्यं त्ति व्यतिव्रजितवक्तः । पं. १७.
प्रत्युपनमूत्रे व्यतिव्रजन्ति व्यतिक्रामन्ति । विद्वद्भ्यं त्ति ‘व्यतिव्रजिष्यन्ति’ व्यतिक्रामिष्यन्तीत्यर्थः ।

[पृष्ठ ९५]

पं. ११. श्रुतज्ञानी दत्तोपयोग जानाति स्पष्टावभासिना श्रुतज्ञानेनावबुध्यते । पं. १२. मतिविशेषत इति, 15
तदुक्तम्—

अक्षरलभेण समा ऊगदहिया हुंति महविसेसेण । ते वि य मईविसेसा मुयनागण्भन्तरे जाण ॥१॥ [विरोधा. गा. १४३]
श्रुतज्ञानाश्रयास्ते इत्यर्थः ॥ पं. १८. आगमसन्त्य० गाहा । पूर्वेषु विशारदः विपश्चितो ‘धीराः’ व्रतानु-
पालनस्थिराः श्रुतज्ञानस्य लाभं ‘ब्रूवते’ प्रतिपादयन्ति । किं तत् ? इत्याह—“तं” त्ति तदेवाऽऽगमशास्त्रग्रहणम् । यत् किम् ?
इत्याह—यद् “बुद्धिगुणैः” वक्ष्यमाणस्वरूपैर्गृह्यमिदं शास्त्रे इत्यक्षरयोजना । अयमर्थः—शिक्ष्यते—शिक्ष्यते बोध्यते प्राणी अनेनेति 20
शास्त्रम्, तच्चाविशेषितं सामान्येन सर्वमपि मत्यादिज्ञानमुच्यते, सर्वेणापि ज्ञानेन जन्तूनां बोधनात् । अतो विशेषे स्थापयितुमाह—
आगमरूपं शास्त्रमगमशास्त्रम्, श्रुतज्ञानमित्यर्थः, तस्य ग्रहणं—गुरुसकाशादादानं तदेव श्रुतलाभं ब्रूवते, यद् बुद्धिगुणैर्गृह्यः
शास्त्रे गृह्यं, नान्यदिति, वक्ष्यमाणशुभ्रूपादिगुणाष्टकक्रमेणैव श्रुतज्ञान प्रादुर्भूय नान्ययेति तावर्थमिति गाथार्थः ॥ पं.
२०. सुसुद्धसु० गाहा । अथवा यद् यदाज्ञापयति कार्यजातं गुरुस्तत् तत् सम्यगनुग्रहं मन्यमान श्रोतुमिच्छति शुभ्रूपते ।
पूर्वनिरूपितश्च कार्यकरणकालं पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति । इत्थं चाऽऽगमधितस्य गुरोरन्तिके सूत्रं तदर्थं वा सम्यक् शृणोति । 25
श्रुतं चावग्रहेण गृह्णाति इत्यादि पूर्ववत् । यद्वा प्रतिपृष्टेन गुरुणा पुनरादिष्टश्च सन् तदचः सम्यक् शृणोति । श्रुतं चाऽवग्रहेण
सम्यक् गृह्णातीत्यादि तथैव, यावत् करोति च गुरुभणितं सम्यगिति । एवं गुवाराधनविषयत्वेनाष्टावपि गुणा व्याख्यायन्ते, श्रुता-
वाहो मूलोपायत्वाद् गुवाराधनाया इति गाथार्थः ॥

श्रीधनेश्वरसूरीणां पादपद्मोपजीविना । नन्दिवृत्तौ कृता व्याख्या श्रीमच्छ्रीचन्द्रसूरिणा ॥१॥

समाप्ता चेयं नन्द्याध्ययनटीकायां श्रीदीश्लभद्र-प्रभुश्रीधनेश्वरसूरिशिष्य-

श्री-श्रीचन्द्रसूरिविरचिता दुर्गपदव्याख्या ॥

से च नदी समचेति वचनादाचार्यपदस्थापनायामनुयोगानुज्ञाविषयेयं नन्दिरैतादृक्प्रमाणा समर्थितेति ॥

30



श्री-श्रीचन्द्रशिवनिर्मितटीकासमेता

लघुनन्दिः—अनुज्ञानन्दिः ।

इत ऊर्ध्वं से किं तमगुण्णा इत्यादि प्रथमद्वयतिर्या किलाऽपरा दृश्यते सूत्रपुस्तके सा गणानुज्ञाविषया लघुनन्दिरिति
5 सम्भाव्यते, अतोऽस्या अपि गमनिका काचिदुच्यते—

१. से किं तं अगुण्णा ? अगुण्णा छन्विहा पण्णात्ता, तं जहा—नामागुण्णा ? ठवणागुण्णा २
दृक्वागुण्णा ३ खेस्तागुण्णा ४ कालागुण्णा ५ भावागुण्णा ६ ।

१. तत्रानुज्ञानमनुज्ञा, 'समर्पितं सम्प्रति तव गण-गम्य-वक्त्र-पात्रादिकं सर्वं मयेति तवाऽऽयत्तमिदं सर्वं सम्प्रति' इत्येवंरूपे
गुरुवचनविशेषोऽनुज्ञोच्यते । अनुज्ञायते वाऽनयेति 'अनुज्ञा' गुरुक्तिरेव । सेशब्दोऽश्रयणार्थे, अथशब्दश्च वाक्योपन्यासायर्थः ।
10 अथ किरूपा साऽनुज्ञा ? अत्र प्रतिवचनम् - षड्विधा प्ररूपिता । तथथा-नामागुण्णेत्यादि । नाम-अभिधानं तद्रूपाऽनुज्ञा
नामानुज्ञा, अनुज्ञेति नामैव नामानुज्ञेत्यर्थः । अथवा नाम्ना-नाममात्रेण अनुज्ञा नामानुज्ञा, जीवादीत्यर्थः ॥ नामानुज्ञास्वरूप-
निरूपणायह—

२. से किं तं नामागुण्णा ? २ जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं
वा तद्दुभयस्स वा तद्दुभयाणं वा अगुण्णा सि णामं कीरइ । से सं णामागुण्णा ? ।

15 २. से किं तमिव्यादि । अत्र द्विकल्पणेनाङ्केन द्वितीयमपि नामागुण्णं सि पदं सूचितं द्रष्टव्यम्, एवमन्यत्रापि
यथासम्भवमभ्यूह्यम् । णमित्ति वाक्यालङ्कारे । 'यस्य' जीवा-जीवादिवस्तुनोऽनुज्ञेति नाम क्रियते तदेव जीवादिर्कं वस्तु नामानुज्ञा,
'नाम्ना-नाममात्रेणानुज्ञा नामानुज्ञा' इति व्युत्पत्त्या । वाशब्दः पक्षान्तरसूचकः, तत्र जीवस्य गो-सुतादेः कश्चित् स्वाभिप्रायवशाद्
अगुण्णं सि नाम करोति, एवं शेषेष्वपि, सेयं नामानुज्ञा ? ॥ इदानीं स्थापनानुज्ञोच्यते—

३. से किं तं ठवणागुण्णा ? ठवणागुण्णा जण्णं कट्ठकम्मं वा पोत्थकम्मं वा लेप्पकम्मं वा
20 चित्तकम्मं वा गंधिमे वा वेदिमे वा पूरिमे वा संघातिमे वा अक्खे वा वराडणं वा एगे वा अणेगे
वा सम्भावद्ववणाए वा असम्भावद्ववणाए वा अगुण्णा सि ठवणा ठविज्जति । से सं ठवणागुण्णा २ ।

३. से किं तमिव्यादि । अथ केयं स्थापनानुज्ञा / स्थापनानुज्ञा जण्णमित्यादि । तत्र स्थाप्यते—अमुक्तेऽयमित्यभिप्रायेण
क्रियते—निर्वैर्यत इति स्थापना काष्ठकर्मादिगताऽनुज्ञानामकवसाकाररूपा, ततः स्थापना च सा अनुज्ञा च स्थापनानुज्ञा, यत्
साकारमनाकारं वा तदभिप्रायेण क्रियते सा स्थापनेत्यर्थः । जण्णं ति, 'णं' पूर्ववत् । यत् काष्ठकर्मणि चित्रकर्मणि वा यावद्
25 वराटके वा एको वाऽनेके वा सद्भावस्थापनया वा असद्भावस्थापनया वा अगुण्णं सि अनुज्ञा-तद्वतोरभेदोपचाराद् तद्वानिह
गृह्यते ठवणा ठविज्जइ ति काष्ठकर्मादियु स्थापनारूपः 'स्थाप्यते' क्रियते, आहृत्या बहुवचनान्तत्वे स्थापनारूपाः 'स्थाप्यन्ते'
क्रियन्ते सेयं स्थापनानुज्ञेति भाविपदेन सम्बन्ध इति समुदायार्थः । अवयवार्थस्तु—क्रियत इति कर्म, काटे कर्म काष्ठकर्म,
काष्ठनिकुण्डितरूपकर्मैत्यर्थः । पोत्थकम्मं व ति अत्र पोत्थं—पीतं वज्रमित्यर्थः । तत्र कर्म—तत्पञ्चवनिष्पन्नं धीउल्लिकारूपमित्यर्थः,
अथवा पोत्थं—पुस्तकं तथैव सम्युत्तरूपं प्राणम्, तत्र कर्म तन्मध्ये वर्तिकालिखितं रूपकमित्यर्थः, अथवा पोत्थं—ताडीपत्रादि
30 तत्र कर्म तच्छेदनियन्त्रं रूपकम् । 'लेप्यकर्म' लेप्यरूपकम् । 'चित्रकर्म' चित्रलिखितं रूपकम् । 'प्रशिक्षं' कौशलतिराशाद्
प्रशिक्षसमुदायनिष्पादितरूपकम् । 'भेटिमं' पुष्पेष्टनक्रमेण निष्पन्नरूपम्, यद्वा एकं इचादीनि वा वज्राणि वेष्टयन् कश्चिद् रूप-

कमुत्थापयति तद् बेष्टिमम् । 'पुरिमं' मरिमं पित्तलादिमयप्रतिमावत् । 'सद्वात्मि' बहुवक्रादिसण्डसद्वात्तन्मिष्यं कञ्चुकवत् । 'अक्षः' चन्दनकः । 'बराटकः' कपर्दकः । बाधन्दाः पक्षान्तरसूचकाः । तत्र काष्ठकर्मदिश्याकारवती सद्वावस्थापना, अनुज्ञावदाकारस्य तत्र सद्वावात् ; अक्षादिबन्धाकारवती असद्वावस्थापना, आकारस्य तत्रासद्वावात् । सेयं स्थापनानुज्ञा २ ॥

४. गाम-उवघाणं को पतिबिसेसो ? गामं आवकहियं, उवघा इत्तरिया वा होजा आवकहिया वा ।

४. नाम-स्थापनयोः कः प्रतिविरोधः ? न कश्चित्, तथाहि—यथा जीवादावर्षेण्ये द्रव्यमात्रेऽनुज्ञेति नाम क्रियते तथैव तच्छून्ये काष्ठकर्मदौ द्रव्यमात्रे स्थापनाऽपि क्रियते, अतोऽनुज्ञाशब्दार्थेण्ये द्रव्यमात्रे उभयोः क्रियमाणत्वान्नानयोः कश्चिद् विरोधः । अत्रोत्तरमाह—नामं आवकहियमित्यादि, नाम 'यावकधिकं' स्वाश्रयद्रव्यस्यास्तित्वकथां यावदनुवर्तते, न पुनस्तदाऽप्युपसमते । स्थापना पुनः 'इवरा' स्वल्पकालभाविनी वा स्याद् यावकधिका वा, स्वाश्रयद्रव्येऽवतिष्ठमानेऽपि काचिदन्तराऽपि निवर्तते, काचित्सु तत्सत्तां यावदवतिष्ठत इति भावः ॥ सम्प्रति द्रव्यानुज्ञाव्याचिख्यासया प्रश्रयति—

५. से किं तं दन्वाणुण्णा ? २ दुविहा पण्णात्ता, तं जहा—आगमतो य णोआगमतो य ।

५. से किं तमिति । अथ केय द्रव्यानुज्ञा / इत्त द्रव्यानुज्ञा द्विविधा प्रज्ञा, तद्यथा । नमं द्रवति—गच्छति तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं—विवक्षितयोरतीत-अविष्यद्भावयोः कारणम्, अनुभूतविवक्षितभावं अनुभविष्यद्विवक्षितभावं वा वस्तित्वर्थः, द्रव्यं च तदनुज्ञा च द्रव्यानुज्ञा, अनुभूतानुज्ञाशब्दार्थपरिणामं अनुभविष्यदनुज्ञाशब्दार्थपरिणामं वा देहादीन्वर्थः । द्रव्यलक्षणं च सामान्यत इदम्—

भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद् द्रव्यं तवज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम् ॥ १ ॥ []

प्रागेव व्याख्यातेयं नन्दिशब्दार्थप्रस्तावे [पत्र ९९] । तत्रागमतो नोआगमतश्चेति, आगमतोऽत्रानुज्ञाशब्दार्थपरिज्ञानमेव, नोआगमतस्तु अनुज्ञाशब्दार्थपरिज्ञानरहितता ॥

६. से किं तं आगमतो दन्वाणुण्णा ? आगमतो दन्वाणुण्णा जस्स णं अणुण्ण स्ति पदं सिक्खियं ठितं जितं मितं परिजितं गामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणक्खरं अन्वाहद्धक्खरं अण्वलियं अमिलियं अविच्चाभेलियं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोडुबिप्पसुक्कं गुरुवापणोवगयं । से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए भम्मकहाए, नो अणुप्पेहाए, कम्हा ? "अणुवओगो दन्व"मिति कट्ठु । णेगमस्स एगो अणुवउत्ते आगमतो एगा दन्वाणुण्णा, दोणिण अणुवउत्ता आगमतो दोणिण दन्वाणुण्णाओ, एवं जावतिया अणुवउत्ता तावतियाओ दन्वाणुण्णाओ । एवमेव ववहास्स वि । संगहस्स एगो वा अणेगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दन्वाणुण्णा दन्वाणुण्णाओ वा सा एगा दन्वाणुण्णा । उज्जुसुअस्स एगो अणुवउत्ते आगमतो एगा दन्वाणुण्णा पुहसं नेच्छह । तिण्हं सट्ठणयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कम्हा ? जति जाणए अणुवउत्ते ण भवति । से सं आगमतो दन्वाणुण्णा ।

६. अथ केयमागमतो द्रव्यानुज्ञा ? अत्रोत्तरम्—आगमतो द्रव्यानुज्ञा जस्स णमित्यादि । णं वाक्यालङ्कारे, 'यस्य' कस्यचिदनुज्ञापदं अनुज्ञापदविषया व्युत्पत्तिरित्यर्थः ; शिक्षितं जितं यावद् वाचनोपगतं भवति । 'सः' ञत्तु 'तत्र' अनुज्ञापदेऽनु- 30
प्रश्नार्जशेषवाचनादिभिर्वर्चमानोऽप्यनुज्ञापदाद्योपयोगेऽवर्चमानः 'आगमतः' आगममाश्रित्य द्रव्यानुज्ञेति समुदायार्थः ।

- तत्रादित आरभ्य पठनक्रियया यदत्तं नीतं तच्छिक्षितमुच्यते । इहानुज्ञापदस्य प्रकृतत्वेऽपि तदितरशास्त्रविषये शिक्षितादि-
 पदानामर्थो व्याख्येयः ; तदनुसारेणानुज्ञापदेऽपि तथा बोध्यः । ट्टियं ति पठनक्रियया यदत्तं नीतं तदेवाभिरणतश्चेतसि स्थितत्वात्
 स्थितम्, अप्रच्युतमित्यर्थः । परावर्त्तनं कुर्वतः परेण वा क्वचित् पृष्ठस्य यच्छ्रीभ्रमागच्छति तज्जितम् । विज्ञातश्लोक-पद-वर्णादिसङ्घो
 5 मितम् । परि-समन्तात् सर्वप्रकारैर्जितं-परावर्त्तनं कुर्वतो यत् क्रमेणोक्तमेव वा समागच्छतीत्यर्थः । नाम-अभिधानं तेन समं
 नामसमम् । इदमुक्तं भवति—यथा स्वानाम कस्यचिच्छिक्षितं स्थितं जितं मितं परिजितं भवति तथैतदपीत्यर्थः । घोषाः—उदात्ता-
 दयस्तैर्वाचनार्थाभिहितघोषैः समं घोषसमम्, यथा गुरुणा अभिहिता घोषास्तथा शिष्योऽपि यत्र शिक्षते तद् घोषसममिति
 भावः । एक-द्वयादिभिरक्षरैर्हीनं हीनाक्षरम्, न तथा अहीनाक्षरम् । एकादिभिरक्षरैरधिकमन्यक्षरम्, न तथा अनन्यक्षरम् ।
 अन्वाइद्धक्त्वरं ति विपर्यस्तरत्नमालागतत्त्वानीव व्याविद्धानि—विपर्यस्तान्यक्षराणि यत्र तद् व्याविद्वाक्षरम्, [न तथा
 अव्याविद्वाक्षरम्] । अन्वाइद्धमिति क्वचित् पाठः; तत्रापि व्याविद्वाक्षरयोगाद् व्याविद्धम्, न तथा अन्याविद्धम् । उपलशकल-
 10 शाकलभ्रमो लोहलमिव स्वलति यत् तत् स्वलितम्, न तथाऽस्वलितम् । अनेकशालसम्बन्धीनि मृत्राण्येकत्र मीलयित्वा यत्र
 पठति तद् मिलितम्, असदृशान्यमेलकवत्, अथवा परावर्त्तमानस्य यत्र पदादिविच्छेदो न प्रतीयते तद् मिलितम्, न तथाऽ-
 मिलितम् । एकस्मिन्नेव शालेऽन्यान्यस्थाननिबद्धानि एकार्थानि मृत्राण्येकत्र स्थाने समानीय पठतो व्यत्याघ्रेडितम्, अथवा
 आचारादिमूलमप्ये स्वमतिचर्चितानि तसदृशानि मृत्राणि कृत्वा प्रक्षिपतो व्यत्याघ्रेडितम्, अस्थानविरिक्तं वा व्यत्याघ्रेडितम्,
 न तथाऽव्यत्याघ्रेडितम् । सूत्रतो बिन्दु-मात्रादिभिरन्यूनमर्थतत्त्वव्याहारा ऽऽकाङ्क्षादिर्घटितं प्रतिपूर्णम् । उदानादिघोषैरविकलं प्रति-
 15 पूर्णघोषम् । अत्राह—घोषसममित्युक्तमेव तत् क इह विशेषः ‘ इति, उच्यते—घोषसममिति शिवाकालमभिहित्युक्तम्, प्रतिपूर्णघोषं
 तु परावर्त्तनादिकालमधिकृत्येति विशेषः । कण्ठश्च ओष्ठश्च कण्ठीष्टमिति, प्राण्यङ्गत्वात् समाहारः; तेन विप्रमुक्तं कण्ठीष्टविप्रमुक्तम्,
 बाल-मूकभाषितवद् यदव्यक्तं न भवतीत्यर्थः । गुरुप्रदत्तया वाचनया उपगतं—प्राप्तं गुरुवाचनोपगतम्, न तु कर्णाघातकेन
 शिक्षितं न वा पुस्तकात् स्वयमेवाधीतमिति भावः । तदेवं यस्य जन्तोरनुज्ञेति पदं शिक्षितादिगुणोपेतं भवति स जन्तुः ‘तत्र’ पदे
 ‘वाचनया’ शिष्याध्यापनलक्षणया ‘प्रच्छनया’ अर्हे न जगताथदिर्गुहं प्रति प्रश्नलक्षणया ‘परावर्त्तनया’ पुनः पुनः सूत्रार्थाभ्यास-
 20 लक्षणया ‘धर्मकथया’ अर्हिसादिधर्मप्ररूपणस्वरूपया वर्त्तमानोऽप्यनुपयुक्तत्वादिति साध्याहारभागमतो द्रव्यानुज्ञेयनेन सम्बन्धः ।
 ननु यथा वाचनादिभिस्तत्र वर्त्तमानोऽपि द्रव्यानुज्ञा भवति तथाऽनुप्रेक्षयाऽपि तत्र वर्त्तमानः सा भवति! केत्याह—**नो
 अनुपपेहा** ऽत्ति ‘अनुप्रेक्षया’ अर्थानुचित्तरूपया तत्र वर्त्तमानो न द्रव्यानुज्ञेयर्थः; अनुप्रेक्षया उपयोगमन्तरेणाभावादुपयुक्तस्य च
 द्रव्यानुज्ञात्वायोगादिति भावः । अत्राह परः—**कः** इति ननु कस्माद् वाचनादिभिस्तत्र वर्त्तमानोऽपि द्रव्यानुज्ञा! कस्माच्चानुप्रेक्षया
 तत्र वर्त्तमानोऽपि न तथा ‘ इति प्रच्छकभिप्रायः । एवं पृष्टे सत्याह—**अणुक्त्रओगो द्ववमिति कट्टु** ऽत्ति ‘अनुपयोगो द्रव्यमिति
 25 कृत्वा’ उपयोजनमुपयोगः—जीवस्य बोधरूपो व्यापारः, स चेह विवक्षितार्थे चित्तस्य विनिवेशस्वरूपो गृह्यते, न विद्यते उपयोगो
 यत्र सोऽनुपयोगः पदार्थः, स विवक्षितोपयोगस्य कारणमात्रवाद, द्रव्यमेव भवति ‘इति कृत्वा’ अस्मात् कारणदानन्तरोक्तमुपपद्यत
 इति शेषः । एतदुक्तं भवति—उपयोगपूर्वका अनुपयोगपूर्वकाश्च वाचना-प्रच्छान्दयः सम्बन्धयेव, तत्रेह द्रव्यानुज्ञाचिन्ता-
 प्रस्तावादानुपयोगपूर्वकाः गृह्यन्ते । इह जिनमते सर्वमापि सूत्रमर्थश्च श्रोतृजनमपेक्ष्य नयैर्विचार्यते,

नित्य नर्हि विहृणं सुतं अथो य जिणमए किंचि । आसज्ज उ सोयारं नए नयविसारओ बूया ॥१॥ []

- 30 इति वचनात्, अत इयमपि द्रव्यानुज्ञा नयैश्चित्यते । ते च मूलभेदमाश्रित्य नैगमादयः सप्त । तदुक्तम्—

नेगम संगह बवहार उजुसुए चेव होति बोधने । सदे य समभिरूढे एवंभूते य मूलनया ॥ १ ॥ []

तत्र नैगमस्तावत् कियत्यो द्रव्यानुज्ञा इच्छति / इत्याह—नेगमस्सेत्यादि सामान्य-विशेषादिकारणेण नैकोऽपि तु बहवो

गमाः—वस्तुपरिच्छेदा यस्यासौ निरुक्तविधिना ककारस्य लोपाद् नैगमः, सामान्य-विशेषादिप्रकारैर्बहु रूपवस्त्वप्युपगमपर इत्यर्थः । तस्य नैगमस्यैको देवदत्तादिरनुज्ञाशब्दार्थज्ञोऽनुपयुक्त आगमत एका द्रव्यानुज्ञा, द्वौ देवदत्त-यज्ञदत्तावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे द्रव्यानुज्ञे, त्रयो देवदत्त-यज्ञदत्त-सोमदत्ता अनुपयुक्ता आगमतस्ति लो द्रव्यानुज्ञाः, किं बहुना / एवं यावन्तो देवदत्तादयोऽनुपयुक्तास्ताक्य एव ता अतीतादिकालत्रयवर्तिक्यो नैगमतो द्रव्यानुज्ञा इति, न पुनः सप्रभवत् सामान्यवादिवादेकैवेति भावः । एवमेव बवहारस्स त्रिं ति व्यवहरणं व्यवहारः—लौकिकप्रवृत्तिरूपः, तत्प्रधानो नयोऽपि व्यवहारः, तस्यापि 'एवमेव' नैगमवदको देव- 5 दत्तादिरनुपयुक्त आगमत एका द्रव्यानुज्ञा इत्यादि सर्वं वाच्यम् । इदमुक्तं भवति—व्यवहारस्य लोकाव्यवहारोपकारिण एव पदार्थान्शुपगच्छति, न शेषान्, लोकव्यवहारे च जलाहरण-त्रगपिण्डीप्रदानादिके घट-निम्बादिविशेषा एवोपकुर्वाणा दृश्यन्ते न पुनस्तदतिरिक्तं तत् सामान्यमिति विशेषानेव वस्तुसत्त्वेन प्रतिपद्यते असौ न सामान्यम्, व्यवहारानुपकारिवाद् विशेष-व्यतिरिक्तानुपलभ्यमानवाच्येत्यतो विशेषवादिनैगममतसाम्येनातिदिष्टः । अत्र चान्तिदेशेनैवेदार्थसिद्धेरेष्वथलापवार्थे सङ्ग्रह-मनिक्रम्य व्यवहारोपन्यासः कृत इति भावनीयम् । संग्रहस्येत्यादि सर्वमपि भुवनत्रयान्तर्गतं वस्तुनिकूलम् सङ्गृह्णाति—सामान्य- 10 रूपतयाऽव्यवस्थतीति सङ्ग्रहः तस्य मते एको वाऽनेके वाऽनुपयुक्तो वाऽनुपयुक्ता वा यदागमत एका द्रव्यानुज्ञा बह्व्यो वा तत् किम् / इत्याह—से एगे ति सेयमेका द्रव्यानुज्ञा । इदमत्र हृदयम्- सङ्ग्रहनयः सामान्यमेवाशुपगच्छति न विशेषान्, अभिदधाति च—सामान्याद् विशेषा व्यतिरिक्ता वा स्युः / अव्यतिरिक्ता वा । यथायः पक्षः तर्हि न सत्यमी, निःसामान्यत्वात्, स्व-विषाणवन् । अथापरः पक्षः तर्हि सामान्यमेव ते, तदव्यतिरिक्तत्वात्, सामान्यस्वरूपवत् । तस्मात् सामान्यव्यतिरिक्तं विशेषा-सिद्धेयो काश्चन द्रव्यानुज्ञास्ताः तस्सामान्याव्यतिरिक्तत्वादेकैव संग्रहस्य द्रव्यानुज्ञेति । उज्जुसुप्यस्सेत्यादि ऋजु—अतीता-ऽना- 15 गत-परकीयपरिहारेण प्राज्ञत्वं वस्तु सूचयानि—अनुपगच्छतीति ऋजुसूत्रं । अयं हि वर्तमानकालमाभ्येव वस्तु अनुपगच्छति, नातीतम् विनष्टत्वाद्, नाप्यनागतम् अनुपगच्छत्वात् । वर्तमानकालमाभ्यपि स्वकीयमेव मन्यते, स्वकार्यसाधकत्वात्, स्वधनवत् ; परकीयं तु नेच्छति, स्वकार्यप्रासाधकत्वात्, परधनवत् । तस्मादको देवदत्तादिरनुपयुक्तोऽस्य मते आगमत एका द्रव्यानुज्ञाऽस्ति । पुहचं नेच्छद् ति अतीता-ऽनागतभेदतः परकीयभेदतश्च 'पृथक्त्वं' प्रार्थक्यं नेच्छत्यसौ, किं तर्हि / वर्त्तमानकालीनं स्वगतमेव वाऽशुपेति, तत्रैकमेवेति भावः । तिष्ठं सङ्गनयाणभित्यादि शब्दप्रधाना नयाः शब्दनयाः शब्द-समभिरूढैवन्मृताः, ते हि शब्दं प्रधानमिच्छन्ति 20 अर्थं तु गौगम्, शब्दवशेनैवार्थप्रतीतेः । तेषां त्रयाणां शब्दनयानां ज्ञायकोऽथ चानुपयुक्त इत्येतद्वस्तु, न सम्भवतीदमित्यर्थः । कम्ह ति कस्मादेवमुच्यते / इत्याह—यदि ज्ञायकस्त्वानुपयुक्तो न भवति, ज्ञानस्थोपयोगरूपत्वात् । इदमत्र हृदयम्—अनुज्ञापदार्थज्ञ-स्तर चानुपयुक्त आगमतो द्रव्यानुज्ञेति प्राग् निर्गतम्, एतन्नामी न प्रतिपद्यते, यतो यजनुज्ञापदार्थं जानाति कथमनुपयुक्तः ? अनुपयुक्तश्चेत् कथं जानाति / तस्योपयोगरूपत्वात् । सेयमागमतो द्रव्यानुज्ञा ॥ उक्ता आगमतो द्रव्यानुज्ञा । सन्प्रति नोऽवागमतः सोच्यते —

25

७. से किं तं णोआगमतो द्रवाणुण्णा ? णोआगमतो द्रवाणुण्णा तिचिहा पण्णा— जाणगसरीरद्रवाणुण्णा भवियसरीरद्रवाणुण्णा जाणगसरीर-भवियसरीरवतिरिक्ता द्रवाणुण्णा ।

७. से किं तमियादि । नोशब्देऽत्रागमस्य सर्वनिषेधे वर्तते, आगमश्च परिज्ञानम्, अनुज्ञापदार्थव्रगम इत्यर्थः, तत् आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यानुज्ञा त्रिविधा प्रज्ञा । तद्यथा—ज्ञशरीरद्रव्यानुज्ञा भव्यशरीरद्रव्यानुज्ञा ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्यानुज्ञेति ॥ तत्रापामाह—

30

८. से किं तं जाणगसरीरद्रवाणुण्णा ? जाणगसरीरद्रवाणुण्णा 'अणुण्ण'त्तिपदस्थाहिगा- रजाणगस्स जं सरीरगं ववगयचुतवतिपयस्सदेहं जीवविष्पजं सित्जागयं वा संथारगयं वा निस्ती-

इत्यागयं वा सिद्धिसिलातलगतं वा अहो णं इमेणं सररीरसमुस्सएणं 'अणुण'त्ति पेयं आघविंयं पण्णविंयं परस्विंयं दंसिंयं णिदंसिंयं उवदंसिंयं, जहा को दिहंतो? अयं घयकुंभे आसी, अयं महुकुंभे आसी । से सं जाणगसररीरदव्वाणुण्णा ।

८. से त्ति अथ केयं जगरीरद्रव्यानुज्जा ? उच्यते—अणुञ्च त्ति इत्यादि, ज्ञातवानिति ज्ञः तस्य गरीरं—देहो जगरीरं तदेवानुभूतभावत्वाद् द्रव्यानुज्जा । यच्चरीरकं द्रव्यानुज्जा तत् कस्य सम्बन्धि / इत्याह—अनुज्जेति यत् पदं तस्य योऽसावधोषकारः—अर्थघटनव्युत्पत्तिरूपः तं ज्ञातवतः सम्बन्धि । कथम्भूतं सदिदं जगरीरं द्रव्यानुज्जा भवति / इत्याह—व्यपगतच्युतभ्यावितन्यक्तदेहं जीवविप्रमुक्तमित्यक्षरघटना । तत्र व्यपगतं—चैतन्यपर्यायाद्चैतन्यलक्षणं पर्यायान्तरं प्राप्तम्; अत एव च्युतं—उच्छ्वास-निःश्वास-जौकनादिदशविधप्राणेश्च; परिच्छेदम् अचेतनस्योच्छ्वासासद्योगात्; प्राणेश्च स्वभावतो न परिच्छेदं किन्तु स्यावितं—बलीयसा आयुःक्षयेण तेभ्यः परिच्छेदितम् । एवं च सति कथम्भूतं तत् / इत्याह—त्यक्तदेहं—“दिह उपचये” त्यक्तो देहः—आहारपरिणति-
 10 जनित उपचयो येन तत् त्यक्तदेहम्, अचेतनस्याहारग्रहण-परिणायोरभावात् । एवं प्रदर्शितविधिना जीवेन—आत्मना विविधम्—अनेकधा प्रकर्षेण मुक्तं जीवविप्रमुक्तम् । तदेतदनुज्जापदार्थज्ञस्य गरीरकमतीतानुज्जाभावस्य कारणत्वाद् द्रव्यानुज्जा, नोआत्मत्वं चास्यास्तदानांमागमस्य सर्वथाऽभावात् । भूयः कथम्भूतं शरीरकम् / इत्याह—सेजागयं वेद्यादि शय्या—महती सर्वाङ्गप्रमाणा तां गतं शय्यास्थितमित्यर्थः । संस्तारः—अर्द्धतृतीयहस्तमानसं गतं तत्रस्थम् । नैपेधिकी—शब्दपरिरक्षणनभूमिस्तां गतं—प्राप्तम् । यत्र महर्षिः कश्चित् सिद्धस्तत् सिद्धशिलातलं तद्वत् तत्र स्थितमिति । भक्तपरिज्ञाथनशानप्रतिपत्तिभूमिवां सिद्धशिलातलं तद्वत् । अहो
 15 णमिति अहोशब्दो अन्यथाचैरिथतामन्त्रेण, 'अनेन' प्रत्यक्षतया दृश्यमानेन शरीरमेव पुद्गलसङ्घातत्वात् समुच्छ्रयस्तेन अनुज्जेति पदं 'आघविंयं'ति छान्दसत्वाद् सुरोः सकाशादागृहीतं तदावरणकर्मक्षयोपशमात्, 'प्रज्ञापितं' अन्येभ्यः कथितम्, 'परूपित' तेभ्य एव तदर्थकथनतः. 'दंसिंयं' सान्बयोऽयं शब्दो न तु मण्डपादिवन्निम्बय इत्येवं शिष्येभ्यः प्रकटितम्, 'निदंसिंयं' परस्य कथञ्चिद्-गृह्यतः परयाऽनुकम्पया निश्चयेन पुनः पुनर्निवेदितम्, 'उपदंसिंयं' पुनः पुनः स्मरणतः । आह—नन्वनेन शरीरममुच्छ्रयेणाऽनुज्जा-पदमागृहीतमित्यादि नोपपद्यते, ग्रहण-प्ररूपणादीनां जीवधर्मत्वेन शरीरस्याघटमानकत्वात्, सायम्, किन्तु भूतपूर्वगत्या जीव-
 20 शरीरयोरभेदोपचारादित्यमुपन्यास इत्यदोषः । यथा कोऽत्र दृष्टान्तः. ' इति पृष्टे सत्याह—यथा अयमित्यादि । एतदुक्तं भवति—यथा घृते मधुनि वा प्रक्षिप्यापनीते तदाधारवपर्यायेऽतिक्रान्तेऽपि अयं घृतकुम्भ इत्यादि व्यपदेशो लोके प्रवर्तते तथाऽनुज्जा-पदार्थवैतृत्वपर्यायेऽतिक्रान्तेऽप्यनीतपर्यायानुज्जया द्रव्यानुज्जेयमुच्यते । इतीयं जगरीरद्रव्यानुज्जा ॥

९. से किं तं भवियसररीरदव्वाणुण्णा ? भवियसररीरदव्वाणुण्णा जे जीवे जम्मणजोणीणि-क्खन्ते इमेणं चैव सररीरसमुस्सएणं आदत्तेणं जिणदिट्ठेणं भावेणं 'अणुण'त्ति पेयं सेयकाले
 25 सिक्खिस्सह, न ताव सिक्खह । जहा को दिहंतो? अयं घयकुंभे भविस्सति, अयं महुकुंभे भविस्सति । से सं भवियसररीरदव्वाणुण्णा ।

९. अथ केयं भवियशरीरद्रव्यानुज्जा / इति पृष्टे सत्याह—जे जीवे इत्यादि विवक्षितपर्यायेण भविष्यतीति भव्यः—विवक्षित-पर्यायाहः तद्योष इत्यर्थः तस्य शरीरं तदेव भाविभावानुज्जापदार्थवैतृत्वकारणत्वाद् द्रव्यानुज्जा भव्यशरीरद्रव्यानुज्जा । किं पुनस्तत् / इत्युच्यते—यो जीवो योनीजन्मत्वनिष्कान्तोऽनेनैव शरीरसमुच्छ्रयेण 'आसेन' गृहीतेन 'जितदष्टेन' तीर्थकरामितमेतन् 'भावेन'
 30 तदावरणकर्मक्षयोपशमलक्षणेनानुज्जेति पदमागामिनि काले शिक्षिष्यते न तावच्छिद्यते तद् जीवाधिष्ठितं शरीरं भव्यशरीरद्रव्यानुज्जेति समुदायार्थः । अवयवार्थस्तु—यः कश्चिद् 'जीवः' जन्तुः योग्याः—योषिदवाप्यदेशलक्षणायाः परिपूर्णसमस्तदेहो जन्मत्वेन—जन्म-

समयेन निष्कान्तः, न पुनरागमगर्वस्य एव पतितो येनिजन्मवनिष्कान्तः, अनेनैव शरीरेव पुनरुत्सहातत्वाद्दुःखसमयादारम्भ
प्रतिसमयं समुत्सर्षणाद्वा समुच्छ्रयस्तेन 'आचेन' आगृह्णतेन प्राकृतशैलीवशादात्मीयेन वा त्रिनोपदिष्टेनेत्यादि पूर्ववत् सेयकाळे ति
छन्दसत्वादागामिनि काळे 'शिक्षिष्यते' अध्येष्यते साम्प्रतं तु न तावदप्यापि शिक्षते तद् जीवाभिहितं शरीरं द्रव्यानुज्ञा । नोआगमगर्व
चात्राप्यागमाभावमाश्रित्य मन्तव्यम्, तदानीं तत्र वपुष्यागमाभावाद् नोदम्भस्य चात्रापि सर्वनिषेधवचनत्वादिति । यथा क्रोऽत्र
दृष्टान्तः ! इति निर्बचनमाह—यथाऽयं घृतकुम्भो भविष्यतीत्यादि । एतदुक्तं भवति—यथा घृते मधुनि वा प्रसेतुमिष्टे तदा-
भारवपयाये भविष्यत्यपि लोके अयं घृतकुम्भो मधुकुम्भो केयादिव्यपदेशो दृश्यते तथाऽप्यायनुज्ञापदाश्रित्वैतवपयाये भविष्यत्यपि
तदस्तिवपरनयाऽमुवृत्त्या द्रव्यानुज्ञेयमुच्यते इति भावः । निगमयनाह—से चम्कियादि तदेतद् भव्यशरीरद्रव्यानुज्ञेति ॥

उक्तो नोआगमतो द्रव्यानुज्ञाद्वितीयभेदः । तृतीयभेदतिरूपणार्थमाह—

१०. से किं तं जाणगसरीर-भविष्यसरीरवतिरिक्ता द्रव्याणुण्णा ? जाणगसरीर-भविष्यसरीर-
वतिरिक्ता द्रव्याणुण्णा तिचिहा पण्णत्ता, तं जहा—लोहया कुप्पावयणिया लोउत्तरिया य । 10

१०. से किं तमियादि । यत्र ज्वरार-भव्यशरीरयोः सम्बन्धि पूर्वोक्तं लक्षणं न घटने तत्र आभ्यां व्यतिरिक्ता—भिन्ना
द्रव्यानुज्ञोच्यते । सा च त्रिविधा प्रज्ञा, तद्यथा—जैकिकी कुप्रावचनिकी लोकोत्तरिकी च ॥ तत्र प्रथमभेदं जिज्ञासुराह—

११. से किं तं लोहया० द्रव्याणुण्णा ? लोहया० द्रव्याणुण्णा तिचिहा पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चित्ता अच्चित्ता मीसिया ।

१२. से किं तं सच्चित्ता० ? सच्चित्ता० से जहाणामए राया इ वा जुवराया इ वा ईसरे इ 15
वा तलवरे इ वा कोडुविए इ वा माडविए इ वा इम्मे इ वा सेट्टी इ वा सत्थवाहे इ वा सेणावई
इ वा कस्सइ कर्हिह कारणे तुट्ठे समाणे आसं वा हत्थि वा उट्ठं वा गोणं वा खरं वा घोडयं वा एलयं
वा अयं वा दासं वा दासिं वा अणुजाणेज्जा । से तं सच्चित्ता० ।

११-१२. से किं तमियादि सुगमम् । नवं 'राजा' चक्रवर्ती वामुदेवो बलदेवो महामाण्डलिकश्च । 'ईश्वरः' युवराजः
राज्ञो द्वितीयस्थानवर्ती सामान्यमाण्डलिकोऽप्यायश्च । अन्ये तु व्याचक्षते—अग्निमावष्टविषैर्ब्रह्मयुक्तं ईश्वरः । परितुष्टनरपति- 20
प्रदत्तरत्नालङ्कृतसौवर्णपट्टविभूषितकिरास्तलवारः । यस्य पार्श्वत आसनमपरं प्राम-नगरादिकं नास्ति तत् सर्वतन्त्रिजं जनाश्रय-
विशेषरूपं महम्मस्युच्यते, तस्याऽधिपतिर्मांडलिकः । कतिपयकुटुम्बप्रभुः कौटुम्बिकः । इमः—हस्ती तत्प्रमाणं द्रव्यमहतीतीभ्यः,
यस्य सत्कपुञ्जीकृतहिरण्य-स्नादिवद्रव्येणान्तरितो हस्यपि न दृश्यते सोऽधिकतरद्रव्यो वा इभ्य इत्यर्थः । श्रीदेवताभ्यामितसौवर्ण-
पट्टविभूषितोत्तमाह्नः पुरव्येष्टो वाणिर्विशेषः श्रेष्ठी । हस्यश्च-रथ-पदातिसमुदायलक्षणगायाः सेनायाः प्रभुः सेनापतिः ।

"गणिमं धरिमं मेजं पारिकं चैव दव्वजायं तु । वेत्तुणं लाम्बी ववति जो अनदेसं तु ॥ १ ॥

25

निवबहुमभो पसिद्धो दीणा-ऽणाहाण वच्छलो पंथे । सो सत्थवाहनामं धणो व्व लोए समुव्वइह ॥ २ ॥"

एतल्लक्षणयुक्तः सार्थवाहः । एतदन्यतरः कश्चिद् राजादिः कश्चिद् व्यतिकरे कस्यचित् तुष्टः सन्नबादिकं परिभोगायानु-
जानीयात् सेयं सच्चित्तानुज्ञा ॥

१३. से किं तं अच्चित्ता० ? अच्चित्ता० से जहाणामए राया नि वा जुवराया इ वा ईसरे
इ वा तलवरे इ वा कोडुविए इ वा माडविए इ वा इम्मे इ वा सत्थवाहे इ वा सेट्टी इ वा सेणावई 30

१ वा माडविए १ वा कोडुविए इ वा इम्मे इ वा सत्थवाहे इ वा सेट्टी इ वा सेणावई जे० ॥ २ वा आलयं
वा बालयं वा अयं वा जे० ॥ ३ वा बालयं वा दासं जे० ॥ ४ राया ति वा आप सत्थवाहे ति वा कस्सइ जे० ॥

इ वा कस्सइ कम्हि कारणे तुट्ठे समाणे आसणं वा सयणं वा छत्तं वा चामरं वा पंडगं वा मउडं वा हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणमादीयं संतसार-सावदिज्जं अणुजाणिज्जा । से सं अचिच्चा० दंब्वाणुणा ।

१३. यदा राजादिरेव छत्र-चामरादि अनुजानीयात् कस्यचित् सेयमचित्तानुज्ञा । नवरं कंसं व त्ति 'कांस्यं' कांस्य-
5 पात्र्यादिकम् । मणयः—चन्द्रकान्ताषाः । मौक्तिकानि शङ्खाश्च प्रसिद्धाः । श्रीप्रवालं—वर्णादिगुणोपेतं विद्रुमम् । रत्तरयणं—रत्नरत्नं पद्मरागादिकम् । संसारं—शोभनसारं शू(रस्थ)ळ्मण्यादिकम् । स्वापतेयं—रिक्थजातम् ॥

१४. से किं तं मीसिया० दंब्वाणुणा ? मीसिया० दंब्वाणुणा से जहाणामए राया ति वा जुवराया ति वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा कोडुंविण इ वा माडंविण इ वा इब्भे ति वा सेटी ति वा सेणावती ति वा सत्थवाहे ति वा कस्सइ कम्हि कारणे तुट्ठे समाणे हत्थि वा सुहभंडगमंडियं,
10 आसं वा धासग-चामरमंडियं, सकडगं दासं वा, दासिं वा सव्वालंकारविभूसियं अणुजाणिज्जा । से सं मीसिया० दंब्वाणुणा । से सं लोहया० दंब्वाणुणा ।

१४. हस्त्यादिकं सुखाभरणाथलङ्कृतम्, अथ वा स्थासकः—आदर्शकः चामरं च तन्मण्डितकटीकम्, दासः—स्वदासी-
सुतः, दासी—कर्मकरी रूपादिगुणाश्रिता तां सर्वान्द्वारविभूषितां कृत्वा 'अनुजानीयात्' समर्पयेत् कस्मिंश्चिद् राजादिस्तुष्टु सन् सेयं मिश्रिकी लौकिकी द्रव्यानुज्ञा, हस्त्यादेः सचेतनत्वाद् आभरणादेरचेतनत्वाद् उभययोगे मिश्रद्रव्यता ॥

- 15 १५. से किं तं कुप्पावयणिया० दंब्वाणुणा ? कुप्पावयणिया० दंब्वाणुणा तिचिच्चा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता अचित्ता मीसिया ।

१६. से किं तं सचित्ता० ? सचित्ता० से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्जाए इ वा कस्सइ कम्हि कारणे तुट्ठे समाणे आसं वा हत्थि वा उट्टं वा गौणं वा म्वरं वा घोडं वा अयं वा एलगं वा दासं वा दासिं वा अणुजाणिज्जा । से सं सचित्ता कुप्पावयणिया० दंब्वाणुणा ।

- 20 १७. से किं तं अचित्ता० ? अचित्ता० से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्जाए इ वा कस्सइ कम्हि कारणे तुट्ठे समाणे आसणं वा सयणं वा छत्तं वा चामरं वा पण्डं वा मउडं वा हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणमादीयं संतसार-सावएज्जं अणुजाणिज्जा । से सं अचित्ता कुप्पावयणिया० दंब्वाणुणा ।

१८. से किं तं मीसिया० दंब्वाणुणा ? मीसिया० दंब्वाणुणा से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्जाए इ वा कस्सइ कम्हि कारणे तुट्ठे समाणे हत्थि वा सुहभंडगमंडियं, आसं वा धासग-
25 चामरमंडियं, सकडगं दासं वा, दासिं वा सव्वालंकारविभूसियं अणुजाणिज्जा । से सं मीसिया कुप्पावयणिया दंब्वाणुणा । से सं कुप्पावयणिया० दंब्वाणुणा ।

१ पण्डं वा म' डे० ॥ २ दंब्वाणुणा इति ल०पुस्तके नास्ति ॥ ३ वा जाव तुट्ठे समाणे ल० ॥ ४ वा जाव दासिं वा ल० ॥ ५ घोडयं वा वल्लयं वा दासं ल० ॥ ६ वा वल्लयं वा दासं जे० ॥ ७,१० कुप्पावयणिया दंब्वाणुणा इति पाठो ल०पुस्तके नास्ति ॥ ८ वा जाव तुट्ठे समाणे आसणं वा सयणं वा जाव संतसारं विज्जं वा अणुजा' ल० ॥ ९ वा वासं वा मणि' ल० ॥ ११-१२ दंब्वाणुणा इति जे०पुस्तके नास्ति ॥ १३ इ वा जाव तुट्ठे समाणे हत्थि वा सुहभंडगमंडियं जाव दासिं वा अणुजा' ल० ॥

१५-१६. कुप्रावचनिक्यां आयरिर् इति 'आचार्यः' दर्शानन्तरीयो भिजातीयदिः 'उपाध्यायः' गीत-नृतादिकलाशिक्षयिता यदा तुष्टः सन्नभादिकमनुजानीयात् तदा कुप्रावचनिकी सचित्द्रव्यानुज्ञा ॥

१७. स एव यदा 'आसनं' आसन्दकादि 'शयनं' खट्वादि अनुजानीयात् तदाऽचित्द्रव्यानुज्ञा ॥

१८. स एवाश्वाचारमणाथलङ्कृतं यदाऽनुजानीते तदा मिश्रिकी द्रव्यानुज्ञा ॥

१९. से किं तं लोउत्तरिया० द्वाणुण्णा ? लोउत्तरिया० द्वाणुण्णा तिविहा पण्णा, 5
तं जहा—सचित्ता अचित्ता मीसिया ।

२०. से किं तं सचित्ता० ? सचित्ता० से जहाणामए आयरिर् इ वा उवज्जाए इ वा येरे इ वा पवत्ती इ वा गणी इ वा गणहरे इ वा गणावच्छेयए इ वा सीसस्स वा सिस्सिणीए वा कम्हिय कारणे तुट्ठे समाणे सीसं वा सिस्सिणिं वा अणुजाणेज्जा । से तं सचित्ता० ।

२१. से किं तं अचित्ता० ? अचित्ता० से जहाणामए आयरिर् इ वा उवज्जाए ति वा 10
येरे ति वा पवत्ती ति वा गणी ति वा गणहरे ति वा गणावच्छेतिए ति वा सिस्सस्स वा सिस्सि-
णियाए वा कम्हिय कारणे तुट्ठे समाणे बत्थं वा पाइं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पादपुच्छणं वा
अणुजाणेज्जा । से तं अचित्ता० ।

२२. से किं तं मीसिया० ? २ से जहाणामए आयरिर् इ वा उवज्जाए इ वा येरे इ वा
पवत्ती इ वा गणी इ वा गणहरे इ वा गणावच्छेयए इ वा सिस्सस्स वा सिस्सिणीए वा कम्हिय 15
कारणे तुट्ठे समाणे सिस्सं वा सिस्सिणियं वा सभंढ-अत्तोवगरणं अणुजाणेज्जा । से तं मीसिया० ।
से तं लोउत्तरिया० । से तं जाणगसरीर-अविद्यसरीरवइरिस्ता० द्वाणुण्णा । से तं णोआगमतो
द्वाणुण्णा । से तं द्वाणुण्णा ३ ।

१९-२२. लोकोत्तराः—साधवस्तेषामियं लोकोत्तरिकी । साधवश्चाचार्यादिभेदतः पञ्चविधा भवति । तानेव दर्शयति—
आयरिर् इत्यादि । एते हि यदा सचित्ता-ऽचित्त-मिश्रान्यतरद् द्रव्यमनुज्ञानते तदा तत्तद्वेदानुज्ञा भवति । नवं 'आचार्यः' 20
अनुशोभाचार्यः । 'उपाध्यायः' सूत्रपाठयिता । येषु तपः-संयमादिषु यः साधुर्गोभ्यो भवति तं तत्र प्रवर्तयति अक्षमं च निवर्तयति
स गच्छन्प्रसाधुतसिपरः प्रवर्तकः । यदाह—

“तव-संजमनेगेसु जो जोग्यो तथ तं पवत्तेइ । असहुं च नियत्तेई गगतत्तिज्जो पवत्ती उ ॥ १ ॥” []

प्रवर्तकस्यापारितार्थव्यवस्थितसाधूनामेव कथञ्चित् प्रमाद्यतां तपः-संयमादिषु यस्तान् स्थिरीकरोति स स्थविरः । गच्छन्त्यैव
क्षेत्रोपध्यादिसत्पादनपरो य आहिण्डते गच्छन्प्रयोजनेष्विषादीं गीतार्थं स गणावच्छेदकः । शेषं निगदसिदं जाव से तं 25
द्वाणुण्णा ति ३ ॥

२३. से किं तं खेस्ताणुण्णा ? खेस्ताणुण्णा जो णं जस्स खेत्तं अणुजाणति, जत्तियं वा खेत्तं,
जम्भि वा खेत्ते । से तं खेस्ताणुण्णा ४ ।

२३. क्षेत्रानुज्ञा तु यो राबादिर्भस्य परिदुष्टः सन् 'क्षेत्रं' ग्राम-नगरादिरूपं तन्मध्येऽपि यावन्मात्रं वा तदंशतया अनुजानीते
मुकलयति सर्वपर्यति सा क्षेत्रानुज्ञा । यदा यस्मिन् क्षेत्रेऽनुज्ञापदं व्याख्यायते तदपि क्षेत्रं क्षेत्रानुज्ञा ४ ॥ 30

१ पवत्तव इ जे०, पवत्तीए इ ल० ॥

२४. से किं तं कालाणुज्या ? कालाणुज्या जो णं जस्स कालं अणुजाणति, जसियं वा कालं, जम्मि वा काले अणुजाणहं, तं—तीतं वा पडुप्पणं वा अणागतं वा वसंतं वा हेमंतं वा पाउसं वा अवस्थाणहेउं । से सं कालाणुज्या ५ ।

२४. कालानुज्ञायां यो राजादिर्यस्य तुष्टः सन् कालमनुजानीते सर्वकालं मुकलयति त्वया यावन्जीवमपि मम न दातव्यमिदं करादीति जत्तियं वा कालं ति यथा दुल्लभमांसव्यतिकरे परिमितकालराज्यमभयकुमारमन्त्रियाचितेन श्रेणिकेन नियतदिनरूपकालानुज्ञा राज्यं प्रत्यभयकुमाराय कृता । यस्मिन् वा कालेऽनुज्ञा वर्ण्यते सेयं कालानुज्ञा ५ ॥

२५. से किं तं भावाणुज्या ? भावाणुज्या तिचिहा पणत्ता, तं जहा—लोइया कुप्पावय-गिया लोणुत्तरिया ।

२६. से किं तं लोइया भावाणुज्या ? २ से जहानामए राया इ वा जुवराया इ वा जाव तुठे समाणे कस्सइ कोहाइभावं अणुजाणिज्जा । से सं लोइया भावाणुज्या ।

२७. से किं तं कुप्पावयगिया भावाणुज्या ? २ से जहानामए केइ आयरिए इ वा जाव कस्सइ कोहाइभावं अणुजाणिज्जा । से सं कुप्पावयगिया भावाणुज्या ।

२८. से किं तं लोणुत्तरिया भावाणुज्या ? २ से जहानामए आयरिए इ वा जाव कम्मि कारणे तुठे समाणे कालोच्चियनाणाइगुणजोगिणो विणीयस्स व्वमाइपहाणस्स मुस्सीलस्स सिस्सस्स तिचि-
१५ हेणं तिगरणविमुट्ठेणं भावेणं आयारं वा म्यगढं वा ठाणं वा समवायं वा विवाहपण्णसिं वा नायाधम्मकहं वा उचासगदसाओ वा अंतगडदसाओ वा अणुत्तरोववाहयदसाओ वा पण्हावागरणं वा विवागमसुयं वा दिट्ठिवायं वा सव्वदव्व-गुण-पज्जवेहिं सव्वापुओगं वा अणुजाणिज्जा । से सं लोणु-त्तरिया भावाणुज्या । से सं भावाणुज्या ६ ।

२५-२८. भावानुज्ञा श्रायोपशमिकभावध्यांचारादिश्रुतानुज्ञाविषया । ततश्च य आचार्यादिर्यस्य शिष्यस्य तुष्टः सन् 'भावेन' कर्मनिर्वाराभिप्रायेण मनो-वाक्यायै. करण-कारणा-ऽनुमतिभिः शुद्धेन न वैहलौकिकवज्रादिल्लिसया आचारादिकं यावद्-दृष्टिवादं वा 'अनुजानाति द्रव्य-गुण-पर्यवैः' मुकलयति व्याख्यानय अन्येषामध्यापनाय च सेय भावानुज्ञा ६ ॥

सम्प्रत्यनुज्ञाया यतः प्रवृत्तिरस्यामवसर्पिण्यां प्रथम जाता तदभिषिक्तु प्रश्नानि तावदाह—

२९. किमणुज्या ? कस्सऽणुज्या ? केवतिकालं पवत्तियाऽणुज्या ? ।

आदिकर पुरिमताले पवत्तिया उअसभसेणस्स ॥ १ ॥

२९. किमणुज्जं गाहा । किमनुज्ञास्यं वस्तूच्यते । तत्र पडिबधत्तेन वर्णितमेव । कस्यानुज्ञा क्रियते । यो हि गाम्भीर्य-
२५ धैर्य-क्षमादिगुणान्वितो भवति तस्येयं भवति । क्रियति च काले प्रवर्त्तिताऽनुज्ञा । अवसर्पिण्यां तृतीयारकपर्यन्ते । केन प्रवर्त्तिता । क ! कस्य ? इत्याह—आदीत्यादि उत्पन्नज्ञानेनाऽऽदित्थिकरेण भगवता 'उअसभसेणस्य' पुण्ढरीकस्य पुरिमतालनमरे 'अनुज्ञा प्रवर्त्तिता' अनुज्ञा कृता द्वादशाहविषया शिष्यविषया ॥ १ ॥ इदानीमनुज्ञाया एकार्थामिवापि गाथाइयमाह—

३०. अणुज्या १ उण्णमणी २ णमणी ३ णामणी ४ ठवणा ५ पजवो ६ पभावंणं ७ पयातो ८ ।

३० तैवुभय ९ हिय १० मज्जाया ११ णाओ १२ मग्गो १३ य कप्पो १४ य ॥ १ ॥

१ चियाहं ल० ॥ २ वा इति च० मुद्धिते च नास्ति ॥ ३ तदुभयद्वयं ९ मज्जाया १० णायो ११ मग्गो १२ य कप्पो १३ य ॥ १ ॥ संगर १४ संवर १५ जिजर १६ ठितिकरणं १७ वेव जीववुद्धि १८ पयं १९ । पवपवर् २० वेव तदा जे० ल० मुद्धिते च ॥

संगह १५ संवर १६ गिाञ्जर १७ डिहकरणं १८ खेव जीवबुद्धिदपयं १९ ।
पदपवरं २० खेव तहा, बीसमणुण्णाए णामाहं ॥ २ ॥

अणुण्णानंदी समस्तां ॥

३०. अणुण्णा० गाहा । [संगह० गाहा ।] आषगाथायां चतुर्देशानुज्ञामिधानानि, द्वितीयायां षट्, सर्वाणि २० ।
तथथा—अनुज्ञा १ उजमनी २ नमनी ३ नामनी ४ ख्यापना ५ प्रभवः ६ प्रभावना ७ प्रचारः ८ तदुभयं ९ हितं १० मर्यादा ११ ५
न्यायः १२ मार्गश्च १३ कल्पश्च १४ संग्रहः १५ संवरः १६ निर्जरा १७ स्थितिकरणं १८ जीतवृद्धिपदं १९ पदप्रवरं २० इति
विंशतिः । एतेषां च पदानामर्थैः सम्प्रदायाभावाज्ज्ञेयते ॥ १-२ ॥

॥ इति समाप्ता श्रीशीलभद्र-मञ्जुश्रीचनेश्वरद्वारिशिष्यश्री-श्रीचन्द्रद्वारिविरचिता नन्दिटीकाया दुर्गपदव्याख्या ॥

[व्याख्याकारप्रशस्तिः—]

स्वै कष्टेऽतिनिधाय कष्टमधिकं मा मेऽन्यदा जायतां, व्याख्यानेऽस्य तथाविधे सुमनसामल्पश्रुतानाममुम् (नामपि) । 10
इत्यालोचयता तथापि किमपि प्रोक्तं मया तत्र च, दुर्गव्याख्यानविशोधनं विदधतु प्राज्ञाः पराद्योषताः ॥ १ ॥

दुःसम्प्रदायादसद्गुहनाद्वा, प्रकाशितं यद् वितथं मयेह ।

तद् धीमनैर्मानुक्मप्ययद्भिः, शोष्यं मतार्थैश्चित्तरस्तु मैवम् ॥ २ ॥

॥ प्रथमम् ३३०० ॥

जोगणंदी

— — —

नार्ण पंचविहं पण्णासं, तंजहा—आभिणिबोहियनाणं १ सुयनाणं २ ओहिनाणं ३ मणपज्जव-
नार्ण ४ केवलनाणं ५ । तत्थ णं चत्तारि नाणां ६ उप्पाइं ठव्वाण्णाइं नो उद्विस्सिज्जंति नो समुदि-
5 सिज्जंति नो अणुण्णाविज्जंति, सुयनाणस्स पुण उहेसो १ समुहेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ य
पवत्तइ ।

जइ सुयनाणस्स उहेसो १ समुहेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ किं अंगपविद्वस्स
उहेसो १ समुहेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ ? किं अंगबाहिरस्स उहेसो १ समुहेसो २
अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ ? गो० ! अंगपविद्वस्स वि उहेसो १ समुहेसो २ अणुण्णा ३ अणु-
10 ओगो ४ पवत्तइ, अंगबाहिरस्स वि उहेसो १ समुहेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ, इमं
पुण पट्टवणं पट्टुच्च अंगबाहिरस्स उहेसो० ४ ।

जइ पुण अंगबाहिरस्स उहेसो जाव अणुओगो पवत्तइ किं कालियस्स उहेसो० ४?, किं उक्का-
लियस्स उहेसो० ४? गो० ! कालियस्स वि उहेसो० ४ उक्कालियस्स वि उहेसो० ४, इमं पुण पट्टवणं
पट्टुच्च उक्कालियस्स उहेसो० ४ ।

15 जइ उक्कालियस्स उहेसो० ४ किं आबस्सगस्स उहेसो समुहेसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ
आबस्सगवहरित्तस्स० ४? गो० ! आबस्सगस्स वि उहेसो० ४ आबस्सगवहरित्तस्स वि उहेसो० ४ ।

जइ आबस्सगस्स उहेसो किं सामाइयस्स १ चउवीसत्थयस्स २ वंदणस्स ३ पडिक्कमणस्स ४
काउस्सगस्स ५ पच्चक्खाणस्स ६ ? सव्वेसि एतेसि उहेसो १ समुहेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४
य पवत्तइ ।

20 जइ आबस्सगवहरित्तस्स उहेसो० ४ किं कालियसुयस्स उहेसो० ४ उक्कालियसुयस्स उहेसो०
४ ? कालियस्स वि उहेसो० ४, उक्कालियस्स वि उहेसो० ४ ।

जइ उक्कालियस्स उहेसो० ४ किं दमकालियस्स १ कप्पियाकप्पियस्स २ बुल्लकप्पसुयस्स ३
महाकप्पसुयस्स ४ उववाइयसुयस्स ५ रायपसेणीयसुयस्स ६ जीवाभिगमस्स ७ पण्णवणाए ८ महा-
पण्णवणाए ९ पमायप्पमायस्स १० नंदीए ११ अणुओगदाराणं १२ देविदथयस्स १३ तंदुलबेयालि-
25 यस्स १४ चंदाविज्जयस्स १५ मूरपण्णत्तीए १६ पोरिमिंमंडलस्स १७ मंडलप्पवेसस्स १८ विजा-
चरणविणिच्छियस्स १९ गणिविजाए २० संलेहणासुयस्स २१ विहारकप्पस्स २२ वीयरगसुयस्स
२३ म्हाणविभत्तीए २४ मरणविभत्तीए २५ मरणविसोहीए २६ आयविभत्तीए २७ आयविसोहीए
२८ चरणविसोहीए २९ आउरपच्चक्खाणस्स ३० महापच्चक्खाणस्स ३१ ? सव्वेसि एतेसि उहेसो १
समुहेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ ।

30 जइ कालियस्स उहेसो जाव अणुओगो पवत्तइ किं उत्तरज्जयणाणं १ दसाणं २ कप्पस्स ३
ववहारस्स ४ निसीहस्स ५ महानिसीहस्स ६ हसिभासियाणं ७ जंबुदीवपण्णत्तीए ८ चंदपण्णत्तीए

१ दीवपण्णसीए १० सागरपण्णसीए ११ खुद्धियाविमाणपविमसीए १२ महल्लियाविमाण-
पविमसीए १३ अंगचूलियाए १४ बग्गचूलियाए १५ विवाहचूलियाए १६ अरुणोववायस्स १७
वरुणोववायस्स १८ गरुलोववायस्स १९ धरणोववायस्स २० वेसमणोववायस्स २१ वेल्लंघरोववा-
यस्स २२ देविंदोववायस्स २३ उट्ठाणसुयस्स २४ समुट्ठाणसुयस्स २५ नागपरियावणियाणं २६
निरयावलियाणं २७ कप्पियाणं २८ कप्पवड्डिसियाणं २९ पुप्फियाणं ३० पुप्फचूलियाणं ३१ [वणिह- 5
याणं ३२] वणिहदसाणं ३३ आसीविसभावणाणं ३४ दिट्ठिविसभावणाणं ३५ चारणभा० ३६ सुमि-
णभा० ३७ महासुमिणभा० ३८ तेयग्गिनिसग्गाणं ३९ ? सव्वेसिं पि एएसिं उदेसो जाव
अणुओगो ४ पवत्तह ।

जह अंगपविद्धस्स उदेसो जाव अणुओगो पवत्तह किं आयारस्स १ सूयगडस्स २ ठाणस्स ३
समवायस्स ४ विवाहपण्णसीए ५ नायाधम्मकहाणं ६ उवासगदसाणं ७ अंतगडदसाणं ८ अणु- 10
त्तरोववाइयदसाणं ९ पण्हावागरणाणं १० विवागसुयस्स ११ दिट्ठिवायस्स १२ ? सव्वेसिं एएसिं
उदेसो १ समुदेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तह, इमं पुण पट्टवणं पट्टच्च इमस्स साहुस्स इमाए
साहुणीए उदेसो १ समुदेसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तह खमासमणाणं हत्येणं सुत्तेणं
अत्येणं तदुभएणं उदेसामि समुदेसामि अणुजाणामि ॥

॥ जोगण्दी समस्ता ॥

**आचार्यश्रीविमलसूरिशिष्यश्री-चन्द्रकीर्तिसूरिचिरचिंतं
शाकिनीमहाराधर्मज्ञ नुश्रीहरिमद्रसुरिमणीतायाः
नन्दिसूत्रवृत्तेः विषमपदटिप्पनकम् ॥**



5

ॐ नमो जिनाय ॥

[पृष्ठ १]

पं. २. जयतीति जेतव्यजयेन विजयते । पं. ९. ऐकान्तिक इति नैक्यिक । आत्यन्तिक इति अन्वयच्छेदपरः ।
पं. १२. प्राय इति माषतुपादिभिर्न्यमिचारो मा भूदिति प्रायोगहणम् ।

[पृष्ठ २]

10

पं. ३. यस्तेति इक्ष्व अक्ष्व यं तस्य । पं. ४. नन्दन्यनयेति समृद्धिमाप्नुवन्ति । पं. १७. आगमतो
भावनन्दी(न्दिः), आगमत इति गमनं गमः-परिच्छेद, आ-सामस्येन गम आगमः तस्माद् आगमतः ।

[पृष्ठ ३]

पं. १३. न अजावेयव्या बुद्ध्या, न परिचेत्तव्या सद्दत्ते, न परितावेयव्या क्रमः, न उद्वेयव्या विनाशः
समेक्ष विज्ञाय, खेयवेष्टि खेदज्ञैः । पं. २४. इङ्गनेति संज्ञा ।

15

[पृष्ठ ७]

पं. २४. वेदिका-जलान्तररमणलक्षणा, वेदिका-जलयोरन्तरे यद् रमणं तल्लक्षणा जलवृद्धिलक्षणा वा वेदिका पर्यवसानं
मर्यादा वा वेष्टेति ।

[पृष्ठ ८]

पं. २१. उज्ज्वलानि सप्रकाशानि । चित्यते-संज्ञायते ।

20

[पृष्ठ ९]

पं. ११. समवायाः साधुवृत्दानि । पं. १३. संवरः अम्भसां प्रसवः । पं. १४. उज्जरमिति निर्धारणम् ।
पं. १७. कुहराणि पर्वतदेशाः ।

[पृष्ठ ११]

पं. २६. गा. २७. पेयाला विचाराः ।

[पृष्ठ १२]

25

पं. ९. बोधानां श्रद्धानाम् । चरणपरिग्रहः गुणशब्देन वा ।

[पृष्ठ १३]

पं. १४. फिडियाणं निर्गतानाम् । पं. १८. संघरे सन्धृतः-जीवितः ।

[पृष्ठ १६]

पं. १२. उल्लेऊण आर्द्राकर्तुं-जलेन भेतुमिति ।

पं. १३. रक्विउ चि द्रवित [इति] । उल्लो मि न व चि

30

आद्रोऽस्यहं न वेति ।

पं. १९. इमो गमो इति प्रकारः । छिड्ड इति बुन्ने, भिन्न इति कण्ठे, खंड इति कण्ठेकदेशे ।

पं. २२. तावसरखउर इति तापसानां भोजनादिनिमित्तं उपकरणविशेषः खउरकठिनकमुच्यते, वंशीपत्रमयं पुटकमिति
लक्ष्यते । परिपूषण इति सुषीरचितो नीडविशेषः । पं. २४. कूचिया चरेडिकाः । पं. २६. सुडिओ

सङ्कुचिताङ्गः । पं. २९. जियमिति परिचितम् ।

[पृष्ठ १७]

पं. ५. पुण्यजुज्जमिति अधिष्ठानिकासुदघाटञ्च पुतान्यां पराङ्मुखीभूय । पं. ८. विद्यामैलियमिति व्यत्ययेऽडितः ।

[पृष्ठ १८]

पं. ३. तदेवेति ज्ञानमात्मानं जानाति । ननु कथमेक एव कर्ता कर्म वा ? इति भेदादिति । पं. १०.

कुव्याख्या० विष इत्यकारान्तोऽयमित्यस्य । पं. १९. तुन्मयं अभिनिबोधस्य विकारः मनस्त्वेन परिगमिताः [? पुद्रलाः] । 5

[पृष्ठ १९]

पं. १६. आदेश[त] इति, आदेश-प्रकारः, स च सामान्यतो विशेषनन्ध, सामान्यतो द्रव्यजातिं जानीते, विशेषतो धर्मास्तिकायस्तस्य च देश इत्यादिविभागं जानीते । पं. १८. विशिष्ट इति विशिष्ट एव कश्चिद् मन्तिविशेष एव श्रुतम् ।

पं. ३०. सामान्येन इति मनोवर्गणाविशेषतो विशेषो यस्याः ।

[पृष्ठ २०]

पं. १०. अपर इति न परम्-अज्ञादि निमित्तं यस्य, द्रव्यं मनश्चेत्यत्राख्याहारः, कृतः(अतः) परत्वमनयोः । 10

[पृष्ठ २३]

पं. १५. अपवरकादिशालान्तरस्थप्रदीपप्रमानिर्गमस्थानानीब , अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमजन्यानि अवधिज्ञाननिर्गम-स्थानानीह फड्डकानि उच्यन्ते ।

[पृष्ठ २६]

पं. २७. नान्य इति किं त्रिसमयाहारकोऽत्र गृह्यते ? अत्रोत्तरम् । 15

[पृष्ठ २८]

पं. २४. द्रव्यं भाज्यमिति अवस्थितेऽपि हि द्रव्ये तथाविधक्षयोपशमवृद्धौ पर्याया वर्द्धन्त एव । पं. २५. अक्रमवर्तिनामिति एककालवर्तिनां रूपादीनाम् । ननु यदि द्रव्यवृद्धौ वर्धन्ते ततः पर्यायाणां क्रमवर्तिवात् कालवृद्धिः कथं न भवति ? उच्यते-कालवृद्धीत्यादि । 20

[पृष्ठ ३३]

पं. ७. उत्पत्तिस्वामीति उत्पत्तेः स्वामी तस्य मार्गणा प्राग्वत् । पं. १४. अणाइसेसीति अनतिशयी ।

[पृष्ठ ३४]

पं. २४. घटोऽनेन चिन्तित इत्यादिना दर्शितरूपः ।

[पृष्ठ ३५]

पं. १७. मन्तार इति चिन्तकाः मन्येरन् चिन्तयेयुः । पं. १८. शिष्यालम्बनमिति एतदीयदर्शनं न भिन्नं किलोकम् । तत्र चेति चतुर्विधदर्शने । पं. २८. संवट्ट(ट्टो) इति सङ्कोचनम् । 25

[पृष्ठ ३६]

पं. १३. तदापुष्क इति आगामिभवः । पं. १६. हेतुवाद इति तापादिसन्तच्छायादिसमाश्रयणात् । पं. २५. बध्यमान इति तारतम्येन । 30

[पृष्ठ ३७]

पं. २८. [? सयोगीति] सह योगेनेति-जीवन्यापोरण ।

[पृष्ठ ३९]

पं. १६. नोदित्यसिद्धा इति प्रयेकनुदसिद्धाः । पं. १७. तित्थकरिसिद्धा इति केवलिब्धी । नोदित्यगर इति सामान्यकेवल्लिपुरुषाः । पं. १८. न [तु] मधुसूक्त इति, लोभैःकृतः स्युः । 35

[पृष्ठ ४१]

पं. २. मिथ्यावरण इति ज्ञानावरणादिलयो विहितः स मिथ्या जिनस्य प्राप्नोति, समयादूर्ध्वं केवलज्ञान-दर्शनोपयोगयोः पुनरन्वभावात् ।

[पृष्ठ ४३]

5 पं. १५. सूत्रक्रमोद्देश[त] इति नन्द्यादिसूत्रे इत्थमेवोपन्यस्तम् । पं. १९. भेदोपचार इति केवलज्ञानामेदेषुपि व्यभिचार इति, न केवलमुभयपदव्यभिचारे यथा नीलोत्पलम् । पं. २६. क्षयस्येति समस्तावरणक्षयसम्भूतत्वात् ।

[पृष्ठ ४४]

पं. ६. निबन्धनत्वादिति वाकपरिस्पन्दस्य ।

[पृष्ठ ४५]

10 पं. १६. नाणाणऽन्नाणाणि य समकालादभिम्यादि, न त्वयोमो इति समकालः । पं. १९. कञ्जतया निषेध इति । पं. २१. भेदा (द) भेदादिति भेदानां भेदः । पं. २३. सोऽदिय इति भावश्रुतग्रन्थः । अक्षरलंभ इति यथा गण्यं गृह्णीत्वा सुरमिअक्षरग्रहणम् । सेसेसु इति इन्द्रियेषु । पं. २६. आवरणं इति मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरणं ।

[पृष्ठ ४६]

पं. ६. सदसतोरविशेषादिति स्यात्पदवैधुर्यात् ।

पं. ७. इव्यत्वेन मिच्छद्विद्विम्स इति सर्वो बोधोऽज्ञानम् ।

15 पं. ९. देवादिधर्ममिति देवतत्त्वम् । पं. १९. औत्पत्तिक्यादि इति प्रातिममिति हृदयम् ।

[पृष्ठ ४९]

पं. १४. अविच्युति-स्मृति-वासनारूपा (१) ।

पं. २८. न पश्यतीति चक्षुः कर्तुं । नालम्बत इति मनः कर्तुं ।

[पृष्ठ ५०]

पं. १६. श्रूयतेऽनेनेति अत्र व्युत्पत्तिनाद्रियते किन्तु अर्थमात्रम् ।

20 पं. १३. अपाय इति सामस्येन परिच्छेदः ।

[पृष्ठ ५१]

[पृष्ठ ५४]

पं. ६. द्रव्यं व्यञ्जनमिति द्रव्यादिविषयपरिणतपुद्गलसमूहरूपम् ।

पं. ७. स्वविषयव्यक्ताविति प्राहकज्ञानजनने ।

पं. ९. तमर्थमिति व्यञ्जनार्थम्, इन्द्रिय-मनोऽध्यापारेणालम्बते इत्यर्थः ।

पं. १०. कल्पनारहितमिति एतच्च 'तादे

25 हुं ति करेति" [सूत्र. ५८. पत्र. ५३ पं. १५] इत्यस्य व्याख्यानम् ।

पं. १४. अथवा यदुक्तं इत्यादिकपातनिका-

द्वयस्य व्याख्या । पं. १७. अव्यक्तमिति शब्दोऽयं रूपादिवां इत्यादिप्रकारेण वक्तव्यम् ।

स्वरूप(पं) नामादीति आदि-

शब्दाद् जाति-क्रिया-गुण-द्रव्यग्रहः ।

पं. १८. तस्य चेति अर्थावग्रहस्य ।

पं. २३. नैतदेवमिति त्स्विराह ।

पं. २५. शब्दबुद्ध्या इति शब्दोऽयमित्यव्यवसायेन । तस्यैवेति अर्थावग्रहं, विनैव शब्दमात्रस्यैव ।

पं. २८. जह

एवमिति पर आह । जं इति यञ्चन्द्रध्वयनप्रोक्तं तेन इत्यादि ।

30 पं. १५. अन्यत्रापीति स्वप्नादन्वय सान्धकारापवरकादौ ।

[पृष्ठ ५५]

[पृष्ठ ५६]

पं. १. पंचोदइयाइया इति औदयिकौपशमिक-क्षाधिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकाः । जं नेयमिति यतो ज्ञेयमेताव-
देव । पं. २. तद्भा(१०भा)वनया इति श्रुतोपयोगमन्तरेण तद्भासनामात्रत एव ।

[पृष्ठ ५८]

- पं. १. **स्तोकद्रव्यत्वादिति** शब्दद्रव्यापेक्षया गन्धादिद्रव्याणि स्तोकाणि । **विनिश्चिनोति** इति प्राणादि इन्द्रियं कर्तुं ।
 पं. ४. **तद्योग्य** इति भाषायोग्यः । पं. ६. **क्षेत्र** इति- आकाशम् । पं. १२. **पराघाए(ते)** इति
 वासनायां सत्याम् ।

[पृष्ठ ५९]

- पं. २६. **यस्तदावरणक्षयोपगमो यश्च तज्ज्ञानोपयोगश्च एतौ** द्वावपि लब्धयक्षरम् ।

[पृष्ठ ६०]

- पं. १. **एवं शेषेष्वपि** इति षट्-कर्पर-कर्करा-हंसतूली[पु] । पं. १५. **व्यापार** इति उच्युवसितादिः ।
 पं. २७. **कालिक्युपदेश** इति सज्जिश्रुतव्यपदेशः ।

[पृष्ठ ६१]

- पं. २८. **न सन्ति लोका** इति “अपुत्रस्य गतिर्नास्ति०” इत्यादि ।

[पृष्ठ ६३]

- पं. २३. **भग्ना** इति ये भग्नास्ते न निधानगताः । **निव्युया** इति वर्तमानकाल सुरिक्त्वात् ।

[पृष्ठ ६४]

- पं. ३. **आचारम्मि** इति आचारनिर्मुक्तौ ।

[पृष्ठ ६५]

- पं. १५. **अधिकारवशादिति** प्रतिपक्षसम्बन्धवशादिति । पं. २२. **अधिकृतमिति** सायादित्वस्वरूपम् ।

[पृष्ठ ६६]

- पं. १८. **गु(तु)हियाणि** नी(त)तादीनि । पं. २०. **आयक्षेमु** य इति अनाप्त्येपु । पं. २१. **अक्षेमु** य
 इति दग्नातिग्नेपु । **पुणवभवरहिया** इति मृत्वा पुनर्गुमलधार्मिका न्(न) ।

[पृष्ठ ६७]

- पं. १६. **गति-स्थित्यादीत्यत्र** द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभावना कार्या ।

[पृष्ठ ६८]

- पं. ९. **नञ्जे(तञ्जे)पमिति** षटाद्यभिलान्यार्थरूपम् । **आ(अ)कारादि** इति अर्थान् क्षरति सशब्दयति वाऽर्थलोपादक्षरम् ।
 पं. १०. **अक्षरस्येति** सर्वेष्वर्थपरिमाणाक्षरस्य । पं. १६. **सञ्वागास** इति लोका-ऽलोकाकारा इति ।
 पं. २२. **अत एवेति** प्रकरण्वाद् अपिगन्धाद्वा । पं. २३. **उभयमपीति** श्रुताक्षरं केवलाक्षरम् ।

[पृष्ठ ६९]

- पं. ३. **स्वपर्यायविशेषण** इति स्वपर्यायाणां विशेषणेन-विशेषव्यवस्थापकेन उपयोगात् । पं. ८. **अविरोध** इति
 विशेषणत्वेन । पं. १८. **गमिकमिति** भिन्ने अर्थज्ञाते यत् सदशाक्षरालापकं तद् गमिकम्, असदशां त्वगमिकम् ।
 पं. २७. **गायदुगद्धमिति** पूर्व-यश्चिन्मउदर-शृष्टिरूपम् । पं. ३१. **निययमिति** सर्वैर्तार्थिकरतीर्थेषु नियतम् ।

[पृष्ठ ७१]

- पं. २०. **दिनमिति** कर्कसंक्रान्तिदिनम् । पं. २९. **चेत्यादि** इति मरणम् ।

[पृष्ठ ७३]

पं. ४. समाणे इति सन् । पं. ७. अंतद्विष्ट इति आकाशस्थ इत्यर्थः । प. ११. सिंगनाइयमिति सङ्घकार्यम् । पं. २७. वृष्णिदशा इति अवस्थाः ।

[पृष्ठ ७४]

5 पं. २०. तच्छिष्यभाव इति शासनप्रणेतृतीर्थकरः ।

[पृष्ठ ७५]

पं. १७. इह चेति अथवा आचारमोचरविनयेऽयादौ ।

[पृष्ठ ७६]

पं. ९. प्रतिपचय इति मतान्तराणि । पं. १४. महापरिन्नोवहाणसुयं इति पदमो मुयस्त्वयः (धो) ।

10 पं. २९. सपंचचूलो इति द्वितीयश्रुतस्कन्धे पश्च चूडाः । पं. ३०. आचारम् इति चूलादिकम् ।

[पृष्ठ ७७]

पं. ८. निकाचिता इति प्रतिष्ठिताः । पं. २८. रूढ्या उन्त्यने इति द्वितीयमेवाद्गम् । पं. २९. व्युह-मिति तिरस्कारम् ।

[पृष्ठ ७८]

15 पं. ५. ईश्वरकारिण(कारणिन्) इति "अज्ञो ऋतुर्गनीय स्यादात्मन मुख दुःख्यो । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् श्वभं वा स्वर्गमेव वा ॥१॥" । पं. १०. पूर्ववदिति व्युहं कृत्वा निवार्य । प. २६. उन्पचैरिति अग्नेनानां त्रिविक्रान्पानाम-सम्भवात् । पं. २७. सत्त्वमिति जीव सन्, तत किम' इति विकल्पाः कार्याः । पं. ३२. अवमः लघुभाना ।

[पृष्ठ ८१]

पं. १९. ते दद्वन्वा इति अर्थाधिकारसमूहान्मकान्येवाभ्ययनानि दश वर्गा दृष्टव्या । पं. २४. एवं ठिण् इति 20 प्रथमश्रुतस्कन्धवक्तव्यतायां भणितायाम् । पं. २८. अति(इ)मा इति अतिगच्छन्तीनि ।

[पृष्ठ ८४]

पं. १६. साहं(धे)ति इति शुभा-ऽद्युभम् ।

[पृष्ठ ८५]

पं. १७. इदं प्राय इति प्रायोऽग्रहणेन प्रथमानुयोगमात्रस्थान्तिथं तत्काल सूचयति ।

25 पं. ६. चिन्ता च इति चिन्तायामपि ।

[पृष्ठ ८७]

[पृष्ठ ८९]

पं. १६. छंदकिरिया इति छन्द-शादूलादि क्रमात् ।

[पृष्ठ ९०]

30 पं. १५. पउप्प पच्छोपके । सगरसुयाण इति पर्यन्ते, यतः सगरस्य जितशत्रुः आतृजः ।

॥ इति नन्दीविषमपदपर्यायाः समर्थिताः ॥

प्रथमं परिशिष्टम्

नन्दीसूत्रान्तर्गतानां सूत्रगाथानामकारादिवर्णक्रमेणानुक्रमणिका ।

गाथा	सूत्राङ्क	गाथाङ्क	गाथा	सूत्राङ्क	गाथाङ्क	गाथा	सूत्राङ्क	गाथाङ्क
अक्खर सण्णी सम्म [आच. नि. गा. १९]	१२०	८३	काले चउण्ण सुह्ठी [आच. नि. गा. २६]	२४	५१, ११८	पञ्चनेत्य इदभूती परितित्थियमगहणणा-	४	२०
अब्बमरहणपहाणे	६	३८	किमलुण्ण ? कस्सउण्ण ? [अनुज्ञानन्दी]	१७८	५ २४	पुट्ट सुणेति सद् [आच. नि. गा. ५]	६०	७५
अणुमाण हेउ-दिट्ठत [आच. नि. गा. ९४८]	४७	६८	केवलण्णामेणउत्थे [आच. नि. गा. ७८]	४२	५७	पुब्ब अदिट्ठमसुवम- [आच. नि. गा. ९३९]	४७	५९
आयमहत्थकण्णणी	६	४१	खमए अमचपुत्ते [आच. नि. गा. ९५०]	४७	७०	खारस एकारसमे	१०९	८०
अत्याण उग्गहण [आच. नि. गा. ३]	६०	७३	गुणभवणगहण ! सुय- खचारि दुवात्स अट्ठ	४७	४	भणग करग झरग	६	२८
अभाए सेट्ठि कुमारे [आच. नि. गा. ९४९]	४७	६९	चलणाहण आमहे [आच. नि. गा. ९५१]	१०९	४७	मद् विट्ठेलापरि- मद् सखअणुज्जे-	२	११
अवल्लुणा गिक्खणते	६	३२	अच्चज्जाधाउसम- अयइ जगजीवजोणी-	४७	३१	मह सीलपडागू-	१	३
अह सञ्चत्तापरिणाम- [आच. नि. गा. ७७]	४२	५६	अयइ सुयाण पभवो अममह तुगिय वदे	१	४७	मरणिथरसमत्था [आच. नि. गा. ९४३]	४७	६३
अगुत्थमावलिमाण	२४	४७	आवतिया तिसमया- [आच. नि. गा. ३०]	१	२४	मरहम्मि अद्धमासो [आच. नि. गा. ३४]	२४	४९
[आच. नि. गा. ३२]			जीवदद्यासुदरकंद- जे अण्णे भगवते	२	२४	मरहम्मि पणिय रुक्खे [आच. नि. गा. ९४०]	४७	६०
अण्णममत्थमगहण [आच. नि. गा. २१]	१२०	८४	जित्तिसि अरथसत्थे य [आच. नि. गा. ९४४]	४७	४५	मरहम्मि मिठ कुकुड [आच. नि. गा. ९४१]	४७	६१, १८
ईहा अपोह वीमसा [आच. नि. गा. १२]	६०	७७	णियमूसिभकण्णसित्ता- गेरतिवदेवातिर्यंकरा	४७	१४	भावमभावा हेउम मासासमवेत्तोओ	४७	८२
उग्गह ईहाउवाओ [आच. नि. गा. २]	६०	७२	जेसि इमो अणुओगो गाणम्मि दसणम्मि य	६	४३	मूअहियिपणग्गन्ने मूणपज्जवणाण पुण	६०	७६
उग्गहो एह्ण समय [आच. नि. गा. ४]	६०	७४	गिम्मिसे अरथसत्थे य [आच. नि. गा. ९४४]	६	२९	मूअहियिपणग्गन्ने मूणपज्जवणाण पुण	६	३९
उपपत्तिवा वेणइया [आच. नि. गा. ९३८]	४७	५८	णियमूसिभकण्णसित्ता- गेरतिवदेवातिर्यंकरा	४७	६४	मूअहियिपणग्गन्ने मूणपज्जवणाण पुण	३३	५५
उवओगदिट्ठसारा [आच. नि. गा. ९४६]	४७	६६	णियमूसिभकण्णसित्ता- गेरतिवदेवातिर्यंकरा	२	१३	महुसिन्ध मुहियके [आच. नि. गा. ९४२]	४७	६२
ऊससिय णीससिय [आच. नि. गा. २०]	६६	७८	णियमूसिभकण्णसित्ता- गेरतिवदेवातिर्यंकरा	२९	५४	मक्खि मोरियपुत्ते मिउमइवत्तपणे	४	२१
धल्लायच्चसगोत्त	६	२५	णियमूसिभकण्णसित्ता- गेरतिवदेवातिर्यंकरा	५	२२	मूय हुकारं वा [आच. नि. गा. २६]	६	३६
ओही भवपत्तियो	२९	५३	तवसंअममयल्लण ! तिससुत्तुआवावित्ति	६	३४	खड्डउ वायगवथो वरकण्णतविय-वेणय-	६	३०
कम्मरयज्जोह्वित्तिणि- कालियसुवअणुओग-	२	७	दस चोएस अट्ठउट्ठा-	६	२७	वदे उसम अजिय	६	३७
	६	३५		१०९	७७		३	१८

गाथा	सूत्राङ्क	गाथाङ्क	गाथा	सूत्राङ्क	गाथाङ्क	गाथा	सूत्राङ्क	गाथाङ्क
विणवणवपवरसुणिवर-	२	१६	संवरवरजलपगलिय-	२	१५	मुद्धम्मं अमिगवेसाणं	६	२३
विमलमणंतह धम्म	३	१९	सावगज्जमहुवरिपरि-	२	८	सुद्धमो य होइ कालो	२४	५२
सुम्मत्सणवहरदद-	२	१२	सीया साबी बीठ च	४७	६५	[आव नि गा ३७]		
सव्ववहुअगणिजीवा	२४	४६	[आव नि गा ९४५)			सेलथण कुब्बय चालणि	७	४४
[आव नि. गा. ३१]			सुक्क्याल्लकीमलतळे	६	४२	[आव. नि गा १३६]		
संखेज्जमि उ काठे	२४	५०	सुत्ताथो खल पदमो	१२०	८७	हरथम्मि सुद्धपत्तो	२४	४८
[आव नि. गा. २५]			[आव नि गा. २४]			[आव नि. गा ३३]		
संगह १५ संवर १६ गिज्जर १७ १७९		५. १	सुमुणियणिवाणिथ	६	४०	हारियगोस धाड्	६	२६
[अनुमानन्दी]			सुस्सलड पडिपुण्डड्	१२०	८५	हेरणिण् करिसण्	४७	६७
संजमतवट्टेवारय-	२	५	[आव नि गा २२]			[आव नि. गा ९४७]		



द्वितीयं परिशिष्टम्

नन्दीहारिभद्रीवृत्तिनर्गुपदरुघ्याख्या-लघुनन्दिश्रुत्यन्तर्गतानामुद्धरणाना-
मकारादिवर्णक्रमेणानुक्रमणिका ।

उद्धरणानि	पत्र-पङ्क्ति	उद्धरणानि	पत्र-पङ्क्ति	उद्धरणानि	पत्र-पङ्क्ति
अठणत्तरि चतुर्वीणा	११-२	अष्टे ण चेष वीसु	४०-१७	आइचअसाइ सिवे	१६९-टिप्पणी
अठणत्तीसं वारे	११-५	[विशेषणवती गा १५४]		आइचअसाइण	१०-१५
अकर्तारि च	११२-१३	अष्टे मत्तात्त मई	१२७-१९	आगतुवाविओमे	१७-६; १०८-२३
अक्षररत्नेण सम	१६९-१६	[विशेषा गा १५४]		[विशेषा गा १४७९, कल्पमा गा ३५९]	
[विशेषा गा. १४३]		अन्यथाऽनुपपन्नत्व	४८-३२	आचार्यस्यैव तज्जाडय	१०३-१५
अचिन्ता खलु जोगी	१००-७	[न्यायविनिश्चय का ३२३]		आज्ञाप्यते यदववा.	७१-१२
[जिन संघ गा ३५९, जीवस गा ४६]		अनुपस्य गतिर्नास्ति	१८५-११	आतथोपसर्गे	१८-६
अज्ञाद्यष्टाण्	१८-७	अप्रशान्तमती शास्त्र-	१०२-२०	[पा ३.१.३६]	
[पा. ४.१.४]		अन्मत्तरावही नाम अथ	१०२-५	आतो लोप इटि च	१७-१४, १८-६
अज्ञं सुप्रभारथ्य	१११-१	[आचर्यकञ् विभाग १ पत्र ६२]		[पा ६.४.६४]	
[मरुहृरिञ्जिवाती १२]		अशोआदिभ्यः	३४-९	आदेशो णि पगारो	५५-२८; १४९-३
अज्ञो जन्तुरनीशः स्या-	१६४-१८	[पा ५.२.१२७]		[विशेषा गा ४०३]	
अट्टेसाडुमाग	१६२-११	अधि गोपबन्ध वि पिए	१६-२६; १०६-२८	आदेशो णि व सुत्त	५६-२; १४९-१९
अणिगृहियथलविरिओ	७६-२	[विशेषा. गा. १४६९, कल्पमा. गा. ३४९]		[विशेषा. गा. ४०५]	
अणो दोजिहदि कल	१६-३०, १०७-२४	अव्यस्तमण्हेसं	५४-२८; १४५-२९	आमे षडे निहित	१६-८
[विशेषा गा. १४७३, कल्पमा गा. ३५३]		[विशेषा गा २५२]		[नि मा गा. ६२४३]	
अत इनि ठनी	६९-२०	अदा भोजने	२०-९	आथारिए सुत्तमि व	१६-१४; १०३-२०
[पा ५.२.११५]		[पा धाटु १५२४]		[विशेषा. गा. १४५७, कल्पमा. गा. ३३७]	
अतिसेस १ इडिट २ आयरिय ३	७५-३५	अद्य व्यासौ	२०-८	आथारिमि अहीए	६४-३
[निशीथमा गा ३३]		[पा. धाटु १२६५]		[आचाराजिनि गा. १०]	
अतीतानागतान् भावान्	६३-२७	अशोकेशः सुपुण्यष्टि-	४-२१; ६३-१	आहार सरीरिदिय	३४-७
अथ भासइ अरहा	१८-१२	असंखेयाण समयाण समु-	२७-२३	[बृहस्पं. गा ३४९]	
[आब नि गा ९२]		[अनुयो सू १३८]		इक्क कृणादिभ्यः	१-२३
अथवाचः प्रक्रिया-प्रधा-	४३-१६	अस्यामेव हि आती	७१-९	[पा. वा. ३-३-१०८]	
अनपरयस्य न सन्ति लोकाः	६१-२८	अह ण वि एव ता सुण	४१-२०	इगवीस सहस्साइ	६७-२
अनशानमूतोदरता	५-२९	[विशेषणवती गा २०३]		इगवीसं कोडितय	८१-२३
[प्रथम आ १७५]		अह देसणण-दंसण	४२-२३	इगुणथशाभीकिरः क	१७-१४
अनादिमालागमः	५२-२६	[विशेषणवती गा. १५७]		[पा ३.१.१३५]	
अनुपयोगो ब्रह्मम्	२-८	अहलोइयगामेदुं	१२२-२३	इथीअ आवि संकमणं	११९-१५
[अनुयोग सू १३]		अहिंसाव्यवस्थितः तपस्वी	९-४	इदितो नुम् धातोः	१-१८
अष्टे अणक्खर-ऽक्खर-	१९७-२३	अतो-व्हिनिज्जती	११३-३०	[पा ७.१.५८]	
[विशेषा गा १६२]		अंभरणेण जीहाए	१६-२४; १०६-१६	इह छजीनगिके-	६९-१९
		[विशेषा. गा. १४६७, कल्पमा. गा ३४७]		[दस्यै. अ ४ सू. १-३]	

उद्धरणानि	पत्र-पङ्क्ति	उद्धरणानि	पत्र-पङ्क्ति	उद्धरणानि	पत्र-पङ्क्ति
जह छिद खीणाबरो [विशेषणवती गा. १५५]	४२-१८	ज्ञानमप्रतिष यस्व दुग्गादि समुदौ [पा. भा. पा. ६७]	६२-४ १ १८	तावसत्रकरक्षिण्य [विशेषा. गा. १४६५, कल्पमा गा. ३४५]	१६-२२, १०५-२२
जह जुगयुपत्तीय वि [विशेषणवती गा. २१९]	४२-१२	ठिइषयु दलस्स ठिइ [पबलसुद्ध गा. ४३२]	१६७ ५	ताइ विउत्तराए तिथ्य च सुइम्माओ विथ्य भंते ! तिथ्य !	९०-२६ ११-१ ३९-२
जह दुग्गयणमयवण [विशेषा. गा. ५२०]	१५४-१२	ण गिहाणया मग्गा ण उक्करं तोट्ठिय अवापिणी यवषभचेरमहओ [आवा नि. गा. ११]	६३-२३ १३८-२४ ७६-२७	[भग. श. २३ उ. ८ सू. ६८२] तियगाइविउत्तराए तिहिं नागेहिं समग्गा [आव भाष्य गा ११० पत्र १८८]	१०-२८ १२०-२१
ज केवलाइ सारी [विशेषणवती गा. १९३]	४०-२५	णणम्मि दंलगम्मि य [विशेषणवती गा २२९, विशेषा. गा ३०९६]	४० ३०	तीए पुण विमुद्धीए तीए पुरिसाणमाउ एग तीए पुरिसाणमायु तिग्गि तीए पुरिसाणमायु दोग्गि तीए पुरिसाणमायु पुब्ब-	११९-१४ ६६-२६ ६६-१३ ६६-२३ ६६-३०
ज माभि-काल-कारण- [विशेषा. गा. ८५]	११३ ४	णाणणउण्णाणाणि य [विशेषा गा. १०७]	४५-१६, १२९-९	पुच्छा गाएवहुला [विशेषा. गा ५५२]	१२०-२१ ११९-१४ ६६-१३ ६६-२३ ६६-३०
जा खलु अभाविषा कु- [कल्पमा गा. ३६८]	११०-२६	णातिविग्गो गिस्संकिम १ गिक्खिय २ [टट्ठवै गा. १८४]	७२-५ ७५-२३	गुहो उअयाएरण- [विशेषणवती गा. २१७]	६६-१३ ६६-२३ ६६-३० १६१-२३
जाणति चञ्जेउणुमाणाओ [विशेषा. गा ८१४]	३५-१६	मेहिं जिओ मि लि अह [विशेषा गा. १४७८, कल्पमा गा ३५८]	१७-५, १०८-२१	ते उण दुग्गमठिउत्तस्स [पभा. १६ गा ४२]	१६८-८, १०५-११
जा पणामसंवा जानदया [तमयया- [आव नि. गा ३०]	१६८-८, १०५-११ ३३-११	सज्जातेण य तज्जायं [गणित्तिघा गा ७५]	१३७-१८	तेण पर दुलक्कवासी ते पुण दत्तपणारा तेया-भासादस्वाण तेपामभिनिताना-	४२-४ ४-३० ४-३० ७-१४
जाव ण पस जीवे एयइ नेयउ [भग श. उ. सू पत्र जाव य लक्कवा पोइस जि जये जिणनेरे गाहुवोच्छेओ [आव नि गा ३६५]	४-२६ ९०-१८ ४-१६ ३९-५	तज्जाणमेव भ भवति ततिएग्गादित्तिउत्तर तावयग्गमसहावै [विशेषा गा. ५३५]	६२-८ ९०-२४ १५५-१९	तो तिथि सागरोवम- तो दुग्गमसुस्सग्गुणा तो मुग्गमद्दमाए	४-३० ४-३० ७-१४ ६६-२२ ६६-२९ ६६-२५
जावादीनां वृष्णि- जुगवमज्ञानो वि हु [विशेषणवती गा. २१६]	३०-१ ४२-१	तह य असव्वन्तुत [विशेषणवती गा. ११५]	४१-८	थाणुपुरिसादि-कट्ठु- [विशेषा गा. २९३]	५४-८; १४८-३
जुगव पि समुपष जे एगे जाणति से सत्त्व [आचारार्ह भ्र. १ अ. ३ उ. ४ सू १]	१५६-५ ६९-८	त च पचथा सम्म । ओव- [विशेषा. गा. ५२८]	५-१५	थोक्कमिय गावायो-थेव° [विशेषा गा २५५]	५४-३१; १४७-७
जे जणिया उ हेक्क [ओघनि. गा. ५३]	१०१-२४	त पुण चउज्जिहं नेय° [विशेषा. गा. ४०२]	१४८-२६	द्वित्तस्स उभेतस्स य [विशेषणवती गा २०५]	४१-२४
जे पुण अभाविषा खलु [विशेषा. गा. १४६२ कल्पमा. गा. ३४२]	१६-१९, १०४-३०	तास्सो तिथि मरिदा तथ संग्गमओगेसु	९०-२५ १७७-२३	दीयसिहा जोतिसणाभाया दुग पण णवग तेरस दुघाउ धारण-पोषणयोः [पा. धातु. १०९२]	६६-१९ ९०-२९ १८-४
जोएण कम्मएण [सूत्रक. नि. गा. १७७]	३ ४	ताभ्यामन्यत्रोणाद्यः [पा ३. ४ ७५]	१-२२		
जोतिसणिमिषाणय	७१-२६	तावज्जण्यमवधे-	२६-२४		

उद्धरणानि	पत्र-पक्षिक	उद्धरणानि	पत्र-पक्षिक	उद्धरणानि	पत्र-पक्षिक
दुर्गाप्रस्तुतान् जीवान्	३-१७	पक्षा इव पक्ष्या - अवयवाः	१६५-१०	अणिय पि य पक्षी	४२-१४; १२५-२२
दृष्ट्वाऽप्यलोकं नैव विभ्रमितम्	७१-१५	[समानायाहवृत्ति पत्र ११३-२]		[विशेषणवती गा. २२०, विशेषा. गा. ३११२]	
देवसबाजिसि देवदूततरि	१००-१८	पचण्डमूहसखा	१५४-१६	मणिषा जोगमा-डजोगा	१७-९; ११०-१९
देशानम-नभोदान-	६३-१९	पचदि वि इदिर्हृदि	१३०-१८	[विशेषा. गा. १४८२, कल्पभा. गा. ३६२]	
[आसमीमांसा का १]		[जीवस. गा. ६२]	१४४-२६	अण्ण, जहोदिवाणी	४२-२५
द्वैसन्नापोषरमे	४२-२१	पाठ धोव धोव	१६-२९; १०७-१४	[विशेषणवती गा. १७८]	
[विशेषणवती गा. १५६]		[विशेषा गा. १४७२, कल्पभा. गा. ३५२]		अण्णति, ण एम नियमो	४२-१०
दो लक्ष्मणा सिद्धी	९०-२२	पासयमानिबद्ध	१०६-७	[विशेषणवती गा. २१८]	
दो वारे विजवाइसु	१९-१४	[कल्पभा गा. १३०३]		अण्णति, भिन्नमुत्तो	४१-१४
[विशेषा. गा. ४३६]		पाददुग् २ ज्योत्स्न २	६९-२७	[विशेषणवती गा. २०२]	
धर्मशास्त्रार्थवैध्यात्	१०२-२१	पासंतो वि ण जगइ	४१-२८	भरहसिल १ मिट २ कुकुड ३	१३२-१०
मद्रुमि द्रु छाउमरिणए नाणे	१५६-२४	[विशेषणवती गा. २१५]		[आव. नि. गा. ५४१]	
[भाष. नि. गा. ५३९]		पिहु पिहु असखसमटय-	१२१-२ि १	भत्रप्रययो नारक-देशाना	१२०-२०
नत्थि नएहि विहण्ण	१७२-२९	[विचारसमातिक्का गा. ४५]		[तत्त्वार्थ अ. १ सू. २२]	
नमिळण जिणवरिडे	११९-११	पिडविषोही ४ समिनी ५	१२-२२	भमा मटट मह्ण	२-१५
[उपदेशमाला गा. १]		[ओपनि. गा. ३]		भाविष्य इधरे वि कुडा	१६-१६, १०४-१२
न वि अथि न वि य ह्योही	१०४-२	पिटम्भ आ विगोही	५-१०	[विशेषा गा. १४५९, कल्पभा गा. ३३९]	
[अतुयो पत्र २३२, उत्तरा. नि. गा. ३०९]		[ध्या मा पी गा. २८९]		भूतस्य भाविनो वा	२-११, १७१-१६
नाममवाय-पिह्वेओ	१७५-२०	पिडेण १ सेजिरिया ३	७६-१५,	भना क्रोशन्ति ११८ २०, ११९ ३२, १५१-१९	
[विशेषा. गा. ५३६]			१६४-१	मज्ज विषय कमाया	७१-५
नाय्युपधर्यात्	१२३-२३	[आर्यकमस्यमहणी द्वारि. श्रुति पत्र ६६०-१]		मज्ज पितु तुज्ज पिता	१३७-६
[कातन्त्र ४ २ ५१]		पुणानि चोह्म लक्खा	९०-१७	मणियेणु य भूण्य-	६६-२०
निम्पं सक्क तावस	७५-११	पुरुष एषैद सर्वं	७८-६	मतिपु'व जेण सुय	१९-२०
[विण्डनि गा. ४४५]		[ऋग्वेद म. १० सू. ९०]		[विशेषा गा. ८६]	
नित्यं सस्वससत्थ वा	४१-६; १२५-७	पुत्रमणिय पि ज वणु	१०६-१४	मनागसु मज्ज	६६-१८
[प्रमाणार्थानिक ३-४]		पुमि सुयपरिकम्मिय-पुण्य सु'	१३२-१	मन्यथा १ य मिया २	६६-१६
निहंरुपकरणे इण्येनिप्रथम्	२०-२५	[विशेषा गा. १६९]	१४९-२४,	मसट वा तुद जम्भादिण्हि	१६-२७, १०७-३
[तत्त्वा २ १७]		प्रययस्यात् कात् पूर्व-	१७७-१५	[विशेषा गा. १४७०, कल्पभा गा. ३५०]	
नेमम संगह ववहार	१३२-३१	[या ७ ३ ४४]		मा ण्णहव इय दाहु	१७-८; ११०-५
नोदन्शानधितानेहि	२२-२५	प्रणा टि-जि-चतुः प्रोक्ता	१००-२७	[विशेषा गा. १४८१, कल्पभा गा. ३६१]	
पगतीमुद्ध अयाचिय	१७-२१	प्रायश्चित विनयो	६-१	मा मे होज अवण्णो	१७-१; १०८-३
[कल्पभा. गा. ३६७]		फलप्रधाना ममारम्भाः	४-१९	[विशेषा गा. १४७४, कल्पभा गा. ३५४]	
पञ्चाश्रवाद् विरमण	५-२६	बलीमा १ अउबाला २	३९-२२	मिच्छता सवती	३४-१३; १२१-१४
[प्रथम. भा. १०२]		[सुहसं गा. ३३३]		[कल्पभा. गा. ११४]	
पणिहाणजोगडुत्तो	७५-२८	बहुवयणेष दुवयणं	५७-१२	मिस्सत जोणीण	१००-५
[दशवै नि गा. १८७]		दारसविहंसि वि तवे	७५-३१	नीसा य गम्भवसही	१००-४
पणुवीस कोडिसय	८१-२८	[दशवै नि गा. १८८]		सुकं तथा अमहिते	१७-७; १०९-२८
परिहरणा शोड परिमोगे	१६६-११	वाल क्री-मूढ-मूर्खाना	१०६-१३	[विशेषा. गा. १४८०, कल्पभा गा. ३६०]	
पल्लवमहि पाणित्य	११०-३०				

उद्गरणादि	पत्र-पङ्क्ति	उद्गरणादि	पत्र-पङ्क्ति	उद्गरणादि	पत्र-पङ्क्ति
मोहा-ऽऽउपवजाण [पञ्चा १६ गा. ४१]	४-२९	व्याख्यानयन्ति केचित् [नन्दिहरिभद्रश्रुति]	३-२७	सर्वतोऽपिकल्पयदित्येके [पा. वा. ४. १ ४५]	२-१
मौ औ पञ्चाऽश्वे- [जयदेवच्छन्दः अ ६ सू. ३७]	१६२-४	दूरं वीर निकाम्नी [पा. घा. पा. १९०३]	४-८	सर्वेषामुन्म इन् [पा. उ ५६७]	१-१९
यद् वस्तुनोऽभिधान यस प्रयान्ति पुरुषाः यस्य [पा. ६. ४ १४८]	६७-टि १ ७१-१० २-३	श्रयांसि बहुविप्रानि श्रेयो विषयुपयुक्त यिञ्च बन्धने वा चिन्द्रिदादिभ्योऽञ् [पा. ३ ३. १०४]	१-१५ ७१-८ १२३-२४ १८-५	सर्वव्यक्तिषु नियत सम्बन्धं सम्मत [आन नि गा ८३०, विशेषा. गा. २७५१]	१४-२९ ११२-२९
य समः सर्वभूतेषु य माध्वस्योपमाभूतः यु मिश्रणे [पा. घा. पा १०३३]	७-३ ४९-१ ३-२	यिषु शास्त्रे मात्रान्ये च [पा. धादु. ४८] पिथौ संरादौ [पा. धादु ११९२]	३७-१४ ३७-१३	सध्वस्योवा तिथयगरीश्रिद्धा [सिद्धप्राप्त गा १०० वृत्तौ] सख्यन्तुपामका [विशेषा २२५क गा १४६६, कल्पभा गा. ३४६]	३९-१६ १६-२३, १०६-१
योजनसहस्रमानो यो धात्युपोऽनम्यकवो रविओ नि टिओ मेहो १६-१३; १०२-३१ [विशेषा गा. १४५६, कल्पभा गा ३३६]	२६-१९ ६-२८	सकपसंसा, गुणगाहि [विशेषा. गा. १४७७; कल्पभा गा ३५७]	१७-४, १०८-१९	सखा वि य अजाओ [मरणसमाप्ति गा ५४१]	१६८ ८
राध साव ससिद्धौ [पा. धातु. १२६३-६४]	३७-१३	सङ्घातीतास्वाण्युल- सचित्तशीतसंश्लेतर- [तत्पञ्चा २ ३३]	२६-२२ २-१	सख्ये पाणा सख्ये भूवा [आचा ध्रु १ अ ४ उ १ सूत्र १-२]	३-१३
रूप पत्सयुद्धा लक्ष्मणमेया हुंउफल- [विशेषा गा ९७]	१२४-१२ १२७-१२	सज्यावसाणस्यओयहेसु [आन नि गा. १५०४]	३-२१	सख्वेसि आचारो [आचारान्नि गा ८]	८८-२५, १६६ ३४
लक्युपयोगौ भावेन्द्रियम् [तत्पञ्चा २. १८]	२०-२७	सद्दि कागसहस्रवा सतत न देति लहति व [विशेषणवती गा २०४]	१३५-६ ४१-२२	सहवति गुणा कमवति संवातीते पि भवे [आन नि गा ५९०]	१०२-४ ३-१४
सूम्ना य अत्रन्मा वि य [विशेषा गा १४६०, कल्पभा गा ३४०]	१६-१७; १०४-१४	सत्त य छ षउ चउरो सत्तविहवषणा होति [पञ्चा. १६ गा. ४०]	७६-२५ ४-२८	संसारबन्धनमयो संद्ध्य वाऽऽशसमये सामण्यस्थाःऽगहण [विशेषा. गा. १८०]	७१ ११ २६-२० १५०-१८
वयसमणधम्म- [ओषनि भा गा २]	७२-१०	सत्थपरिक्षा १ लोगविजयो २ [आरम्भकसंघेपणीहारि श्रुति पत्र ६३०-१]	७६-१३	सामर्थ्यसमेय [विशेषा गा ६०५]	११८-५
वज्रगणवमहकालो वाचना प्रच्छन्ना परावर्तना वास कंठीसहिय सिक्तीय सख्यद्वे विशेषण विशेष्येण बहुलम् [पा. २. १ ५७]	५३-७ ६-१० ७१-६ ९० २० ८-२९	सदसदविसेसणाओ [विशेषा गा. ११५]	४६-७; १३१-२०	सामान्योक्तावपि प्राधान्य- सावज्जोगविरती [अनुयोग पत्र ४३-१]	६-१३ ७०-९
विससुत्तरा य पवमा सुद्धं पि दोणमेहे [विशेषा गा. १४५८, कल्पभा. गा. ३३८]	९१-४ १६-१५, १०४-५	सदे ति भणति वत्ता [विशेषा गा. २५३]	५४-२९; १४६-१४	सिगमति पदमासीए सिगमति-सख्यद्वेष्टि चिन-	९१-६ १०-२३
वेउत्था-ऽऽहाराणं वेउविशय पज्जती	१२१-११ १२१-टि १	सम्मल अ नाग २ दसण ३ सयमवि न पियद्द महिसो [विशेषा. गा. १४६८, कल्पभा गा ३४८]	१२७-२६ १४३-२३ १२४-२२	सि वणं-वधपण्योः सीओसिगओणीया [जिन सङ्घ गा. ३६०, जीवस गा. ४७]	३७-१८ १००-११

उद्धरणादि	पत्र-पङ्क्ति	उद्धरणादि	पत्र-पङ्क्ति	उद्धरणादि	पत्र-पङ्क्ति
दीक्षा पश्चिच्छाया [विशेषा गा. १४७५, कल्पमा गा. ३५५]	१७-२; १०८-९	सेते य छिद्र बालणि [विशेषा गा. १४६३, कल्पमा. गा. ३४३]	१६-२०; १०५-५	स्वकतनुपुपुसमाश्र स्वभावः प्रकृतिः श्रेष्ठा	२६-२१ १६७-३
सुयधम्मो सज्जाओ [विशेषा गा. ३२९९]	१-११	सेसेसु वि क्वादिमु [विशेषा गा. २९२]	५५-७, १४७-२०	ह्वचइ य सपचचूलो [आत्मा नि गा. ११]	७६-२९
सुराकिगे पुअसुए सुसमदुसमावसेसे	१२४-१३ ६६-२८	सोइदिबोवसद्धी [विशेषा. गा. ११७]	४५-२३; १३०-२०	होइ अपोहोऽवाओ ह्रस्वो मरुंसके प्राति-	१५२-१३ १८-८
सुदरजुद्धीए कय स्व् स्वायाम्	११९-१३ ७७-२७	सोऊग जा मनी अ [विशेषा गा. १०९]	४५-१८, १२९-२६	[पा. १. २. ४०]	



तृतीयं परिशिष्टम् ।

नन्दीमूत्रमूल-हारिभद्रीवृत्ति-हा.वृ.दुर्गपदव्याख्या-हा.वृ.विषमपदटिप्पणक-सवृत्तिलघुनन्दी-
योगनन्दीमूलान्नर्गतानां विशेषान्नामकारादिवर्णक्रमेणानुक्रमणिका ।

[अस्मिन् परिशिष्टे *एतादत्रपुष्पिकायुतानि नामानि नन्दीमूत्रमूलविमूत्रपाठगतानि ज्ञेयानि]

विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पदिक	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पदिक	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पदिक
अकपिय	निर्ग्रन्थ-गणधर	१०-११	अणियण	कल्पवृक्षनाम	६६-१७२	अरुण	देव	७३-४
अकिरियावादि	दार्शनिक	७८-१०	मायश	जनागम	७०-१९, १८०-२४	अरुणोपपात	जनागम	७२-३
"	"	७०-१८	*अणुभोगदार			जनागम	७०-१९, १८०-२४	*अरुणोषवाय
अक्रियावादिन्	"	७८-१० ११	*अणुसरोव- वाह्यदसा	"	६२-२१; ७४-२५; ८३-१३, १८२४, १८१-१०	अर्धभरत	क्षेत्र	१३-११
अक्षपाद्	"	७-१५, १०१-१३, १०१-१६ १	अण्णाणियवादि	दार्शनिक	७८-२०	अर्धह	पूर्व	७९-१२
*अग्निभृद्	निर्ग्रन्थ-गणधर	१०-९	"	"	७०-१८	*	"	८८-३ १०
*अग्निवत्स	गोत्र	१०-२६	*अण्णाणियवादि	दार्शनिक	७८-२०	अशिवोपशमिका	मेरीनाम	१००-२५
अग्नेयीय	पुत्र	८८-२८	"	"	७०-१८	अशिवसमणी	"	१ ९-१६
"	"	८८-२५	अण्णियपुस्त	निर्ग्रन्थ आचार्य	१४१-५	अशिवोवसमणी	"	१०३-१५; १०८-१८
*अग्निवेशायन	गोत्र	११-३	अतिसुसमा	कालविशेष	४७-३	असोर्गवन्द	राजा	१४३-२३
अङ्गचूलिका	जनागम	७२-३०	अत्यस्तथ	शास्त्र	४७-३; १३६-२९, ३०; १३७ २३	असोर्गवणिया	वाटिका	१३८ २१
		७३-१			१३७ २३	*अंगचूलिया	जनागम	७२-२२; १८१-२
अचलपुर	नगर	१३-५	अथियण्ठियण्णवाल	पूर्व	८६-२	अंतगडदसा	जनागम	१६६-१०
अजित+जिने- न्द्र, स्वामिन्	तीर्थकर २७-६, १२, ७४-३, ९०-१२, १३ ११७-११, १४, १६८-२०	२७-६, १२, ७४-३, ९०-१२, १३	*अथियण्ठियण्णवाल	पूर्व	८६-२	"	"	६२-२४, ७४-२४; ८२-२३ २७, ८३-६, १८१-३०
अजिय			"	११-७	अन्तकृद्दशा	जनागम	७३-२	"
*अज्ज	गोत्र	११-२०	अन्धकयुष्णिण	राजवश	७३-२७			
*अज्जणागह्ठिय	निर्ग्रन्थ-स्थविर	१२-१५	अन्धकपिण्णदशा	जनागम	७३-२७	आह्वञ्जन	राजा	१६८-टि.
*अज्जमेगु	"	१२-४	अभय	अभय	१३४-२४	आउपपञ्चकवाण	जनागम	७२-१३
*अज्जसमुह	"	११-२७	*अभयकुमार	"	१३४-२४, १३४-१६	"	"	७०-२२, १८०-२८
*अज्जाण्णदिल	"	१२-१२			१३३-२२; १७८-५ ६	आगम	"	६३-२२
अज्ञानिक	दार्शनिक	७८-२०	*अभिण्णदण	तीर्थकर	१०-१	आगमोद्धारक	निर्ग्रन्थ-आचार्य	६८-टि.
*अट्टापय	दृष्टिवादप्रविभाग	८५-२३, २७	*अभरगवहग- मणगंडिया	दृष्टिवाद- प्रविभाग	१०-७	आचार	जनागम	४-३; ५-१३; १४-१८, ६४-५,
*अट्टदमरह	क्षेत्र	१४-१२	*अथलपुर	नगर	१३-३			६९-२१; ७५-८;
*अणतह	तीर्थकर	१०-३	*अथलभाया	निर्ग्रन्थ-गणधर	१०-११			१६८-८
*अणतर	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-१०	*अर	तीर्थकर	१०-३	आचारनिर्मुक्ति	"	१६४-७

विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति
आजीव	भ्रमणभेद	७५-१२	भावद्वयकञ्चुकि	जैनागम	१२०-५	उसभसेन पुण्डरीक	निम्नव-गणधर	१०८-२७
आजीवग	दर्शन	८७-१	भावद्वयकनिर्युक्ति	,,	१६१-१६			
आजीविय	,,	८७-२४	भावद्वयकवृह-	जैनागम-अल-	६८-टि १	उसइ	तीर्थकर	७४-५
* " "	,,	८६-२१; ८७-१४	द्वल्लि	भयमाना हरि-		*उसइसामि	,,	७३-२९
आगुरुप्रत्यास्थान	जैनागम	७२-१०	*भावस्त्वग-य	जैनागम	७०-१; ७४-११;	*उस्सपिणि-	हट्टियाद्-	९०-६
आत्मभावित्	दार्शनिक	७८-६	उत्तरागम		१८०-१५ १६	उस्सपिणी	हट्टियाद्-	९०-६
आत्मविद्युद्धि	जैनागम	७२-१	*आसीविममाषणा	,,	१८१-६	क्रपम	कालविशेष	६७-४
*आधिकर	तीर्थकर	१०८-२४	*इसिमासिय	,,	७२-२०, १८०-३१	तीर्थकर	४-४, १२३-२२	७४-३, १६;
आदिच्छजस	राजा	९०-१५	*इवमूर	निम्नव-गणधर	१७-९			९०-१२, १३, १६७-१३;
आदितीर्थकर	तीर्थकर	१०८-२७	*ईश्वरकारिण्	दार्शनिक	७८-५	पकोठक	श्लेष	१६८-२०
आदित्यथश्च	राजा	१६३-१३	*उज्जुसुन	हट्टियाद्प्रविभाग	८७-९			३३-२७
आनन्द	श्रावक	१६६-१	उज्जो	नगरी	१३३-७ १३	*पगगुण	हट्टियाद्प्रविभाग	८५ २४.
*आमासपय	हट्टियाद्प्र-	८५-२३, २७;	*उद्दुणसुय	जैनागम	७२-२४; १८१-४			८६-१४ ७ ११,
विभाग	विभाग	८६-४, ७, ११,	*उत्तरज्जयण	,,	७२-१९, १८०-३०	*पगगुण		१५ १९.
		१५, १९	*उत्तराच्ययन	,,	७२-२६, १६१-३१	*पगगुण		८५ २३, २७
*आयथाय	,,	८७-११	उत्थानश्रुत	,,	७३-११	*पगतसुसमा	कालविशेष	६६-१२
आयथ	कल्पक्षनाम	६६-१७ २०	उत्पलपत्रशत-	समयनिरूपको-	५८-२३, ५७-७.	*परवय	श्लेष	६९-२५
आणयण			व्यतिभेदहण्टम्	वाहरण			पलापत्य	गोत्र
*आयप्यवाद्	पूर्व	८८-२ ८	उत्पात-द्	पूर्व	१३-३०;	*गलावच		११-१२
आयप्यवाद्	,,	८९-७			१६९-१	*पयभूय	हट्टियाद्प्रविभाग	८७-११
आयविमन्ति	जैनागम	१८०-१७	*उदिभोदय	राजा	४७-१६	पेरवत्त	क्षेत्र	६६-६
आयविषोदि	,,	७०-२१,	उदितोदय	,,	१४७-७, १७ ११	*भोगाहसेणि-		१५७-१
		१८०-२७	उपासकदशा	जैनागम	८२-२१	यापरिकम्म	हट्टियाद्प्रविभाग	८५-२०
आधार	,,	६४ ३; ८८-२४	*उत्पाद् + पुव्व	पूर्व	८८-१, ४	*भोगाहावत्त	,,	८६-६, ९
* " "	,,	६२-२३, ७४-२३ २८;	उत्पापुव्व	,,	८८-२६, १६ ३-९	*भोदिभोदय	राजा	४७-१६
		७५-६१ १८१-९	उत्पद्द्या	मेरीनाम	१७-३, १०८-१७	*भोवाद्	जैनागम	७०-१८
आयारिणज्जुत्ति	जैनागम	८८-२४	उत्पकोसा	गणिका	१३८-१८	*भोसपिणि-	हट्टियाद्-	९०-६
आर्य	गोत्र	११-२५	*उत्पवापय	जैनागम	१८०-२३	गंडिया	प्रविभाग	
आर्यनन्विल	निम्नव-स्थविर	१२-१३ १९	*उत्पसंपज्जणसेणि-	हट्टियाद्प्र-	८५-२०;	भोसपिणी	कालविशेष	६ ३-४
आर्यनागइस्तिन्	,,	१२-२०,	यापरिकम्म	विभाग	८५-१०, १३	भौद्धिकी	मेरीनाम	१०८-२६
		१३-१	*उत्पसंपज्जणावत्त	,,	८६-१२	कङ्कणी	तल्लनाम	११५-३
आर्यमङ्गु	,,	१२-५, १३	उत्पासदम्मा	जैनागम	१६६-१	*कथायण	गोत्र	१० २७
आर्यसमुत्त	,,	११-२८, १२-५	* " "	,,	६२-२४, ७४-२४	कट्टु	श्लेषो	१४०-१७
आवहयक	जैनागम	१६-११;	उत्पसंपज्जणसेनि-	हट्टियाद्प्र-	८५-२०;	*कणमसत्तरी	शास्त्र	६४-२०
		६४-६, ७०-४;	यापरिकम्म	विभाग	८५-१०, १३	कणमसू	दार्शनिक	७-१५; १०१-१३
		७४-२२; १२३-१९;	उत्पसंपज्जणावत्त	,,	८६-१२	कणाद्		
		१६१-६३	उत्पसंपज्जणसेनि-	हट्टियाद्प्र-	८५-२०;			
* " " " " " " " "	जैनागम-हरिभडी-	६८-२९,	* " " " " " " " "	,,	१०-१			
लुत्ति	या दृष्टि, कम्बामाना	टि १	उत्पभ्रसेण	निम्नव-गणधर	१०८-२४			

विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति
कण्ठ	वामुद्रेव	१०९-५	*केउभूय	दृष्टिवाद्-	८५-२३, २७;	*गोयम	गोत्र	११-७
कपिल	दार्शनिक	७-१५; १०१-१३ १६		प्रविभाग	८६-४, ७, ११,	"	निर्ग्रन्थ-नागधर	३१-२७, २८;
*कप्य	जैनागम	७२-३; १८०-३०			११, १९		३२-१, ४, ७, १३, १८,	
*कप्यवर्द्धिसिया		७२-२५, १८१-५	*केउभूयपिडि-	"	८५-२४; ८६-१४		२४, २३-२	
कप्यवर्द्धिसिया	"	७३-२४	ग्गह		८१, १६ २०	गोशालक	आजीवक-	१०१-२६
*कप्यासिय	शास्त्र	६४-२०	केसव	वामुद्रेव	१०९-१३ १६		वदानप्रणेता	
कप्टिया	जैनागम	७३-२२			२२ २४	गोष्ठामाहिल	निर्ग्रन्थनिह्वर	९३-५;
*	"	७२-२४, १८१-५	*कोडलय	शास्त्र	६४-१९			१०७-११
*कप्टियाकप्टिय	"	७०-१८, १८०-२२	कोमुख्या	मेरीनाम	१०३; १०८-१७	गोसाल + य	आजीवक-	८०-१, २६
*कम्पप्यडि	जैनप्रकरण	१२-१६	कोमा	गणिका	१२८-१८		वदानप्रणेता	
*कम्पप्यवाद्	पुण्य	८८-३, ९	*कोसिध	गोत्र	११-१३, २०	गौतम	गोत्र	११-१०
कम्पप्यवाय + पुडव	"	८१-८,	कौमुदिकी	मेरीनाम	१०८-२६	+ स्वा-	निर्ग्रन्थ-	१४-६; ३३-१०,
		१६७-२	कौशिक	गोत्र	११-१७, २२	मिन्	गणधर	१२, १७, १२३-२१;
करकण्ड	निर्ग्रन्थ-मुनि	३९-१०	क्रियावादिन्	दार्शनिक	७८-१	*कवचट्टिगडिया	दृष्टिवाद्-	१६१-१५
कर्मप्रकृति	जैनप्रकरण	१२-२४	क्रियाविशाल	पुष	१६७-८		प्रविभाग	९०-५
कल्पलघुभाष्य	जैनागम	१२१-टि	कुक्षिकाचिमा-	जैनागम	७२-३०	चरक	भ्रमणभेद	६-३; १०१-७ ८
कल्पकल्प	"	७०-२५	नप्रविभक्ति			चरणविधि	जैनागम	७२-९, १०
कल्पवर्तेलिका	"	२३-२२	क्षेत्रस्वमास	जैनप्रकरण	१२१-६	*चरणविशोधि	"	१८०-२८
कल्पिका	"	७३-२२	स्वदिलावरिय	निर्ग्रन्थ-स्थविर	१३-१५,	*चरणविधि	"	७०-२२
कचिल	शास्त्र	६४-२०		"	१६-१०	चंडकोसिय	सर्प	१४३-१७
कडरीय	राजा	१३५-२८	*कुडियाचिमा-	जैनागम	७२-२१;	*चंदपण्णति	जैनागम	७२-२१, १८०-३१
कात्यायन	गोत्र	११-४	णपविभक्ति		१८१-१	*चंदासेज्जय-	"	७०-२०, १८०-२१
कामदेव	श्रावक	१६६-२	*खोडमुह	शास्त्र	६४-२०	विज्जय		
कार्याण	नाणक	१५३-२४	गङ्गा	नदी	९५-२	चाणक्य	अभान्य	१४२-२९; १४४-१
कान्तचक्र	बालविशेष	६७-५	*गणधरगंडिया	दृष्टिवाद्-	९०-५	*चाणक्य	"	१२३-२२
कालचक्र	"	६६-१०	गणिविद्या	प्रविभाग		*चारणभावणा	जैनागम	१८१-६
कालवादिन्	दार्शनिक	७८-५	गणिकानुयोग	दृष्टिवाद्-	८९-२१	चित्तरस	कलाप्रश्ननाम	६६-१७, १९
काश्यप	गोत्र	११-३	*गणिविज्ञा	जैनागम	७०-२१;	चिंतन-	दृष्टिवाद्-	९१-७, ८, ११ २४;
*कासव	"	१०-२६			१८०-२६	गंडिया	प्रविभाग	९२-३, १६८-७
किरियावादि	दार्शनिक	७७-२८	गणिविद्या	"	७१-२४		"	९०-७
*	"	७७-१७	गणिकानुयोग	दृष्टिवाद्-	८९-२१	चित्र	अन्यत्रो निर्ग्रन्थ	१६२-७
*किरियाविशाल	पुष	८९-१५	*गढलोववाय	जैनागम	७२-२३, १८१-३	चित्रान्तरा-	दृष्टिवाद्-	९२-११;
*	"	८८-३, १२	*गंडियाणु भोग	दृष्टिवाद्-	८९-२०;	पिडका	प्रविभाग	१६८-११
*कुलगरगंडिया	दृष्टिवाद्-	९०-४		प्रविभाग	९०-४, ८	चिरन्तनवाचाना	प्राचीना जैना-	१६५-१४
	प्रविभाग		गुरवः	निर्ग्रन्थ-इदाचार्य	८२-३		गणधरम्परा	
*कुंथु	तीर्थकर	१०-३	गुरुयः	भ्रमणभेद	७५-११			
कृषित	राजा	१४३-२१, २२	गोहृय					
कूलबालय-	ममप्रतमुनि	१४३-२३ २८	गोहृगार	कल्पप्रश्ननाम	६६-१७, २०			
वारत			भक्षणकल्प					

विशेषनाम	किम् ?	पत्र	पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति
बीरिक	ध्रमणमेद	१०१-७८		*परयग्रग-	हृष्टिवाद-	९०-७	दृश	जनागम	७२-२७
*सुतसुतसेणिया-	हृष्टिवाद-	८५-२१,		मणगंडिया	प्रविभाग		द्वार्हाग-	हृष्टिवाद-	१६७-१२
परिकम्म-सुपमसु-	प्रविभाग	८६-१८,		*णंदावत्	"	८७-११	पिडका	प्रविभाग	
यसे	२१			*णविसेण	निम्नव-गुनि	४७-१७	*द्वसकालिय	जनागम	१८०-२२
*सुयमसुयावत्	"	८६-२०		*णाहलकुल	निम्नववश	१४-१३	*द्वसवेयालिय	"	७०-१७
*सुलकप्प + सुत	जनागम	७०-१८, १८०-२२		णाम	देव	१४२-१०	द्वसा	"	११-१६
सुलकप्पसुय	"	७०-२६		*णामःजुणायरिय	निम्नव-स्थिर	१३-२९,	* " "	"	७२-२०; १८०-३०
सैत्यवन्दनभाष्य	जैनप्रकरण	१६८-टि.		णामज्जुणरिसि	जनागम	१४२-२, १५	* " "	हृष्टिवादप्रविभाग	१६७-१२
जमालि	निम्नवनिह्व	९३-४		णामपरियावणिया	जनागम	७३-१८	* " "	"	९०-५
जम्बू	निम्नव-स्थविर	११-३		णालव्वाद्	पूर्व	८९-४	*विट्ठिवाभ-य	जनागम	६२-२५; ७४-२५,
जम्बूद्वीप	द्वीप	२८-४, १५-३		*णाडग	शास्त्र	६४-२१		८५-१३, ९२-१६,	
जम्बूद्वीपप्रह्वति	जनागम	७२-२८		*णायाधम्मकहा	जनागम	६२-२४, ७४-२४,		१८१-१	
*जसभद्द	निम्नव-स्थविर	११-६		णानिक	नगर	१४२-४	*त्रिट्ठिविसभावणा	"	१८१-६
अंबुदीव	द्वीप	२५-२५		* " "	"	४७-१९	*दीधपण्णत्ति	"	१८१-१
* " "	"	२५-२३		णिरयावलिया	जनागम	७३-२०	*दीधसागरपण्णत्ति	"	७२-२१
*अंबुदीधपण्णत्ति	जनागम	७२-२०, १८०-३१		णिमीह	"	७२-२०	*दुगुण	हृष्टिवाद-	८५-२४, ८६-१४,
*अंबुणाम	निम्नव-स्थविर	१०-२६		*णेमि	तीर्थकर	१०-४	*दुपुपरिग्गह	प्रविभाग	७१, १५, १९
जितशत्रु	राजा	१८६-३०		तन्दुलविचारणा	जनागम	१६१-३२	*दुर्गपद्वयारुया	नन्दीहरिन-	१६९-१७
जिनदासगणि	निम्नव-महत्तर	१६०-टि १		*तयोक्कम्मग-	हृष्टिवाद-	९०-६	दुसमसुम्ममा	कालादेश्य	६६-२९
जिनप्रद	निम्नव-आचार्य	९७-७		डिया	प्रविभाग		दुप्यगणि	निम्नव-स्थविर	१५-७, २१
जिनभद्रगणि-	"	१०-२०		*तद्वलवेयालिय	जनागम	७०-२०, १८०-२४	*दुसगमा	कालविशेष	६७-७
क्षमाधमण				तावस	ध्रमणमेद	७५-११	दुसगमा	निम्नव-स्थविर	१५-७, २१
जियसत्त	राजा	९१-७		*तिगुण	हृष्टिवादप्र-	८५-२४, ८६-१४,	दुसगमा	कालविशेष	६७-७
जीनचर	निम्नव-स्थविर	११-२५		*तिगुण	विभाग	८१२, १६२०	दुसगमा	निम्नव-गुण	१४३-२२
*जीयधर	"	११-२०		*तिश्यगरगंडिया	हृष्टिवादप्रविभाग	७०-४	देवधासक	निम्नव-स्थविर	१५-२१
जीर्णपट्टशटि	समयानिष्कर्ता	५, ७, ९		*तिशियगइग-	"	९०-७	देवधासक	निम्नव-स्थविर	१५-२१
कापादनहृष्टान्त	दाहण			मणगंडिया			नमिभुवकर्ता		१७-२६;
*जीवाभिगम	जनागम	७० १८, १८०-२३		तुल्लिक	गोत्र	११-८	देवसम्म	शास्त्र	१४०-१७
जेवलमेठ	नगर	१६८ टि		दुगप्राणप्य			*देविद्वय-	जनागम	७० १९, १८०-२४
जोति + स	कल्पवृक्षनाम	६६ १६, १९		तुडियंग	कल्पवृक्षनाम	६६-१६, १८	अ-धय		
ज्ञातार्थकथा	जनागम	८१-१३, १४, १६५-१५		*तुंगिय	गोत्र	११-६	*देविद्वोधाय	"	७२-२३; १८१-४
ज्ञानप्रवाद	पूर्व	६३-टि १		*तेयजिसग्ग	जनागम	१८१-७	देवेन्द्रनरकेन्द्र-	जैनप्रकरण	१६८-५
*ज्ञानविभत्ति	जनागम	७०-२१, १८०-२७		*तेरासिय	दशन	८६-२६, ८७-१५	शास्त्र		
*ठाण	"	६२-२३, ७४-२४;		प्रेराशिक	"	८७-२८	देवेन्द्रस्वरि	निम्नव-आचार्य	१६७ टि १
		७९-५, ७, ९, १६,		*धूलमइ + सामि	निम्नव-स्थविर	११-७;	सैत्यवन्दनभाष्यकर्ता		१६८-टि
		१८१-९			४७-१८, १३८-१८,	२०, १४३-१	द्वीपसागरप्रह्वति	जनागम	१२-१
*णमि	तीर्थकर	१०-४		द्वशयैकालिक	जनागम	७०-२४	घणदत्त	श्रेणी	१४७-१७
							* " "	"	४७-१७

विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति
प्रमथ	निर्मन्थ-स्थविर	११-३, ४	आष्य	जैनागम	१५२-१२	महागिरि	निर्मन्थ-स्थविर	११-१४:१७
प्रमादाप्रमाद्य	जैनागम	७०-२८	(निरीषावदयकमहाभाष्य)			* ..	"	११-१२
प्रझ्वलाकरण	"	१२-२१	भाष्यकार	निर्मन्थ- आचार्य	१९-१३, ३५-१६, ४६-६, ५४-२७,	*महागिरी	जैनागम	७२-२०, १८०-३१
प्राचीन	गोत्र	११ ९	(जिनभद्रगण क्षमाश्रमण)	५५-६, २७, १४५-२८, १४७-१८, १५०-१७		महानिरीषी	"	७२ २८
*बलदेवगण्डिया	दृष्टिवाद- प्रविभाग	९०-५	भाष्यकृत्	"	४-१५, ११८-४, १४८-२५	*महापञ्चकषाण	"	७०-२३, १८०-२८
बलिस्सह	निर्मन्थ-स्थविर	११-१७ २१	भिंग	कल्पवृक्षनाम	६६-१६ १८	*महापणवण	"	७०-१९, १८०-२३
*बहुभंगिय	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-१०	भूतद्विज्ञ	निर्मन्थ-स्थविर	१४-२०, २४	महाप्राज्ञापना	जैनागम	७०-२८
बहुल	निर्मन्थ स्थविर	११-१७, १८	*भूयद्विषय	"	१४-१४	महाप्रत्याकथान	"	७२-१३
* ..	"	११-१३	भूतवाद	जैनागम	१६१-२५	महाभाष्य	"	५४-टि १, २, ५५-
* ..	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-११	भूतावाद्य	"	१६१-२३	(विरीषावदयकमहाभाष्य) टि ४		
*बहुलसरिक्खय } निर्मन्थ-स्थविर	११-१३		*भूयावत्	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-१२	महाविदेह	क्षेत्र	६६-७, ६७-६, १५६-३०, ३१
(बलिस्सह)			मणियावत्	वस्यवृक्षनाम	६६-१७ २०	* ..	"	६५ २६
*भमदीवग	निर्मन्थशाखा	१३-१४	*मणुस्ससेणिया-	दृष्टिवाद- परिक्रम	८५-२० २६	महावीर +	तीर्थंकर	३०-टि. ३, ४-८,
बारवह	नगरी	१३-२८	परिक्रम	"	८६-२	वर्द्धमान	"	१०-७, ७४-१०
बिन्दुसार	पूर्व	१६९-१	*मणुस्ससावत्	"	८६-२	महावीर	"	४-२
*बुद्धवयण	शास्त्र	६४ २०	मण्ड-उपवेश	जैनागम	७१-२१, २२	*महासुमिप्रभाषणा	जैनागम	१८१-७
बेण्णायह-तड	नगर	१३४ २१ १३५-६	मण्डक	तेलनाम	११५-३	महुरा	नगरी	१३-१४
ब्रह्मदत्त	चक्रतीर्था	१६२-७	मत्तगय	कल्पवृक्षनाम	६६-१६ १८	मंडलपण्येस्व	जैनागम	७०-२०, १८० २५
ब्रह्मक्षीपिका	निर्मन्थशाखा	१३-७	मम्मण	वृत्तिक	१२३-११	*मंडिय	निर्मन्थ-गणधर	१०-११
ब्राह्मी	लिपि	५९-१४	मरणविमर्शित	जैनागम	७१-३०	मंदर	पर्वत	३५-२५
"	तेलनाम	११५-३	*मरणविमर्शित	"	७०-२१, १८०-२१	*माउगापय	दृष्टिवादप्रविभाग	८५-२३ २७
भगवती	जैनागम	४३-४:१२७-२४, २६	*मरणविमर्शित	"	१८०-२७	मागाधेशी	भाषा	२०-१८
*महाबाहु	निर्मन्थ-स्थविर	११-७	मरुदेवी	कुलकर राक्षी	३९-१९, १२४-२१	मागाहिता	गणिका	१४३-२३
*महाबाहुर्गो- खियाओ	दृष्टि- वादप्रविभाग	९०-६	मलकगिरि	निर्मन्थ-आचार्य	१६७-टि १	माडर	गोत्र	११-९ १०
मद्रबाहु + स्वामिन्	निर्मन्थ-स्थविर	११-९, १०, १६१-१५	मलकट्टणान्त	अवमहादि- निरूपकोदाहरण	५४-१, १५, ५२-७, १३-१०, २७	* ..	"	११ ६
भरत	नट	१३२-१३, ३२	*मल्लगिरि	"	५२-७, १३-१०, २७	*मासाण	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-१०
"	क्षेत्र	४-५, २८-४, ३३-२५, ६६-६, १०३-६, ११७ १३, १५६-२९, १५७-१	मल्लकट्टणान्त	अवमहादि- निरूपकोदाहरण	५४-१, १५, ५२-७, १३-१०, २७	माहुरा वायणा	जैनागमवाचना	१३-१६ १८
भरह	नट	१३२-१०	*मल्लगिरि	"	५२-७, १३-१०, २७	*मुणिसुवय	तीर्थंकर	१०-४
* ..	"	४६-२६, २९, १३१-१८	*मल्ल	गौथंकर	१०-३	मुणिसुवयस्सामि	"	१४३-२१
* ..	क्षेत्र	२५-२३, ६५-२५	महतीषिमान- प्रविमर्शित	जैनागम	७२-३०	मूलदेव	पूर्व	१३५-२५ २७
भयणरुक्म } कल्पवृक्षनाम	६६-१७ २०		*महल्लिया वि- माणपविमर्शित	"	७२-२९, १८१-१	*मूलपदमा-	दृष्टिवाद-	८५-१९ २३,
सोहामार }			महाका रसुय	"	७०-२६	गुभोग	प्रविभाग	३०
*भारह	शास्त्र	६४-१९ *	* .. -त	"	७०-१८, १८०-२३	मूलप्रथमासुयोग	"	८९-२१
						*भेयज्ज	निर्मन्थ-गणधर	१०-१२
						मेरु	पर्वत	१४-३६
						*भोरियपुत्त	निर्मन्थ-गणधर	१०-११
						यथोभद्र	स्थविर	११-८

विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति
रत्नप्रभा	नरक	१२२-१७	*धनुषोववाय	„	७२-२३; १८१-३	*विद्याह +	जैनागम	८०-१३; १६६-२३
रघुणन्ध्र-भा, ह	„	३५-२५; ३६-४;	वर्गचूलिका	„	७३-१२	पण्णत्ति	„	७४-२४
		१२२-१९	वर्षमानस्वामिन्	तीर्थकर	७४-५	*विद्याग + सुत	„	६२-२५; ७४-२५;
*रघुणन्ध्रमा	„	३५-१	*बबहार	जैनागम	७२-२०; १८०-३१	„	„	८४-२०; ८५-९;
*रामायण	शास्त्र	६४-१९	बसिष्ठ	गोत्र	११-१५	„	„	१८१-११
राधागह	नगर	१३४-२२, २५;	वसुदेव	राजा- कृष्णपिता	१६७-१२	*विद्याहचूलिया	„	७२-२३; १८१-१०
		१४०-११ १४	वसुदेवहिण्डि	जैनकथाग्रन्थ	१६७-टि. १	*विद्याहपण्णत्ति	„	६२-२४; १८१-१०
*रायपसेणिय	जैनागम	७०-१८, १८०-२३	*वाडभूह	निर्ग्रन्थ-नाणवर	१०-१०	विशेषावद्यक-	„	६८-टि १
*रासिबद्ध	दृष्टिवादप्र-	८५-२४, ८६ १,	*वागरण	शास्त्र	१२-१६; ६४-२१	महामाण्य	„	„
	विभाग	४, ७, ११, १५ १९	वाचकवंश	निर्ग्रन्थवशा	१२-१७, १३-१	*विहारकल्प	„	७०-२३; १८०-२६
रुचक	परंत	२८-६; १२२-१३ १७	वासवान्तर	जैनागमप्राची-	१६६-२३	विहारकल्प	„	७२-७, ८
रुच्य	„	३५-२५	नपरम्परा	„	„	वीतरागश्रुत	„	७२-१, २
* „	„	२५-२४	वाणारसी	नगरी	१४१-८	*वीररायसुत-य	„	७०-२३; १८०-२६
*रेवर्णकमल	निर्ग्रन्थ-स्थविर	१२-२७	*वायगवंश	निर्ग्रन्थवशा	१२-१५, २३	*वीर	तीर्थकर	४-२२
रेवर्णिनक्षत्र	„	१३-७, ९	वासुदेव	कृष्ण	१३७-२८	वीरशासनक	जैनशासन	१०-२२
रेवर्णिवाचक	„	„	*वासुदेव-	दृष्टिवाद-	९०-५	*वीरसातण्य	„	१०-१७
रोहत्र-ग	नट	१३३-२०, २३, २९	नक्षिया	प्रतिभाग	„	*वीरिय	पुत्र	८८-२५
लघण	समुद्र	३३-२६	*वासुपुरज	तीर्थकर	१०-२	वीरियपवाय	„	८९-१
लोकप्रकाश	जैनशास्त्र	१६७-टि १	विचारसतिका	जैनप्रकरण	१२१-टि १	वृद्धटीकाकार	निर्ग्रन्थ-ग्रन्थकार	१५३-३
लोकविन्दुसार	पुत्र	४६-१७	विजय	देवविभाग	१६८-२	वृद्धाचार्य	„	४०-२१
लोगविन्दुसार	„	८८-१ १२	*विजयचरिय	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-१०	वेणइयवादि	दाशनिक	४८-३०
* „	„	८८-१ १२	विज्जणुपपवाय	पूर्व	८९-११	* „	„	७३-१८
*लोगायत	शास्त्र	६४-२०	*विज्ञाचरण-	जैनागम	७०-२१;	*वेद	शास्त्र	६४-२१
लोहिक	निर्ग्रन्थ-स्थविर	१४-२३	विणिल्लभ-य	„	१८०-२५	*वेदावब	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-११
लोहिक	„	१४-२४;	विणहु	कृष्ण	१०९-१०	*वैल्लेखरोववाय	जैनागम	७२-२३; १८१-३
लोहित्य	„	१५-६	विदेह	क्षेत्र	११७-१३	वेसमण	यक्ष	१३४-९, १०, १३;
*बहुर	„	४७-१९	विद्यान्तरण-	जैनागम	७१-२२ २४	„	„	१४१-१०
बहुरसामि	„	१४३-९	विनिश्चय	„	„	*वेसमणोववाय	जैनागम	७२-२३; १८१-३
*बहुरेसिय	शास्त्र	६४-२०	विनयविजय	निर्ग्रन्थ-	१६७-टि.	वेसाला	नगरी	१४३-२१, २३, ३०
*बगचूलिया	जैनागम	७२-२२, १८१-२	विन्ध्य	उपाध्याय	१६८-टि.	*वेविन	शास्त्र	६४-२०
बच्छ	गोत्र	११-५	*विपजहणसेण-	दृष्टिवाद	८५-२१;	वेवन्नत	देवविभाग	१६८-२
*	„	१०-२७	यापरिकम्म	प्रविभाग	८६-१४, १७	वेनाडव	पवत	११-२३; १३-११
बज्जा	श्रेष्ठिपत्नी	१४०-१७, २९	*विपजहणावस	„	८६-१६	वेनयिक	दाशनिक	७८-३७
*बण्डिदला	जैनागम	७२-२५; १८१ ६	*विमल	तीर्थकर	१०-३	वेदोपिक	दशनिक	१०१-टि १; ११४-२०
*बण्डिदया	„	१८१-५	विमलवाहण	कुलकर	१०-१०	व्याख्या	जैनागम	७३-२, ८०-२४;
*बन्तमाणुपप	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-१२	*विप्ल	निर्ग्रन्थ-नाणवर	१०-१०	„	„	१६५-१३
बन्स	गोत्र	११ ५				व्याख्याचूलिका	„	७३-३
*बद्धमाण + सामि	तीर्थकर	१०-४; ७३-३१				व्याख्याचूलिका	„	७३-३
बर्धणु + अ	अमास्यपुत्र	१४१-२०, १४२-१८				व्याख्याचूलिका	„	७३-३
बर्धणीववाह	जैनागम	७३-१०				व्याख्याचूलिका	„	७३-३

विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति
शब्दप्राभृत	जैनशास्त्र	१२-२१	सम्प्रतिवाचना	जैनाग्रवर्तमान-	१६५-१४	सिद्धप्राभृत	जैनशास्त्र	३०-१६
शब्दसम्बन्ध	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-५, ११-८	परम्परा			सिद्धसिद्धा	शशुब्रह्मगत	१४३-२५
शाक्य	धर्मगमेद	९-४, ७५-११	सम्भूत	अन्यत्र निर्ग्रन्थ	१६२-७		शिक्षातीर्थ	
शाण्डिल्य	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-२२, २५, २८	सम्भूतविजय	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-१, १०	*सिद्धसेणिया-	दृष्टिवादप्रतिभाग	८५-१९
शांतिनाथताडप-	जैनज्ञानम-	१६८-टि	सम्भूत			परिकरम्		२२-२५
श्रीयभाषणामार	षडारनाम		सर्वार्थ + सिद्धि.	देवलोक	११-२०, १६७-७	सिद्धसेनाचार्य	निर्ग्रन्थ-आचार्य	४०-१९, २७
शिक्षरिन्	पतंत	३३-२६, १२१-५	सिद्ध	१४ १५, १६७-		*सिद्धावत	दृष्टिवादप्रतिभाग	८५-२५
शीलभद्र	निर्ग्रन्थ-आचार्य	१६९-३०, १७९-८		टि १, १६८-		सिन्धु		९५-२
	(नन्दीसूत्रहारिभग्नोद्धति-			३, ४, ५, ११ १२, २१		सिणा		१३३-१४
	दुर्गावदभ्याख्याकारगुरु)		*सर्व्व भोमह	दृष्टिवादप्रतिभाग	८७-१२	सिरिकंता	राज्ञी	१४१-७, ८
शैब	दशम	१०१-टि १	सर्व्वह	देवलोक	९०-१६त २६ २९, ११-३, ६ १० १३	सिरिन	अमात्ययुक्त, अमात्य	१४३-३
श्यामार्य	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-२२		१६ २३, ९६-२, ६, ८:१६८-१६, ७ टि		सीयल	नीथकर	१०-२
श्रीचन्द्र+सुरि	निर्ग्रन्थ-आचार्य	१६७-टि १,	*सति	तीर्थकर	१०-२	*सीध	निर्ग्रन्थ-स्थविर	१३-४
	(नन्दीसूत्रवृत्ति-	१६९-२९, ३१;	संगामिया	मेरीनाम	१७-३, १०८-१७	सुगत	भगवान् बुद्ध	६३-१७
	दुर्गावदभ्याख्याकार)	१७०-१, १७९-८	*संजुह	दृष्टिवादप्रतिभाग	८७-१०	सुणो	द्वयम	१४४-२९
श्रेणिक	राज्ञा	१७८-५	*संजिह्ल	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-२०	*सुपास	तीर्थकर	१०-१
सक	धर्मगमेद	७५-११	*संति	तीर्थकर	१०-३	*सुपपभ		१०-१
*सगमद्विया	शास्त्र	६४-१९	*संभव		१०-१	सुप्रतिबद्ध	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-१५
सगर	चक्रवर्ती	९०-१५, १६७-१४;	*संभिषण	दृष्टिवादप्रतिभाग	८७-१०	सुवुद्धि	अमात्य	१०-१५;
		१६८-२१, १८६-३०	*संभूय	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११ ६			१६७-१४, १६८-२१
सङ्गम	देव	१०१-२६	संसेखनाथन	जैनागम	७२-२	*सुमति	तीर्थकर	१०-१
सङ्गवासगणि	निर्ग्रन्थ-नाचक	१६७-टि १	*संसेल्लणसुत-य	७०-२३, १८०-२६		*सुमिणभावणा	जैनागम	१८१-६
	(बसुदेवद्विष्टिकार)		*संसारपडिगह	दृष्टिवाद	८५-२४, ८६-१, २	*सुवण	देवजाति	८४-६
सङ्गाचारटीका	जैनशास्त्र	१६८-टि.	प्रतिभाग	५८ १२, १६२०		सुसमदूसमा	कालविशेष	६६-२५
	(अत्यवन्दनमाध्यैटीका)		*साह	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-१९	सुसमा		६६-२२
*सखण्णवाद्य	पूर्व	८८-२, ७	*सागरपण्णसी	जैनागम	१८१-१	सुम्भियत	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-१५
सखण्णवाद्य		८५-५	साङ्गग्रामिकी	मेरीनाम	१०८-२६	*सुद्विय		११ १२
*सद्धितंत	शास्त्र	६४-२१	*सामज	निर्ग्रन्थ-स्थविर	११-१९	सुद्विद्य	निर्ग्रन्थ-गणधर	१०-१०, २६
सत्यकी		६५-१०	सामायिक	जैनागम	४६-१७	सुद्विद्य		११-१५
*समभिरुद्ध	दृष्टिवादप्रतिभाग	८७-१	सामि	तीर्थकर	१९९-२६	सुद्विद्य		११-१५
समघाय	जैनागम	८०-८, ९		(बद्धमानस्वामि)		सुद्विद्य		११-१५
		१६५-८	सिद्ध + वाचक	निर्ग्रन्थ-स्थविर	१३-७, १२	सुद्विद्य		११-१५
* ,, -ञ		६२-२३, ७४-२४,	सिद्धाचार्य			सुद्विद्य		११-१५
		७९-२५, २८, २९, ८०-७				सुद्विद्य		११-१५
		१८१-१०				सुद्विद्य		११-१५
समवायाङ्गवृत्ति		१६५-११	सिद्ध + वाचक	निर्ग्रन्थ-स्थविर	१३-७, १२	सुद्विद्य		११-१५
*समुद्धानुसुय		७२-२४, १८१-४	सिद्धाचार्य			सुद्विद्य		११-१५
समुत्थानसूत		७३-१४	सिद्धपण्णो	तीर्थकर	१०-२	सुद्विद्य		१४३-४
समुद्रविजय	राज्ञा(नेमिबिन्दुपिता)	१६७-१२	सिद्धदण्डिका	जैनप्रकरण	१६७-टि-१;	सुद्विद्य		१४१-१७
					१६८-टि.	सुद्विद्य		१४१-१७

विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति	विशेषनाम	किम् ?	पत्र-पङ्क्ति
*सूयगड	जनागम	६२-२३, ७४-२३; ७७-१५, १७ १९, २६; १८१-९	स्तुतिकार	निर्ग्रन्थ-आचार्य (सिद्धसेनदिगारः)	६३-१८	*हरिवंस- गंड्विया	दृष्टिवा- प्रविभाग	९०-६
सूयगड		१६४-१६	स्थान	जनागम	७९-१७	*हंभीमासुठकन्न	शास्त्र	६४-१९
*सूरपण्णसी	जनागम	७०-२०, १८०-२२	स्थूलभद्र	निर्ग्रन्थ स्वविर	११-१०, १४	*हारिय	गोत्र	११-१९
सूर्यप्रभति	..	७१-१७, १८	स्वभावधावित्	दार्शनिक	७८-७	हारित	..	११-२१
*सेञ्जभब	निर्ग्रन्थ-स्वविर	१०-२७	स्वाति	निर्ग्रन्थ-स्वविर	११-२१	ह्रिमवन्	पर्वत	११-२९, ३३-२६; १२१-५
सेणित-य	राजसुत्र, राजा	१३४-२०; १३६-२५	स्वोपहृतीका	जनागम	५५-टि २ (विशेषावश्यकटीका)	ह्रिमवन्त ह्रिमवत्क्षमाग्रमण	निर्ग्रन्थ- स्वविर	१३-२२, ३०
*सोद्यन्धिपुष्पण	दृष्टिवादप्रविभाग	८७-११	हनुमन्	राजा (वानरवर्गीय)	१२३-२१	ह्रिमवत	..	१३-२१, २९
सौधर्म	देवलीक	१०८-३०	हरि	कृष्ण	१०९-१, ४, ५, १२ २१, २४	ह्रिमवत	क्षेत्र	३३-२६
स्कन्दिलाचार्य	निर्ग्रन्थ-स्वविर	१३-१२, २२	हरिभद्र + सूरि	निर्ग्रन्थ-आचार्य (नन्दीसूत्रदृष्टिकारः)	९०-७; १६७-टि १			
स्तम्भतीर्थ	नगर	१६८-टि						

४

चतुर्थे परिशिष्टम् ।

नन्दीसूत्रदृष्ट्याद्यन्तर्गतानि पाठान्तर-मतान्तर-व्याख्यान्तरावेदकानि स्थानानि ।

पाठान्तरादि	पत्र-पङ्क्ति	पाठान्तरादि	पत्र-पङ्क्ति	पाठान्तरादि	पत्र-पङ्क्ति
अणो भगति	१३-१७, ३६-६ ७४-१३ १३४-३० १३७-२४, १३८ २ १४१-२१, १४२-१९	अण्ये तु व्याचक्षते	२६-२८, ७७-२	एके	३४-५, २७-२२, १६३-२
अणो भगति		अण्ये त्वाचार्याः	५५-१	एके व्याचक्षते	७४-१७
अन्नायारिमतेण	८८-२३	अण्ये त्वैत पठन्ति	४४-६, ५७-५ १६, १५०-१४	एकेषां मते	१२१-६
अक्षे	१२७-२३	अण्ये पठन्ति	४८-७	एते आयरिया	७४-११
अक्षे मर्षति	१२७-१९	अण्ये पुनः	७४-२० ८२-३	केचनाचार्या	११६-३०
अण्ये	१३-१, ३६-२६, ५१-४, ७५-१३ १६२-२७	अपरमेतेन	१२१-७	केचित्	३-२७
अण्ये तु	१-२३, ११-२४ ३४-१८, ५१-२५, ५५-१२ ९३-१६, ९५-१४, १२३-९, १२४-	अपरै	१६३-२	केपाक्षित्	११७-६
				पाठान्तरम्	३०-३०
				पाठान्तरे	१२०-२
				मतान्तराणि	१६२-२४

पञ्चमं परिशिष्टम् ।

नन्दीसूत्रमूल-हारिभ्रीष्टृन्त्याद्यन्तर्गतानां व्याख्याताव्याख्यातशब्दानामकारादिक्रमेणानुक्रमणिका ।

[अस्मिन् परिशिष्टे *पतकुष्ठिकाचिह्नाचिताः शब्दा मूले व्याख्याताः, +प्रतद्विज्ञता +*एतच्चिह्नद्वयाद्विज्ञताश्च शब्दाः 'पाठयसदमहण्णवा'-
ख्यकोशानुपलभ्यमाना व्याख्याताः, +§ एतच्चिह्नद्वयाचिन्ताः शब्दाः 'पाठय० स० म०' कोशानुपलभ्यमाना अन्याख्याताश्च ज्ञेयाः]

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति
अकर्मभूमि	अकम्मभूमि	३३-२६	अचिन्ता	कुप्पावचनिकी	१७७-३	+§ अण्णिया=स्वामिनी		१४०-२०
अकारण	अकारण	१३-२०	हृशरीर-भ्रम्यशरीरव्यति-			+अतिन्यगरसिद्ध		३८-२२
अक्रिय	अक्रिय	७ ९	रिक्ता	द्रव्यानुष्णा		अतिवृसमा		६७-३
अक्रियावादिन्	अक्रियावादि ७८-१०, ११		*अचिन्ता लोड्या जाणगस-	१७५-२९, त.		अतिशेष	अइसेय	१६३-२०
अक्ष = जीव	अक्ष २०-८, ९, १० १२		रीर-भ्रमियसरीरवतिरिक्ता	१७६-३		अतिशेषसिद्ध	अइसेयसिद्ध	१६३-२०
,, = इन्द्रिय	अक्ष ११४-१९, २०		वृथाणुपणा			अतीर्थसिद्ध	अतिथ्यसिद्ध	३९-४, ५, ६
,, = चन्दनक	१७१-३		*अचिन्ता लोउत्तरिया	१७७-१०		अन्धोगाह	१४४-२६	
अक्षर	अक्षर	६८-८;	वृथाणुपणा	त १३		अथ	अह ४३-१५, १६ १७	
		१५, ८-१९ त २३	अल्लिखच्छेद्वृणय	८७-२४ त २६		अधमस्तिकाथ	४४-२८, २९	
अक्षरलघिक	अक्षरलघीय ५९-२४, २५,	२६	अजीव	अजीव	१३-२१	अध्ययसायस्थान	अअवसाणद्वय २६-७	
अक्षरस्युत	अक्षरस्युत ५९-६ तः ९		+अजावण = तजेन	१००-७७		अनक्षरस्युत	अणवत्तरस्युत ६०-८ त १७;	
अगमिक	अगमिय ६९-२१; १६१-१२,	१३, १८५-२९	अज्ञान	अण्णाण	७८-२०	अनक्षरस्युत	१५३-१ त. ६	
			अज्ञानिक	अण्णाणिय	७८-२० त. २३	अनगर	अणगर	२२-२६, २७
			अज्ञिका+पर्यन्त	अजाणिया+ परिसा	१७-१६, २१	अनयक्षर	अयक्षक्तर	१७२-७
			+§ अह्वापय = दृष्टिादप्रविभाग	८५-२३, २७		अनन्त	अणेत	१३-२६
			- अणक्खरस्युत	६७-३ ४, ५		अनन्तगुणित	अणतगुणिय	६८-२
			+§ अणतर = दृष्टिादप्रविभाग	८७-१९		अनन्तप्रदेशक	अणतगण्णिय	३५-१२
			+अणाहसेसि= अनलिशाविन्	१८३-२२		अनन्तरसिद्ध	अणतरसिद्ध	३८-१८, १९
			*अणानुगामिय[ओहिणाण]	२४-२७		केवलज्ञान	केवलणाण	
				तः २५-५		अनवच्युत = अनियत	१६५-१	
			+§ अनुओगदार = अजागम	७०-१९		अनाजीविन्	अणाजीवि १६३-२४, २५	
			अनुकड्ड	११६-७, ८		अनात्यन्तिक	९९-२	
			*अणुसरोधवाहयइसा	८३-१३ त. २५		अनानुगामिक	अणानुगामिय २३-३; २५-	
			अणुभाग	१६७-५		[अथअज्ञान] [ओहिणाण]	६ तः ११; ११५-	
			+अणेषसिद्ध	३८-२५; ३९-२०,			१९, २०	
				२१, २२		अनुष्ठा	अणुष्ठा १७०-८, ९	
			+अणल्लिगसिद्ध	३८-२४		अनुत्तर	अणुत्तर ८३-२६	

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति
अनुसरोपपा- तिक्रशा	अनुसरोप- वाइयदसा	८३-२६, १७, २८	अप्रथमसमय- सिद्ध	अपठमसमयसिद्ध	४०-१	अप्रग्रहणता	ओगिण्डणया	५०-१३, १४
अनुप्रेक्षा	अनुपेहा	१७३-२२	अप्रमत्तसंयत	अमत्तसंयत	३४ १६, १७	अवचन	अवचण	१५४-१४
अनुभाव	अनुभावा	१६७-३	अप्रभ्र	अप्रतिण	१६६ १७, १८	अवधि + हान	ओहिणाय	१८-२८ त ३१; ११२-३ त ६, ११५-
अनुमान	अनुमाणा	४८-३०	अप्रभेतरावहि		१२०-५, ६			१५, १६
अनुयोग	अनुयोग	८९-२९, ६९-३०	अप्रभवसिद्धिक	अभवसिद्धीय	६७-२५	अवबोध		१२६-११, १२
			अप्रभव्य	अभविय	९३-२२	अवचण		१५४-१२
अनुयोगद्वार	अनुयोगद्वार	७६-६	अप्रभाव	अभाव	९३-१३ १४, १६	अवलम्बनता	अवलम्बणता	५०-१७ त २०
अनेकान्तिक		९९-२	अप्रभियाय		१२३-२१	अवज्ञा		८९-१२
अन्त	अत	८३-७	अभिप्राय		१२३-२२	अवाग्र-य		१५०-१८, १५२-१३
अन्तकृद्शा	अतगच्छसा	८३-७ ८	अभिसंधारण	अभिसंधारण	६१-१७, १८	*अवाय		५६-८, १५०-७
अन्तगत[अ- वधिज्ञान]	अतगत	२३ १४ त १८	अभ्यधिकतर+क	अभ्यधिक- तराग	३६-१८ १९, २० २६, १२२-२९	*अविद्युति		१४५-४, ५, १५०-२५
अन्तर	अतर	९०-१२	अभ्यन्तरग्रन्थ		१६३-१३, १४	अवेद्रित	अवेह्य	४८-४
अन्वयक्रिया	अन्वयक्रिया	८३-९	अभिलिन	अभिलिय	१०२-१०, ११	अव्यक्त		१४५-२४
अन्यलिङ्गसिद्ध	अन्यलिङ्गसिद्ध	३९-१९, १२४-१९	अमूढदृष्टि	अमूढदिष्टि	१६३-१६	अव्यत्याघ्नित	अभियाभोमेय	१०२-१२, १३, १४
*अपडिवानि[ओहिणाय]		२९-२३, ३३ २४	अयोगिन्	अयोगि	३०-२९	अव्यवच्छिन्ति-	अविवच्छिन्ति-	६५-१९,
अपर्यवसित	अपर्यावसित	६५-२१	अयोगिसिभवर्थ-	अयोगिसिभवर्थ-	३७-२९	नयायता	नयद्वया	२०, २१
अपर्याप्तिक	अपर्याप्तिक	३४-१०	केवलज्ञान	केवलज्ञान		अव्याविद्ध	अव्याविद्ध	१७२-९
अपञ्चिम	अपञ्चिम	१०-१-२	अरुणोपपात	अरुणोपपात	७३-३ त १०	अव्याविद्धार	अव्याविद्धार	१७२-८, ९
+अपसिणा		८४-१५, १६	अर्थ	अर्थ	१५-८	अव्याहन	अव्याहन	४८-६
अपाय	अपाय	४९-१३ १४, ५१-१३, १४, ५७-३; १४५-१, २, १४८-२३; १४९-३१, १५२-१५; १८४-२१	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	अधुतनिश्चित-	अधुतनिश्चित-	४६-१८, १९
			अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	[मतिज्ञान]	[मतिज्ञान]	
अपाय	अपाय	१५०-११, १२, २२ २३	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	*असिण		६०-२५, २६
अपोह	अपोह	५८-१६, ६१-१, १५२-६	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	असंख्येयवर्षा-	असंख्येय-	२३-२८
			अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	युग्	वासुदेय	
अपोहते	अपोहते	१५२-६	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	असंखिन्नु = सम्-	असंखिन्नु = सम्-	६१-११, १२
अप्रतिबन्ध	अप्रतिबन्ध	६-३	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	छिमविकले-	छिमविकले-	
अप्रतिपत्ति	अप्रतिपत्ति	२३-७;	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	मिथादि	मिथादि	
[अवधिज्ञान]	[ओहिणाय]	२९-२५ त २६	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	.. = प्रथिव्यादि	असिण	६१-२१ २२; १५३-२१
			अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	.. = मिथ्यादृष्टि	..	६२-१४, १५
अप्रतिपत्ति	अप्रतिपत्ति	४३-२१, २२	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	असंखिन्नुत	असंखिन्नुत	१५३-११
[केवलज्ञान]	[केवलज्ञान]		अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	असंयत	असंयत	३४-१५
अप्रथमसमय	अपठमसमय	३८-६	अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	असिद्ध	असिद्ध	१६९-८, ९
			अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	असील	असील	१५४-१२
			अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	अस्खलित	अस्खलित	१७२-९, १०
			अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	अदीनाक्षर	अदीनाक्षर	१७२-७
			अर्थसिद्ध	अर्थसिद्ध	१२३-२१	अहेतु	अहेतु	९३-१९

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति
*अंतगड्वला		८२-२३त ८३-६	आभ्रत	पुरित	१४५-२०	ईहा	ईहा	४९-१०, ११, १२;
+आउरपक्कवाण		७०-२२	आभोगनता	आभोगनया	५०-२८			५५-३, ४; ५७-२;
आउं		८९-१४	आभ्यन्तरतपः		६-१			५८-१६; ६०-२९त;
आएस = प्रकार		५५-२८, १४५-३	+आमासपय=हृत्विवाप्रविभाग		८५-२३,			६१-१, १४४-२९, ३०, ३१;
,, = सूत्र		५६-२; १४९-१९			२७, ८६-४,			१४४-३०, ३१, १५०-८,
आगम	आगम	९६-४, ५	आय		८९ ७	उक्षा = सम्ब-	+उक्त्वा	२०-१३; ११२-२९
*आगमओ द्वागुण्णा		१७१-१९त २८	+आयबाय = हृत्विवाप्रविभाग		८७-११	न्यन		
आगमतः		१८२-१०, ११	+आयबिसोहि		७०-२१	*उमगह		५६-७
आगमतो द्रव्यनन्दि		२-७, ८	*आयार		७४-२८त ७५-६	+उज्जुसुन = हृत्विवाप्रविभाग		८७-९
आगमतो आगमओ	आगमओ	१७१-२९ ताः	+आयार		७४-२८त ७५-६	+उणमणी = अनुज्ञा		१७८ २९
द्रव्यानुज्ञा	द्रव्याणुण्णा	१७३-२४	*आयार		७४-२८त ७५-६	उत्कालिक	उत्कालिय	७० १६,
आगमतो भावनन्दि		२-१७, १८	+आयिणें = आचिन्वान		१३९-६३			१६१-३१, ३२
आगमशास्त्र	आगमसत्य	९४-४तः७	आयूस = धुरकम		१३८-दि ३	उत्तर	उत्तर	८३-२६
आगमसिद्ध		१२३-२१	आयुं	अज	११-२३	उत्तरगुण		५-१०
आगर		७९-२२, २३	आयुंजीतघर	अजयौघर	११-२३ २४	+उत्तरज्जयण		७७-१९
आयुहीत	आयुविय	१७४-१६	आयुलीक		१६३-५	उत्तराध्ययन	उत्तराध्ययण	७२-२६, २७
आयुज्जति	आख्यायन्ते	६७-८; १६४-१३	+आयुलिका		५१-८	उत्थातश्रुत	उत्थाणमुय	७३-११त १४
आचार	आचार	७५-७, ८, १२	आवरण		१२३ २	उद्ययण		१००-२७
आचार्य=दर्शनान्त- आयरिय	आयरिय	१७७-१	आवरणनता	आवरणनया	५१-१०, ११	उद्ययण		१६५-१६ १७
रोयाचार्य			आवलिक्का	आवलिक्का	२७-२२, २३, ११८-८	उपचारप्रत्यक्ष		११४-६, ७, ८
,, = निर्प्रन्थाचार्य	आयरिय	१७७-२०			१११-१५	इन्द्रियप्रत्यक्ष		
आतुर	आठर	७२-११	आवश्यक	आवश्यक	७०-७, ८	उपदेशित	उपदेशित	१७४-१८
आतुरप्रत्याख्यान	आउरपक्कवाण	७२-१०	आवनविशेष		१५७-१०	उपशर्यन्ते	उपशर्यन्ते	६७-१०,
		त १३	आसुररुत	आसुररुत	१६३-४			१६४-१५
आत्मप्रदेशान्तर्गत [अबधिज्ञान]		११५-३०	आहारक	आहारक	११६-१५	उपधारणता	उपधारणता	५०-१५, १६
आत्ममध्यगत [अबधिज्ञान]		११५-३२	आहारपर्याप्ति		३४-१	उपपात	उपपात	८३ २६
		त ११६-१	इहना		१००-३०, १५-२७	उपपेक्षा	उपपेक्षा	१६३-१७
आत्मसाधिन		७८-६	इच्छिना		३८-२३	उपयोग	उपयोग	१६३-१७
आत्मविद्युद्धि	आत्मविद्युद्धि	७१-३०त ७२-१	इच्छिना		३८-२३	उपलब्धि	उपलब्धि	१२०-२२, १५७-९
आदेश = प्रकार	आएस	५५-३, ११२-३०,	इच्छिना		३८-२३	उपशान्त	उपशान्त	१२३-५
		१४९-५; १८३-६	इच्छिना		३८-२३	उपसर्ग	उपसर्ग	१६६-५
,, = सूत्र		१४९-२१	इच्छिना		३८-२३	उपाधि	उपाधि	१२३-२९
आनुगामुक [अ- आणुगामि-		२३-२ ११५-	इच्छिना		३८-२३	उपाध्याय = उबज्जाय		१७७-१
बधिज्ञान]	यओहिणण	१८, १९	इच्छिना		३८-२३	कलाध्यायक		
आभिजिबोहिय		१५२-४, ५, १३ १४	उपचारप्रत्यक्ष		११४-६, ७, ८	,, = निर्प्रन्थ		१७०-२१
		४४-१८	इच्छिना		३८-२३	उपासक	उपासक	८२-२०
* आभिनिबो-	आभिनिबो-	१८-१८त २३;	इच्छिना		३८-२३	उपासकइशा	उपासकइशा	८२-२०
धिक् + बाल	हियणण	४५-१ ३, १११-	इच्छिना		३८-२३	*उपपत्तिवा बुद्धि		४६-२४, २५
		१४त ३०; १२७-	इच्छिना		३८-२३			
		३०, ३१, १५२-६त २०	इच्छिना		३८-२३			

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	
कृमोपत्रा[योनि]	कुम्भया	१००-२१, २३	*स्नायोवसमिय [ओहिणाण]		२२-९, १० ११	गुण	= गुणवत्	गुण	१६६-२
+कुंडमूय =	दृष्टिवादप्रविभाग	८४-२३, २७; ८६-४, ११, ११, ११	+खुडियाविमाणपविभ्रति		७२ २१	गुरु		गुरु	४-६
+कुंडमूयपडिग्गाह =	॥	८५-२४; ८६-१, ४ ८, १२, १६ २०	*स्नेतत्रो उज्जुमति [मणपञ्चघणाण]		५५-२० ३५-१, २, ३	गुरुवाचनोपगत		गुरुवाचनोपगत	१७२-
केवलहान	केवलगाण-	१९-५तः८; ४३-२६	*स्नेतत्रो ओहिणाणि		३०-७, ८	गोचर		गोचर	१७, १८
+कुंडोलय =	शाख	६४-१९	*स्नेतत्रो केवलगाणि		४०-५६	गौरखर		गौरखर	१६४-२५
+कुंडोलवाल =	प्राणिविशेषवाल	१३९-२३	*स्नेतत्रो शिउलमति- [मणपञ्चघणाण]		३५-४, ५	गन्धिम		गन्धिम	१७०-३०, ३१
कोण्टक	कोट्ट	५१-२६, २७	*स्नेतत्रो सम्मसुय		६५-२५	ग्राह्य		गजस, गेजस	१०४-२४
कोट्टम्बिक	कोट्टम्बिक	१७५-२२	*स्नेतत्राणुष्णा श्रेयश		१७७-२४, २८ १००-२८	घट		घट	१६०-२०
क्रियावादिन्	किरियावादि	७७-३० त. ७८-१	+श्लोडमुह =	शाख	६४-२०	घोट+य		१७५-१७, १७६-१८	
क्रियाविद्याल	किरियाविसाल	१६७-७, ८	गणावच्छेदक	गणावच्छेदय	१७७-२५	+श्लोकस्म =	चमगोलक		१३८-३
क्षयोपशम		१२३-६	गणिन् =	गणपालक, आचासं गणि	६४- २, ३ ४	घोपसम			१७२-५ ६
क्षायोपशमिक	क्षयोवसमिय	२१ २७, २८ [ओघिणाण]	॥ =	गुणगणवान् आचासं गणि	७१-२७ तः २७	घनुरन्तसंसा		चाउरंतसमा-	९४-४
क्षुलकप्रतर	खुगणपर	३५-२३ तः३६- १०	गणपिटक	गणपिडक	६४-२१ ५	रकगतार		रकगतार	
क्षुलिकाविमान	खुडिमानि-	७२-२९, ३०	गणविद्या	गणविद्या	७१-४६, २५	+श्लोकाङ्कित =	आनन्द+गान		१४५-२३
प्रसिध्दिवित	माणपविभ्रति		गण्डिका	गण्डिका	९०-९ १२, १६७-१०	गाइत			१४२-२८
क्षेत्रत	क्षेत्रमति- स्नेतत्रो उज्जु-	३५-२१	गण्डिकानुयोग	गण्डियाणुओग	९०-९ १०	खरक		खरक	१०१-८
विपुलमति [मनः- पर्यायहान]	प्रति-विलसल- त ३६ [मणपञ्चघणाण]	-१९	गम =	समानसूत्रं भात- लक्षण	गम ६९-१८ १९	खरण		खरण	७२-९, १०, १५-१४
क्षेत्रतः केवल-	स्नेतत्रो केव-	४०-९,	१ =	अर्थपरिच्छेद	७७-१, २	खरणविधि		खरणविधि	७२-९ १०
क्षानिन्	लगाणि	१०, ११	गमिक [श्रत]	=	गमियसुय ६९-१८ १९, १	+खरणविधि			७०-२३
क्षेत्रतोऽवधिज्ञा-	स्नेतत्रो ओ-	३०-२०	१	सूत्रोच्चारणलक्षणवत्.	२०, १६१-१२,	चारिषाचार		चारिषाचार	७५-२८, २९
निन्	हिणाणि	२१, २२	२	सदशाक्षयानापक, दृष्टिवाद	७८५-२९	चिन्		चिन्	१०१-१९
क्षेत्रमध्यगत [अवधिज्ञान]		११६-२	गर्		१०३-२	चिन्तनरगंडिया			९०-७
क्षेत्रावृत्ता	स्नेतत्राणुष्णा	१७७-२९ ३०	गवेपणता	गवेगणया	५०-३७ त ५१-१	चित्र		चित्र	९०-११
क्षेत्रान्तगत [अवधिज्ञान]		११५-३१	गवेपणा	गवेपणा	५८-१७, १८, ६१-३; १५२-८	चित्रकर्म		चित्तकर्म	१७०-३०
क्षरकठिनक-कठिणय		१०५-२४, २५, टि १	गव्यूत	गाउय	२८-२	चित्रान्तरग- पिडका		चिन्तनग- दिया	९०-११ तः १४
+क्षरकधर + सह	= 'सह-सद' शब्द	१३८-४	*गंडियाणुओम		९०-४ तः	चिन्ता		चिन्ता	५१-१, २, ६१-३, ४
+क्षरकसुग =	मुद्रिका	१३२-२९, १३४-२५	गायदुग्ध		१६१-१३, १४	चौरिक			१०१-८, ९
+क्षरकायजणाण =	जातशाखक,	१३७-२६	+गिहिलिगसिद्ध		३८-२४	खुडली		खुडलिया	२३-२९
	भूम्यन्तगतपदार्थज्ञानिन्		गुण =	तद्वर्तित्	१०२-१, ४	+खुणमचुनस्से =	दृष्टिवादप्रविभाग		८५-२१, ३
			॥ =	कृष्ण-नीगादि	१४६-६	गुणियपरिकम्म-			८६-१८, २१
						खुणमसुय ^१			
						+खुणमसुयावत्त =	॥		८६ २०
						+खुलकण्यसुय			७०-२६
						खुडा		खुडिया	९३-१२
						खुडिका		॥	७३-१२
						खैत्य		खैडय	१६५-१७, १८
						ख्यावित		खतिय	१७४-८, ९

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पत्रिका	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पत्रिका	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पत्रिका
क्युत	क्युत	१७४-७८	डिर्वच		१६७-५	भैराशिक	तेरासिय	८७-२८
छिन्न	= अपरिमितेक्ष	छिन्न	+गणुसकलिंगसिद्ध		३८-२४	द्वी	जेव	१३५-१३
+छिन्नकठेक्षणम्		८७-२१, २२	+गमणी = अनुज्ञा		१७८-२९	द्वीनाच्चार	दसणाचार	७५-२२तः२६
जगत्	जग	२-२९, ३-९, १०, १२, १६	+इणंदावस	= दष्टिवादप्रविभाग	८७-११	दक्षित	दक्षिय	१७४-१७
जगद्गुरु	जगद्गुरु	३-८	+गाअ = अनुज्ञा		१७८-३०	दक्ष्यन्ते	दक्षिजति	६७-१०, १६४-१४
*जाणगसरीरद्वधापुण्णा		१७३-३, १तः १७४-३	+गागपरियाद्यणिया		७३-१८तः२०	*द्वध्वओ आभिणिशोद्वियणाभि		५५-१९
जाति		१७४-५	गाणी = अनुज्ञा		१७८-२९	*द्वध्वओ उज्जुमति[मण-पञ्जवणा]		३४-३०
जाहक		१-२-२६, १०-७-१६	*णापाधम्मकहा		८०-२६तः८१-१२	*द्वध्वओ ओद्विणाणि		३०-६७
जित-य	जित	१७२-३, १८२-३३	+गिज्जर = अनुज्ञा		१७५-१	द्वध्वओ केवलणाणि		४० ५
जीत	जीय	११-३३	गिर्याचलिया		७३-२१	*द्वध्वओ विजलमति		३४-३०ः
जीव = प्राणिन्	जीव	२-३०, ९, २-२१	+णीसेस		४७-१५	[मणपञ्जवणा]		३५-१
.. = पथेन्द्रिय	..	१००-३५	+णिञ्चाल = नैयिक		१४०-१७	*द्वध्वओ सम्मसुय		६५-२४
जीवविप्रमुक्त	जीवविप्रमुक्त	१७४-१०, ११	*णोभागमतो जाणगसरीरम-वियसरीरवतिरिक्खा		१७५-९	दास = दासोपुत्र, दास		१७६-१२
+जीवसुद्धिद + पय = अनुज्ञा		१७५-१	तः १७७		१७	*विट्ठिवाअ		८५-१३तः९२-२४
+जीवाधिगम = जेनावम		७०-१८	+इतिद्वियअ = उरभोदित		१३६-१४	*विट्ठिवाओवपस+सण्णिण, असण्णिण		६२-१, २
ज्ञ	आणम	१७४-४	+तदुभय + द्विय = अनुज्ञा		१७८-३०	विवसान्त	दिवसत	२८-१
ज्ञशरीर	जाणगसरीर	१७४-४	तपःसिद्ध		१२३-२२	द्विव्य = तात्त्विक, द्विव्य		१६६-२१
ज्ञशरीरद्रव्यनन्दि		९९-८, ९	तपाचार	तवाचार	७५-३१, ३२	दीपिका		११६-४
ज्ञशरीरद्रव्यानुज्ञा	जाणगसरीर-द-ब्राणुणा	१७४	तल		१०२-१०	द्वदका		
ज्ञात	णाय	८१-१३	तलवर	तलवर	१७५-२०, २१	दीर्घकालकसंज्ञिन्		१५३-१७, १८
ज्ञाताधर्मकथा	णायाधम्मकहा	८१-१३, १४, १६५-१५	तळिमा		१४९-२०	दीर्घकालिकी [संज्ञा]		१५३-१३, १४
ज्ञान	णाण, नाण	१८-१तः४ १११-५, ६	तार		१४४-२८	+इदुगुण = दष्टिवादप्रविभाग		८५-२४, ८६-१, ४, ७, ११ १५, १६
ज्ञानाचार	णाणाचार	७५-२०, २१	+इतिगुण = दष्टिवादप्रविभाग		८५-२४, ८६-१ ४, ८, १२ १६, २०	+इदुपरिग्गह		८७-१२
ज्ञिका + पर्यद	जाणिमा परिसा	१७-१४ तः १६, १८	+इतिवचकरिसिद्ध		१८३-३४	दुविदग्धा + पर्यद	दुविचग्धा	१७-१७, ४४ परिसा
ज्योतिः	ओद्	२३-३०	+तिरधमारसिद्ध		३८-२२	दुसमसुस्समा		६६-२९तः६७-१
ज्योतिःस्थान	ओद्दण	२५-६८	तीर्थसिद्ध	तिरपसिद्ध	३८-२८तः३९-४	दूसमा		६७-२
+ज्ञाणविमत्ति		७० २१	तीर्थान्तरसिद्ध		१४४-१, २	द्वहणन्त	दिट्ठत	४८-३१, ४९ १
टङ्क	टक	७९-१९	+तुअ = त्रुदित		१३९-१४	द्वद्वि	द्विद्वि	८५-१५
+*ठवणा = मतिज्ञानमेद-भारणा		५१-२०	दुआय		१३९-१४	द्वद्विपान	द्विद्विआअ	८५-१५, १६
*ठवणापुण्णा		१७०-१९तः२१	+इतेजगसिध्वणी = स्तेमकसीवनी		१३८-१२	द्वद्विवाद्		८५-१५
*ठाण		७५-५तः १६	तेरासिय		८७-५तः ८	द्वद्विवाओपदेअसंज्ञिन्		१५४-६तः १०
+टिक्कटण = अनुज्ञा		१७५-१	त्यक्त्तदेह	चत्तदेह	१७४ ९ १०	द्वद्विवाओपदे-द्विद्विवाओव-रा + संज्ञिन्, एव + सण्णिण, असंज्ञिन्		६२-४तः १५
			चिबर्ग	तिवग	४८-१४ १५			
			चिसमयाहारक	सिसमयाह-रग	१५, २८, ११६-१६			

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति
दृष्टिवाहोपदेशशंसङ्गिन्	१५४-६, ७, ११ तः १५		धीर	धीर	९६-९	निर्वृत्तिपथ	जेसुइयह	१०-१८
+विद्विद्वत्थम् = जनागम	७०-१९		धृति	धिइ	७-२३	नैराग	गेगम	१७२-३२तः १७३-१
+देविशोषवाय	७२-२३		धेनु		१०१-१०	नैवेचिकी	निसीहिया	१७४-१३
देह	देह	१७४-९	ध्यानधिमक्ति	ज्ञानविमल	७१-२८	नैवेचिकीगत	निसीहियागम	१७४-१३
द्रव्य	द्वय २-११, ९९-१२तः १७;		ध्रुव		१००-२८	नो = सर्वनिषेध	नो	२०-२८
द्रव्यत भासि-	दृशओ भासि-	५५-२३तः	ध्वनि		१४६-४, ५	॥ = देशवचन	२-१८, १९, ९९-२२	
निबोधिकाज्ञा-	निबोधियथा-	२६	नन्द्		९६-६	नो आगमतो ज्ञशरीरद्रव्यनन्दि	२-९, १०-११	
निन्	नि		नन्दनवन	पादगवण	८-२७तः २९	नो आगमतो ज्ञशरीर-भव्य	२-१४तः १६	
द्रव्यतः + ऋतु-	दृशओ+उज्जुम	३५-१२	नन्दि,	नन्दि,	१-२१, २-४	शरीरव्यतिरिक्ता	द्रव्यनन्दि	
मति विपुलम-	ति-विज्जुमतिम	त २१	नन्दिघोष	पादिघोस	६-११	नो आगमतो भय्यशरीरद्रव्यनन्दि	२-१३	
तिमनःपयो-	पयज्जवणाय		नरक	पािय	२१-३०	नो आगमतो ब्राधनन्दि	२-१८तः २०,	
यज्ञान			+संदावत्त = दृष्टिवादप्रविभाग		८५-२४,		९९, २१	
द्रव्यतः केवलज्ञानिन्	दृशओ केवल-	४०-८९	नाग	पाग	७३-१८	नोर्न्द्रियप्र-	नोर्दियप-	२०-२७,
	पाणि		नातिविकृष्ट	माहविगिद्र-	१६२-२०, २१	त्यस	श्वस	२८, ११४ ३
द्रव्यतोऽवधिज्ञा-	दृशओ ओहि-	३०-१४	[तपः]	[तव]		+नोतिथगरसिद्ध		१८३-३४, ३५
निन्	पाणि	तः २०	नानाघोष	पापाघोस	१४४-२३, २४	+नोतिथसिद्ध		१८३-३४
द्रव्यनन्दि		२-७तः १८	नानाशय ज्ञन	भाणाशयथा	१४४-२४	नोतीर्थकरसिद्ध		१२४-१५, १६
द्रव्यसंलेखना		७२-२तः ६	नामधेय	पाामधेय	१४४-२४	नोतीर्थकरीसिद्ध		१२४-१५
द्रव्यानुष्ठा	दृश्याणुष्ठा	१७१-१२तः १६	नामनन्दी		९९, ७	नोतीर्थसिद्ध		१२४-१४
द्रव्येन्द्रिय		२०-२५	नामसम	पाामसम	१७२-४-५	पपसबंध		१६७-१५
द्राक्षित		१०३-८	+नामसुद्रुम = द्राक्ष		६४-२०	पक्षान्त	पक्षत	२८-३
द्रोणमेघ	दोणमेह	१०४-७	*नामाणुष्ठा		१७०-१३, १४	पगइबंध		१६७-१५
द्रादधाह	दुडालसग	६४-१	नामानुष्ठा	१७०-१० ११, १५तः १८		+पगल = प्रागल		१२९ ३०
द्विसमयसिद्ध	दुसमयसिद्ध	४०-२	नारक	गेरदय	२१-३०	+पश्चावदृषया = अपावज्ञान		५१-८
धनु	धनु	२९-२१	निराक्षित-य	निराक्षय	१६४-१२;	पञ्च		१०२-४
धम्मकहा		८१-१६, १७	निर्दाशित	विदसिय	१७४-१७, १८	+पञ्चवक्शर		६७-२९
धरणा	धरणा	५१-२३, २३	निर्दुर्भन्ने	निदसिजति	६७-१०, १६४-१५	पडिवाति ओहिजाण		२९-१तः १६
+धरणोववाय		७२-२३	नियतिवादिन्		७८-६	+पदमगणित्वाय = आचारधर		६४-३
धर्म		३-१७; ८-१६	निराक्षित	निराक्षय	१६३-१५	+पण्णत्त=प्राज्ञान, प्रज्ञान, प्रज्ञत	१८-१४ १५	
धर्मास्तिकाय		४४-२७, २८	निराक्षित	निस्सकिय	१६३-१५	+पण्णात्त-दृष्टिवादप्रविभाग		८७ १२
=धारणा		५६-८; १०५-७	निराक्षय	पोसेस	४९-२३	*पण्हावापरण		८४ ४तः १३
धारणा	धारणा	४९-१४; ५१-२३	निरवशोप	निग्दसेस	९६-२८	पद्	पय	७६-२६
		२४, २५; ५३-३, ४;	निरीक्षित	पिरिक्खिय	६३-१६	पनक + जीय	पणगजीय	२६-१५;
		१५० १, २, १३ १८, २३;	निर्वेष्ट	पिणगय	७५-१०	पन्नविउमंति		११६ २३
		१५२-१६	निर्मुक्ति	पिज्जुति	७६-८	पम्भार		७९-२१, २२
धिई	धारणा	१५२-१३	निर्बिचिकरत्त	पिज्जितिमिच्छ	१६३-१५,	+पमभव = अनुज्ञ		१७८-२९
+धीधार = भाक्षण		१२९-दि. ४			१६	+पमावण = ,,		१७८-२९

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पक्षिक	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पक्षिक	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पक्षिक
+ऽप्रमायप्पमाद्	= ज्ञेयगम	००-१९	+वधश्च = मत्		११९-दि २	+पौरिसिम्बल		००-२०
+पय = अनुज्ञा		१०९-१	पवाहेदि = फावधिपयि		१४५-१८	पौवशीमण्डल	पौरिसोमंडल	०१-१८त २१
+पयपवर = ,,		१०९-२	पसिणा		८४-१५, १०	पौषधोपवास	पौषधोपवास	१६६-२
परम्परसिद्ध	परंपरसिद्ध	३८-१९, २०	पतिजापसिणा		८४-१६तः१८	प्रकृति	पयद	१६०-३
केवलज्ञान	केवलज्ञान		+ऽपाठ = दृष्टिवादप्रविभाग		८५ २३, २०;	प्रच्छना	पुच्छना	१०२-१९
+ऽपरंपर = दृष्टिवादप्रविभाग		८७-१०			८६-४, ७, ११, १५ १९	प्रह्वन्त	पण्णत	१८-१०, ११, ३२
पर्यावर्तना	परिवृष्ट्या	१०२-१९	+ऽपातक-यंक = माणक		१४२-२१त २३	प्रहा	पणा	५८-१९, २०, १५२-१०
परिकडूढ		११६-९	पादपोपगम	पाओषगम	१६५-२२	प्रहापना	पणगणा	००-२०
परिकर्म	परिकम्म	८६-२२	पारगमन	पारागण	९६-२२	प्रहापित	पणविय	१०४-२६
परिचूर्णन्	परिचोलेमाण	२५-७	पारिणामिकी	पारिणामिया	४८-२९त	प्रहाप्त	पण्यत	१८-१५
परिचोलेन	परिचोलेण	४८-२४	[बुद्धि]	बुद्धि	४९-३	प्रहाप्यन्ते	पणविक्रजति	६७ ९
परिचित	परिचित	१०२-४	+पारिणामिया बुद्धि		४७-१४, १५	प्रणिधान+यो	पणिहाण+	१६३-२४
+ऽपरिणयापरिणय=दृष्टिवादप्रविभाग		८७-९	+पासओ अंगगय[आणु-गामिय ओहिणाण]		२४-७, ८, ९	गयुक्त	योगयुक्त	
परिणाम = उपायानादि परिणाम		४३ १८:	+ऽपिअल्लत = त्रिय		१४०-२०	गणीय	पणीय	६३-३०
,, = पुष्टना		४९-२	पिटक	पिडग	६४-२	प्रतिपत्ति = अनुगमन	पडरिस्ति	७६-९
परिताप		१००-२७	+पितिमीसग = पितृमिश्र		१३६-२६	,, = प्रतिपादन,	,,	१६६-४, ५
परित्त		७६-४	पुष्ट = स्पष्ट		१०३-२८	,, = मतान्तर,	,,	१८६-९
परिनिष्ठा	परिनिष्ठ	९६-२३	,, = पुष्ट		१०३-३८	प्रतिपात्यव-	पडिवातिओ	२६-६, २९-९
परिपर्यन्त	परिपेरंत	३५-७	+ऽपुष्टापुष्ट = दृष्टिवादप्रविभाग		८७-११	धिज्ञान	धिज्ञान	१०तः२१,
+परिपूर्ण-क = नीडविशेषः		१०२ २६;	+ऽपुष्टावस = ,,		८६-५			११५-२४तः२६
		१०५-२७; १८२ ३२	+पुय + जुज्झ = पुतयुद्ध, नितम्भयुद्ध		१८३-१	प्रतिपूर्ण	पडिपुण	१०२-१४
परिमोग=परिस्थाय		१६६-१०, ११	*पुरतो अंतगय [आणु-गामिय ओहिणाण]		२३-२९तः	प्रतिपूर्णधोष	पडिपुणधोस	१०२-१४तः १८
परिमन्थ		१०३-२५	पुरतो अंतगय [आणु-गामिय ओहिणाण]		२४-३	प्रतिपृच्छति	पडिपुच्छ	१६-११, २१,
परोक्ष	परोक्षत	२०-११त, १४	पुव्वगत		८८-१, १तः२४			१६९-२५
परोक्षज्ञान		११३-२५त २९	पुष्पचूला	पुष्पचूला	७३-२४	प्रतिमा = भावकप्रतिमा,	पडिमा	१६६-५
पर्यय	पज्ज १८-३२; ११२-६		पुष्पिता	पुष्पिता	७३-२५, २६	प्रतिषेधाश्रय		१०१-२६
पर्यय=समन्नाद् गमन	,,	११२-१४	+पूरय = पूषिक, कान्दविक		१३९-१४, १५	प्रतिष्ठा	पडिष्ठा	५१-२५, २६
,, = धर्म	,,	१६७-१०	पूजित	पूव	६३-१०	प्रतीच्छक		१०२-१३, १०८-११
,, = ,,	पल्लव	१६५-१०	पूरित	पूरित	५४-७, ८, ९	प्रत्यक्ष	पक्खल	२०-८त ११
पर्यय + परिमाण	पल्लव+डग्ग	१६५-९	पूरिम	पूरिम	१०१-१	प्रत्यक्षज्ञान		११३-२०त २४
पर्याप्तक	पज्जतग	३४-९, १०	पूर्व = कारण,	पुव्व	४५-६; १२८-२८ २९	प्रत्यावर्तनता	पक्खावृत्तया	५१-११ १२
पर्याप्ति	पज्जति	३३-२९; ३४-१	पृथक्त्व	पुहत्त	२७-३१; २९-२०	प्रत्येकबुद्धसिद्ध	पथेयबुद्धसिद्ध	३९-७, ८,
पर्याय	पज्ज १९-२, ७७-५;		पेयाल = प्रमाण, सार		१२-१; ४८-१५;			१२४-६
		१०२-२; ११२ ९			१८-२४	प्रथमसमयस-	पथसमयस-	३८-५, ६
पर्यायाक्षर	पज्ज ३कलर	६८ ३	पोरथ		१००-२८, २९	योगिप्रवस्थ-	ओगिमतथ-	
पल्लव = अवयव,	पल्लव	१६५-१०	पोरथकम्म		१००-२८तः३०	केवलज्ञान	केवलज्ञान	
पल्लवाक्षर	पल्लवग	१६५-१०				प्रदेश = निर्दिष्टभागमान,	पदेस	६८-१
						,, = अंशकहरन,	पएस	१६७-३
						प्रभावक	पभावक	१३-८, ९

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति
प्रभाषना	पभाषणा	१६३-१८, १९	बुद्धि	बुद्धि	५१-१४, १५	*भावओ केवलणानि		४०-७
प्रमत्तसंयत	पमतसंयत	३४-१६, १७	+बुद्धि = अपावज्ञान,	,,	५१-८	भावओ विउलमति		३५-९, १०
प्रमाद्	पमाय	१६२-२३	बोधिलाभ	बोहिलाम	१६५-२२	[मणपञ्जयणान]		
प्रमादाप्रमाद्	पमावपमाय	७०-२८	[भक्त] प्रत्याख्यान भतपक्षत्राण		१६६-१०	*भावओ सम्मुख्य		६५-२८ त ६६-१
प्रयत्न	पयत्त	१५७-१०	भग	भग	३-२३, २४, ६३-६७	भावतः केवल-	भाक्ओ	४०-१२
प्ररूपित	परुविय	१७४-१६, १७	भगवत्	भगव-यव	३-२६, ६३-६४	ज्ञानिन्	केवलणानि	
प्ररूप्यन्ते	परुविजंति	६७-९, १६४-१३ १४	भङ्गिका	भगिया	१२-२४	भावतोऽवधि-	भावओ	३०-२४,
प्रवर्तक	पवति	१७७-२१ त २३	भणक	भणग	१२-५	ज्ञानिन्	ओहिणानि	२५
प्रवृत्त्यापर्याय	पवजापरियाग	१६५-२०	भम्मा		९९-१८	भावनन्दि		२-१७ त १९
प्रभ्र	पसिण	१६६-१७	भर	भर	१०८-१२	भावसंलक्षण		७२-८
प्रभ्रव्याकरण	पश्यावाभ्रण	८४-१४	भरनिस्तरणसमर्थ	भरणिस्तरण-	४८-१३	*भावाणुष्णा		१७८-१९ त २१
प्रभ्रा-ऽपभ्र	पसिणा-ऽपसिण	१६६-१८	भव	भव	२१-२६, ३७-३२	भावाणुष्णा		१०८-१९, २७
प्रसङ्ग	पसंग	४८-२४	भवप्रत्यय[प्र-	भवपत्थासिय	२१-२६, २७	भावेन्द्रिय		१०२-७
प्राज्ञात	पणगत	१८-१४, १५	वधिज्ञान]	[ओहिणान]		भापकोऽयं		१०२-७
प्राण	पाण	१००-२५	भवसिद्धिक	भवसिद्धीय	६६-२२	भाप	भाना	५८ ५, ७५-१४, १५१-१५
प्राणापानपर्याप्ति	इन्द्रियत	३४-३ ४	भवस्थ-	भवस्थकेवलज्ञान	३७ १२, १३	भापपर्याप्ति		३४-४
प्रातर्द्धि	इन्द्रियत	३४-१८	केवलज्ञान			भापसमश्रेणि	भासागमनेदो	१५१-१५ १६
प्रावचनिक		१०२-१२	*भविष्यन्तीरद्व्याणुष्णा		१७४-२३ त २६	भूत	भूय	१००-२१
प्रावातुक	पावातुय	७९-२	भव्य	भविय, भवसिद्धिय	९३-२९	भूतवाद्	भूतावाओ	१६१-२५
भ्रेद्		११६-५	, = विवक्षितपर्यायाद्, भविय		१७४-२७	+भूयावत् = हृदिवाद्प्रविभाग		८७-१२
फक्क		११५-२८, १८३-१३, १४	भव्यशरीरद्वयनन्दि		९९-१०, ११	भ्रमि	पारियल	६-२
फक्कावधिज्ञान		११५-२९	भव्यशरीर-	भवियन्ती-	१७४ २७ तः	+भवय = अनुज्ञा		१७८-३०
फल = प्रयोजन	फल	४८-६	द्वयानुष्णा	दद्वयाणुष्णा	१ ४५-७	*भवगओ अंनगाय [ब्राणुगामिय-ओहिणान]		२४-४,
फलविपाक	फलविवाग	१६६-२३, २४	+भङ्ग = आमरण		१७६-१, २२, २५	ओहिणान]		५, ६
फिडिय = निर्गत		१८२-२७	भाजय	भजयता	२८-१७ २१	+मज्जाया = अनुज्ञा		१७८ ३०
बद्ध	बद्ध	५७-३१	भासण इल		१०१-२, ३	*मज्जगाय [ब्राणुगामिय-ओहिणान]		२४-१२, १३
बद्धस्सट्ठ	बद्धसुट्ठ	१५१-३ ४ ५	भाव = पर्याय		३०-२४, ९९-१३	ओहिणान]		
+बहुभंगिय = हृदिवाद्प्रविभाग		८७-१०	, = सत्ता रालक्षण		४३-१८, १२६-११	+मज्जसंखम = मदीय		१४०-३२
+बहुल = ,,		८७-११	, = पदार्थ		६७-८; ७७-९, १३ १३,	मज्ज	मजव	१७५-२१
बाहकार	बाहकार	९६-२०	, = अज्ञेयत्वादि		१३-१६	मणि		११६-४
बाहिरावधि		१२०-७, ८	*भावओ भाभिणिबोहियणानि		५५-२२	+मणुस्सावत् = हृदिवाद्प्रविभाग		८६ २
बाह्यप्रत्य		१६३-१३	*भावओ उज्जुमति		३५-८ ९	मण्डलप्रवेश	मण्डलप्येत	७१-२१, २२
बाह्यतपः		५-२९	[मणपञ्जयणान]			मति	मति-ह	३४-२३; ५८-१९;
बाह्या भ्रमि		१०१-७						१५२-९
बुद्ध = आचार्य, बुद्ध		३९-१४	*भावओ बोहिणानि		३०-११, १२	*मतिअणुणान		४५-२८, २९
बुद्धबोधितसिद्ध		३९-१४				मतिज्ञान		४५-२५; १३०-३१
+बुद्धबोधिसिद्ध		३८-२४						१५२-१६
						*मतिणान		४५-२८, २९

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	
अध्यगत [आनु- मन्मथय		२३-१८तः	मार्गणा	= अन्यय- मन्मथा	५८-१७;	योग	= यावदि, जोग	३७-२४; १२३-२४	
गामिकाश- [आणुगामिय		२३		धर्मान्वेषण	१५७-७८	,,	= अहशीकरणादि,	१२३-२०	
विज्ञान] ओहिणान]			,,	= विशेषधर्मान्वेषण	,,	६१ २	योगसिद्ध	१२३-२१	
मनःपर्यवहान } मन्मथजगण		१८-३२	+मासान	= दृष्टिरादप्रविभाग	८७-१०	योनि	जोगि	३-१तः४	
मनःपर्यावहान } त. १९-४;			*मिच्छसुत		६४-१८तः २६	रजस्	रय	४-२५; ६-२१	
		११२-६तः १३	मिन		१७२-३	रविभ	= द्रवित	१०३-८; १८२-२९	
मनःपर्यवहान ,		११२-१४ १५	मिथ्यादृष्टि	मिच्छदृष्टि	३४ ११	+रारलेऊण	= रात्रीरूप	१२८-१२	
मनःपर्यासि		३४-५	मिथ्याभूत मिच्छसुत		६४-१० ११, १५, १६;	रावेदिति		५४-४	
मनोयोग		३७-२७		२७तः ६५-११, १५, १६-२		+रासिरद्ध	= दृष्टिरादप्रविभाग	८५-२४;	
मन्तु = अपिच्छल्लानवत्, मता		२४ २५	मिश्रिकी कुप्रावचनिकी		१७७-४		८६-१, ४, ७, ११, १५		
,, = चिन्तक		१८३-२६	हारीर-भ्रम्यशरीरव्य-			रूपक	= छन्दोविशेष	१०१-२४	
मन्त्र		१२३-२०	तिरिक्ता द्रव्यानुज्ञा			+ल्लिअक्षर		५९-२०	
मन्त्र		१४४-२८	मिथ्रिकी लौकिकी हारीर-		१७६-१२	लघि		५९-२४	
			भ्रम्यशरीरव्यति-		तः १४	लक्ष्यक्षर	लदिअक्षर	५९-२७; १५२-२९	
+मन्यसलाहया = सारिका, १४०-१९, २०			रिक्ता द्रव्यानुज्ञा			लाघव		१०२-१८	
	मदनशालाकिवा		मिस्वजोगि		१००-४ ५	लेपयकम्	लेपकम्	१७०-३०	
मरणचिभक्ति	मरणचिभक्ति	७१-२९, ३०	मीमांसा	वीमसा	१८-२६	लेस्या = किरण	लेसा	७-१७	
+मरणचिभक्ति		७०-२१	*मीसिया कुप्पावय-		१७६-२४तः २७	,,	= कृष्णादि	,,	११६-१४
मर्दल		९९-१८, १९	णिया जाणमसरीर-भवि-			*लोहया जाणमसरीर-		१७५-१३त	
मर्यादा		१०१-१६, १७	यसरीरवतिरिक्ता			भवियसरीरवतिरिक्ता		१७६-११	
महती विमान- महल्लिया वि-		७२-२९, ३०	द्ववाणुण्णा			*लोहया भावाणुण्णा		१७८-९ १०	
प्रविभक्ति	माणचिभक्ति		*मीसिया लोहया जाणम-		१७६-७तः ११	*लोउत्तरिया भावाणुण्णा		१७८-१३तः १८	
+महल्लियाचिमाणचिभक्ति		७२-२१	सरीर-भवियसरीरवतिरिक्ता			लोक	= लोकधन इति लोअ	७७-२८; ३९-१४	
महाकण्ठसुय		७०-२६	द्ववाणुण्णा			,,	= जीवासिक्कादि,	,,	१००-२८
+महापञ्चकलाण		७०-२३	*मीसिया लोउत्तरिया		१७७-१४तः	लोकोत्तरिक	लोउत्तरिय	१७७-१९	
+महापणवणा		७०-१९, २८	द्ववाणुण्णा		१७	लोकोत्तरिकी द्रव्यानुज्ञा		१७७-१९तः	
महाप्रज्ञापना	महापणवणा	७० २८	मुकुन्ध		९९-१८, १९	लोउत्तरिया	द्ववाणुण्णा	२५	
महाप्रत्याख्यान	महापञ्चकलाण	७२-१४	मुक्ति		१३९-१३	+लोमिल्लता = लोमिन्ध		१३६-डि १	
		त. १६	मुद्रिका	सुरिवा	१२-२९	लोमिधिय-त = नड		१३९-डि १	
महार्थ	महत्त्व	१५ ८	मुहूर्त	मुहूर्त	५७-१४	लौकिकी हारीर-भ्रम्यशरीर-		१७५-१९	
महावीर		४-८	मूक	मूक	९६-१९, २०	व्यतिरिक्ता द्रव्यानुज्ञा		तः १७६-१४	
महित		६३-१६, १७	मूल		९०-१	वग		८१-१८; ८३-१०	
+माडागपय = दृष्टिरादप्रविभाग		८५ २३, २७	*मूलपडमाणुषोय		८९-२३तः ३०	*वडदयाण ओहिणान		२५-१२तः २६ ५	
माहस्त्रिक	माहस्त्रिक	१७५-२०, २१	मूलप्रथमानुषोय		९०-१, २	+वडिट्टपउत्त = वृद्धिप्रयुक्तधन		१३७-१	
माथा	माथा	७५-१५	मेधा	मेधा	५०-२०तः २२	+वडत्तमाणुषपय = दृष्टिरादप्रविभाग		८७-१२	
माणुषकेत	माणुसकेत	३७-४, ५	+ओदियय = मोहितक		१३८-१०	वणयण्ड	वणसंब	१६५-१८	
मार्गजला	ममगया	५०-२९ ३०;	थाथा	आथा	७५-१५	वय	= वेदाऽरथाविशेष, वय	४९-१	
		१४४-३०, ३१	थाथासिद्ध		१२३-२१				

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति
बराहक	बराहक	१७१-२	विद्या		१२३-२०	वेद		७६-७
+बहणोचवाय		७२-२२	विद्याचरणवि-	विजाचरण-	७१-२२, २३	वेक्षणया बुद्धि		४७-४, ५
वर्ग = अथयनसमूह, वर्ग		७२-२; ८४-१;	निष्ठय	विनिष्ठअ		वेदिका		१७२-१६
		१६६-१३	विनय = गुणशुद्धा, विणय		४७-२५	+वेद्यालिय = विचारित		११०-२१
वर्गचूलिका	वर्गचूलिया	७३-१, २	, = ज्ञानादि		७५-१३	+वेद्यावच = दृष्टिवादप्रविभाग		८७-११
वर्द्धमान्, अव-	वर्द्धमानभो-	२३-३, ४;	चिपाकसुत	विशामसुत	८५-१०	+वेदलघोचवाय		७२-२३
चिह्नान्]	दिपाण	२६-६त २८-३२;	विपुल	विलल	३४-२५	वेष्टिम	वेष्टिम	१७०-३१; १७१-१
		११५-२१	विपुलतर + क	विपुलतराग	३६-१०, २१,	वेनयिक = कमक्षयादि फल, वेणइय		७५-१३
वचक	वाग	१२७-१८, २०			२६; १२२-२५, २६, ३०	, = दार्शनिक		७८-३०, ३१
वस्तु	वस्तु	१६७-५	विपुलमतिम-	विपुलमति-	३४-२५, २	वेनयिकी [बुद्धि]	वेणइया	४७-२५; ४८-
+वैज्ञान्यफलर		५९-१५	नःपर्ययज्ञान	[मणयज्वनणय]	२७; १२१-२०त २७	वेदिका		१३३, १८
वंश		८५-१२	+विपुलजहणावच=	दृष्टिवादप्रविभाग	८६-१६	व्यञ्जनाक्षर	व्यञ्जणफलर	५९-१६त. १८;
+वैज्ञान्यपत्ता [ओणि]	= ओनिविशेष	१००-२३	विप्रमुक्त	विप्रमुक्त	१७४-१०, ११			१५२-२८
वाग्भोग = वाग्भोगसमूहसाचिव्याद्		३७-२६;	विभावक = अर्थविशेष		१०२-८	व्यञ्जनावग्रह	वज्जोभगइ	४९-१८, १९
जीवव्यापार, वाक्परिस्मन्द		१२६-२४	विमरं	वीमसा	५१-२; ५८-	व्यतिव्रज्जिति	विश्वयनि	१६९-१३
वाग्धीय					१६, १७, ६१	व्यत्याघ्राडित	विश्वामेलिय	११०-१०
वाचक + वंश	वाचय + वंश	१२-१७, १८	विमानप्रतिभक्ति	विमाणप-	७२-२८, २९	व्यपगत	वयगय	१७४-७
वाचना	वायणा	१७२-१९		विभक्ति		व्यवच्छित्ति-	विच्छित्ति-	६५-१६, १७
वात्सल्य	वच्छल	१६३-१८	+विश्रित्थि = वितस्ति			यार्थता	यथदुवा	
वाद्	वाअ	८५-१५	*विश्रान		८०-१३त २३	व्यवसाय	ववसाय	५७-३
वाग्य	वम	१०४-२१	विशरण	वेरणम	१६५-१६, ३	व्यवहार	ववहार	१७३-५
वातिककर = अर्थविशेष		१०२-८	विशारथना		१६५-११	व्याकरण	वायरण	१२, २१
वासना = मतिज्ञानभेद, स्थापना		१४५-५, ६;	विवागसुत		८४-२०त ८५, ९	व्याख्या	विगाह	७३-२; ८०-२४;
		१५०-२७	+विवाहचूलिया		७२, २२			१६५-१३
विरवदस्संति	व्यतिव्रजिध्याति	१६९-१३	विगुह	विसुह	४८-१	व्याख्याचूलिका	विगाहचूलिया	७३-३
विरवदंसु = व्यतिक्रान्तवन्तः,		१५-१६;	विगुहतर	विगुहतराग	३६-२१, २६,	व्याख्यात	वक्खाण	१५-१०
व्यतिव्रजितवन्तः		१६९-१२			१२२-३०	व्यूह	बुह	७९-३; १६४-१६, १७,
विदधयंति = श्रुतकामन्ति		९४-७	विशुद्धफक्क		११६-१०			१८६, १३
विद्वष्ट [तपः]		१६२-२२	विमाल		७०-१६	शास्त्रार्था	सववत्ता	ओणि १००-२१, २३
विद्यारण	विवालण	५७-२			१०-२२	शत = अभ्ययन, सत		१६५-१५
+विज्ञान्यचरिय = दृष्टिवादप्रविभाग		८०-१०	+विहारकल्प		७२-८, ९	शब्दयय	सहनय	१७३-२०
+विजाचरणविनिच्छअ		७०-२१	वीतरागसुत	वीरारावसुय	७२-१, २	शय्या	सेजा	१७४-१२
विह्विति	विह्वति	४३-१९, १२६-	+वीरारायसुत		७०-२२	शय्यागत	सेजागय	१७४-१२, १३
		११, १२	+वीरिय = पूर्व		८८-२	शरीरपर्याप्ति		३४-२
विज्ञान	विण्णाण	५१-१५	वीर्याचार	वीरियाचार	७६-१, २, ३	शाश्वत		१००-२९
विज्ञायक	वियाणअ	३-६	वृत्ति	विति	७५-१५	शास्त्र	सत्थ	९६-५; १६९, २०, २१
विततिमिरतर + क	विततिमिरतराग	३६-२४, २६, १२२-३०, १२३-७	वृत्तिदृष्टा		१८६-२	शिक्षा	सिक्खा	७५-१३

शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति	शब्द	मूलशब्द-अर्थादि	पत्र-पङ्क्ति
संज्ञक	= संकोचन	१८३-२७	सुकुमालकोमल + तल		१०२ १०	स्थिति	ठिङ्	१६७-३
संवर	= प्रत्याख्यानरूप	९-१३	सुदिभ		१०६-३०; १८२-३२ ३३	स्थिरीकरण	थिरीकरण	१६३-१७, १८
संज्ञा	= अनुज्ञा	१७९-१	*सुन		४४-१८	स्नातक	सिनाय	४३-४, ५
संज्ञा	संज्ञ	१२२-१५	सुप्रणिधान		१०१ ९ १०	स्पृष्ट	पुष्ट	५७-२५; १५०-३१
संज्ञाकमेध		१०३-५, १८	सुय		४५-२३; १३०-२०	स्मृति = मतिज्ञा-	सती	५८-१८; १५०-
संज्ञा	संज्ञ	१६६-२१	*सुय व्रणणाण		४५-२९, ३०	नमेद		२६; १५२-९
संज्ञा	१११-४		*सुयणाण		४५-२९, ३०	स्वभाववादिन्		७८-७
संज्ञायोगि	संज्ञायोगि	१००-१६, १८	*सुयणाणलंभ		९५-१९	स्वयमुद्दसिद्ध	सयमुद्दसिद्ध	३९-७;
संज्ञाविद्युता	संज्ञाविद्युता	१००-१६, २१	सुसम		६६-२२; २३४			१२४-५
[योगि]	[योगि]		सुसमदूसमा		६६-२५; २८८	स्वर		१५७ १०
+संज्ञापरिग्रह	= दृष्टिवादप्रविभाग	८५-२४;	सुस	सुस, सुस	७७-२७, ८७-१८	स्वलिङ्गसिद्ध	सलिङ्गसिद्ध	३९-१८, १९;
		८६-१, ५, ८, १३, १६, २०	सुसकृत्	सुसकृत्	७७-२७			१२४-१८
संज्ञा	संज्ञा	१७४-१३	*सुसकृत्	सुसकृत्	७७-२७	स्वविषयव्यक्ति		१४५-१९, २०,
संज्ञागत	संज्ञागत	१७४-१३	*सुसकृत्		७७-१५; २६			१८४-२३
साक्षि		११६-१५	सुसप्रकृति	सुसप्रकृति	७७-१७, १८	स्वाध्याय	सज्ज्ञाय	६-१०
साक्षि	साक्षि	६५-१६	सुस = अथ		२०-१८ १७०-९	स्वापतेय	साक्षिज-गज	१७६-३, २७
			सुस = तस्य		४०-२३	+सुसमीमासुसकृत्	= शाक	६४-१९
साक्षिसपर्यवसान	साक्षिसपर्यवसान	४१-१	सेणिटत	सेलिय	६०-१३	*हायमाण मोहिणाण		२९-२, ३ ४
सामान्यार्थाक्ष	सामान्यार्थाक्ष	१५०-१९,	सेनापति	सेणापति	१७५-२४	हित	हिय	४९-२
प्रहण	प्रहण	२०	सेयकाल		१७५-२ ३	+हिय = अनुज्ञा		१७८-३०
साम्पराधिकसात		१०१-५	सेल		१०२-२५	हीयमानक	हीयमाणय	२९-५; १८;
सार		४८-२२	+सेलवृत्तिव्यपण	= दृष्टिवादप्रविभाग	८३-११	[अवधिज्ञान] [ओहिणाण]		११५-२२ २३
सार्थवाह	सार्थवाह	१७५-२५; २७	सदृश	सदृश	३५-१३	हुद्दार	हुकार	९६-२०
सित		१२३-२३	सद्वि	येर	१७७-२४	*हेऊयपस्य [सणि, असणि]		६१-१३
सिद्ध		३७-१३; १९; १६९-८	स्थान	ठाण	७९-१७			त १५
सिद्धकैवल्लान	सिद्धकैवल्लान	३७-१३	स्थापना	= धारणा, ठवणा	५१-२४ २५,	हेतु	हेउ	९-१०; ४८-३०;
		त २०		(मतिज्ञानमेद)	१४५-६ ७			९३-१७
सिद्धाद्यलान	सिद्धाद्यलान	१७४-१४	स्थापनान्दि		९९-७	हेतुवादीपदेश		१२२-२६, २८
लगत			स्थापनानुज्ञा	ठवणाणुज्ञा	१७०-२३; १७१-३	हेतुपदेश + संज्ञिन्	हेऊयपस + ६१-१६	
+सिद्धाद्यलान	= दृष्टिवादप्रविभाग	८५-२५	स्थासक	= आदर्श, थासम	१७६-१२ २६	असंज्ञिन्	यणि, असणि	त २२
सिद्धि		७९-२०	स्थित	ठित	१७२-२ ३	+सिद्धोदा = पण		१३४-६ १
सिद्धिगाद्य		१८६-१						

शुद्धिपत्रकम् ।

पत्रस्य पङ्क्तौ	अशुद्ध	विशोधयम्	पत्रस्य पङ्क्तौ	अशुद्ध	विशोधयम्
२	२६	जपजीवञ्चो	५२	२६	“अनादिमानागमः”
४	९	ईर	५३	१	“अनादिमानागमः”
८	२०	व्याख्या	५३	१	“अनादिमानागमः”
९	३	जीवद्वय	५३	२	“अनादिमानागमः”
१०	३०	एव	५३	४	“अनादिमानागमः”
१०	११-१२	गत गाथायुगल	५४	१७-१८	अनिर्देश्य स्वरूपनामा
११	२०	इत्यनेन	५४	२४	“कार इति, क”
१३	९	अजा वि	५५	८	“गालादि य
१४	२९	“अमासमणे	५५	८	“गालादि य
१४	१०	नपयति	५५	८	“गालादि य
१५	२५	सेलघण	५५	८	“गालादि य
१७	१०	६१]	५५	२१	यदन्त्येव, सृष्टं
१८	३	स्वविषयं	५९	६	क्षर “सं”
१९	२०	“स्वाद् अमेदो”	६०	२५	52
२४	१२	मज्जगय १ से	६०	२५	25
२५	२२	“गाण १।	६०	२९	स्तेन
२६	२८	“विष्कम्भ सं”	६२	४	“बादोपदेशेन
२६	२५	कामवर्ति	६३	३	तरहंकिर,
३०	१०	उस्सपिणीओ धव-	६४	१४	समयकठुतं
३०	१०	गापिणीओ	६४	१४	समयकठुतं
३०	१२	भाग जाणइ पासइ ४।	६४	२५	“हिद्विधा
३१	११	विदिष्ठु	६४	२५	वमेति
३३	७	“सुपत्तिस्वा”	६५	९	“दशं न स्या”
३४	५	“प्रयाति”	६५	१५	एव
३५	९	“स्कथान्”	६६	२९	तदा
३६	१४	“क्षेत्राणां	६६	२१	भविष्य पुणं
३८	७	प्रथातुं	६८	१८	“धिकाराद्येव
३९	२०	“अणेगसिद्धा”	६८	३०	“स्तुष्टपर्यं
४०	११	साक्षाज्जा”	६९	५	“पर्याया अभाव”
४०	१३	“या क्रमोप”	६९	२७	गातदुग्ग च
४३	१५	शुद्धिला”	७२	२२	विवाहं
४३	१८	“विप्रतो”	७४	१३	संघराण
४७	२५	अनाचार्यक	७६	१६	वि”
४९	३०	रुचोऽज्ज”	७७	१८	अकिरियावा”
५१	२	स्वधर्मा”	७८	६	हं
५१	२२	सुहृत्तं	७८	९	नंब गुणा
५१	२७	इहाऽऽत्मनो	८७	६	“चिताए ते

पत्रस्य पृष्ठी	अशुद्धं	विशोधयम्	पत्रस्य पृष्ठी	अशुद्धं	विशोधयम्
१०८	१९ सक् पं	'सक्पं'	१४५	३१ 'मिति । प्रा'	'मिति प्रा'
११४	३२ योग-क्षेमी	'योग-क्षेमी'	१५०	१ स्वातन्त्र्य प्र'	स्वातन्त्र्यप्र'
११६	५ आदिप्रहणा'	आदिप्रहणा'	,,	३१ 'लिखित'	'लिखित'
,,	१५ ११	१४	१५१	२१ तः	तः
,,	२० 'संक्षिप्तम्'	'संक्षिप्तम् इ'	,,	२७ यदिव'	यदि व'
,,	३१ 'त्यादि	'त्यादि	१५२	२० संक्ष-	सक्ष-
११७	२० सूक्ष्मत्वा'	सूक्ष्मत्वा'	१५३	२ शेरितादि	शेरितादि
११८	१३ 'यःशिलाका'	'यःशलाका'	१५४	८ क्षयिक'	क्षायिक'
,,	२२ 'तम् । प. १६	'तम् । [ष्ट २८] - १६	१५५	५ अस्यादय	सत्या(ई सत्यक्या)दय
,,	,,	'इदौ	१५७	१६ गतिरियं	गति-रियं
११९	१ तदाऽङ्गल'	तदाऽङ्गल'	१५८	२० 'भूतपटा'	'भूतपटा'
,,	१४ 'विभु-	'विभु'	१५९	१३ संज्ञाव्यं	संज्ञा-व्यं
,,	२६ 'अन्तराद्'	'अतरा'	,,	३१ दायः	दोषः
१२५	१७ 'योगभावे	'योगभावे	१६३	३ ऋशातीय शृसङ्-	शृङ्गशातीय सङ्-
१२७	१६ तयोर्भेद	तयोर्भेद	१६५	२ ७७	७८
१४०	९ १२	२१	,,	१० १५	१०
१४१	२६ विद्ये	विद्ये	,,	२५ २०	२५
१४२	१४ निरमच्छती	निरमच्छती	१७४	१४ सिद्धशिला'	सिद्धिशिला'
,,	२४ आहो	आहो	१७५	२२ कौटुम्बिकः	कौटुम्बिकः
१४४	२ 'गया समत्ता	'गया समत्ता	१८५	शिर्षके 'त्त्रं	'सूत्रं
१४५	२३ 'मित्यादिना	'मित्यादिना			



PRAKRIT TEXT SERIES
PUBLISHED WORKS.

1. ANGAVIJĀ.

--Demy Quarto size..Pages-8+94+372..Price Rs. 21/-

Angavijā is published for the first time by the Prakrit Text Society. It is critically edited by Muni Shri Punyavijayaji, with English Introduction by Dr. Motichandra and Hindi Introduction by Dr. V. S. Agarwal.

Angavijā is an ancient Prakrit Text relating to prognostication on the basis of bodily signs. The work is of unknown authorship but was considered to be of high antiquity and great sanctity having been delivered by Mahāvira himself. Its internal evidence points to its having been finally compiled at the end of the Kushan period, about 4th Century A. D.

It is highly important document firstly, for the history of Prakrit language and secondly, for the cultural history of India. It contains hundreds of lists of all descriptions, for example, seats, postures, utensils, containers, flowers, trees, personal names, food and drinks, bedsteads, conveyances, textiles, ornaments, jewellery, coins, birds, animals, arrows, weapons, boats, gods, goddesses, etc.

2. 4 PRĀKRITA-PAIṄGALAM Part I, II

Part I-Demy Octavo size. Pages 700 - Rs. 16/- : Part II-Pages 16+16+592+12..Price Rs 15/-

Prākṛitapaṅgalam is a text on Prakrit and Apabhraṁśa Metres. It is critically edited with three Sanskrit commentaries on the basis of the two earlier editions and further available manuscript material by Dr. Bholashankar Vyas, a distinguished member of the Hindi Department of the Banaras Hindu University. He has also added Hindi translation with philological notes and glossary of Prakrit and Apabhraṁśa words.

Part II contains the editor's comprehensive Introduction dealing with the problems of the Prākṛita Paṅgalam together with a critical and comparative study of the metres that form the subject matter, as well as, the exact nature of the language of the original text, and also a literary assessment of the portion which the author intended to serve as illustrations to the Matrka and Varnka metres dealt with by him.

3. CAUPPANNAMAHĀPURISACARIYAM

--Demy Quarto size..Pages-8-68+384. Price Rs. 21/-

Cauppannamahāpurisacariyam is a great biographical work by Ācārya Śilānka of the 9th Century A. D. It is critically edited by Pt. Amritlal Mohanlal, Research Scholar of Prakrit Text Society. Its Introduction is written by Dr. K. L. Bruhn

It gives the lives of 54 great men revered by the Jains, viz. 24 Tirthankaras, 12 Cakravartins, 4 Baladevas and 9 Vāsudevas.

5. ĀKHYĀNAKAMAṆIKOŚA.

--Demy Quarto size..Pages 8+16+25+422..Price Rs. 21/-

Ākhyānakamaṇikośa is critically edited for the first time by Muni Shri Punyavijayaji.

It is written by Nemichandra and is commented upon by Amradeva of the 12th Century A. D. This book is a mine of historical and legendary stories in Prakrit and Apabhraṁśa.

6. PAUMĀCARIAM Part I

-Demy Quarto size..Pages-8+40+376..Rs. 18/-

This is the earliest Prakrit version of the story of Rāma. It was written in about the third Century A. D. by Vimala. The work is printed with Hindi translation. It is revised by Muni Shri Punyavijayaji and translated by Prof. S. M. vora, M. A., Jasnadersanācārya. Its Introduction is written by Dr. V. M. Kulkarni.

7. PĀIASADDAMAHANNAVO

-Demy Quarto size..Pages 64+952. Price Rs. 20 for student edition and Rs. 30 for the library edition.
This great Prakrit-Hindi Dictionary is published in its second edition adding some new words.

8. NANDISŪTRACŪRŪNI

-Demy Quarto size, Pages 104 · Price Rs. 12/-

Nandisūtra with its Cūri is critically edited by Muni Shri Punyavijayaji for the first time. Five indices have been added at the end.

WORKS IN THE PRESS.

1. PAUMĀCARIAM Part II

-Demy Quarto size..

The second part of this great work will be published very soon.

2. PĀSACARIU

-Demy Quarto size.

This work is critically edited and translated in Hindi by Prof. P. K. Modi, Principal, Sanskrit College, Indore.

This is a work on the life of Pārśvanātha, the 23rd Tirthankara in Apabhramśa language

3. SŪTRAKRITĀNGA

-Demy Quarto size..

Sūtrakṛtāṅga is an important canonical text of the Jains. It gives the fare idea of the various Sects and Philosophical Schools of the sixth Century B. C. and also deals with fundamental teachings of Lord Mahāvīra.

This is critically edited by Muni Shri Punyavijayaji with two commentaries in Prakrit, viz. Niryukti and Cūri.

4. DASAKĀLIKA

-Demy Quarto size..

Dasakālika is written by Śāyambhava in the 4th Century B. C. It will be published with Niryukti and Cūri of Agastyasūtra for the first time. It deals with the conduct of the Jaina Monks.

It is edited by Muni Shri Punyavijayaji

5. PUHAVICANDACARIYAM

This work written by Ācārya Śāntisūri deals with the famous story of Pṛthvicandra, It is a fine piece of ornate Prakrit poetry.

6. MŪLASUDDHI

The text is written by Ācārya Pradyumnasūri and is commentated by Ācārya Devacandra the Guru of Hemacandrasūri. This important work contains many stories regarding purity of the faith etc.



वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल न० १२ देववा
लेखक श्री देववा चक
शीर्षक जाली सूत्रम्
खण्ड क्रम नम्बरा ४२१७